कूर्म पुराण

द्वितीय खण्ड

(सरल भाषानुवाद सहित

*

सम्पादक:
वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,
२० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक:
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

दो शब्द

'कूर्म पुराण' द्वितीय खण्ड मे दो गीताओ—ईश्वर गीता और व्यास गीता का समावेश किया गया है। ईश्वर गीता मे आध्यात्मिक ज्ञान का विवेचन किया गया है और व्यास गीता मे सासारिक कर्मों को धर्म पूर्वक पालन करने का विध-विधान बताया गया है। भारतीय समाज का संगठन 'वर्णाश्रम' के आधार पर हुआ था। समाज के लिये आवश्यक कार्यों को चार मुख्य विभागो—(१) बौद्धिक (२) रक्षात्मक (३) आर्थिक (४) सेवात्मक मे बाँट दिया गया था, और यह निर्देश दिया गया था कि सब लोग यथा सभव अपने नियत कामो मे ही संलग्न रहें। जिससे शान्ति और सुव्यवस्था बनी रहे। इसी प्रकार मानव जीवन को चार भागो मे बाँटा गया था—(१) ब्रह्मचर्य (२) गृहस्थ (३) वान प्रस्थ (४) सन्यस्त। इसका उद्देश्य यही था कि मनुष्य अपना कार्य क्रम बदलती हुई परिस्थितियो के अनुसार निश्चित करे, जिससे उसके परिवार वालो तथा सगे सम्बन्धियो को आन्तरिक उलझनो का सामना न करना पड़े।

'व्यास गीता' मे उन चारो आश्रमो के धर्मों का अच्छी प्रकार वर्णन किया गया है। उससे विदित होता है कि 'सनातन धर्म' के एक अनुयायी का समस्त जीवन 'धर्ममय' होना चाहिए। 'धर्म' का अर्थ केवल पूजा-पाठ कर लेना अथवा तिलक-छापा लगा लेना नही है। पुराणकार ने इस धर्म का नाम 'सनातन कर्म-योग' लिखा है। इसका आशय यही है कि मनुष्य को प्रत्येक स्थिति और अवस्था मे अपने कर्तव्य-पालन का ध्यान रखना चाहिए और उस पर पूर्ण रूप से आरूढ़ रहना चाहिए।

'व्यास गीता' मे ब्रह्मचारी के लिये जो नियम और कर्तव्य बतलाये हैं उनका आशय यही है कि मनुष्यो को बाल्यावस्था से स्वावलम्बन और कष्ट सहिष्णुता का जीवन व्यतीत करना चाहिए। जिससे वह आगामी जीवन मे सब प्रकार की परिस्थितयो का सामना करते हुए अपना निर्वाह

अच्छी तरह कर सके। ब्रह्मचारी अवस्था में मनुष्य का जीवन अधिक से अधिक सीधा-सादा और आडम्बर शून्य होना चाहिये और गुरुजनों के प्रति इसे पूर्णतः विनीत रहना चाहिए। इन नियमों को देखते हुये जब आज की शिक्षा-संस्थाओं की गति विधियों पर विचार करते हैं-तो जमीन आसमान का अन्तर जान पड़ता है। इस प्रकार जब समाज का मूल ब्रह्मचर्य-आश्रम अस्त-व्यस्त हो गया तो आगामी दर्जों (आश्रमों) का भी विकृत हो जाना निश्चित ही था।

गृहस्थ के जो नियम बतलाये गये हैं वे भी ऐसे हैं जिनमें व्यक्तिगत सुखोपभोग के बजाय सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति का ही अधिक ध्यान रखा गया है। ब्राह्मण के लिये तो विशेष रूप से यह विधान किया गया है कि वह समाज से कम से कम ग्रहण करे और अधिक से अधिक प्रदान करे। वर्तमान समय में जिस प्रकार अधिकांश ब्राह्मणों ने केवल जन्म के आधार पर दान लेना अपना अधिकार मान लिया है, उसको 'व्यास गीता' में सर्वथा गर्हित बतलाया है। उसमें कहा गया है—

> वृत्तिसंकोचमन्विच्छेत् नेहेत धन विस्तरम्।
> धन लोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्या देवहीयते॥
> वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः।
> नतां गति मवाप्नोति सङ्कोचाद्यमिवाप्नुयाद्॥

अर्थात् "ब्राह्मण को सदैव वृत्ति-संकोच (त्याग) की ही चेष्टा करते रहना चाहिए, धन को बढ़ाने की नहीं क्योंकि जो ब्राह्मण धन का लोभी हो जाता है उसका पतन होने लग जाता है चाहे समस्त वेदों का अध्ययन करले और चाहे बहुत से यज्ञ-याग कर डाले, पर ब्राह्मणत्व का जो उत्थान त्याग और अपरिग्रह से होता है वह और किसी तरह प्राप्त नहीं हो सकता।"

इसलिये पुराणकार ने जीविका और अन्न के शुद्ध होने पर बहुत अधिक बल दिया है, और किसी से किसी प्रकार का प्रतिग्रह (दान) लेने में अत्यन्त सावधानी वर्तने का आदेश दिया है। उसने स्पष्ट कह दिया है-

"यो यस्यान्न समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्।"

अर्थात् "जो जिसके अन्न को खाता है वह उनके पापों को भी खा लिया करता है।" अगर मनुष्यों ने इस शिक्षा पर ध्यान दिया होता तो आज हमारे समाज के समस्त अगों मे जो भ्रष्टाचार और दुराचार परिलक्षित हो रहा है, उसके स्थान पर भिन्न ही स्थिति दिखाई पड़ रही होती।

'वानप्रस्थ आश्रम' भी कम महत्वपूर्ण नही है, यद्यपि आज उसके स्वरूप और कर्तव्यो को लोग बिल्कुल भूल गये हैं। उसका उद्देश्य है अपने परिवार की संकीर्ण परिधि को छोड कर विस्तृत समाज को ही अपना परिवार बना लेना। आज यद्यपि पुराने जमाने के जैसे वन और जगल नही रहे हैं, जहाँ वन्य-फलों और कन्द मूल आदि से अपना निर्वाह किया जा सके, तो भी यदि वानप्रस्थ के अनुयायी समाज से कम से कम लेकर उसकी अधिक से अधिक सेवा करते रहें, तो वे बहुत बडे सम्मान के अधिकारी माने जायगे। यद्यपि जप, तप, ध्यान, उपासना भी उनका कर्तव्य बतलाया गया है, पर उसका मुख्य आधार समाज सेवा ही है—

दारण्य.सर्व भूताना सम्विभागरम सदा।
परिवाद मृषावाद निद्रालस्य विवर्जयेत्॥

"वानप्रस्थ का कर्तव्य है कि समस्त प्राणियों की रक्षा का ध्यान रखे और सब के प्रति समदृष्टि रखता हुआ उनके हित साधन मे प्रवृत्त रहे। उसका अन्य लोगो की निन्दा, चुगली, झूँठी गप शप से बचना और अपना समय निद्रा अथवा आलस्य मे भी व्यतीत नही करना चाहिये।"

'खेद है कि आज कल के 'त्यागीजी, और 'महात्माजी' नामधारियों की स्थिति इससे उल्टी ही दिखाई पडती है। 'निन्दा, गप शप, निद्रा और आलस ही उनके मुख्य कार्य बन गये है। वे दूसरो की सेवा और हित साधन क्या करेंगे जब कि उनको स्वयम् ही इतने व्यसन लगे रहते हैं कि उनकी पूर्ति के लिये भले-बुरे सब तरह के उपाय अपनाने पडते हैं।

सन्यास-आश्रम की तो जो दुर्गति हुई है, उस सब को अपनी आँखों से देख ही रहे हैं। जिस 'संन्यास' का आदर्श समाज के छोटे से क्षेत्र से निकल कर 'विश्व-मानव' की भूमिका में पदार्पण करना था, उसका उद्देश्य अब केवल हराम की कमाई खाना रह गया है। कहने को इस समय भी देश मे सन्यासियो की कमी नहीं है। सभी तीर्थ उनसे भरे रहते हैं। और प्रत्येक कसबे में भी दो-चार दस महात्मा लोग अड्डा जमाये बैठे ही रहते हैं, पर उनमें से अधिकांश गो० तुलसीदास जी के कथनानुसार "नारी मुई घर सम्पति नासी—मूड मुडाइ भये सन्यासी" की उक्ति को चरितार्थ करने वाले ही हैं। 'व्यास गीता' मे इस आश्रम वालो को "निर्मम, निर्भय, शान्त, निर्द्वन्द, निष्परिग्रह, मितभाषी, जीर्ण कौपीन वासा" रहने का उपदेश दिया है, पर आज कल के सन्यासी नामधारियो मे सब लक्षण प्राय. इनके विपरीत ही दिखाई पड़ते हैं, और यह हिन्दू-समाज के पतन का एक बहुत बड़ा कारण है।

इस प्रकार 'कूर्म पुराण' का यह खण्ड समाज और व्यक्ति के कल्याणो का उचित मार्ग-दर्शन करने वाला है। यद्यपि देश काल के बदल जाने से आज कल उसके विधि-विधान ज्यो के त्यो पालन नहीं किये जा सकते, पर यदि हम उनकी मूल भावना को ध्यान मे रख कर आचरण करें तो अपना और दूसरो का बहुत कुछ हित साधन कर सकते हैं।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय सूची

कूर्मपुराण (उत्तरार्द्ध)

(व्यास गीता)

कूर्म--पुराण
द्वितीय खण्ड
४६—प्लक्षादिद्वीपानाम्वर्णन

जम्बूद्वीपस्यविस्तराद्द्विगुणेनसमन्ततः ।
सवेष्टयित्वाक्षीरोदंप्लक्षद्वीपोव्यवस्थितः ॥१
प्लक्षद्वीपेचविप्रेन्द्रा सप्ताऽऽसन्कुलपर्वता ।
सिद्धायुना सुपर्वाण सिद्धसङ्घनिषेविता. ॥२
गोमेद. प्रथमस्तेषा द्वितीयश्चन्द्रउच्यते ।
नारदो दुन्दुभिश्चैव मणिमान्मेघनिस्वन ॥३
वैभ्राज सप्तमस्तेषा ब्रह्मणोऽत्यन्तवल्लभ ।
तत्र देवर्षिगन्धर्वै सिद्धैश्च भगवानजः ।
उपास्यते स विश्वात्मा साक्षी सर्वस्य विश्वदृक् ।
तेषु पुण्या जनपदा आधयो व्याधयो न च ।।५
न तत्र पापकर्त्तारः पुरुषा वै कथञ्चन ।
तेषा नद्यश्च सप्तैव वर्षाणा तु समुद्रगा ॥६
तासु ब्रह्मर्षयो नित्य पितामहमुपासते ।
अनुतप्ताशिखे चैव विपापा त्रिदिवा कृता ॥७
अमृता सुकृताचैवनामत परकीर्त्तिता ।
क्षुद्रनद्यस्तु विख्याताः सरासिचवहून्यपि ॥८

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—जम्बूद्वीप के विस्तार से द्विगुण विस्तार से चारो ओर युक्त क्षीर सागर का सवेष्टन करके यह प्लक्षद्वीप व्यवस्थित है ॥१॥ हे विप्रेन्द्रो । इस प्लक्ष द्वीप मे सात ही कुल पर्वत हैं जो सिद्धो से युक्त-सुपर्वा और सिद्धा के सघ से सेवित होते हैं ॥२॥ उन सातो

कुल पर्वतो मे गोमेद पहिला पर्वत है और दूसरा चन्द्र कहा जाता है। नारद—दुन्दुभि—मणिमान्—मेघनिस्वन—वैभ्राज—और उनमे सातवाँ है। जो ब्रह्माजी का अत्यन्त प्रिय है। वहाँ पर देवर्षि—गन्धर्व और सिद्धो के सहित भगवान् अज विराजमान रहते हैं। सबो साक्षी—विश्व के द्रष्टा—विश्वात्मा वह सबके द्वारा उपास्यमान होते हैं। इससे वे जन पद परम पवित्र हैं वहाँ पर कोई भी मानसिक व्यथा तथा रोग नही है ॥३-५॥ वहाँ पर कोई भी पाप कर्मों के करने वाले पुरुष किसी भी प्रकार के नही हैं। उनकी नदियाँ भी सात ही हैं। वे वर्षो की नदियाँ सब समुद्र गामिनी है ॥६॥ उनमे नित्य ही ब्रह्मर्षिगण पितामह की उपासना किया करते हैं। उन नदियो के नाम ये हैं—अनुतप्ता—शिखा—विपापा—त्रिदिवा—क्रता—अमृता और सुकृता ये नाम हैं जो परिकीर्तित किये गये हैं। छोटी-छोटी नदियाँ और सरोवर तो वहाँ पर बहुत-से हैं जो विख्यात है ॥७-८॥

न चैतेषु युगावस्था पुरुषा वै चिरायुष'।
आर्यका कुरराश्चैव विदेहाभाविनस्तथा ॥९
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन्द्वीपे प्रकीर्त्तिता.।
इज्यते भगवानीशो वर्णैस्तत्र निवासिभि ॥१०
तेषाञ्च सोमनाम्नाज्य सारूप्य मुनिपुङ्गवा.।
सर्वे धर्म्मरतानित्यसर्वे मुदितमानसा ॥११
पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामया ।
प्लक्षद्वीपप्रमाण तु द्विगुणेन समन्ततः ॥१२
सवेष्टयेक्षु रसाम्भोधि शाल्मलि सव्यवस्थितः।
सप्त वर्षाणि तत्रापि सप्तैव कुलपर्व्वता ॥१३
ज्ञेयास्तत्र सुपर्वाण. सप्त नद्यश्च सुव्रता.।
कुमुदश्चोन्नदश्चैव तीयश्च बलाहक ॥१४
द्रोण कनकन्तु महिष ककुद्मान् सप्तमस्तथा।
योनी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचिनी ॥१५

निवृत्तिश्चेतितानद्य स्मृता पापहरानृणाम् ।
नतेपुविद्यतेलोभ क्रोधोवाद्विजसत्तमा ॥१६

उनमें युग की कोई भी अवस्था नहीं होती है और वे चिरायु हुआ करते हैं। आर्यक—कुरर तथा विदेह भावी हैं ॥६॥ उस द्वीप में ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र ये ही प्रकीर्तित होते हैं। वहाँ के निवास करने वाले वर्णों वर्णों के द्वारा भगवान् ईश का ही यजन किया जाता है ॥१०॥ हे मुनिपुङ्गवो ! उनका सोम सायुज्य और सारूप्य होता है। वे सभी नित्य ही धर्म में निरत रहने वाले और प्रसन्न मान वाले हैं ॥११॥ ये लोग पाँच सहस्र वर्ष तक निरामय होकर जीवन धारण किया करते हैं। प्लक्ष द्वीप का प्रमाण सभी ओर से दुगुना है। शाल्मलि द्वीप ईख के रस वाले सागर से संवेष्टित करके भली भाँति व्यवस्थित रहता है। वहाँ पर भी सात वर्ष होते हैं सात ही वहाँ पर कुल पर्वत है ॥१२-१३॥ ऋतु और आयत सुपर्वा नदियाँ भी वहाँ पर हे सुव्रतो ! सात ही है। उनके नाम पर्वतों के ये हैं—कुमुद—उन्नद—बलाहक—द्रोण—कङ्क—महिष और ककुद्मान् है। नदियों के नाम ये हैं—योनी—तोया—वितृष्णा—चन्द्रा—शुक्ला—विमोचनी और निवृत्ति ये समस्त मनुष्यों के हरण करने वाली नदियाँ कही गयी हैं। हे द्विजश्रेष्ठो ! उनमें न तो कोई लोभ ही होता है और न क्रोध होता है ॥१४-१६॥

नचैवास्तियुगावस्थाजना जीवन्त्यनामया ।
यजन्तिसततंतत्र वर्णावायुं सनातनम् ॥१७
तेषातत्सायनयुक्त सारूप्यञ्च सलोकता ।
कपिलाब्राह्मणा प्रोक्ताराजानश्चारुणास्तथा ॥१८
पीता वैश्या स्मृता. कृष्णा द्वीपेऽस्मिन् वृषला द्विजा. ।
शाल्मस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ॥१९
संवेष्ट्य तु सुरोदाब्धि कुशद्वीपो व्यवस्थित. ।
विद्रुमश्चैव होमश्च द्युतिमान् पुष्पावास्तथा ॥२०
कुशेशयो हरिश्चैव मन्दरः सप्तपर्वता ।
धुतपापा शिवाचैव पवित्रा सम्मिता तथा ॥२१

तथा विद्युत्प्रभा रामामहानद्यश्चमप्ततं।
अन्याश्चशतशो विप्रा नद्योमणिजला शुभा ॥२२

वहाँ के निवासी जनो मे कोई भी युग की अवस्था नही हुआ करती हैं। व सब परम स्वस्थ रहते हुए ही जीवन यापन किया करते हैं। ये लाग वहाँ पर निरन्तर सनातन वर्णा वायु का यजन किया करते हैं ॥१७॥ उनका वह साधन परम युक्त है—उनमे सारूप्य है तथा सलोकता है। वहाँ क ब्राह्मण कपिल वर्ण वाले हाते हैं आर क्षत्रिय अरुण होते हैं। वैश्य पीत वर्ण वाले हैं। हे द्विजगण ! जो शूद्र हाते हैं वे इस द्वीप मे कृष्ण वर्ण वाले हुआ करते हैं। शाल्मलि के विस्तार स सभी ओर दुगुन विस्तार वाला सुरा के सागर को सवेष्टित करके कुशद्वीप व्यवस्थित होता है। वहाँ पर भी सात पर्वत हैं उनके नाम य हैं—विद्रुम—होम-द्युतिमान्—पुष्पवान् कुशेशय—हरि और मन्दर य उन सातो पर्वतो के नाम हैं ॥२०॥ धुतपापा—शिवा—पवित्रा—सम्मिता—विद्युत्प्रभा और रामा ये सात महा नदियाँ हैं। अन्य तो हे विप्रगण ! सैकड़ो ही मणि के समान जल वाली शुभ नदियाँ हैं ॥२१-२२॥

तास्तु ब्राह्मणमीशान देवाद्या पर्युपासते।
ब्राह्मणा द्रविणो विप्रा क्षत्रिया शुष्मिणस्तथा ॥२३
वैश्यास्तोभास्तुमन्देहा शूद्रास्तत्रप्रकीर्तिता।
नरापिज्ञानसम्पन्नामैत्रादिगुणसयुता ॥२४
यथोक्तकारिण सर्वे सर्वे भूतहिते रता।
यजन्ति यज्ञैर्विविधब्रह्माण परमेष्ठिनम् ॥२५
तेषाञ्च ब्रह्मसायुज्य सारूप्यञ्चसलोकता।
कुशद्वीपस्यविस्तारादृद्विगुणेनसमन्तत ॥२६
क्रौञ्चद्वीप. स्थितो विप्रा वेष्टयित्वा घृतोदधिम्।
क्रौञ्चो वामनकश्चैव तृतीयश्चान्धकारिक ॥२७
दवावृश्च विवेदश्चपुण्डरीकस्तथैव च।
नाम्ना च सप्तमाप्रोक्त पर्वतो दुदुभिस्वन ॥२८

वे सब ईशान ब्रह्मा का देवादि उपासना किया करते हैं। हे विपो! ब्राह्मण द्रविण है और क्षत्रिय शुष्मिण होते हैं ॥२३॥ वैश्य तोभ और शूद्र मन्देहा कीर्तित किये गये है। यहाँ के मनुष्य सभी ज्ञान से सम्पन्न हैं और मैत्रादि गुण—गणों से सयुत होते हैं ॥२४॥ जैसा भी कहा जाता है उसी के अनुसार करने वाले सब लाग हैं और समस्त प्राणियों के हित मे रति रखने वाले है। अनेक प्रकार के यज्ञो के द्वारा परमेष्ठी ब्रह्मा का यजन किया करते हैं ॥२५॥ उन सबको ब्रह्म का सायुज्य होता है। सारूप्य और सालोक्य भी होता है। इस कुशद्वीप के विस्तार से सभी ओर दुगुना विस्तार रखने वाला क्रौञ्च द्वीप है। हे विप्रगण! यह क्रौञ्च द्वीप घृत के सागर का सवेष्ट न करके ही स्थित रहा करता है। ॥२६॥ इस द्वीप मे सात पर्वत हैं। उनके नाम क्रौञ्च—वामनक—अन्धकारिक—देवावृ—विवेद—पुण्डरीक और सातवाँ दुन्दुभिस्वन ये हैं ॥२७-२८॥

गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्यारात्रिर्मनोजवा।
ख्यातिश्च पुण्डरीकाक्षा नद्य प्राधान्यतः स्मृताः ॥२९
पुष्कलाः पुष्करा धन्यास्तिष्या वर्णा क्रमेण वै।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैव द्विजोत्तमाः ॥३०

अर्च्चयन्ति महादेव यज्ञदानशमादिभि।
व्रतोपवासैर्विविधैर्होमैश्च पितृतर्पणै. ॥३१
तेषा वै रुद्रसायुज्यसारूप्यचातिदुर्लभम्।
सलोकताचसामीप्य जायतेतत्प्रसादत. ॥३२

क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः।
शाकद्वीपः स्थितो विप्रा आवेष्टय दधिसागरम् ॥३३
उदयो रैवतश्चैव श्यामकाष्ठगिरिस्तथा।
आम्बिकेयस्तथारम्य केसरीचेति पर्वता. ॥३४
सुकुमारी कुमारी च नलिनीवेणुकातथा।
इक्षु कावेनुका चैव गभस्तिश्चैतिनिम्नगाः ॥३५

वहाँ पर प्रधानतया सात नदियाँ बताई गई हैं—उनके नाम गौरी—कुमुद्वती—सन्ध्या रात्रि—मनोजवा—क्षांति—पुण्डरीकाक्षा ये होते हैं ॥२६॥ हे द्विजोत्तमो ! पुष्कर—पुष्कर—धन्य और तिष्य ये वहाँ पर क्रम से वर्ण होते हैं जो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र के समान ही माने जाते हैं ॥३०॥ ये लोग सब यज्ञ-दान और यम आदि के द्वारा महादेव का अर्चन किया करते हैं। अनेक व्रत—उपवास—होम और पितृ तर्पण के द्वारा आराधन किया करते हैं। उन सबको भगवान् रुद्र का सायुज्य तथा सारूप्य होता है जो अत्यन्त ही दुर्लभ है। महादेव के प्रसाद से उनको सलोकता और सामीप्य भी हो जाया करता है ॥३१-३२॥ क्रौञ्च द्वीप का जितना विस्तार है उससे दुगुना सभी ओर विस्तार वाला शाकद्वीप स्थित है जो दधि के समुद्र को वेष्टित करके ही संस्थित रहा करता है ॥३३॥ वहाँ पर उदय, रैवत, श्यामक, आम्बिकेय, आरम्य, केसरी ये पर्वत हैं। सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, वेणुका, इक्षु, धेनुका, गभस्ति—ये नदियाँ हैं ॥३४-३५॥

आसापिबन्त सलिलजीवन्तितत्रमानवाः ।
अनामयाश्चाशोकाश्चरागद्वेषविवर्जिताः ॥३६
मृगाश्चमगधाश्चैव मानसामन्दगास्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चात्रक्रमेणतु ॥३७
यजन्ति सततं देवं सर्वलोकैकसाक्षिणम् ।
व्रतोपवासैर्विविधैर्देवदेवं दिवाकरम् ॥३८
तेषां वैसूर्यसायुज्यमसामीप्यञ्चसरूपता ।
सलोकता च विप्रेन्द्राजायतेतत्प्रसादतः ॥३९
शाकद्वीपसमावृत्य क्षीरोदः सागरः स्थितः ।
श्वेतद्वीपञ्च तन्मध्ये नारायणपरायणाः ॥४०
तत्र पुण्याजनपदानानाश्चर्यसमन्विता ।
श्वेतास्तत्रनरानित्यजायन्ते विष्णुतत्पराः ॥४१
नाधयोव्याधयस्तत्रजरामृत्युभयं न च ।
क्रोधलोभविनिर्मुक्ता मायामात्सर्यवर्जिताः ॥४२

वहाँ के निवासी मानव इन नदियों से जल पीया करते हैं और जीवित रहते हैं। वे परम स्वस्थ—शोक से रहित तथा सब प्रकार क राग–द्वेष से से भी रहित होते हैं। मृग—मगध—मानस और मन्दग—ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र यहाँ पर क्रम से समस्त लोकों के एक साक्षी देव का व्रत और उपवासों के द्वारा देवों के देव दिवाकर का विविध साधनों से निरन्तर यजन किया करते हैं ॥३७-३८॥ उनको सूर्य देव के प्रसाद से सूर्य का सायुज्य—सामीप्य—सारूप्य तथा सलोकता हे विप्रेन्द्रगण! उत्पन्न हो जाया करती है ॥३९॥ शाकद्वीप को समावृत करके क्षीर सागर स्थित रहा करता है। उसके मध्य में श्वेत द्वीप है। वहाँ पर मनुष्य भगवान् नारायण में परायण होते हैं ॥४०॥ वहाँ पर जनपदों के परम पुण्यशाली–आश्चर्य से समन्वित श्वेत नर विष्णु में तत्पर होते हैं। वहाँ पर आधि और व्याधि तथा वृद्धावस्था कुछ भी नहीं होती है और किसी को भी वहाँ मृत्यु का भय नहीं रहा करता है। वहाँ के मनुष्य क्रोध तथा लोभ से विमुक्त होते हैं और माया एवं मात्सर्य से विवर्जित होते हैं ॥४१-४२॥

नित्यपुष्टा निरातङ्का नित्यानन्दाश्च भोगिन ।
नारायणसमा सर्वे नारायणपरायणाः ॥४३
केचिद्धयानपरा नित्ययोगिनःसंयतेन्द्रिया ।
वे जिजपन्ति तप्यन्ति केचिद्विज्ञानिनोऽपरे ॥४४
अन्ये निर्बीजयोगेन ब्रह्मभावेन भाविता ।
ध्यायन्ति तत्पर ब्रह्म वासुदेव सनातनम् ॥४५
एकान्तिनोनिरालम्बामहाभागवता परे ।
पश्यन्तितत्परब्रह्म विष्ण्वाख्यतमसःपरम् ॥४६
सर्वे चतुर्भुजाकाण शङ्खचक्रगदाधरा ।
सुपीतवाससः सर्वे श्रीवत्साङ्कितवक्षसः ॥४७
अन्ये महेश्वरपरास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तका ।
सुयोगाद्भूतिकरणा महागरुडवाहना ॥४८
सर्वे शक्तिसमायुक्तानित्यानन्दाश्चनिर्मला ।

वसन्तितमपुरुषा विष्णोरन्तरचारिण ॥४९

नित्य ही पुष्ट—आतङ्क से रहित—नित्य आनन्द वाले—भोगी सब नारायण के समान और नारायण मे ही परायण होते हैं ॥४३॥ कुछ लोग ध्यान मे परायण नित्य ही योगी और सयत इन्द्रियो वाले होते है। कुछ जाप किया करते हैं—कुछ तपश्चर्या करते है और कुछ दूसरे विज्ञानी होते हैं ॥४४॥ अन्य लोग निर्बीज योग मे ब्रह्म के भाव मे भावित रहा करते हैं। उससे भी पर सनातन वासुदेव ब्रह्म का ध्यान किया करते हैं। अन्य लोग एकान्त व भी—अवलम्ब से रहित महा भागवत होते हैं। ये लोग तमोगुण से परे तत्पर विष्णु नाम वाले ब्रह्म को ही देखा करते हैं ॥४५-४६॥ सभी चार भुजाओ के आकार वाले—शख चक्र गदा के धारक—सुन्दर पीतवस्त्र पहिनने वाले और श्री वत्स से अकित वक्षःस्थल वाले होते हैं ॥४७॥ अन्य लोग महेश्वर मे परायण रहने वाले हैं। इनका मस्तक त्रिपुण्ड्र से अकित रहता है। सुयोग से भूति करण और महागरुड के वाहन वाले हैं ॥४८॥ सभी लोग शक्ति मे समायुक्त नित्य ही आनन्द पूर्ण और निर्मल होते हैं। वहाँ पर विष्णु भगवान् के अन्तरचारी पुरुष ही वास किया करते है ॥४९॥

तत्र नारायणस्यान्यद्दुर्गम दुरतिक्रमम् ।
नारायण नाम पुर प्रासादैरुपशोभितम् ॥५०
हेमप्राकारसयुक्त स्फाटिकैर्मण्डपैर्युतम् ।
प्रभासहस्रकलिल दुराधर्ष सुशोभनम् ॥५१
हर्म्यप्रासादसयुक्त महाट्टालसमाकुलम् ।
हेमगोपुरसाहस्रैर्नाना रत्नोपशोभितै ॥५२
शुभ्रास्तरणसयुक्तैर्विचित्रै समलङ्कृतम् ।
नन्दनैर्विविधाकारै स्रवन्तीभिश्च शोभितम् ॥५३
सरोभि सर्वतो युक्त वीणावेणुनिनादितम् ।
पताकाभिर्विचित्राभिरनेकाभिश्च शोभितम् ॥५४
वापीभि सर्वतो युक्त सोपानैरत्नभूषितै ।
नदीशतसहस्राढ्य दिव्यगाननिनादितम् ॥५५

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
चतुर्द्वारमतौपम्यमगम्यं देवविद्विषाम् ॥५६

वहाँ पर नारायण का नाम और पुर अन्य के लिये बहुत ही दुर्गम और दुरति क्रम है। यह पुर विशाल प्रासादो से उपशोभित है। इसका प्राकार (चहार दीवारी) हेम की निर्मित हुई है और स्फटिक मणि के निर्मित मण्डपों से युक्त है। यह सहस्रो भाँति की प्रभाओ से कनिल-दुराधर्ष और परम सुशोभन है ॥५०-५१॥ धनियो के निवास स्थान और प्रासादों से यह पुर सुसम्पन्न है तथा महा अट्टालिकाओ से समाकुल है। अनेक प्रकार के रत्नो से उपशोभित सहस्रों हेम के गोपुरो से युक्त है ॥५२॥ शुभ्र आस्तरणो से सयुक्त विचित्र पदार्थो से समलङ्कृत है। विविध भाँति के नन्दन वनो तथा निझरो से शोभा वाला है ॥५३॥ सभी ओर सरोवरो से युक्त है तथा वीणा और वेणु को ध्वनि से शब्दायमान है। इस पुर में अनेक विचित्र पताकाऐं हैं। इन अनेक पताकाओ से यह पुर शोभा समन्वित है ॥५४॥ इसमे सभी ओर वीथियाँ हैं और रत्नो से भूषित सोपानो से यह पुर प्रासाद युक्त है। इसमे सहस्रों सैकड़ो नदियाँ हैं तथा परम दिव्य गायन से यह ध्वनि मय रहता है। हंस और करण्डवो समाकीर्ण तथा चक्रवाको से उपशोभित है। इसमें चार द्वार है जो अतीव अनुपम है और देवो से विद्वेष रखने वालो के लिये ये अगम्य होती हैं ॥५५-५६॥

तत्र तत्राप्सर सङ्घैर्नृत्यद्भिरुपशोभितम् ।
नानागीतविधानज्ञैर्देवानामपि दुर्लभै. ॥५७
नानाविलाससम्पन्नैः कामुकैरतिकोमलै. ।
प्रभूतचन्द्रवदनैर्नूपुरारावसयुतैः ॥५८
[illegible] ।
[illegible] ॥५९
सुराजहंसचलनैः सुवेषैर्मधुरध्वनै. ।
सलापालापकुशलैर्दिव्याभरणभूषितै. ॥६०

स्तनभारविनम्रैश्च मधुघूर्णितलोचनैः ।
नानावर्णविचित्राङ्गैर्नानाभोगरतिप्रियैः ॥६१
उत्फुल्लकुसुमोद्यानैस्तद्भूतशतशोभितम् ।
असंख्येयगुणं शुद्धमसंख्येयैस्त्रिदशैरपि ॥६२
श्रीमत्पवित्रं देवस्य श्रीपतेरमितौजसः ।
तस्यमध्येऽतितेजस्कमुच्चप्राकारतोरणम् ॥६३

वहाँ पर अप्सराओ के सब नृत्य किया करती है इस शोभा से वह युक्त है। वहाँ पर नाना प्रकार के गीतो के विज्ञान के ज्ञाताओ का समुदाय रहता है जो देवगण को भी दुर्लभ हैं ॥५७॥ नाना भाँति के विलासो सुसम्पन्न अतीव कोमल—प्रभूत चन्द्र के समान मुखो वाले—नूपुरो की ध्वनि से पूर्ण कामुको से वह समन्वित हैं ॥५८॥ ईषत् स्थित वाले—सुन्दर बिम्ब के तुल्य ओष्ठो से युक्त—वाले एवं मुग्ध मृग के समान नेत्र वाले—अशेष विभव से परिपूर्ण—शरीर के मध्य भाग की तनुता से विभूषित—सुन्दर राजहंस के समान गतियो से-सुन्दर वेषो से-मधुर स्वनो से—सलाप और आलाप मे परम प्रवीण—दिव्य आभरणो से भूषित—स्तनो के भय से विशेष नम्र-मद से घूर्णित लोचनो-अनेक वर्णं के विचित्र अङ्गो से-नाना भोगो की रति पर प्यार करने वालो से यह प्रासाद शोभा सम्पन्न है ॥५९-६१॥ खिले हुए कुसुमो वाले उद्यानो से जो इस प्रकार के सैकडो हैं वह शोभित है। यह परम शुद्ध है तथा असख्य देवो के द्वारा भी असख्येय गुणों वाला है ॥६२॥ अमित ओज वाले देवश्री पति का श्री सम्पन्न पवित्र पुर एवं प्रासाद है। उसके मध्य मे अत्यन्त तेज युक्त उच्चप्रकार तोरणो वाला है ॥६३॥

स्थानं तद्वैष्णवं दिव्यं योगिनां सिद्धिदायकम् ।
तन्मध्ये भगवानेकः पुण्डरीकदलद्युतिः ॥६४
शेतेऽशेषजगत्सूतिः शेषाहिशयनेहरिः ।
विचिन्त्यमानो योगीन्द्रैः सनन्दनपुरोगमैः ॥६५
स्वात्मानन्दामृतपीतात्मापुरस्तात्तमसः परः ।
पीतवासा विशालाक्षोमहामायोमहाभुजः ॥६६

क्षीरोदकन्यया नित्यं गृहीतचरणद्वयः ।
सा च देवी जगद्वन्द्या पादमूले हरिप्रिया ॥६७
समास्ते तन्मना नित्य पीत्वा नारायणामृतम् ।
न तत्राऽधार्मिका यान्ति न च देवान्तरालयाः ॥६८
वैकुण्ठंनाम तत्स्थान निदशैरपि वन्दितम् ।
न मेप्रभवतिप्रज्ञा कृत्स्नशास्त्रनिरूपणे ॥६९
एतावच्छक्यते वक्तु नारायणपुर हितत् ।
स एवपरमब्रह्मवासुदेव सनातनः ॥७०
शेते नारायणः श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत् ॥७१
नारायणादिद जात तस्मिन्नेवव्यवस्थितम् ।
तमाश्रयतिकालान्तेसएवपरमागतिः ॥७२

वह परम दिव्य वैष्णव स्थान वैष्णवों के लिये तथा योगियों के लिये सिद्धि का दायक है । उसके मध्य में एक ही पुण्डरीक दना की द्युति से सयुत भगवान् है ॥६४॥ शेष नाग की शय्या पर सम्पूर्ण जगत का प्रसव करने वाले हरि शयन किया करते हैं । योगीन्द्रों के द्वारा जिनमें सनन्दन पुरोगामी है विशेष रूप से चिन्तन किये जाने वाले हैं ॥६५॥ स्वात्मानन्द रूपी अमृत का पान करके तमोगुण से परे पुरस्तात् है । पीत वस्त्र वाले, विशाल नेत्रो से युक्त—महामाया सम्पन्न तथा महान् भुजाओं वाले हैं क्षीर सागर कन्या लक्ष्मी के द्वारा नित्य ही दोनों चरण उनक ग्रहण किये जाते हैं । वह देवी समस्त जगत की वन्दना के योग्य है और वह हरि की प्रिया भगवान् के पाद मूल में स्थित रहती हैं । वह उन्ही में मन लगाने वाली नित्य ही नारायण रूपी अमृत का पान किया करती है । वहाँ पर कोई भी अधार्मिक पुरुष तथा अन्य देवा मे लीन होने वाले पुरुष नहीं जाया करते हैं ।।६५-६८।। वह वैकुण्ठ नाम वाला स्थान है जो देवो के द्वारा भी वन्दित है । सम्पूर्ण शास्त्रों के निरूपण में मेरी प्रज्ञा सामर्थ्य नहीं होती है ॥६९॥ यह नारायण का पुर इतना ही कहा जा सकता है । वह ही परम ब्रह्म वासुदेव एव सनातन है ॥७०॥ वही श्रीमान् नारायण प्रभु अपनी माया से समस्त जगत् को मोहित करते हुए वहाँ

पर शयन किया करते हैं ॥७१॥ उन्हो नारायण से यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ है और उसी प्रभु में यह व्यवस्थित भी रहा करता है क न्ति में यह उसी प्रभु का आश्रय ग्रहण किया करता है क्योंकि वहीं प्रभु परम गति है ॥७२॥

५०—पुष्करद्वीपवर्णन

शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन व्यवस्थित. ।
क्षीरार्णव समाश्रित्य द्वीप पुष्करसज्ञितम् ॥१
एक एवात्र विप्रेन्द्रा॰ पर्वतोमानसोत्तर ।
योजनानासहस्राणिचोर्द्धंपञ्चाशदुच्छ्रित ॥२
तावदेव च विस्तीर्ण.सर्व्वत पारिमण्डल॰ ।
सएवद्वीपश्चार्द्धेन मानसोत्तरसस्थित ॥३
एकएव महाभाग सन्निवेशोद्विधाकृत ।
तस्मिन्द्वीपेस्मृतौद्वौतुपुण्योजनपदौशुभौ ।।४
अपरौ मानसस्याथ पर्व्वतस्यानुमण्डलौ ।
महावीत स्मृतवर्षं धातकीखण्डमेव च ॥५
स्वादूदकेनोदधिना पुष्कर परिवारितः ।
तस्मिन्द्वीपेमहावृक्षोन्यग्रोधोऽमरपूजित ॥६
तस्मिन्निवसति ब्रह्माविश्वात्माविश्वभावन ।
तत्रैवमुनिशार्दूलशिवनारायणालय ॥७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—शाक द्वीप का जितना विस्तार है उससे दुगुने विस्तार से व्यवस्थित क्षीर सागर का समाश्रय ग्रहण करके पुष्कर द्वीप सज्ञा वाला द्वीप है ॥१॥ हे विप्रेन्द्र गण ! यहाँ पर मान सरोवर के उत्तर मे एक ही पर्वत है। यह एक सहस्र योजनों के आयाम वाला है तथा पचास योजन की ऊँचाई से युक्त है। उतना ही सब ओर से पारि-मण्डल विस्तीर्ण है। वह हो द्वीप आधे भाग से मानस के उत्तर मे सस्थित है ॥२-३॥ यह एक ही महाभाग है जिसका सन्निवश दो भागो में

किया हुआ है। उस द्वीप में दो परम शुभ और पुण्यशाली जनपद कहे गये हैं ॥४॥ दूसरे मानस के और इसके अनन्तर पर्वत के अनुमण्डल वाले हैं। एक महावीत वर्ष कहा गया है और धातकी खण्ड है ॥५॥ यह पुष्कर द्वीप स्वादिष्ट उदक से युक्त उदधि के द्वारा परिवारित होता है। उस द्वीप में अमरों के द्वारा पूजित एक अत्यन्त महान् न्यग्रोध का वृक्ष है ॥६॥ उसमें विश्व की आत्मा और विश्व पर कृपा करने वाले ब्रह्माजी निवास किया करते हैं। वहीं पर मुनियों में शार्दूल के सदृश शिव तथा नारायण का आलय है ॥७॥

वसत्यत्र महादेवो हरार्द्धं हरिरव्यय ।
सम्पूज्यमानोब्रह्माद्यैः कुमाराद्यैश्च योगिभि ॥८
गन्धर्व्वैः किन्नरैर्यक्षैरीश्वर कृष्णपिङ्गलः ।
स्वस्थास्तत्र प्रजा सर्व्वा ब्रह्मणा. शतशस्त्विषः ॥९
निरामया विशोकाश्चरागद्वेषविवर्ज्जिता. ।
सत्यानृतेनतत्रास्तानोत्तमाधममध्यमा ॥१०
नवर्णाश्रमधर्म्माश्च न नद्यो न चपर्व्वता ।
परेणपुष्करेणाथसमावृत्य स्थितोमहान् ॥११
स्वादूदकसमुद्रस्तु समन्ताद् द्विजसत्तमा ।
परेण तस्य महती दृश्यते लोकसस्थिति ॥१२
काञ्चनी द्विगुणा भूमिःसर्वश्चैकशिलोपमा ।
तस्याःपरेणशैलस्तुमर्यादाभानुमण्डलः ॥१३
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक. स उच्यते ।
योजनाना सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृत ॥१४

यहाँ पर महादेव निवास किया करते हैं और हर के ऊपर अव्यय हरि हैं जो ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा तथा कुमारादि योगियों के द्वारा सम्पूज्य मान हैं ॥८॥ गन्धर्व—किन्नर और यक्षों के द्वारा कृष्ण पिङ्गल ईश्वर पूजित हुआ करते हैं। वहाँ पर समस्त—प्रजा स्वस्थ है और ब्राह्मण सैकड़ों कान्ति युक्त हैं ॥९॥ वहाँ पर सभी रोग रहित—शोक से शून्य—राग—द्वेष से हीन होते हैं। वहाँ सत्य और अनृत से उत्तम—

मध्यम और प्रथम नहीं हैं ॥१०॥ वहाँ वर्णों तथा आश्रमों के धर्म भी नहीं है—न वहाँ नदियाँ हैं और न पर्वत ही हैं। यह पर पुष्कर से समावृत होकर महान् स्थित है ॥११॥ हे द्विज श्रेष्ठो। स्वादिष्ट जल वाले समुद्र इनके सभी ओर है। पर के द्वारा उनकी महती लोक संस्थिति दिखलाई दिया करती है ॥१२॥ वहाँ पर काञ्चन वाली दुगुनी भूमि है और सर्वत्र एक शिला के ही समान है। उसका पर शैल तो मर्यादा का भानुमण्डल है ॥१३॥ प्रकाश से युक्त और बिना प्रकाश वाला वह लोकालोक नाम से ही कहा जाता है। सहस्र योजनों के विस्तार वाला है और उसका उच्छ्रय दस योजन होता है ऐसा ही कहा गया है ॥१४॥

तावानेव च विस्तारो लोकालोकमहागिरेः।
समावृत्य तु तच्छैलं सर्वतोवैसमस्थितम् ॥१५
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात्परिवेष्टितम्।
एतेसप्तमहालोका.पाताला.सम्प्रकीर्त्तिताः ॥१६
ब्रह्माण्डशेषविस्तारः सक्षेपेण मयोदितः।
अण्डानामीदृशाना तु कोटयो ज्ञेया सहस्रशः ॥१७
सर्वगत्वात्प्रधानस्य कारणस्याव्ययात्मनः।
अण्डेष्वेतेपु सर्वेपु भुवनानि चतुर्दश ॥१८
तत्रतत्र चतुर्वक्त्रा रुद्रानारायणादय.।
दशोत्तरमथैकैकमण्डावरणसप्तकम् ॥१९
समन्तात्संस्थित विप्रास्तत्र यान्ति मनीषिणः।
अनन्तमेवमव्यक्तमनादिनिधन महत् ॥२०

लोका लोक महा गिरि का उतना ही विस्तार है उस शैल को समावृत करके ही सभी ओर से वह समवस्थित है ॥१५॥ तम अण्ड कटाह से सब ओर से यदि वेष्टित है। ये सात महालोक पाताल नाम से ही कीर्तित किये गये हैं ॥१६॥ यह ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण विस्तार मैंने संक्षेप से वर्णन कर दिया है। इस प्रकार के अण्डों की संख्या भी सहस्रों करोड है ॥१७॥ अव्ययात्मा कारण प्रधान का सर्वगत होने से इन सब अण्डों में चौदह भुवन हैं ॥१८॥ वहीं-वहीं पर चार मुखों वाले रुद्र और नारायण आदि

होते हैं। दशोत्तर एक-एक मण्डल के आवरण का सप्तक है ॥१६॥ हे विप्रो ! वह सभी ओर तस्थित है। वहाँ पर मनीषीगण जाया करते हैं। वह अनन्त—अव्यक्त—अनादि निधन और महत् है ॥२०॥

अतीत्य वर्त्तते सर्वं जगत्प्रकृतिरक्षरम्।
अनन्तत्वमनन्तस्य यत संख्यान विद्यते ॥२१

तदव्यक्तमिदज्ञेय तद्ब्रह्म परम ध्रुवम्।
अनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्यते ॥२२

तस्यपूर्वं मयाप्युक्तं यत्तन्माहात्म्यमुत्तमम्।
गतः स एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पूज्यते ॥२३

भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले।
अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशय ॥२४

तथातमसि तत्त्वे वाप्येष एव महाद्युति।
अनेकधा विभक्ताङ्गः क्रीडतेपुरुषोत्तम ॥२५

महेश्वर परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्।
अण्डाद् ब्रह्मा समुत्पन्नस्तेन सृष्टमिद जगत् ॥२६

वह जगत् की प्रकृति सब अक्षर को अतिक्रमण करके वर्त्तमान है। अनन्त का अनन्तत्व है इसी से उसकी संख्या नहीं होती है ॥२१॥ वह अव्यक्त है—ऐसा ही जानना चाहिए। वह परम ध्रुव ब्रह्म है। यह सर्वत्र अनन्त है। सभी स्थानों में पढ़ा जाता है ॥२२॥ मैंने भी उसका पूर्व कह दिया है जो भी उसका उत्तम माहात्म्य है। वह यह सब सर्वत्र सभी स्थानों में पूजा जाता है ॥२३॥ भूमि में—रसातल में—आकाश में—पवन में—अनल में—सब अर्णवों में और दिव लोक में है—इसमें संशय नहीं है ॥२४॥ तथा तत्त्व में—तम में यह ही महान् द्युति वाला है। अनेक प्रकार से विभक्त अङ्गों वाला पुरुषोत्तम क्रीडा किया करते हैं ॥२५॥ महेश्वर पर है। अव्यक्त से अव्यक्त से समुत्पन्न अण्ड है। उस अण्ड से ब्रह्मा समुत्पन्न हुआ है उसने ही इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया है ॥२६॥

५०—मन्वन्तरकीर्तनेविष्णुमाहात्म्यवर्णन

अतीतानागतानीह यानिमन्वन्तराणि वै ।
तानित्वकथयास्मभ्यव्यासञ्चद्वापरेयुगे ॥१
वेदशाखाप्रणयिनो देवदेवस्य धीमत ।
धर्मार्थानाप्रवक्तारो हीशानस्य कलौ युगे ॥२
कियन्तो देवदेवस्य शिष्या कलियुगेऽपि वै ।
एतत्सर्वसमासेनसूतवक्तुमिहार्हसि ॥३
मनु स्वायम्भुव पूर्व तत स्वारोचिषो मन ।
उत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चाक्षु पस्तथा ॥४
षडेते मनवोतीता सम्प्रतन्तु रवे सुत ।
वैवस्वतोऽय मन्नैतत्सप्तमवर्त्तते परम् ॥५
स्वायम्भुव तु कथित कल्पादावन्तर मया ।
अत ऊर्ध्वं निबोधध्व मनो स्वारोचिषस्य तु ॥६
पारावताश्चतुषिता देवा स्वारोचिषेऽन्तरे ।
विपश्चिन्नामदेवेन्द्रोवभूवासुरमर्द्दन ॥७

ऋषियो ने कहा—यहाँ पर अतीत और अनागत जो भी मन्वन्तर हैं उनको आप हमको बतलाइये और द्वापर युग मे व्यास को भी बतलाइये ॥१॥ वेदो की शाखाओ का प्रणयन करने वाले—देवो के देव—धीमान् ईशान के कलियुग म धर्मार्थो के प्रवक्ता उस देव देव के कितने शिष्य इस कलियुग म भी विद्यमान हैं। हे सूतजी। यह सब आप अति स क्षेप से वर्णन करने के योग्य हैं ॥२-३॥ सूतजी ने कहा—सब से पहिले तो स्वायम्भुव मनु हुए थे। उनके बाद स्वारोचिष मनु हुए हैं। फिर उत्तम, तामस—रैवत और चाक्षुष मनु हुए है ॥४॥ इस तरह ये छै मनु अतीत हो चुके है और इस समय म रवि का पुत्र यह वैवस्वत मनु विद्यमान है। ये सात हैं और सातवाँ परम है ॥५॥ स्वायम्भुव अन्तर को मैंने कल्प के आदि म कह दिया है। इससे आगे स्वारोचिष मनु के विषय म अब समझ लो ॥६॥ स्वारोचिषमनु के अन्तर म पारावत और तुषिता देवगण

हैं। एक विपश्चित् नाम वाला देवेन्द्र असुरों का मर्दन करने वाला हुआ था ॥७॥

ऊर्जस्तम्भस्तथाप्राणो दान्तोऽथ ऋषभस्तथा।
तिमिरश्चार्वरीवाश्च सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥८
चैत्रकिम्पुरुषाद्यास्तु सुताः स्वारोचिषस्य तु।
द्वितीयमेतदाख्यातमन्तरं शृणु चोत्तमम् ॥९
तृतीयेऽप्यन्तरे चैव उत्तमोनाम वै मनुः।
सुशान्तिस्तत्रदेवेन्द्रो बभूवामित्रकर्षणः ॥१०
सुधामानस्तथा सत्यः शिवश्चाथप्रतर्द्दन।
वशवर्त्तिन पञ्चैते गणाद्वादशकाःस्मृताः ॥११
रजोगात्रोर्दूर्ध्ववाहुश्च सवनश्चानघस्तथा।
सुतपाः शक्रइत्येते सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ॥१२
तामसस्यान्तरे देवा सुरायासहरास्तथा।
सत्याश्च सुधियश्चैवसप्तविंशतिकागणाः ॥१३
शिबिरिन्द्रस्तथैवासीच्छतयज्ञोपलक्षणः।
बभूव शङ्करे भक्तो महादेवार्च्चने रतः ॥१४

ऊर्ज, स्तम्भ, प्राण, दान्त, ऋषभ, तिमिर, अर्वरीवान् ये सात महर्षि हुए थे ॥८॥ उस स्वारोचिष मनु के चैत्र किम्पुरुष आदि पुत्र हुए थे। यह द्वितीय अन्तर आख्यात कर दिया है। अब उत्तम का श्रवण करिये ॥९॥ तीसरे अन्तर में भी उत्तम नाम वाला मनु था। उसमें सुशान्ति नाम वाला देवेन्द्र था जो शत्रुओं के कर्षण करने वाला था ॥१०॥ सुधामान–सत्य–शिव–प्रतर्दन ये पाँच वशवर्त्ती थे और द्वादश गण कहे गये हैं ॥११॥ रजोगात्र—ऊर्ध्ववाहु–सवन–अनघ–सुतपा–शक्र ये सात उस समय में सप्तर्षि हुए थे ॥१२॥ तामस मनु के अन्तर में देव सुराया सहर थे। सत्य और सुधी एकाविंशति गण थे ॥१३॥ शतयज्ञोप-लक्षण शिबि इन्द्र हुआ था। यह भगवान् शङ्कर का परम भक्त था और महादेव की अर्चना में ही अपनी रति रखता था ॥१४॥

ज्योतिर्द्धाम पृथक्ल्पश्चैनोऽग्निवसनस्तथा ।
पीवरस्त्वृषयोह्येतेसप्त तत्रापिचान्तरे ॥१५
पञ्चमे चापि विप्रेन्द्रा रैवतो नाम नामतः ।
मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो बभूवासुरमर्द्दन. ॥१६
अमिता भूतयस्तत्र वैकुण्ठाश्च सुरोत्तमा. ।
एते देवगणास्तत्र चतुर्द्दश चतुर्द्दश ॥१७
हिरण्यरामा वेदश्रीरुर्द्ध्ववबाहुस्तथैव च ।
वेदबाहु. सुबाहुश्च स पर्जन्यो महामुनि ॥१८
एते सप्तर्षयो विप्रास्तत्रासन्रैवतेऽन्तरे ।
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा ॥१९
प्रियव्रतान्विताह्येतेचत्वारोमनव स्मृतः ।
षष्ठे मन्वन्तरे चापिचाक्षुषस्तुमनुर्द्विजा ॥२०
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवाश्चैवनिबोधतः ।
आद्या प्रभूतभाव्याश्च प्रथनाश्च दिवौकस. ॥२१

ज्योतिर्धाम पृथक् वल्प है । चैत्र, अग्नि, वनन, पीवर, ऋषि ये सात उस अन्तर में हुए थे ॥१५॥ हे विप्रेन्द्रो ! पाँचवे मन्वन्तर मे जिसका रैवत यह नाम था । उसमें विभुमन देवेन्द्र था जो असुरो का मर्दन करने वाला था ॥१६॥ उसमे अमित मूति श्री और वैकुण्ठ सुरोत्तम थे । ये चौदह देवगण हुए हैं ॥१७॥ हिरण्य रोम, वेद श्री—ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुबाहु, महामुनि पर्जन्य, ये सप्तर्षि थे । विप्रगण ! ये सब उस रैवत मन्वन्तर मे हुए थे । स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत ये सब प्रियव्रत से अन्वित हुए हैं जो चार ये मनु बतलाये गये हैं । षष्ठ मन्वन्तर मे भी हे द्विजगण ! चाक्षुष मनु हुए हैं ॥१८-२०॥ उसमे मनोजव इन्द्र हुए थे और अब देवो की भी बात समझ लो । आद्या, प्रभूत भाव्या और प्रथना ये देवगण थे ॥२१॥

महानुभावा लेख्याश्च पञ्च देवगणा. स्मृता. ।
विरजाश्च हविष्माश्च सोमो मनुनम स्मृत. ॥२२

अविनामा नविष्णुश्च सप्ताहन्नृपन शुभा ।
विवस्वतः सुतो विप्रोः श्राद्धदेवो महाद्युति ॥२३
गनु. मन्वर्त्तना विप्रा साम्प्रतसप्तमेऽन्तरे ।
आदित्यावसवो रुद्रा देवास्तत्र मरुद्गणा ॥२४
पुरन्दरस्तथ वेन्द्रो बभूवपरवीरहा ।
वसिष्ठ कश्यपश्चात्रिजमदग्निश्च गौतम. ॥२५
विश्वामित्रा भरद्वाज सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ।
विष्णुशक्तिरनोपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थिता स्थितौ ॥२६
तदशभूता राजान सर्वे च त्रिदिवौकसः ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं प्रकृत्या मानस सुत ॥२७

महानुभाव और लेश्व वे भी उस समय में देवगण थे । विरजा और हविष्मान् तथा सोम मनु के समान थे ऐसा ही कहा गया है ॥२२॥ अविनामा और महिष्णु ये सात शुभ ऋषिगण थे । हे विप्रो ! विवस्वत का पुत्र महान् द्युति वाला श्राद्धदेव था ॥२३॥ हे विप्रगण ! इस समय मे सप्तम मन्वन्तर मे सम्वर्त्तन मनु है । आदित्य, वसु और रुद्रगण वहाँ पर मरुद्गण देव है ॥२४॥ पुरन्दर तथा इन्द्र परवीरहा हुआ था । वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र, भरद्वाज ये सात सप्तर्षि हुए है । भगवान् विष्णु की शक्ति अनुपम है जोकि सत्त्व से उद्रिक्त है और स्थिति मे स्थित है ॥२५-२६॥ उसके अशभूत ही समस्त राजा लोग हैं और देवगण है । स्वायम्भुव अन्तर में पहिले प्रकृति से मानस सुत हुआ था ॥२७॥

रुचे. प्रजापतेर्जज्ञे तदशेनाभवद्द्विजा ।
तत. पुनरसौ देव प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे ॥२८
तुषितायां समुत्पन्नस्तुषितै सहदैवतै ।
उत्तमेत्वन्तरे विष्णुः सत्यै. सह सुरोत्तमः ॥२९
सत्यायामभवत्सत्यः सत्यरूपो जनार्दन. ।
तामसस्यान्तरे चव सम्प्राप्ते पुनरेव हि ॥३०

हर्य्यायां हरिभिर्देवैर्हरिरेवाभवद्धरि ।
रैवतेऽप्यन्तरे चैव सङ्कल्पान्मानसो हरिः ॥३१
सम्भूतो मानसैः सार्द्धं देवैः सह महाद्युतिः ।
चाक्षुषेऽप्यन्तरे चैववैकुण्ठः पुरुषोत्तमः ॥३२
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्दैवतैः सह ।
मन्वन्तरेऽन सम्प्राप्ते तथा वैवस्वतेऽन्तरे ॥३३
वामनः कश्यपाद्विष्णुरदित्यासम्बभूव ह ।
त्रिभिः क्रमैरिमाल्लोकाञ्जित्वायेनमहात्मना ॥३४
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम् ।
इत्येतास्तनवस्तस्य सप्तमन्वन्तरेषु वै ॥३५

हे द्विजगण ! प्रजापति ने रुचि को जन्म दिया जो कि उसी के अंश से हुआ था । इसके पश्चात् स्वारोचिष मन्वन्तर के प्राप्त होने पर यह देव हुए ॥२८॥ तुषित देवों के साथ तुषिता में समुत्पन्न हुआ था । उत्तम मन्वन्तर में सत्यों के साथ सुरोत्तम विष्णु हुए थे ॥२९॥ सत्या में सत्य हुआ था जो सत्यरूप वाला जनार्दन है । फिर तामस मन्वन्तर के प्राप्त होने पर पुनः हर्या में हरि देवों के साथ हरि ही हरि हुए थे । रैवत मन्वन्तर में भी सङ्कल्प से मानस हरि हुए थे ॥३०-३१॥ मानस देवों के साथ वह महान् द्युति वाला हुआ था । चाक्षुष मन्वन्तर में भी वैकुण्ठ पुरुषोत्तम थे ॥३२॥ यह वैकुण्ठ देवों के साथ विकुण्ठा में जात हुआ था । वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर कश्यप से विष्णु वामन अदिति में उत्पन्न हुए थे जिस महात्मा ने अपने तीन पद क्रमों के द्वारा इन सब लोकों को जीत लिया था । फिर पुरन्दर को यह निष्कण्टक त्रैलोक्य दे दिया था । सात मन्वन्तरों में यह सब उसके तनु थे ॥३३-३५॥

सप्त चैवाभवन्विप्रा याभिः सङ्कर्षिता प्रजाः ।
यस्माद्विश्वमिदं कृत्स्नं वामनेन महात्मना ॥३६
तस्मात्सर्वे स्मृतोनून देवैः सर्वेषु दैत्यहा ।
एष सर्वं सृजत्यादौ पातिहन्तिचकेशव. ॥३७

भूतान्तरात्माभगवान्नारायणइति श्रुतिः ।
एकांशेनजगत्सर्वं व्याप्यनारायणःस्थितः ॥३८

चतुर्द्धा संस्थितो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽपि च ।
एका भगवतो मूर्त्तिर्ज्ञानरूपा शिवामला ॥३९

वासुदेवाभिधाना सा गुणातीता सुनिष्कला ।
द्वितीया कालसञ्ज्ञान्या तामसी शिवसञ्ज्ञिता ।।४०

निहन्त्रीसकलस्यान्तेवैष्णवीपरमातनुः ।
सत्त्वोद्रिक्तातृतीयान्याप्रद्युम्नेतिचसञ्ज्ञिता ॥४१

जगत्संस्थापयेद्विश्वसाविष्णोःप्रकृतिर्ध्रुवा ।
चतुर्थीवासुदेवस्यमूर्त्तिर्ब्रह्मेतिसञ्ज्ञिता ॥४२

हे विप्रगण ! ये सात ही हुए हैं जिनके द्वारा यह प्रजा सकल्पित है । जिससे यह विश्व पूर्ण महात्मा वामन ने ले लिया था ॥३६॥ इसी कारण से वह सबके द्वारा निश्चय स्मृत हैं और देवगण उनका स्मरण करते हैं । सबमें यह दैत्यों के हनन करने वाले हैं । यही आदि काल में सबका सृजन करते है—पालन करते हैं और यही केशव अन्त मे हनन किया करते हैं ॥३७॥ यह भगवान् भूतों के अन्तरात्मा नारायण है— ऐसी श्रुति (वेद वचन) है । नारायण अपने एक अंश से सबमें व्याप्त होकर स्थित रहा करते हैं । यह सगुण हो अथवा निर्गुण भी क्यों न हो चार प्रकार से व्याप्त होकर सस्थित है । एक तो भगवान् की मूर्ति है जो ज्ञान के रूप वाली है—शिवा है और अमला है ॥३८-३६॥ वही वासुदेव के अभिधान (नाम) वाली है । यह गुणो से अतीत है और सुनिष्कला है । दूसरी काल सज्ञा वाली है जो तामसी है और शिव की सज्ञा से संयुक्त है ॥४०॥ अन्त मे वैष्णवी परम तनु ही सबका निहनन करती है । सत्त्व से उद्रिक्त जो अन्यावृत है वह प्रद्युम्न इस नाम से संज्ञा वाली है ॥४१॥ विष्णु की यह ध्रुव प्रकृति इस जगत् विश्व का सस्थापन किया करती है । चौथी वासुदेव की मूर्त्ति ब्रह्म इस संज्ञा से युक्त होती है ॥४२॥

राजसी साऽनिरुद्धस्यपुरुषसृष्टिकारिता ।
य स्वपितयखिलहत्वाप्रद्युम्नेन सहप्रभु ॥ ३
नारायणाख्योब्रह्मासौप्रजानर्गकरोतिस ।
यासौनारायणतनु,प्रद्युम्नास्याशुभास्मृता ॥४४
तया सम्मोहयेद्विश्व सदेवासुरमानुपम् ।
तत मैव जगन्मूर्त्ति प्रकृति परिकोत्तिता ॥४५
वासुदेवो ह्यनन्तात्मा केवलो निर्गुणोहरि ।
प्रधान पुरुषकाल सत्वत्रयमनुत्तमम् ॥४६
वासुदेवात्मक नित्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते ।
एकञ्चेद चतुष्पाद चतुर्द्धा पुनरच्युत ॥ ७
विभेदवासुदेवोऽसौ प्रद्युम्नो भगवान् हरि ।
कृष्णद्वैपायनो व्यासा विष्णुर्नारायण स्वयम् ॥४८
अवतरत्स सम्पूर्णःस्वेच्छयाभगवान् हरि ।
अनाद्यन्त पर ब्रह्म न देवा ऋषयोविदु ॥४९
एकोऽय वेद भगवान् व्यासो नारायण प्रभु ।
इत्येतद्विष्णुमाहात्म्य कथित मुनिसत्तमा ॥
एतत्सत्य पुन सत्यमेव ज्ञात्वा न मुह्यति ॥५०

वह अनिरुद्ध की राजसी पुरुष सृष्टि कारिता है। जो सबका हनन करके प्रभु प्रद्युम्न के साथ ही शयन किया करता है यही नारायण नाम ब्रह्म है। वही इस युग का सर्ग किया करता है। जो यह नारायण की तनु प्रद्युम्न के नाम वाली शुभ कही गयी है उसी से इस विश्व को सम्मोहित किया करती है जिसमे देव—असुर और मनुष्य सभी हैं। इसके पश्चात् वही जगत् की मूर्ति प्रकृति—इस नाम से कीर्तित हुई है ॥४३ ४५॥ वासुदेव अनन्त आत्मा वाला केवल निर्गुण हरि है। प्रधान पुरुष-काल यह उत्तम सत्त्वत्रय है। यह नित्य वासुदेव स्वरूप वाला है—यही जानकर मुक्ति प्राप्त किया करता है। यही एक अच्युत है जो चार पाद वाला चार भागो म विभक्त है ॥४६-४७॥ यह वासुदेव हरि विभेद वाला होकर प्रद्युम्न हुआ था। कृष्ण द्वैपायन व्यास स्वय विष्णु नारायण

ही हैं ॥४८॥ भगवान् हरि अपनी इच्छा से सम्पूर्णतया प्रवनन्ति हुए थे। यह अनाद्यन्त परमब्रह्म है जिसको देवगण और ऋषि वृन्द भी नहीं जानते है ॥४९॥ यह एक ही वेद भगवान् प्रभु नारायण व्यास है। हे मुनिश्रेष्ठो ! यह इतना सा भगवान् विष्णु का माहात्म्य हमने वर्णित कर दिया है। यह सत्य है और पुनः सत्य है—इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त मनुष्य मोह को प्राप्त नहीं होता है ॥५०॥

५२—वेदशाखाप्रणयन

अस्मिन्मन्वन्तरेपूर्वं वर्त्तमानेमहान् प्रभुः ।
द्वापरेप्रथमेव्यासो मनुः स्वायम्भुवो मत. ॥१
विभेद वहुधा वेद नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभो. ।
द्वितीयेद्वापरे चैव वेदव्यास· प्रजापतिः ॥२
तृतीयेचोशनाव्यासश्चतुर्थेस्याद्वृहस्पतिः ।
सवितापञ्चमेव्यासःषष्ठे मृत्यु प्रकीर्त्तितः ॥३
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मतः ।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे मतः ॥४
एकादशे तु ऋषभा सुतेजा द्वादशे स्मृतः ।
त्रयोदशे तथा धर्म्म सुचक्ष स्तु चतुर्दशे ॥५
त्र्यारुणि पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः ।
कृतञ्जय सप्तदशे ह्यष्टादशे ऋतञ्जयः ॥६
ततोव्यासोभरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वन्तुगौतमः ।
वाचश्रवाश्चैकविंशेतस्मान्नारायण.परः ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—इस वर्तमान मन्वन्तर मे पहिले महान् प्रभु व्यास देव प्रथम द्वापर के आने पर स्वायम्भुव मनु माने गये हैं। इन्होंने प्रभु ब्रह्माजी के नियोग मे वद के बहुत प्रकार से विभेद कर डाले थे। द्वितीय द्वापर मे वेद व्यास प्रजापति थे ॥१-२॥ तीसरे द्वापर मे व्यास हो उशना थे और चौथे मे बृहस्पति हुए थे। पाँचवे मे सविता और छठे म

व्यास मृत्यु बताये गये हैं। सातवें में इन्द्र थे और आठवें में वसिष्ठ हुए। नवम में सारस्वत और दसवें मे त्रिधामा हुए थे। एकादश मे ऋषभ थे और बारहवें मे सुतेजा हुए थे। त्रयोदश में धर्म तथा चौदहवें में सुचक्षु हुए थे ॥३-५॥ पन्द्रहवें मे त्रय्यारुणि-षोडश मे धनञ्जय हुए। सत्रहवें मे कृतञ्जय हुए और अठारहवें मे ऋतञ्जय हुए थे ॥६॥ इसके पश्चात् व्यास भरद्वाज और उनके ऊपर गौतम थे। एकविंश मे वाचश्रवा थे। उससे पर नारायण हुए थे ॥७॥

तृणबिन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तत्परः स्मृत ।
पञ्चविंशे तथा प्राप्ते यस्मिन्वै द्वापरे द्विजा ॥८
(सप्तविंशेनथाव्यासोजातूकर्णोमहामुनिः)।
पराशरसुतोव्यासःकृष्णद्वैपायनोऽभवत् ॥९
स एव सर्ववेदाना पुराणाना प्रदर्शक ॥१०
पाराशर्य्योमहायोगीकृष्णद्वैपायनोहरि ।
आराध्यदेवमीशानदृष्ट्वास्तुत्वात्रिलोचनम् ।
तत्प्रसादादसौ व्यास वेदानामकरोत्प्रभुः ॥११
अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदपारगान् ।
जैमिनिञ्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेवच ॥१२
पैल तेषा चतुर्थञ्च पञ्चम मा महामुनि ।
ऋग्वेदपाठक पैल जग्राह स महामुनि ॥१३
यजुर्वेदप्रवक्तार वैशम्पायनमेव च ।
जैमिनि सामवेदस्य पाठक सोऽन्वपद्यत ॥१४

त्रयोविंश मे तृणबिन्दु थे इसके आगे फिर वाल्मीकि हुए थे। पञ्चविंश के प्राप्त होने पर हे द्विजगण। जिस द्वापर मे सप्तविंश मे व्यास जातुकर्णि महामुनि थे। फिर पराशर का पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास हुए थे ॥८-९॥ वह ही कृष्ण द्वैपायन व्यास समस्त वेदो और पुराण के प्रदर्शक हुए थे ॥१०॥ पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन हरि महान् योगी थे। इन्होने ईशान देव की समाराधना की थी। इनका दर्शन करके स्तवन त्रिलोचन प्रभु का किया था। उनके पूर्ण प्रसाद से ही इन व्यासदेव ने

वेदों का विस्तार किया था ॥११॥ इसके अनन्तर उन्होंने अपने चार वेदों के पारगामी विद्वान् शिष्यों को इनका ग्रहण कराया था। उनके नाम ये हैं—जैमिनी—सुमन्तु—वैशम्पायन और उनमें चतुर्थ शिष्य पैल था। उन महामुनि पाँचवाँ मुझको भी ग्रहण कराया था। उस महा मुनीन्द्र ने पैल को ऋग्वेद का पाठक कहकर ही ऋग्वेद का ग्रहण कराया था ॥१२-१३॥ वैशम्पायन को यजुर्वेद का प्रवक्ता बना दिया था। जैमिनि को सामवेद का पाठ करने वाला व्यास देव ने बनाया था ॥१४॥

तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तु मामयोजयत् ॥१५
एकआसीद्यजुर्वेदस्त चतुर्द्धा प्रकल्पयत्।
चतुर्होत्रमभूत्तस्मिस्तेन यज्ञमथाकरोत् ॥१६
आध्वर्यव यजुभिः स्यादग्निहोत्र द्विजोत्तमा।
औद्गात्र सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभि ॥१७
तत स ऋचे च उद्धृत्य ऋग्वेद कृतवान् प्रभु।
यजूषि तु यजुर्वेद सामवेदन्तु सामभि ॥१८
एकविंशतिभेदेन ऋग्वेद कृतवान् पुरा।
शाखानान्तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत् ॥१९
सामवेद सहस्रेण शाखाना प्रविभेद स।
अथर्वणमथो वेद विभेद कुशकेतन ॥२०
भेदैरष्टादशैर्व्यास: पुराण कृतवान् प्रभु.।
सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेद पूर्व पुरातन ॥२१

उसी भाँति अथर्ववेद का प्रवक्ता परमश्रेष्ठ महर्षि सुमन्तु को बनाया था। मुझे इतिहास पुराणों का प्रवचन करने के लिये ही नियोजित किया था ॥१५॥ यजुर्वेद एक ही था किन्तु उसको चार प्रकार का प्रकल्पित किया है। उसमें चातुर्होत्र हुआ था उसी से यज्ञ किया था ॥१६॥ हे द्विजोत्तमो! आध्वर्यव यजु से हुआ था और हे द्विजोत्तमो! अग्नि होत्र—औद्गात्र साम से किया था और ब्रह्मत्व अथर्व से किया था

॥१७॥ वहाँ पर सत्र म उद्धरण करके भगवान् प्रभु ने ऋग्वेद को किया था। यजू से यजुर्वेद और सामो से सामवेद इस प्रकार से एक विंशति भेदो से पहले समय मे ऋग्वद को किया था। और सौ शाखाओ से युक्त यजुर्वेद को किया था ॥१८-१९॥ उन प्रभु ने एक सहस्र शाखाओ से सामवेद का विभेद किया था। इसके अनन्तर कुश के तन ने अथर्ववेद का विभेद किया था ॥२०॥ प्रभु व्यास देव ने पुराणो को अठारह भेदो से युक्त किया था। सो यह एक ही वेद चार पादो वाला पूव पुरातन है ॥२१॥

ओङ्कारो ब्रह्मणो जात सर्वदोषविशोधन ।
वेदविद्योऽथ भगवान्वासुदेव सनातन ॥२२
स गीयते परो वेदैर्यो वेदैन स वेदवित् ।
एतत्परतर ब्रह्म ज्योतिरानन्दमुत्तमम् ॥२३
वेदवाक्योदितन्तत्त्व वासुदेव परम्पदम् ।
वेदविद्यमिम वेत्ति वेद वेदपरो मुनि ॥२४
अवेद परम वेत्ति वेदनि श्वासकृत्पर ।
स वेदवेद्यो भगवान्वेदमूर्त्तिमहेश्वर ॥२५
स एव वेद्यो वेदश्च तमेवाश्रित्य मुच्यते ।
इत्येतदक्षर वेदमोङ्कार वेदमव्ययम् ॥
अवेदञ्च विजानाति पाराशर्यो महामुनि ॥२६

ओङ्कार ब्रह्म से ही समुत्पन्न हुआ है जो सभी दोषो का विशेष रूप शोधन करने वाला होता है। यह वेद की विद्या वाला भगवान् वासुदेव सनातन है ॥२२॥ वह वेदो के द्वारा पर गाया जाता है। जो इसको जानता है वही वेदो का वेत्ता अर्थात् जाता है। इसस पर तर ब्रह्म है जो उत्तम—आनन्द स्वरूप ज्योति है ॥२३॥ वे दवा क्यो से कथित तत्व है कि वासुदेव भगवान् ही परम पद है। वेद मे पर मुनि वेदो के द्वारा जानने के योग्य इनको जानता है वही वद को भी समझता है। जो अवेद का ही परम समझता है वह तो पर वेद नि श्वास कृत है। वह भगवान् वद मूर्ति महेश्वर वदो के द्वारा ही वद्य हैं ॥२४ २५॥ यह ही वेद्य

अर्थात् ज्ञान के प्राप्त करने के योग्य है और वही वेद भी है। इसी का आश्रय ग्रहण करके छुटकारा होता है। इस तरह यह अक्षर वेद ओंकार अव्यय वेद है। पाराशर्य महामुनि ऋग्वेद को जानते हैं ॥२६॥

५३—वैवस्वत मन्वन्तर में शिवावतार वर्णन

वेदव्यासावताराणि द्वापरे कथितानि तु।
महादेवावताराणि कलौ शृणुत सुव्रताः ॥१
आद्ये कलियुगे श्वेतो देवदेवो महाद्युतिः।
नाम्ना हिताय विप्राणामभूद्वैवस्वतेऽन्तरे ॥२
हिमवच्छिखरे रम्ये सकले पर्वतोत्तमे।
तस्य शिष्याः प्रशिष्याश्च बभूवुरमितप्रभाः ॥३
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः।
चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥४
सुतारोमदनश्चैव सुहोत्र कङ्कणस्तथा।
लोकाक्षिरथयोगीन्द्रोजैगीषव्योऽथसप्तमे ॥५
अष्टमे दधिवाहः स्य नवमे ऋषभ प्रभुः।
भृगुस्तुदशमे प्रोक्तस्तस्मादुग्रः पुरःस्मृतः ॥६
द्वादशेतिसमाख्यातो वाली वाथ त्रयोदशे।
चतुर्दशे गौतमस्तु वेददर्शी ततः परः ॥७

महामहर्षि सूतजी ने कहा—हे सुव्रता! द्वापर में वेद व्यास के अवतारों को वर्णित कर दिया है अब इस कलियुग में महादेव के अवतारों का श्रवण करिये ॥१॥ आद्य कलियुग में महान् द्युति वाले देवों के भी देव श्वेत नाम विप्रों के हित सम्पादन के लिये वैवस्वत अन्तर में हुए थे ॥२॥ हिमवान् पर्वतराज के सकल पर्वतों में उत्तम और परम रम्य शिखर में उसके शिष्य एवं प्रशिष्य अपरिमित प्रभा से सम्पन्न हुए थे ॥३॥ श्वेत—श्वेतशिख—श्वेतास्य और श्वेत लोहित ये चार महान् आत्मा वाले वेदों के पारगामी मनीषी ब्राह्मण थे ॥४॥ सुतार—मदन—

वसुहास—कङ्कण—लोकाक्षि—योगीन्द्र—जैगीषव्य सप्तम मे—अष्टम मे दधिवाह—नवम मे ऋषभ प्रभु—दशम मे भृगु कहे गये है। इससे उग्र पुर कहा गया है। ये द्वादश कहे गये हैं। त्रयोदश मे वाली—चतुर्दश मे गौतम और इसके आगे वेददर्शी हुए थे ॥५-७॥

गोकर्णश्चाभवत्तस्माद्गुहावास. शिखण्डधृक्।
यजमाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली तथा ॥८
महायामो मुनि शूली डिण्डमुण्डीश्वर. स्वयम्।
सहिष्णु सोमशर्मा च नकुलीश्वर एव च ॥९
(वैवस्वतेऽन्तरे शम्भोरवतारास्त्रिशूलिन ।
अष्टाविंशतिराख्याता ह्यन्ते कलियुगे प्रभो ॥
तीर्थकार्यावतारे स्याद्देवेशो नकुलीश्वरः ॥)
तत्रदेवाधिदेवस्य चत्वारः सुतपोधनाः।
शिष्या बभूवुश्चान्येषा प्रत्येकमुनिपुङ्गवा. ॥१०
प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरी भक्तिमास्थिताः।
क्रमेण तान्प्रवक्ष्यामि योगिनो योगवित्तमान् ॥११
(श्वेत: श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्य श्वेतलोहित ॥)
दुन्दुभि शतरूपश्चऋचीक केतुमास्तथा।
विशोकाश्च विकेशश्चविशाखःशापनाशनः ॥१२
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः।
सनक' सनातनश्चैव तथैव च सनन्दन ॥१३
दालभ्यश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः।
सुधामा विरजाश्चैवशङ्खवाण्यज एव च ॥१४

इससे गोकर्ण हुए थे जो गुहा मे आवास करने वाले और शिखण्ड के धारी थे। यजमाल्य—अट्टहास—दारुक—लाङ्गली—महायाम—मुनि—शूली—स्वय डिण्डमुण्डीश्वर—सहिष्णु—सोमशर्मा—नकुलीश्वर ये वैवस्वत मन्वन्तर मे भगवान् शम्भु शूली के अवतार हुए हैं। अन्त कलियुग मे ये अट्ठाईस प्रभु के अवतार कहे गये है। तीर्थ कार्यावतार मे देवेश नकुलीश्वर हुए है। वहाँ पर देवाधि देव के चार तपोधन शिष्य हुए थे।

हे मुनि पुङ्गवो ! मन्यो के प्रत्येक हुआ था ॥८ १०॥ ये सब प्रपन्न मन वाल—दमनशील—ईश्वरीय भक्ति भाव म समान्वित हुए थे। अब मैं क्रम से उन योग के परम वत्ता योगियो का बतलाता हू ॥११॥ श्वेन—श्वतशिख—श्वेतास्य—श्वेत लोहित—दुन्दुभि—शतरूप—ऋचीक तथा केतुमान्—विशोक—विकेश—विशाख—शापनाशन—सुमुख—दुर्मुख—दुदम—दुरतिक्रम—सनक—सनातन—सनन्दन—दालभ्य और महायोगी ये सब महान् आत्मा वाले तथा महान् ओज स सुसम्पन्न हुए ह। सुधामा-विरजा-श खरण-अज हुए ॥१२-१४॥

सारस्वतस्तथा मोघोधनवाह् सुवाहन ।
कपिलश्चासुरिश्चैववोढु पञ्चाशखोमुनि ॥१५
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा ।
चलवन्धुनिरामित्र केतुश्रृङ्गस्तपोधना ॥१६
लम्बोदरश्च लम्बश्च विकोशो लम्बक शुक ।
सवज्ञ समबुद्धिश्च सा"यासाव्यस्तथैव च ॥१७
सुधामा काश्यपश्चाथ वसिष्ठोविरजास्तथा ।
अत्रिरुग्रस्तथा चैवश्रवणोऽथमुर्वेदयक ॥१८
कुणिश्च कुणिवाहुश्च कुशशीर. कुनेत्रक ।
कश्यपो ह्युशनाच्चवच्यवनोऽथबृहस्पति ॥१९
उत्तास्यो वामदेवश्च महाकालो महानिलि ।
वाजश्रवा सुकेशश्च श्यावाश्व सुपरथीश्वर ॥२०
हिरण्यनाभ कौशल्योऽक्षाक्षु कुथुमिघस्तथा ।
सुमन्तवर्च्चसो विद्वान्कवन्धः कुशिकन्धर ॥२१

सारस्वत—मोघ—धनवाह—सुवाहन—कपिल—आसुरि—वोढु—पञ्चशिख मुनि—पराशर—गर्ग—भागव—अङ्गिरा—चलबन्धु- निरामित्र—केतुश्रृङ्ग य तपोधन हुए है ॥१५-१६॥ लम्बोदर—लम्ब—विकोश—लम्बक—शुक—सर्वज्ञ—समबुद्धि—साध्यासाध्य हुए हैं ॥१७॥ सुधामा—काश्यप—वसिष्ठ—विरजा—अत्रि—उग्र—श्रवण—सुर्वेथक—कुणि—कुणिबाहु—कुशसीर—कुनेत्रक—कश्यप—उशना—च्यवन—बृहस्पति हुए थ

॥१८ १६॥ उच्चास्य—वामदेव–महाकाल–महानिलि–वाजश्रवा–सुकेश–स्यावाश्व–सुपरथीश्वर–हिरण्यनाम–कौशल्य—प्रकाशु—कुथुमिय–सुमन्त-वचस–विद्वान्–कवन्ध–और कुनिक धर हुए हैं ॥२०-२१॥

प्लक्षो दर्वायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा ।
भल्लाची मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोधन ॥२२
उपिधा बृहद्रक्षश्च दवल कविरव च ।
शालहोत्राग्निवेशयस्तु युवनाश्व शरद्वसु ॥२३
छगल कुण्डकर्णश्च कुन्तश्चैव प्रवाहक ।
उलूको विद्युतश्चैव शाद्वको ह्याश्वलायन ॥२४
अक्षवाद कुमारश्च ह्युलूका वसुवाहन ।
कुणिकश्चैव गगश्च मित्रको रुरेव च ॥२५
शिष्या एत महात्मान सर्वावर्त्तेषु योगिनाम् ।
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणा ॥२६
कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणाना हिताय च ।
योगेश्वराणामादेशाद्वदसस्थापनायवै ॥२७
ये ब्राह्मणा सस्मरन्ति नमस्यन्ति च मर्वदा ।
तपयन्त्यर्च्चयन्त्यनाम् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयु ॥२८

प्लक्ष—दर्वायणि—केतुमान्—गौतम–भल्लाची–मधुपिङ्ग–श्वेतकेतु–तपोधन—उपिधा—बृहद्रभ—देवल—कवि–शालहोत्राग्निवेश्य–युवनाश्व–शारद्वसु—छगल—कुण्डकर्ण—कुन्त—प्रवाहक—उलूक—वैद्युत—गग—मित्रव—कुरु य इतने महात्मा शिष्य योगियो के सर्वावर्तो मे हुए थे। ये सब मल रहित–प्रधिक ज्ञान सम्पन्न और ज्ञान योग मे परायण थे। ॥२२ २६॥ ब्राह्मणो के हित का सम्पादन करने के लिये ही अवतारा को धारण किया करते हैं तथा योगेश्वरो के समादेश से वदो की सस्थापना करन क लिये अवतार लिया करते हैं ॥२७॥ जो ब्राह्मण इनका भली भाँति स्मरण किया करते हैं और सवदा नमस्कार किया करत हैं–इनका तर्पण करते हैं तथा इनका अचन करते हैं व ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥२८॥

इद वैवस्वतं प्रोक्तमन्तर विस्तरेण तु ।
भविष्यति च सावर्णो दक्षसावर्ण एव च ॥२९
दशमो ब्रह्मसावर्णोधर्म्मे एकादशःस्मृतः ।
द्वादशो रुद्रसावर्णो रौच्यनामा त्रयोदश ॥३०
भौत्यश्चतुर्दश प्रोक्तोभविष्यामनव क्रमात् ।
अयव.कथितोह्यंश पूर्वो नारायणेरितः ।.३१
भूतंभव्यंवर्त्तमानंरारयानैरुपबृंहितः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा.द्विजोत्तमान् ॥३२
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।
पठेद्देवालये स्नात्वा नदीतीरेषु चैव हि ॥३३
नारायण नमस्कृत्य भावेन पुरुषोत्तमम् ।
नमो देवाधिदेवाय देवाना परमात्मने ॥
पुरुषाय पुराणाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥३४

यह हमने वैवस्व मन्वन्तर विस्तार के साथ वर्णन कर दिया है। इसके बाद सावर्ण और दक्षसावर्ण होगा ॥२९॥ दशम ब्रह्म सावर्ण तथा धर्म एकादश कहा गया है। द्वादश रुद्र सावर्ण और रौच्यनाम वाला तेरहवाँ है ॥३०॥ भौत्य चतुर्दश कहा गया है। इस प्रकार से ये मनुगण क्रम से होने वाले हैं। हमने यह आप लोगों को नारायण से ईरित पूर्व अंश कह दिया है। जो भूत–भव्य और वर्त्तमान आख्यानों से उपबृंहित है। जो कोई भी इसका पाठ करता है तथा श्रवण करता है अथवा द्विजोत्तमों को श्रवण कराता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है। देवालय में स्नान करके अथवा नदी तीरों में स्नान करके भगवान् नारायण को नमस्कार करें और भाव पूर्वक पुरुषोत्तम को प्रणाम करे। देवों के अधिदेव–देवों के परमात्मा–पुराण पुरुष विष्णु और प्रभविष्णु के लिये नमस्कार है ॥३१३४॥

कूर्म पुराण (उत्तरार्द्ध)

(ईश्वर गीता प्रारम्यते)

१—ऋषिव्याससम्वादवर्णन

भवता कथित सम्यक् सर्ग स्वायम्भुव प्रभो ।
ब्रह्माण्डस्याऽऽदिविस्तारो मन्वन्तरविनिश्चय ॥१
तत्रश्वरेश्वरो देवो वर्णिभिधर्म्मतत्परैं ।
ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्य कथितस्त्वया ॥२
तत्त्वञ्चाशेषससारदु खनाशमनुत्तमम् ।
ज्ञान ब्रह्मैकविषय तेन पश्येम तत्परम् ॥३
त्व हि नारायण साक्षात्कृष्णद्वैपायनात्प्रभो ।
अवाप्ताखिलविज्ञानस्तत्त्वा पृच्छामहे पुन ॥४
श्रुत्वामुनीनातद्वाक्य कृष्णद्वैपायनात्प्रभु ।
सूत पौराणिक श्रुत्वाभाषितु ह्यु पचक्रमे ॥५
तथास्मिन्नन्तरेव्यास कृष्णद्वैपायन स्वयम् ।
आजगाममुनिश्रेष्ठा यत्र सत्रसमासते ॥६
त दृष्ट्वा वेदविद्वासकालमेघसमद्युतिम् ।
व्यासकमलपत्राक्ष प्रणेमुर्द्विजपुङ्गवा ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे प्रभो ! श्रीमान् आपने स्वायम्भुव सर्ग का वर्णन बहुत ही अच्छी रीति से कर दिया है । आपने इस ब्रह्माण्ड का आदि विस्तार तथा मन्वन्तर का विनिश्चय भी कह सुनाया है ॥१॥ वहाँ पर ईश्वरेश्वर देव का वर्णो एव धर्म मे तत्पर रहने वाले—ज्ञान योग मे निरत पुरुषों के द्वारा नित्य ही समाराधन करना चाहिए—यह भी आपने बतला दिया है ॥२॥ अशेष ससार मे होने वाले दु खों के नाश करने वाला उत्तम तत्त्व ब्रह्म के विषय वाला एक ज्ञान ही है । इस लिये हम लोग उसको ही परम देखते हैं । अर्थात् वही सर्वोपरि है—ऐसा

समझते हैं ॥३॥ हे प्रभो ! आप तो स्वय साक्षात् नारायण है। आपने श्रीकृष्ण द्वैपायन से सम्पूर्ण विज्ञान की प्राप्ति की है। हम आप से ही पुनः पूछते है ॥४॥ मुनिवृन्द के इस वाक्य का श्रवण करके सूतजी ने जो परम पौराणिक थे श्रीकृष्ण द्वैपायन से श्रवण करके भाषण करने का उपक्रम किया था ॥५॥ तथा इस मन्वन्तर मे कृष्ण द्वैपायन व्यासजी स्वय ही हे मुनि श्रेष्ठो ! वहाँ पर समागत हो गये थे जहाँ पर यह सत्र हो रहा था ॥६॥ उस समय मे वहाँ पर कालमेघ के समान द्युति वाले वेदो के महामनीषी प्रभु कमल के तुल्य नेत्रो वाले व्यास देव का दर्शन करके सबने हे द्विजो मे श्रेष्ठ वृन्द ! उनको प्रणाम किया था ॥७॥

पपात दण्डवद्भूमौदृष्ट्वाऽपौलोमहर्षणः ।
प्रणम्य शिरसाभूमौप्राञ्जलिर्वशगोऽभवत् ॥८
पृष्टास्तेऽनामय विप्रा शौनकाद्या महामुनिम् ।
समासृत्याऽऽसन(समाश्वास्यासन)तस्मैतद्योग्यसमकल्पयन् ॥९
अथैतानब्रवीद्वाक्य पराशरसुत. प्रभु ।
कच्चिन्नहानिस्तपस स्वाध्यायस्यश्रुतस्यच ॥१०
ततश्च सूत. स्वगुरु प्रणम्याह महामुनिम् ।
ज्ञान तद्ब्रह्मविषय मुनीना वक्तुमर्हसि ॥११
इमे हि मुनयः शान्तास्तापसा धर्मतत्पराः ।
शुश्रूषाजायतेचैषावक्तुमर्हसि तत्त्वत. ॥१२
ज्ञान विमुक्तिद दिव्य यन्मे साक्षात्त्वयोदितम् ।
मुनीना व्याहृत पूर्वं विष्णुना कूर्म्मरूपिणा ॥१३
श्रुत्वा सूतस्य वचन मुनिः सत्यवतीसुतः ।
प्रणम्यशिरसारुद्रं वच.प्राहसुखावहम् ॥१४

यह लोम हर्षण सूतजी तो उनके चरणो मे एक दण्ड की भाँति हो नियतित हो गये थे । जिस समय मे उन्होने वहाँ पर व्यास देव का दर्शन प्राप्त किया था । फिर केवल उनके चरणो मे प्रणाम करके हाथ जोड कर उनके वशगत हो गये थे ॥८॥ उन महामुनीन्द्र से शौनकादि समस्त विप्रों ने उनका कुशल समाचार पूछा था और फिर समाश्वासित होकर उनको

एक परमोचित आसन निवेदित किया था ॥९॥ इसके अनन्तर पराशर मुनि के पुत्र ने इन लोगो से यह वाक्य बोला था—आप लोग मुझे यह तो बतलाइये कि यहाँ पर कोई आपकी तपश्चर्या मे—स्वाध्याय मे और श्रुत मे हानि तो नही है। इसके उपरान्त सूतजी ने अपने गुरु देव को पुनः प्रणाम करके कहा—हे भगवन्! आप स्वयं यहाँ पधार आये हैं तो इन समस्त मुनिगण को ब्रह्म के विषय का ज्ञान बताने की कृपा कीजिएगा ॥१०-११॥ ये सब मुनिगण परम शान्त स्वभाव वाले हैं—तपश्चर्या मे अहनिश निरत रहा करते है और धर्म मे परायण हैं। इन की शुश्रूषा होती है अतएव इनको यह तत्त्व पूर्वक आप बतलाने के योग्य हैं ॥१२॥ जो ज्ञान विमुक्ति के प्रदान करने वाला है और आपने साक्षात् मुझ से कहा था। पहिले कूर्म के स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने मुनियों को कहा था ॥१३॥ इस प्रकार के सूतजी के वचन का श्रवण करके सत्यवती के सुत मुनि ने शिर से भगवान् रुद्र को प्रणाम करके इस सुख के देने वाले वचन को कहा था ॥१४॥

वक्ष्ये देवो महादेव पृष्टो योगीश्वरैं पुरा।
सनत्कुमारप्रमुखैः सस्वय समभाषत ॥१५
सनत्कुमार सनकस्तथैव च सनन्दन ।
अङ्गिरा रुद्रसहितो भृगु परमधर्मवित् ॥१६
कणाद कपिलो गर्गो वामदेवो महामुनि ।
शुक्रो वसिष्ठो भगवान् सर्वे संयतमानसा ॥१७
परस्पर विचार्य्यैते संशयाविष्टचेतस ।
तप्तवन्तस्तपो घोर पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥१८
अपश्यस्ते महायोगमृषिधर्म्मसुत मुनिम्।
नारायणमनाद्यन्त नरेण सहित तदा ॥१९
संस्तूय विविधैः स्तोत्रै सर्ववेदसमुद्भवैः ।
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्तायोगिनोयोगवित्तमम् ॥२०
विज्ञाय वाञ्छित तेषा भगवानपि सर्ववित्।
प्राह गम्भीरया वाचा किमर्थं तप्यते तप ॥२१

व्यास देव ने कहा—पहिले समय में योगीश्वरों ने देवाधि देव महादेव जो से पूछा था जिनमे सनत्कुमार आदि प्रमुख पूछने वाले थे। उस समय मे भगवान् रुद्र ने स्वयं ही श्रीमुख से कहा था ॥१५॥ वहाँ पर सनत्कुमार—सनक—सनन्दन—अङ्गिरा—रुद्र सहित भृगु जो परम धर्म के वेत्ता थे—कणाद—कपिल—गर्ग—महामुनि वामदेव—शुक्र—वशिष्ठ भगवान् ये सभी परम संयत मन वाले उपस्थित थे ॥१६-१७॥ इन सब ने परस्पर में भली-भाँति विचार करके सभी संयम में लाविष्ट चित्त वाले होकर तप का तपन कर रहे थे जो परम घोर था और बदरिकाश्रम मे किया जा रहा था। उन्होंने ऋषि धर्म सुत महायोग मुनि को देखा था उस समय मे नर के सहित सनातन नारायण थे ॥१८-१९॥ समस्त वेदों से समुद्भूत विविध स्तोत्रों से उनका स्तवन करके भक्तिभाव से संयुक्त होकर योगियों ने योग के परम वेत्ता प्रभु को प्रणाम किया था ॥२०॥ सर्व वेत्ता भगवान् ने उनके हार्दिक वाञ्छित को जान कर उन्होंने गम्भीर वाणी से कहा था कि आप लोग यह तपश्चर्या किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये कर रहे हैं ॥२१॥

अब्रुवन् हृष्टमनसो विश्वात्मानंसनातनम्।
साक्षान्नारायण देवमागतं सिद्धिसूचकम् ॥२२
वयंसंयममापन्ना सर्वेवेब्रह्मवादिनः।
भवन्तमेक शरण प्रपन्नापुरुषोत्तमम् ॥२३
त्ववेत्सि परमं गुह्यं सर्वन्तुभगवानृषिः।
नारायण.स्वयसाक्षात्पुराणोऽव्यक्तपूरुषः ॥२४
नह्यन्यो विद्यते वेत्ता त्वामृते परमेश्वरम्।
सत्वमस्माकमचलं सशय छेत्तुमर्हसि ॥२५
किं कारणमिदं कृत्स्नं को नु संसरते सदा।
कश्चिदात्मा च का मुक्तिः संसारः किन्निमित्तकः ॥२६
कः संसार इतीशानः को वा सर्वंप्रपश्यति।
किं तत्परतरं ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमर्हसि ॥२७

एवमुक्त्वातुमुनयः प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम् ।
विहायतापसवेष संस्थितंस्वेन तेजसा ॥२८

उन समस्त मुनियों ने परम प्रहृष्ट मन वाले होकर उन सनातन विश्वात्मा साक्षात् नारायण जो सिद्धि के पूर्ण स्वरूप थे वहाँ पर समागत देव से कहा था ॥२२॥ हम सभी लोग परम शरण मे समापन्न हो गये हैं और सभी लोग ब्रह्मवादी हैं। अब पुरुषोत्तम एक आपकी ही शरण मे प्रपन्न हुए हैं ॥२३॥ आप तो भगवान् ऋषि हैं और सभी परम गोपनीय विषय को जानते हैं। आप तो स्वयं साक्षात् अव्यक्त पुरुष पुराण और नारायण हैं ॥२४॥ आप परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई भी इसका जानकार नहीं है। सो वही आप अब हमारे इस सशय का छेदन कर देने की कृपा करें क्योंकि आप ही इसके योग्य हैं ॥२५॥ इस सब का क्या कारण है—कौन सदा इस तरह से ससरण किया करता है ? आत्मा कौन है ? मुक्ति किसको कहा जाता है ? यह ससार किस निमित्त से होता है ॥२६॥ कौन ससार है और कौन सा ईशान सब को देखा करता है ? उस सब से परतर जो ब्रह्म कहा जाता है वह कौन-कैसा और क्या है—यह सभी कुछ आप हम सब को बताने के योग्य हैं। इस प्रकार से मुनिगण ने कहकर पुरुषोत्तम को और वे सब देखने लगे थे। जो तापस वेष का त्याग करके अपने ही तेज से वहाँ पर संस्थित थे ॥२७-२८॥

विभ्राजमान विमल प्रभामण्डलमण्डितम् ।
श्रीवत्सवक्षस देव तप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥२९
शङ्खचक्रगदापाणि शार्ङ्ग हस्त श्रियावृतम् ।
न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैवतेजसा ॥३०
तदन्तरेमहादेव शशाङ्काङ्कितशेखरः ।
प्रसादाभिमुखोरुद्रःप्रादुरासीन्महेश्वर ॥३१
निरीक्ष्य ते जगन्नाथ त्रिनेत्र चन्द्रभूषणम् ।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसो भक्त्या त परमेश्वरम् ॥३२
जयेश्वर! महादेव! जय भूतपते! शिव !।
जयाशेषमुनीशान! तपसाऽभिप्रपूजित !॥३३

सहस्रमूर्त्ते विश्वात्मन् जगद्यन्त्रप्रवर्त्तक !।
जयानन्त! जगज्जन्मत्राणसंहारकारक !॥२४
सहस्रचरणेशान शम्भो योगीन्द्रवन्दित !।
जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर ॥२५

व विभ्राजमान, विमल, प्रभा के मण्डल से मण्डित, श्रीवत्स का चिह्न वक्ष स्थल मे रखने वाले तपे हुए सुवर्ण के समान प्रभा से युक्त, हाथो मे शख चक्र और गदा को धारण करने वाले तथा शार्ङ्ग धनुष-धारी, श्री से समावृत थे। उसी क्षण मे कोई भी मनुष्य उनके तेज से दिखलाई नही दिया था ॥२९ ३०॥ उसी अन्तर मे शशाङ्क से अङ्कित मस्तक वाले महादेव महेश्वर रुद्र प्रसादाभिमुख होते हुए प्रादुर्भूत हुए थे ॥३१॥ जगत् के नाथ, तीन नेत्रो वाले, चन्द्र के भूषण से युक्त उन परमेश्वर का दर्शन करके परम प्रसन्न मन वाले होते हुए भक्ति से उनकी स्तुति की थी ॥३२॥ हे ईश्वर! हे महादेव! हे भूतपते! हे शिव! आपकी जय हो। हे अशेष मुनीशान! हे तप स अभिपूजित! आपकी जय हो ॥३३॥ हे सहस्र मूर्त्ते! हे विश्वात्मन्! हे जगत् के यन्त्र के प्रवर्त्तक! हे अनन्त! हे जगत् के जन्म-त्राण और सहार के करने वाले! आपकी जय हो ॥३४॥ हे सहस्र चरणो वाले ईशान! हे शम्भो! आप तो योगी द्रो के द्वारा वन्दित है। हे अम्बिका पते! हे देव! हे परमेश्वर! आपको हमारा नमस्कार है ॥३५॥

सस्तुतो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सल ।
समालिङ्ग्य हृषीकेश प्राह गम्भीरया गिरा ॥३६
किमर्थं पुण्डरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिन ।
इम समागता देशकिन्नुकार्य्यमयाच्युत ॥३७
आकर्ण्य तस्य तद्वाक्य देवदेवोजनार्दन ।
प्राहदेवोमहादेवप्रसादाभिमुखस्थितम् ॥३८
इमे हि मुनयोदेवतापसा क्षीणकल्मषा ।
अभ्यागतानाशरणसम्यग्दर्शनकांक्षिणाम् ॥३९

यदि प्रसन्नो भगवान्मुनीनां भावितात्मनाम् ।
सन्निधौ मम तज्ज्ञानं दिव्यं वक्तुमिहार्हसि ॥४०
त्वं हि वेत्सि स्वमात्मानं न ह्यन्यो विद्यते शिव ।
वद त्वमात्मनात्मानं मुनीन्द्रेभ्यः प्रदर्शय ॥४१

त्र्यम्बक भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान् ईश इस प्रकार से संस्तुत हुए थे और फिर उनने हृषीकेश का समालिङ्गन करके गम्भीर वाणी से कहा ॥३६॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे ब्रह्मवादी मुनीन्द्र गणो ! आप लोग इस देश में किस निय समागत हुए हैं ? हे अच्युत ! मुझ से आपका क्या कार्य है ? ॥३७॥ देवों के देव जनार्दन ने उनके इस वचन का श्रवण करके देव न प्रसाद के अभिमुख सामने संस्थित महादेव से कहा था ॥३८॥ हे देव ! ये मुनिगण तपस्वी हैं और क्षीण कल्मष वाले हैं । आप भली-भाँति दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा वाले अभ्यागतों के रक्षक हैं ॥३९॥ यदि इन भावित आत्मा वाले मुनियों पर आप प्रसन्न हैं तो मेरी सन्निधि में आप उन दिव्य ज्ञान का बताने के योग्य होते हैं ॥४०॥ हे शिव ! आप ही अपनी आत्मा को जानते हैं अन्य कोई भी ज्ञाता विद्यमान नहीं है । आप वर्णन कीजिए और आत्मा से आत्मा को इन मुनीन्द्रों को दिखलाइए ॥४१॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रोवाचमुनिपुङ्गवान् ।
प्रदर्शयन्योगसिद्धिनिरीक्ष्य वृषभध्वजम् ॥४२
सन्दर्शनान्महेशस्य शङ्करस्याथ शूलिनः ।
कृतार्थं स्वयमात्मानं ज्ञातुमर्हथ तत्त्वतः ॥४३
द्रष्टुमर्हथ देवेशं प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् ।
ममैव सन्निधाने स यथावद्वक्तुमीश्वरः ॥४४
निशम्य विष्णोर्वचनप्रणम्यवृषभध्वजम् ।
सनत्कुमारप्रमुखा पृच्छन्तिस्ममहेश्वरम् ॥४५
अथास्मिन्नन्तरेदिव्यमासनंविमलंशिवम् ।
किमप्यचिन्त्यंगगनादीश्वरार्थंसमुद्बभौ ॥४६

तथाऽस्सादयोगात्मा विष्णुनासहविश्वकृत् ।
तेजसापूरयन्विश्वं भातिदेवोमहेश्वरः ॥४७
ततो देवाधिदेवेश शङ्कर ब्रह्मवादिन. ।
विभ्राजमानं विमले तस्मिन्ददृशुरासने ॥४८
तमासनस्थं भूतानामीशं ददृशिरेकिल ।
यदन्तरा सर्वमेतद्यतोऽभिन्नमिदं जगत् ॥४९
स वासुदेवमीशानमीशं ददृशिरे परम् ।
प्रोवाच पृष्टो भगवान्मुनीनां परमेश्वरः ॥५०
निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षं स्वात्मयोगमनुत्तमम् ।
तच्छृणुध्वं यथान्यायमुच्यमानं मयाऽनघा. ।
प्रशान्तमनसः सर्वे विशुद्धं ज्ञानमैश्वरम् ॥५१

हृषीकेश भगवान् ने इस प्रकार से कह कर फिर उन श्रेष्ठ मुनियों से कहा था और योग की सिद्धि का प्रदर्शन करते हुए वृषभध्वज का निरीक्षण किया था ॥४२॥ हे मुनिगण ! शूली महेश शङ्कर प्रभु के दर्शन से तात्त्विक रूप से अपने आपको स्वयं कृतार्थ जानने के योग्य हो ॥४३॥ अब आप लोग सब सामने में स्थित प्रत्यक्ष देवेश के दर्शन करने के योग्य हो गये हो । वह ईश्वर मेरी ही सन्निधि में यथावत् कहने के योग्य हैं ॥४४॥ सनत्कुमार जिनमें प्रमुख थे वे मुनिगण भगवान् विष्णु के वचन का श्रवण करके और प्रभु वृषभध्वज को प्रणाम करके महेश्वर से पूछने लगे थे ॥४५॥ इसके अनन्तर इसी अन्तर में दिव्य आसन अति विमल शिव—कुछ अचिन्तनीय ईश्वर के लिये गगन से समुद्भासित हुआ था ॥४६॥ वहाँ पर योगात्मा विश्व का रचयिता विष्णु के ही साथ सम्प्राप्त हुए थे तेज से समस्त विश्व को पूरित करते हुए महेश्वर देव भासित हो रहे थे ॥४७॥ इसके उपरान्त ब्रह्मवादी गण ने देवों के अधिदेवेश शङ्कर को उस विमल आसन पर विभ्राजमान देखा था ॥४८॥ भूतों के ईश उनको आसन पर स्थित सबने देखा । इसके बीच में यह सम्पूर्ण जगत जिससे अभिन्न था ॥४९॥ उनने ईशान ईश परम श्री वासुदेव को देखा था पूछे जाने पर परमेश्वर भगवान् ने मुनियों से कहा था ॥५०॥ हे

अनघो ! स्वात्म योग सर्वोत्तम पुण्डरीकाक्ष का दर्शन कर मेरे द्वारा वर्णित यथा न्याय आप लोग सब श्रवण कीजिए। आप सब प्रशान्त मन वाले हो जाइये और इस विशुद्ध ईश्वरीय ज्ञान को सुन ॥५१॥

२—शुद्ध परमात्म स्वरूप और योग वर्णन

अवाच्यमेतद्विज्ञान ममगुह्यं सनातनम् ।
यन्न देवाविजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः ॥१
इद ज्ञान समाश्रित्यब्राह्मीभूता द्विजोत्तमा ।
न ससार प्रपद्यन्तेपूर्वेऽपि ब्रह्मवादिन ॥२
गुह्याद्गुह्यतम साक्षाद्गोपनीयं प्रयत्नत ।
वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माक ब्रह्मवादिनाम् । ३
आत्माय केवल स्वच्छ शुद्ध सूक्ष्म सनातन. ।
अस्ति सर्वान्तर साक्षाच्चिन्मात्रस्तमस पर ॥४
सोऽन्तर्य्यामीसपुरुष स प्राण समहेश्वरः ।
स कालोऽग्नदव्यक्त सचवेदइतिश्रुति. ॥५
अस्माद्विजायतेविश्वमत्रैवप्रविलीयते ।
स मायीमाययावद्ध करोतिविविधास्तनू ॥६
न चाप्यय ससरति न ससारमय.प्रभुः ।
नाय पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः ॥७

ईश्वर ने कहा—यह विज्ञान वस्तुत न कहने के योग्य है। यह मेरा अतीव गोपनीय और सनातन है। जिसको हे द्विजाति गण ! देव-वृन्द बहुत यत्न करते हुए भी नही जानते हैं ॥१॥ हे द्विजोत्तमो ! इस ज्ञान का समाश्रय करके पहिले होने वाले ब्रह्मवादी गण भी इस ससार मे ब्राह्मीभूत होकर नहीं आया करते है ॥२॥ यह विषय गुह्य से भी अत्यन्त गुह्य है और प्रयत्न पूर्वक साक्षात् गोपन करने के योग्य है। क्योंकि आप सब लोग ब्रह्मवादी और भक्ति वाले हैं इसी लिये आज मैं आपके सामने इसे कहूँगा ॥३॥ यह आत्मा तो केवल है, स्वच्छ है, शुद्ध

है, सूक्ष्म है और सनातन है। यह सबके अन्तर में है और साक्षात् चिन्मात्र (ज्ञान स्वरूप) है तथा यह तम से परे है ॥४॥ वह अन्तर्यामी, पुरुष, प्राण, महेश्वर, काल और अव्यक्त है वह वेद है—ऐसी श्रुति है ॥५॥ यह विश्व इसी से समुत्पन्न होता है और अन्त में इसी में विलीन हो जाया करता है। वह मायी माया से बद्ध होकर विविध प्रकार के शरीरों को धारण किया करता है ॥६॥ यह कभी भी ससरण नहीं किया करता है और प्रभु यह ससार मय भी नहीं होता है। यह पृथ्वी, जल, तेज, पवन और नभ भी नहीं है ॥७॥

न प्राणो न मनोऽव्यक्त न शब्द स्पर्शएवच ।
न रूपरसगन्धाश्च नाह कर्त्ता न वागपि ॥८
न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थ द्विजोत्तमाः ।
नचकर्त्तानभोक्तावानचप्रकृतिपूरुषौ ॥९
न माया नव च प्राणा न चैव परमार्थत ।
यथा प्रकाशतमसो सम्बन्धो नोपपद्यते ॥१०
तद्वदैक्य न सम्बन्ध प्रपञ्चपरमात्मनो ।
छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ ॥११
तद्वत्प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौपरमार्थत ।
तथात्मामलिन सृष्टो विकारीस्यात्स्वरूपत ॥१२
न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि ।
पश्यन्ति मुनयो मुक्ता स्वात्मान परमार्थतः ॥१३
विकारहीन निर्द्वन्द्वमानन्दात्मानमव्ययम् ।
अह कर्त्ता सुखी दु खीकृश स्थूलेति या मति ॥१४

यह आत्मा न प्राण है और न मन, अव्यक्त, शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ही है। न मैं कर्त्ता हूँ और न वाणी ही है। यह हाथ और चरण, पायु और उपस्थ भी हे द्विजोत्तमो ! नहीं है। न किसी कर्म का करने वाला है और न कर्मों के बुरे-भले फलों का भोगने वाला ही है। यह न प्रकृति है और न पुरुष ही है। न यह माया है और परमार्थ स्वरूप से यह प्राण भी नहीं होता है जिस तरह से प्रकाश और तम का एकत्र कभी

भी सम्बन्ध उत्पन्न नहीं हुआ करता है। उसी भाँति इस प्रपञ्च का और परमात्मा का ऐसा ऐक्य सम्बन्ध नहीं होता है। यह इसी भाँति है और सब से भिन्न ही है लोक में छाया और आतप परस्पर में एक दूसरे से विलक्षण ही होते हैं और कभी भी दोनों एकत्र नहीं रह सकते हैं ।।८ ११।। उसी तरह यह समस्त प्रपञ्च और पुरुष परमार्थ से विभिन्न ही होते हैं। यही आत्मा जब मलिन हो जाता है तो ससार मे सृष्ट होकर स्वरूप से विकारी हो जाया करता है। उसकी फिर सैकड़ो दूसरे-दूसरे जन्मों मे भी कभी मुक्ति नहीं हुआ करती है। मुनिगण ही परमार्थ स्वरूप से अपने आपको अर्थात् अपनी आत्मा को मुक्त देखा करते हैं ।।१२ १३।। वास्तव में विकारों से हीन, निर्द्वन्द्व, आनन्द रूप, अव्यय इस आत्मा को मैं करने वाला हूँ सुखी, दुखी, कृश, स्थूल हूँ—ऐसी जो मति रखते हैं अर्थात् जो ऐसी बुद्धि आत्मा के विषय मे किया करते हैं ।।१४।।

सा चाहङ्कारकर्तृत्वादात्मन्यारोपिताजनै ।
वदन्तिवेदविद्वास साक्षिणप्रकृते परम् ।।१५

भोक्तारमक्षर बुद्ध सर्वग समवस्थितम् ।
तस्मादज्ञानमूलोहि ससार सर्वदेहिनाम् ।।१६

अज्ञानादन्यथाज्ञानात्तत्त्व प्रकृतिसङ्गतम् ।
नित्योदितस्वयज्योतिः सर्वग.पुरुष पर ।।१७

अहङ्काराविवेकेन कर्त्ताहमिति मन्यते ।
पश्यन्तिऋषयाऽव्यक्त नित्य सदसदात्मकम् ।।१८

प्रधान पुरुष बुद्ध्वाकारणब्रह्मवादिन. ।
तेनायसङ्गत स्वात्मा कूटस्थोऽपिनिरञ्जन. ।।१९

स्वात्मानमक्षर ब्रह्म नाववुद्ध्येत तत्त्वत ।
अनात्मन्यात्मविज्ञान तस्माद्दु ख तथेतरत् ।।२०

रागद्वेषादयो दोषा सर्वे भ्रान्तिनिवन्धना ।
कर्म्माण्यस्य महान्दोष पुण्यापुण्यमिति स्थिति ।।२१

वह ऐसी मति अहंकार के कर्त्ता होने से ही हुआ करती है अर्थात् ऐसी बुद्धि के होने का कारण केवल अहङ्कार ही होता है। मनुष्य उसे आत्मा में आरोपित कर लिया करते हैं अर्थात् अहंकार को वस्तु को आत्मा की वस्तु मान लेते हैं। वेद के विद्वान् लोग तो उस आत्मा को प्रकृति से भी परे मानते या समझते हैं। अक्षर, बुद्ध और सर्वत्र समव-स्थित आत्मा को भोक्ता मानना अनुचित है। समस्त देह धारियों का यह सम्पूर्ण संसार ही अज्ञान के मूल वाला है। अर्थात् इस ससार का मूल ही पूर्ण अज्ञान होता है ॥१५-१६॥ अज्ञान से तथा अन्यथा ज्ञान से यह तत्त्व जब प्रकृति से सङ्गत होता है जो नित्योदित, स्वयं ज्योति, सर्वत्र गमन शील और पर पुरुष है अहंकार के कारण अविवेक से अपने आपको मैं सबके करने वाला कर्त्ता हूँ—ऐसा माना करता है। यह तो मह कारा-विवेक से मानी हुई बात है वास्तविक नहीं है। ऋषि लोग इस अव्यक्त, नित्य और सदसदात्मक को देखते हैं अर्थात् वास्तविक स्वरूप इसका वे लोग जानते हैं ॥१७-१८॥ प्रधान, पुरुष को भली भाँति समझकर जोकि कारण है ब्रह्मवादी जन उससे सङ्गत यह आत्मा कूटस्थ भी निरञ्जन है। स्वात्मा को जो अक्षर ब्रह्म है इसे जो तात्त्विक रूप से नहीं जानता है और आत्मा में आत्म विज्ञान जिसको नहीं है इससे इतर दुःख होता है ॥१९-२०॥ राग और द्वेष ये दोष सब भ्रान्ति करने के निबन्धन ही होते हैं। इसके कर्म्म महान् दोष है और फिर पुण्य तथा अपुण्य (पाप) की स्थिति बना करती है ॥२१॥

तद्वशादेव सर्वेषा सवदेहसमुद्भव. ।
नित्यं सर्वत्र गुह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः ।।२२
एकः सन्तिष्ठते शक्तया मायया न स्वभावत. ।
तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनय. परमार्थतः ।।२३
भेदोऽव्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसश्रया ।
यथा च धूमसम्पर्कान्नाऽऽकाशो मलिनो भवेत् ।।२४
अन्त.करणजेभविरात्मा तद्वन्नलिप्यते ।
यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोपलः ।।२५

उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते ।
ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणा ।।२६
अर्थ स्वरूपमेवाऽन्ये पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः ।
कूटस्थो निर्गुणोव्यापी चैतन्यात्मा स्वभावत ।।२७
दृश्यते ह्यर्थ रूपेण पुरुषर्ज्ञानदृष्टिभि ।
यथा स लक्ष्यते रक्त केवल स्फाटिको जनैः ।।२८

इन्ही के वश मे हाने से सबको सब प्रकार के देहों का समुद्भव हुमा करता है। वस्तुतः यह ग्रात्मा तो नित्य, सर्वत्र गुह्य स्वरूप वाला, कूटस्थ ग्रोर सभी दोषों से रहित होता है ।।२२।। यह एक हो शक्ति माया से मस्थिन रहा करता है स्वभाव मे इसकी मस्थिनि नहीं होती है। इसी लिये मुनीन्द्रगण परमार्थ रूप से इसको अद्वैत ही कहा करते हैं ।।२३।। ग्रव्यक्त स्वभाव से ही यह भेद होता है ग्रोर वह माया ग्रात्मा मे सश्रय करने वाली है जिस तरह से निर्मल स्वभाव वाला भी ग्राकाश धूम्र के सम्पर्क को प्राप्त कर मलिन हो जाया करता है। उसी भाँति ग्रात्मा की भी मलिनता होती है ।।२४।। अन्त करण से सजात भावो से ग्रात्मा भी उसी की भाँति लिप्त नही होता है क्योकि यह तो ग्रपनी प्रभा से ही केवल स्फटिक मणि की भाँति भासित हुआ करता है ।।२५।। उपाधियो से जब यह रहित होता है तो विमल स्वरूप वाला यह ग्रात्मा भी उसी भाँति प्रकाशमान हुग्रा करता है। विचक्षण लोग इस जगत् को भी ज्ञान स्वरूप वाला ही कहा करते हैं ।।२६।। ग्रन्य लोग इसको अर्थ स्वरूप वाला कहते हैं जिनकी कुदृष्टि होती है वे ही ऐसा इसे समझा करते है। स्वभाव से यह निर्गुण, कूटस्थ ग्रोर व्यापी तथा चैतन्य स्वरूप वाला है ।।२७।। ज्ञान की दृष्टि वाले पुरुषों के द्वारा यह अर्थ रूप से दिखलाई दिया करता है जिस तरह से केवल स्फटिक मणि भी जिसका परम शुभ्र श्वेत वर्ण स्वाभाविक है मनुष्यों को रक्त लक्षित हुग्रा करता है ।।२८।।

रक्तिकाद्युपधानेन तद्वत्परमपूरुषः ।
तस्मादात्माक्षर शुद्धो नित्य सर्वगतोऽव्यय ।।२९

उपासितव्यो मन्तव्यःश्रोतव्यश्चमुमुक्षुभि. ।
यदा मनसि चैतन्य भातिसर्वत्रसर्वदा ॥३०
योगिनः श्रद्दधानस्य तदा सम्पद्यते स्वयम् ।
यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ॥३१
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।
यदासर्वाणिभूतानि समाधिस्थोनपश्यति ॥३२
एकीभूत परेणासौतदाभवतिकेवलम् ।
यदासर्वेप्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिस्थिताः ॥३३
तदासावमृतीभूतः क्षेमगच्छतिपण्डितः ।
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥३४
तत एवच विस्तार ब्रह्म सम्पद्यते सदा ।
यदा पश्यति चात्मान केवलं परमार्थतः ॥३५
मायामात्र तदा सर्वं जगन्—वतिः निर्वृतः ॥३६

यदि उस स्फटिक के साथ रक्तिका जिसका रक्त वर्ण होता है उपधान होने से वह लाल प्रतीत होती है उसी भाँति यह परम पुरुष भी रक्त दिखलाई दिया करता है । इससे यही सिद्ध है कि यह आत्मा तो स्वभाव से अक्षर, शुद्ध, नित्य, अव्यय और सर्वत्र गमन करने के स्वभाव वाला है ॥२६॥ मुमुक्षु जनों के द्वारा यह उपासना करने के योग्य, मन्तव्य और सुनने क योग्य है । जिस समय मे मन मे सर्वत्र और सर्वदा चैतन्य भासित होता है ॥३०॥ उस समय मे श्रद्धा करने वाले योगी जन स्वय सम्पद्यमान होता है । जिस समय मे समस्त प्राणी अपनी आत्मा मे ही देखा करता है ॥३१॥ समस्त भूतों में उस समय आत्मा ब्रह्म सम्पन्न होता है । जब समाधि मे स्थित हुआ भी सब भूतो को नही देखता है ॥३२॥ उस समय मे पर के साथ एकीभूत होकर केवल रहता है । जिस समय मे इसके हृदय मे स्थित समस्त काम प्रमुक्त हो जाया करते हैं । उसी समय मे यह अमृती भूत होकर पण्डित क्षेम को प्राप्त किया करता है । जब यह भूतों के पृथग्भाव को एक मे ही स्थित देखा करता है । इसी से ही सदा ब्रह्म विस्तार को प्राप्त हो जाता है । जिस समय मे परमार्थ

स्वरूप से केवल आत्मा को ही देखता है। उस समय में समस्त जगत् माया मात्र होता है। यह निर्वृत तभी होता है ॥३३-३६॥

यदा जन्मजरादुःख व्याधीनामेकभेषजम्।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदाशिवः ॥३७
तथा नदीनदालोके सागरेणैकताययुः।
तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकता व्रजेत् ॥३८
तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थितिः।
अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति ॥३९
विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मनिर्विकल्पतदव्ययम्।
अज्ञानमितरत्सर्वं विज्ञानमिति तन्मतम् ॥४०
एतद्वः कथितं साङ्ख्यं भाषितंज्ञानमुत्तमम्।
सर्ववेदान्तसारं हियोगस्तत्रैकचित्तता ॥४१
योगात्सञ्जायते ज्ञानज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते।
योगज्ञानाभियुक्तस्यनावाप्यविद्यतेक्वचित् ॥४२

जिस समय मे जन्म-जरा-दुःख और व्याधियो की एक मात्र औषध केवल ब्रह्म का ही विज्ञान होता है उसी समय मे यह शिव होते हैं। ॥३७॥ जिस प्रकार से लोक मे नदी और नद सागर के साथ मिलकर एकता को प्राप्त हो जाया करते है उसी भाँति यह आत्मा भी उस अक्षर निष्कल के साथ मिलकर एकता को प्राप्त हुआ करता है ॥३८॥ इसी लिये केवल विज्ञान ही है न तो प्रपञ्च है और न कोई भी संस्थिति हो है। लोक मे अज्ञान से यह विज्ञान आवृत रहा करता है इसी कारण मोह को प्राप्त हुआ करता है ॥३९॥ विज्ञान निर्मल-सूक्ष्म-निर्विकल्प और अव्यय होता है। इसके अतिरिक्त सभी अज्ञान ही होता है। ऐसा मेरा समस्त विज्ञान है ॥४०॥ यह उत्तम साङ्ख्य ज्ञान हमने आप सबके समक्ष मे कह सुनाया है। यह सभी वेदान्त का साररूप है। उसमे जो योग है वह चित्त की एकाग्रता ही होता है। योग से ही ज्ञान की उत्पत्ति हुआ करती है। और ज्ञान से ही योग प्रवृत्त होता है। जो योग ज्ञान

से अभियुक्त होता है उसको कहीं पर भी अप्राप्य नहीं हुआ करता है ॥४१-४२॥

यदेव योगिनो यान्ति साङ्ख्यैस्तदनि गम्यते।
एक साङ्ख्यञ्च योगञ्च यः पश्यति स तत्त्ववित् ॥४३
अन्ये हि योगिनोविप्राह्यैश्वर्य्यासक्तचेतसः।
मज्जन्तितत्रतत्रैव येचान्ये कुण्ठबुद्धयः ॥४४
यत्तत्सर्वमत दिव्यमैश्वर्यममलं महत्।
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात् ॥४५
एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वर।
कीर्त्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुख. ॥४६
सर्वरूप सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोऽमर.।
सर्वतः पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातन ॥४७
अपाणिपादो जवगो (जवनो) ग्रहीता हृदि संस्थितः।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्णः शृणोम्यहम् ॥४८
वेदाहं सर्वमेवेद न मा जानाति कश्चन।
प्राहुर्महान्त पुरुष मामेक तत्त्वदर्शिनः ॥४९

जिसको योगी लोग प्राप्त किया करते हैं उसी को साख्य वाले प्राप्त करते हैं। यह साख्य और योग दोनों एक ही हैं। इस तरह से जो साख्य और योग को एक ही देखा करते हैं वही तत्त्व वेत्ता वस्तुतः देखा करता है ॥४३॥ हे विप्रो! अन्य योगी जन जो ऐश्वर्य से आसक्त चित्त वाले है वे वहीं-वहीं पर मग्न होते रहते हैं और जो कुण्ठित बुद्धि वाले है वे भी निमज्जित होते रहते हैं ॥४४॥ यह सर्व के द्वारा सम्मत मत है जो दिव्य, ऐश्वर्य, महत् और अमल है। जो ज्ञान योग का अभियुक्त होता है वही इस देह के अन्त मे उसको प्राप्त किया करता है। यह आत्मा मे अव्यक्त, मायावी, परमेश्वर कीर्तित किया गया हूँ जो सब वेदों मे सर्वात्मा और सर्वमुख बताया गया है। यह सर्वरूप, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर सभी ओर पाणि और पादो वाला मैं अन्तर्यामी और सनातन हूँ। बिना पाणि तथा पादो वाला—जवग, ग्रहीता, हृदय मे सस्थित बिना चक्षुओं

वाला भी मैं देखता हूँ तथा कर्णों से रहित होता हुआ भी मैं श्रवण किया करता हूँ ॥४५ ४८॥ मैं ही वेद हूँ और यह सब भी हूँ। मुझे कोई भी नहीं जानता है। तत्त्वदर्शी लोग एक मुझको महान् पुरुष कहा करते हैं ॥४६॥

पश्यन्ति ऋषयो हेतुमात्मन सूक्ष्मदर्शिनः।
निर्गुणामलरूपस्य यदैश्वर्यमनुत्तमम् ॥५०
यन्न देवा विजानन्ति मोहितामममायया।
वक्ष्ये समाहिता यूय शृणुध्वब्रह्मवादिन ॥५१
नाहं प्रशस्त सर्वस्य मायातीत स्वभावतः।
प्रेरयामितथापीद कारण सूरयोविदु ॥५२
यतो गुह्यतम देह सर्वगतत्त्वदर्शिनः।
प्रविष्टा मम सायुज्यलभन्ते योगिनोऽव्ययम् ॥५३
ये हि मायामतिक्रान्ता मम याविश्वीरूपिणी।
लभन्तेपरमशुद्ध निर्वाणन्ते मयासह ॥५४
न तेषा परमा वृत्ति कल्पकोटिशतैरपि।
प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद्वेदानुशासनम् ॥५५
तत्पुत्रशिष्योगिभ्योदातव्यब्रह्मवादिभिः।
मदुक्तमेतद्विज्ञान सांख्य योगसमाश्रयम् ॥५६

सूक्ष्म दर्शी ऋषि लोग आत्मा का हेतु देखते हैं। निर्गुण और अमल रूप वाले का जो उत्तम ऐश्वर्य है उसे ऋषिगण ही देखते हैं ॥५०॥ मेरी माया से मोहित हुए देवगण भी जिसको नहीं जानते हैं। हे ब्रह्मवादियो! आप लोग समाहित होकर श्रवण कीजिए मैं उसको आप लोगों को बतलाता हूँ ॥५१॥ मैं भी स्वभाव से सबमें प्रशस्त तथा माया से अतीत नहीं हूँ तो भी मैं इसकी प्रेरणा करता हूँ—इसके कारण को सूरि जन ही जानते हैं ॥५२॥ जिससे तत्त्वदर्शी लोग इस सर्वत्र गमनशील गुह्य तम देह में प्रविष्ट होते हुए मेरे सायुज्य की प्राप्ति किया करते हैं व इस अव्यय को प्राप्त करने वाले योगी जन ही होते हैं ॥५३॥ जो लोग मेरी माया का अतिक्रमण करते हैं जो यह विश्व के साहन करने वाली है वे ही

लोग मेरे ही साथ परम और शुद्ध निर्वाण का लाभ लिया करते हैं ॥५४॥ सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी उनकी परमा वृत्ति नहीं होती है। हे योगीन्द्रगण ! यह मेरे ही प्रसाद का कारण है और यही वेद का अनुशासन है ॥५५॥ सो यह मेरे द्वारा वर्णित विज्ञान जो सांख्य और योग के समन्वय वाला है ब्रह्मवादियों के द्वारा पुत्र शिष्य और योगियों को ही देना चाहिए ॥५६॥

३—प्रकृति और पुरुष का उद्भव

अव्यक्तादभवत्कालः प्रधानं पुरुषः परः।
तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्माद्ब्रह्ममयञ्जगत् ॥१
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वाधारं सदानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम् ॥३
सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम्।
निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामृतम् ॥४
अभिन्नं भिन्नसंस्थानंशाश्वतंध्र वमव्ययम्।
निर्गुणं परमं ज्योतिस्तज्ज्ञानसूरयोविदुः ॥५
स आत्मासर्वभूतानांसवाह्याभ्यन्तरः परः।
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तोज्ञानात्मापरमेश्वर ॥६
मयाततमिदंविश्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
मत्स्थानि सर्वं भूतानि यस्तवेदविदोविदु. ॥७

ईश्वर ने कहा—अव्यक्त से काल हुआ था—प्रधान और परपुरुष हुए। उन्ही से यह सभी कुछ हुआ है। इसीलिये यह जगत् ब्रह्ममय है ॥१॥ वही ब्रह्म जिसके सभी ओर हाथ और चरण हैं—सब ही तरफ आँखें, शिर और मुख है—सब तरफ श्रुति वाला है वही लोक में सबको समावृत करके स्थित रहता है ॥२॥ समस्त इन्द्रियों से रहित भी है।

वह सबका आधार है—सदा आनन्द स्वरूप वाला है-अव्यक्त है और द्वंद्व से रहित है ॥३॥ सभी उपमानों से रहित है अर्थात् उसकी समता रखने वाला अन्य कोई है ही नहीं । प्रमाणों से भी परे और गोचर भी है। निर्विकल्प, निराभास, सब में आवास बनाने वाला और वह परामृत है। वह अभिन्न है और भिन्न संस्थान वाला भी वह शाश्वत, ध्रुव और अव्यय है। उसमें कोई भी गुण नहीं है—वह परम ज्योति स्वरूप है। उसके यथार्थ ज्ञान को सूरि जन ही जानते हैं ॥४-५॥ वह सभी प्राणियों की आत्मा है। बाह्य, आभ्यन्तर और पर है। वही मैं सर्वत्र गमन करने वाला—परमशान्त, ज्ञानात्मा और परमेश्वर हूँ ॥६॥ मैंने ही इस स्थावर और जङ्गम स्वरूप विश्व जगत् का विस्तार किया है। मेरे ही अन्दर में स्थित ये समस्त भूत हैं—ऐसा जो हूँ उसको वेदों के वेत्ता विद्वान् जन ही जानते हैं ॥७॥

प्रधानं पुरुषञ्चैव तद्वस्तु समुदाहृतम् ।
तयोरनादिरुद्दिष्टः कालः संयोगजः परः ॥८
त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम् ।
तदात्मकं तदन्यत्स्यात्तद्रूपं मामकं विदुः ॥९
महदाद्यंविशेषान्तंसम्प्रसूतेऽखिलञ्जगत् ।
या सा प्रकृतिरुद्दिष्टामोहिनीसर्वदेहिनाम् ॥१०
पुरुषः प्रकृतिस्थो वै भुङ्क्ते यः प्राकृतान् गुणान् ।
अहङ्कारविमुक्तत्वात्प्रोच्यते पञ्चविंशकः ॥११
आद्यो विकारः प्रकृतेर्महानितिचकथ्यते ।
विज्ञातृशक्तिर्विज्ञानात्ह्यहङ्कारस्तदुत्थितः ॥१२
एक एव महानात्मा सोऽहङ्कारोऽभिधीयते ।
स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः ॥१३
तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखञ्चजन्मसु ।
स विज्ञानात्मकस्तस्य मनःस्यादुपकारकम् ॥१४
तेनापि तन्मयस्तस्मात् संसारः पुरुषस्य तु ।
स चाविवेकः प्रकृतौ सङ्गात्कालेन सोऽभवत् ॥१५

उसकी वस्तु प्रधान को और पुरुष को कहा गया है। उन दोनों का पर संयोजक काल उद्दिष्ट किया गया है ॥८॥ ये तीनों अनाद्यन्त हैं र्थात् आदि और अन्त से रहित हैं और ये अव्यक्त में समवस्थित हैं। मी स्वरूप वाला उसमें अन्य मेरा रूप है—ऐसा जान लो ॥९॥ महत् आदि लेकर विशेष के अन्त पर्यन्त इस सम्पूर्ण जगत् की प्रसूति किया रता है। वही यह प्रकृति है ऐसा कहा कहा गया है। यही प्रकृति मस्त देह धारियों का मोहन करने वाली है ॥१०॥ प्रकृति में स्थित रह पुरुष जो है वह प्राकृत गुणों का उपभोग किया करता है। अहङ्कार से विमुक्त होने से यह पञ्चविंशक कहा जाया करता है ॥११॥ प्रकृति रा सबसे प्रथम जो विकार होता है—वही महान् (महत्तत्व) इस नाम से कहा जाता है। विज्ञाता की शक्ति के विज्ञान से वह अहङ्कार के नाम से कहा गया है ॥१२॥ वह महान् के स्वरूप वाला अहङ्कार एक ही कहा जाता है। तत्वों के चिन्तन करने वालों के द्वारा वह जीव ही अन्तरात्मा इस नाम से गाया जाता है ॥१३॥ उसके द्वारा जन्मों में सुख और दुःख का ज्ञान किया जाता है। वह ही विज्ञान के स्वरूप वाला है। मन ही उसका उपकार करने वाला हुआ करता है अर्थात् मन के योग से ही सुख दुःखादि का अनुभव किया जाता है ॥१४॥ इससे उसके द्वारा भी पुरुष का यह संसार तन्मय होता है। और यही अविवेक है। वह प्रकृति में काल के साथ सङ्ग से होता है ॥१५॥

कालःसृजति भूतानि कालः संहरतेप्रजाः।
सर्वेकालस्यवशगानकालःकस्यचिद्वशे ॥१६
सोऽन्तरा सर्वमेवेद नियच्छति सनातनः।
प्रोच्यते भगवान्प्राणः सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः ॥१७
सर्वेन्द्रियेभ्यः परम मन आहुर्मनीषिणः।
मनसश्चाप्यहंकारमहंकारान्महान्परः ॥१८
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषाद्भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदञ्जगत् ॥१९

प्राणात्परतर व्योम व्योमतीतोऽग्निरीश्वर ।
सोऽहं ब्रह्माऽव्यय शान्तो मायातीतमिदञ्जगत् ।।२०
नास्तिमत्त परभूतमाञ्चविज्ञायमुच्यते ।
नित्य नास्तीतिजगतिभूतस्थावरजङ्गमम् ।।२१
ऋते मामेवमव्यक्त व्योरूप महेश्वरम् ।
सोऽहं सृजामि सकल सहरामि सदाजगत् ।।२२
मायी मायामयोदेव कालेन सह सङ्गत ।
मत्सन्निधावेपकाल करोति सकलञ्जगत् ।।
नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम् ।।२३

यह काल ही भूतो का सृजन किया करता है और यही सहार भी कर देता है जिसमे समस्त प्रजा नष्ट हो जाती है । सभी जो वृद्ध भी हैं एक इसी काल के वश मे रहने वाल होते हैं । और यह काल किसी के भी वशगत नही होता है ।।१६।। वह अन्तरा सनातन इस सब का दिया करता है । वह प्राण—सर्वज्ञ—पुरुषोत्तम और भगवान् इस नाम से कहा जाता है ।।१७।। अन्य समस्त इन्द्रियो मे परम प्रधान मन को ही महा मनोषीगण कहा करते हैं । मन से भी पर अहकार है और उस अहङ्कार पर महान् है ।।१८।। महत् से पर अव्यक्त है और उस अव्यक्त से परपुरुष होता है । पुरुष से भगवान् प्राण है और उसका ही यह समस्त जगत् है ।।१९।। प्राण से भी पर तर व्योम है । व्योम से भी अतीत ईश्वर अग्नि है । वह मैं परम शान्त—अव्यय—ब्रह्म हूँ । यह जगत् माया से अतीत है ।।२०।। मुझसे पर कोई भूत नही है । मुझको यथार्थ्या रूप से जान कर यह मुक्त हो जाता है । इस जगत् मे स्थावर और जङ्गम भूत नित्य नही है ।।२१।। केवल एक मुझको छोडकर जो अव्यक्त व्योमरूप वाला और महेश्वर है अन्य सदा रहने वाला नही है । वही मैं इस सबका सृजन करता हूँ और सदा ही सम्पूर्ण जगत् का सहार भी किया करता हूँ ।।२२।। यह अनन्तात्मा ही नियोजन किया करता है—यही वेद का अनुशासन है ।।२३।।

४—शिवमाहात्म्यवर्णन

वक्ष्ये समाहिता यूय शृणुध्व ब्रह्मवादिन ।
माहात्म्य देवदेवस्य येन सर्वं प्रवर्त्तते ॥१
नाह तपोभिर्विविधैर्नदानेन चेज्यया ।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥२
अहहिसर्वभूतानामन्तस्तिष्ठामि सर्वत. ।
मामर्वसाक्षिणलोकोनजानातिमुनीश्वरा. ॥३
यस्यान्तरा सर्वमिद यो हि सर्वान्तक: पर. ।
सोऽह धाता विधाता च कालोऽग्निर्विश्वतोमुख. ॥४
न मापश्यन्ति मुनय: सर्वे पितृदिवौकस. ।
ब्रह्माचमनव.शक्रो येचान्येप्रथितौजस. ॥५
गृणन्ति सतत वेदा मामेकं परमेश्वरम् ।
यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्ब्राह्मणा वैदिकैर्मखै. ॥६
सर्वे लोका न पश्यन्ति ब्रह्मा लोकपितामह: ।
ध्यायन्ति योगिनो देव भूताधिपतिमीश्वरम् ॥७

ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मवादी जनो । अब परम सावधान होकर श्रवण करिये मैं अब देवो के भी देव का माहात्म्य आप लोगो को बतलाता हूँ जिससे ही यह सब प्रवृत्त होता है ॥१॥ मैं तपश्चर्या से जो अनेक प्रकार की होती है—दान से—इज्या से पुरुषो के द्वारा जाना नही जा सकता हूँ केवल भक्ति से ही मेरा ज्ञान होता है इसके बिना अन्य सभी साधन व्यर्थ होते हैं ॥२॥ मैं सभी प्राणियो के मध्य मे सभी ओर से स्थित रहता हूँ। हे मुनीश्वरो । मुझ को सबका साक्षी (द्रष्टा) यह लोक सर्वथा नही जाना करता है ॥३॥ जिसको अन्तरा मे यह सभी कुछ है और जो पर तथा सबका अन्त करने वाला है वह मैं ही धाता–विधाता –काल–अग्नि और विश्वतोमुख हूँ ॥४॥ मुझ को मुनिगण—पितर और देवगण सभी नही देखते हैं। चाहे कोई भी ब्रह्मा हो—मनुगण हो या इन्द्र हो और जो कोई भी प्रथित ओज वाले अन्य हो मुझको नही देखन

है ॥५॥ वेद ही सतत मुझ एक परमेश्वर का ग्रहण किया करते हैं। ब्राह्मण लोग नाना प्रकार के यज्ञों के द्वारा तथा वैदिक मखों के द्वारा मेरा यजन किया करते हैं ॥६॥ सब लोक नहीं देखते है कि ब्रह्मा लोकों का पितामह है। योगीजन भूतो के अधिपति ईश्वर का ध्यान किया करते हैं ॥७॥

अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रद. ।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मासर्वसंप्लुत. ॥८
मांपश्यन्तीहविद्वांसोधार्म्मिकावेदवादिनः ।
तेषांसन्निहितोनित्ययेमांनित्यमुपासते ॥९
ब्राह्मणा.क्षत्रियावैश्याधार्मिकामामुपासते ।
तेषां ददामितत्स्थानमानन्दंपरमम्पदम् ॥१०
अन्येऽपि ये स्वधर्मस्थाः शूद्राद्या नीचजातय. ।
भक्तिमन्तःप्रमुच्यन्ते कालेनापि हि सङ्गता ॥११
मद्भक्ता न विनश्यन्तिमद्भक्ता वीतकल्मषाः ।
आदावेव प्रतिज्ञातं न मे भक्त प्रणश्यति ॥१२
योवैनिन्दतितंमूढोदेवदेवं स निन्दति ।
यो हि पूजयते भक्त्या स पूजयतिमांसदा ॥१३
पत्र पुष्प फल तोय मदाराधनकारणात् ।
यो मे ददातिनियत स मे भक्तप्रियोमम ॥१४

मैं ही सब प्रकार के हवियों का भोक्ता हूँ और फलों के भी प्रदान करने वाला हूँ। मैं सब देवों का शरीर होकर सर्वात्मा और सर्व संप्लुत होता हूँ ॥८॥ मुझ को वेद वादी धार्मिक विद्वान् ही देखते हैं। मैं भी उनके नित्य ही सन्निहित रहा करता हूँ क्योंकि वे मुझ को नित्य ही उपासना के द्वारा स्मरण किया करते है ॥९॥ ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य जो भी धार्मिक होते हैं वे मेरी उपासना किया करते हैं। उनको मैं भी परम पद आनन्द मय स्थान प्रदान किया करता हूँ ॥१०॥ अन्य भी जो अपने धर्म में स्थित रहने वाले शूद्र आदि नीची जाति वाले है यदि वे भी भक्ति वाले होते हैं तो प्रमुक्त अवश्य ही हो जाया करते हैं और वे काल के साथ

सङ्गत होते हैं ॥११॥ यहाँ पर भक्ति का महत्त्व और इसके करने का अधिकार सब को बताया गया मेरे भक्त कभी विनष्ट नहीं होते हैं। मेरे भक्त सदा कल्मषों से रहित रहते हैं। मैंने यह सबके आदि में ही प्रतिज्ञा की थी कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं हुआ करता है ॥१२॥ जो भी कोई मूढ मेरे भक्त की निन्दा किया करता है वह साक्षात् देवों के देव की निन्दा करने वाला होता है और जो मेरे सच्चे साधु भक्त को पूजा या सत्कार किया करता है वह सदा मेरी ही अर्चना किया करता है। मेरी पूजा से भी अधिक मेरे भक्त की पूजा है ॥१३॥ पत्र-पुष्प-फल और जल जो मेरी समाराधना के कारण वश होकर मुझे समर्पित किया करता है और नियत रूप से देता है वह मेरा परम प्रिय भक्त है ॥१४॥

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
विदधौ दत्तवान्वेदानशेषानात्मनि सृतान् ॥१५
अहमेवहिसर्वेषायोगिना गुरुरव्ययः ।
धार्मिकाणाञ्च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम् ॥१६
अहं हि सर्वं संसारान्मचको योगिनामिह ।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः ॥१७
अहमेव हि संहर्त्ता संस्रष्टा परिपालकः ।
माया च मामिकाशक्तिर्मायालोकविमोहनी ॥१८
ममैव च परा शक्तिर्या स विद्येति गीयते ।
नाशयामि च तां मायां योगिनां हृदि संस्थितः ॥१९
अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ।
आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च ॥२०
एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधञ्जगत् ।
(नाहं प्रेरयिता विप्राः परमं योगमाश्रिताः ॥)
आस्थाय ब्रह्मणो रूपं मन्मयी मदधिष्ठिता ॥२१

मैंने ही इन समस्त जगतों का आदि स्वरूप परमेष्ठी ब्रह्मा की रचना की थी और मेरी आत्मा से निःसृत समस्त वेदों को उनका मैंने दिया था

॥१५॥ मैं ही समस्त योगिजनो का अव्यय गुरु हूँ। मैं जो धार्मिक जन है उनका गोप्ता हूँ और वेदो के विद्वेषियो का मैं निहन्ता हूं ॥१६॥ मैं ही यहाँ पर योगियो का इस समस्त ससार से मोचन करने वाला हूं। मैं इस सम्पूर्ण ससार से वर्जित होता हुआ भी इस ससार का हेतु हूँ ॥१७॥ मैं ही सस्रष्टा पालक और सहर्त्ता हूँ। यह जो माया के नाम से प्रख्यात है यह भी मेरी ही एक शक्ति है जो यह माया समस्त लोकों के विमोहन करने वाली है ॥१८॥ मेरी ही पराशक्ति वह है जो विद्या इस नाम से गाई या पुकारी जाया करती है। मैं योगियो के हृदय म स्थित रह कर उस अपनी माया का नाश करा दिया करता हूं ॥१९॥ मैं ही सभी प्रकार की शक्तियो का प्रवर्त्तक और निवर्त्तक हूं। मैं इन सब का आधार भूत हूँ और मैं अमृत का निधान हूं ॥२०॥ एक सबके अन्तर मे रहने वाली शक्ति इस विविध जगत् की रचना किया करती है। हे विप्रगण ! मैं प्रेरणा करने वाला नही हूँ। मैं तो परम योग मे आश्रित हूँ। वह मन्मयी और मुझ में ही अधिष्ठित रहने वाली ब्रह्म का रूप मे समास्थित होती है ॥२१॥

अन्याचशक्तिर्विपुलासस्थापयतिमेजगत् ।
भूत्वानारायणोऽनन्तोजगन्नाथाजगन्मय. ॥२२
तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलञ्जगत् ।
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी ॥२३
ध्यानेन मा प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे ।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४
सर्वेषामेव भक्तानामिष्ट प्रियतमो मम ।
यो हि ज्ञानेन मा नित्यमाराधयति नान्यथा ॥२५
अन्ये च हरये भक्ता मदाराधनकारिण ।
तेऽपि मा प्राप्नुवन्त्येवनावर्त्तन्ते च वैपुन ॥२६
मया ततमिद कृत्स्न प्रधानपुरुषात्मकम् ।
मय्येव सस्थित चित्त मया सम्प्रेयते जगत् ॥२७

अन्य भी एक विपुला शक्ति है जो मेरे इस जगत् की सस्थापना किया करती है। जो कि शक्ति अनन्त—जगन्मय—जगन्नाथ नारायण होकर ही करती है ॥२२॥ तीसरी भी एक मरी महती शक्ति है जो इस समस्त जगत् का निहनन किया करती है। वह मेरी शक्ति तामसी शक्ति के नाम से ही प्रख्यात है जो काल नाम वाली और रुद्र के स्वरूप से सम्पन्न होती है ॥२३॥ कुछ लोग मुझ को ध्यान के द्वारा देखा करते हैं और दूसरे कुछ ज्ञान के द्वारा मेरा दर्शन किया करते है। कुछ केवल भक्ति याग के ही द्वारा मुझको देख लेते हैं तथा अन्य कुछ कर्मयोग के द्वारा मुझे देखते हैं ॥२४॥ सब ही भक्तो का मैं परम प्रियतम इष्ट हू। जो ज्ञान के द्वारा मेरी नित्य ही आराधना करता है अन्यथा नही करता है ॥२५॥ अन्य लोग हरि के लिय भक्त होते हैं जो भी मेरे ही समाराधन क कारण से हुआ करते हैं। ये भी मेरी प्राप्ति अवश्य ही कर लिया करते है और वे फिर इस ससार म जन्म ग्रहण करके नही आया करते हैं ॥२६॥ मैंने ही यह सम्पूर्ण विस्तृत किया है जो प्रधान और पुरुषात्मक जगत् है। मुझ मे चित्त सस्थित है मेरे द्वारा ही जगत् प्रेरित होता है ॥२७॥

नाह प्रेरयिताविप्राः परम योगमास्थित ।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नमेतद्योवेद सोऽमृत. ॥२८
पश्याम्यशेषमेवेद वर्त्तमान स्वभावत ।
करोति कालो भगवान्महायोगेश्वर स्वयम् ॥२९
योऽह सम्प्रोच्यते योगी माया शास्त्रेषु सूरिभि ।
योगीश्वरोऽसौ भगवान्महायोगेश्वर स्वयम् ॥३०
महत्त्व सर्वसत्वाना वरत्वात् परमेष्ठिन ।
प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मामहाब्रह्ममयोऽमल ॥३१
यो मामेव विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम् ।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यतेनात्र सशय ॥३२
सोऽह प्रेरयिता देव परमानन्दमाश्रित ।
नृत्यामि योगी सतत यस्तद्वेद स योगवित् ॥३३

इति गुह्यतम ज्ञान सर्ववेदुपु निश्चितम् ।
प्रसन्नचेतसेदेय धार्मिकायाऽऽहिताग्नये ॥३४

हे विप्रगण ! मैं वैसे प्रेरणा करने वाला नहीं हूँ क्योंकि मैं तो सदा परम योग में समास्थित रहा करता हूँ। मैं इस सम्पूर्ण जगत् के प्रेरित किया करता हूँ—ऐसा जो भी कोई जानता है वह अमृत ही होता है ॥२८॥ मैं इस सब को जो वर्तमान है स्वभाव से ही देखा करता हूँ। भगवान् महायोगेश्वर काल स्वय ही सब कुछ करता रहता है ॥२९॥ जो मैं शास्त्रो मे सूरियो के द्वारा शास्त्रों म योगी और मायी कहा जाता हूँ। सो यह योगेश्वर भगवान् महा योगेश्वर स्वय ही है ॥३०॥ परमेष्ठी का समस्त सत्त्वा मे श्रेष्ठ होने से ही इतना अधिक महत्त्व है। भगवान् ब्रह्म महान् ब्रह्ममय और अमल हैं—ऐसा ही कहा जाता है ॥३१॥ जो मुझको इस प्रकार से जानता है कि मैं महायोगेश्वरो का भी ईश्वर हूँ वह अविकल्पक योग से युक्त हो जाया करता है—इसमे यहाँ पर कुछ भी सशय नहीं है ॥३२॥ वह मैं प्रेरयिता देव परमानन्द मे समाश्रित हूँ। मैं योगी निरन्तर ही नृत्य किया करता हूँ जो उसको जानता है वह योग का वत्ता है ॥३३॥ यह परम गुह्य तम ज्ञान है जो समस्त वेदो मे निश्चित गया है। इस परम गोपनीय ज्ञान का उन्ही व्यक्तियो को देना चाहिए जो परम प्रसन्न चित्त वाला हो—परम धार्मिक हो और आहित अग्नि वाला हो ॥३४॥

५—शिवनृत्यवर्णनपूर्वकशिवस्तुतिवर्णन

एतावदुक्त्वा भगवान्योगिना परमेश्वर ।
ननर्त्त परम भावमैश्वर सम्प्रदर्शयन् ॥१

त ते ददृशुरीशान तेजसा परम निधिम् ।
नृत्यमान महादेव विष्णुना गगनेऽमले ॥२
य विदुर्योगतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसा ।
तमीश सर्वभूतानामाकाशे ददृशु किल ॥३

यस्य मायामयं सर्वं येनेदं प्रेर्यते जगत् ।
नृत्यमानः स्वयं विप्रैर्विश्वेशःखलुदृश्यते ॥४
यत्पादपकजं स्मृत्वा पुरुषो ज्ञानजम्भयम् ।
जहाति नृत्यमानन्तं भूतेशं ददृशुः किल ॥५
केचिन्निद्राजितश्वासाः शान्ता भक्तियमन्विताः ।
ज्योतिर्म्मयं प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल ॥६
योऽज्ञानान्मोचयेत् क्षिप्र प्रसन्नो भक्तवत्सलः ।
तमेवं मोचनं रुद्रमाकाशे ददृशुः परम् ॥७

श्री व्यास देव ने कहा—योगियों के परमेश्वर भगवान् इतना कहकर परम ईश्वरीय भाव को भली-भाँति प्रदर्शित करते हुए नृत्य करने लगे थे ॥१॥ तेज के परम निधि उन ईशान को उन्होंने देखा था और निर्मल गगन मे नृत्य करते हुए महादेव को भगवान् विष्णु ने भी देखा था ॥२॥ जिसको मत मानस वाले योग के तत्त्व के ज्ञाता योगी लोग ही जानते है उस समस्त प्राणियों के स्वामी को आकाश मे देखा था ॥३॥ जिसके द्वारा माया से परिपूर्ण यह जिसका जगत् सम्पूर्ण प्रेरित किया जाता है वही विश्वेश स्वय नृत्यमान होता हुआ विप्रो के द्वारा निश्चित रूप से देखा जाता है ॥४॥ जिसके चरण कमल का स्मरण करके पुरुष ज्ञान-जन्मय का त्याग कर दिया करता है उस भूतों के ईश को नृत्य करते हुए देखा था ॥५॥ कुछ लोग निद्रा मे श्वेत के जीतने वाले—परम शान्त और भक्तिभाव से समन्वित थे वे भी ज्योतिर्मय को देखते है । वह योगी दिखलाई दे रहा था ॥६॥ जो अपने भक्तों पर अत्यन्त ही प्यार करने वाला वत्सल है और प्रसन्न होकर जो अज्ञान से मोचन कर देने वाला है उसी इस प्रकार के मोचन करने वाले परम रुद्र देव को आकाश मे देखा था ॥७॥

सहस्रशिरस देवं सहस्रचरणाकृतिम् ।
सहस्रबाहुं जटिलं चन्द्रार्द्ध कृतशेखरम् ॥८
वसानं चर्मवैयाघ्रं शूलासक्तमहाकरम् ।
दण्डपाणि त्रयीनेत्रं सूर्यसोमाग्निलोचनम् ॥९

ब्रह्माण्डं तेजसा स्वेन सर्वमावृत्य धिष्ठितम् ।
दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥१०
सृजन्तमनलज्वालं दहन्तमखिलञ्जगत् ।
नृत्यन्तन्ददृशुर्देवं विश्वकर्माणमीश्वरम् ॥११
महादेवं महायोगं देवानामपि दैवतम् ।
पशूनां पतिमीशानं आनन्दं ज्योतिरव्ययम् ॥१२
पिनाकिनं विशालाक्षं भेषजंभवरोगिणाम् ।
कालात्मानं कालकालं देवदेवं महेश्वरम् ॥१३
उमापतिं विशालाक्षं योगानन्दमयं परम् ।
ज्ञानवैराग्यनिलयं ज्ञानयोगं सनातनम् ॥१४

सहस्र शिरों से युक्त—सहस्र चरणों की आकृति से सम्पन्न—सहस्र-बाहुओं से शोभित—जटाधारी और अर्द्धचन्द्र से शेखर को भूषित करने वाले—व्याघ्र के चर्म को धारण किये हुए—हाथ में शूल को धारण करने वाले-दण्ड पाणि तीन नेत्रों से संयुत—सूर्य-सोम और अग्नि के लोचनों वाले शिव को देखा था ॥८-९॥ जो अपने तेज से सम्पूर्ण इस ब्रह्माण्ड को समावृत करके प्रतिष्ठित है—जिसके अतीव कराल दंष्ट्राएं हैं—जो अत्यन्त दुर्धर्ष और करोड़ों सूर्यों की प्रभाओं के समान प्रभा वाला उसी महेश्वर को देखा था ॥१०॥ अनल की ज्वालाओं का सृजन करने वाले—समस्त जगत् को दग्ध करते हुए उस विश्व कर्मा ईश्वर को वहाँ पर नृत्य करते हुए देखा था ॥११॥ महायोग वाले-महान् देव-देवों के भी दैवत-पशुओं के पति-आनन्द स्वरूप—ईशान-अव्यय-ज्योति स्वरूप-पिनाकधारी—विशाल नेत्रों वाले-संसार के महा रोगियों के औषध रूप, कालात्मा, काल के भी काल, देवों के देव महेश्वर को वहाँ पर नृत्य करते हुए देखा था ॥१२-१३॥ उमा के स्वामी, विशाल नेत्रों वाले, परम योग के आनन्द से परिपूर्ण, ज्ञान और वैराग्य के सदन, ज्ञान योग वाले—सनातन प्रभु को नृत्य मान होते हुए देखा था ॥१४॥

शाश्वतंदवर्यविभवं धर्माधारं दुरासदम् ।
महेन्द्रोपेन्द्रनमितं महर्षिगणवन्दितम् ॥१५

योगिनाहृदि तिष्ठन्तंयोगमायासमावृतम् ।
क्षणेन जगतो योनिं नारायणमनामयम् ॥१६
ईश्वरेणैक्यमापन्नमपश्यन् ब्रह्मवादिनः ।
दृष्ट्वा तदैश्वरं रूपं रुद्रं नारायणात्मकम् ।
कृतार्थम्मेनिरे सन्तः स्वात्मानं ब्रह्मवादिन. ॥१७
सनत्कुमारः सनको भृगुश्च सनातनश्चैव सनन्दनश्च ।
रैम्योऽङ्गिरावामदेवोऽथशुक्रोमहर्षिरत्रि.कपिलोमरीचिः ॥१८
दृष्ट्वाऽथ रुद्रं जगदीशितारं त पद्मनाभाश्रितवामभागम् ।
ध्यात्वाहृदिस्थप्रणिपत्यमूर्ध्नाकृताञ्जलिस्वेपुशिर.सुभूयः॥१९
ओंकारमुच्चार्य विलोक्य देवमन्त.शरीरं निहितं गुहायाम् ।
समस्तुवन् ब्रह्ममयैर्वचोभिरानन्दपूर्णाहितमानसा वै ॥२०

परम शाश्वत ऐश्वर्य और विभव वाले—धर्म के आधार—दुरासद—महेन्द्र और उपेन्द्र के द्वारा प्रणमित—महर्षिगण के द्वारा वन्द्यमान—योगियो के हृदय मे सस्थित—योगमाया से समावृत—क्षणमात्र मे इस जगत् की रचना करने वाले योनि—अनामय—नारायण को उस ईश्वर के साथ ऐक्यभाव को प्राप्त हुए ब्रह्मवादियो ने देखा था। उस समय मे उस ईश्वरीय रुद्र रूप को नारायणात्मक देख कर ब्रह्मवादियो ने अपने आपको परम कृतार्थ मान लिया था ॥१५-१७॥ सनत्कुमार—सनक—भृगु—सनातन—सनन्दन—रैम्य—अङ्गिरा—वामदेव—शुक्र—महर्षि अत्रि—कपिल—मरीचि—इन सबने जगतो के ईश—पद्म नाम से समाश्रित भाम भाग वाले उन रुद्र देव का दर्शन करके—हृदय मे स्थित का ध्यान करके और मस्तक से प्रणिपात करके दोनो हाथो को जोडकर मस्तको पर लगा लिया था। उन्होने ओङ्कार का उच्चारण किया था और गुहा मे निहित शरीर के अन्तर मे स्थित देव का ध्यान किया था। सब आनन्द से पूर्ण समाहित मन वालो ने ब्रह्मय वचनो के द्वारा उन देवेश्वर का स्तवन किया था ॥१८-२०॥

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं प्राणेश्वरं रुद्रमनन्तयोगम् ।
नमाम सर्वे हृदि सन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥२१

पश्यन्ति त्वा मुनयो ब्रह्मयोनिं दान्ता शान्ता विमलं रुक्मवर्णम्।
ध्यात्वाऽऽत्मस्वप्रचल स्वे शरीरे कविं परेभ्य परम परञ्च ॥२२
त्वत्त. प्रसूता जगतः प्रसूति सर्वानुभूस्त्वं परमाणुभूत.।
अणोरणीयान्महतो महीयास्त्वामेव सर्व प्रवदन्ति सन्त ॥२३
हिरण्यगर्भोजगदन्तरात्मा त्वत्तोऽस्ति जात पुरुषः पुराण ।
सञ्जायमानो भवता निसृष्टो यथाविधान सकल स सद्य॥२४
त्वत्तो वेदा सकला सम्प्रसूतास्त्वय्येवान्ते संस्थिति ते लभन्ते।
पश्यामस्त्वाञ्जगतो हेतुभूत नृत्यन्त स्वेहृदये सन्निविष्टम् ॥२५
त्वयैवेद भ्राम्यते ब्रह्मचक्र मायावी त्व जगतामेकनाथः।
नमामस्त्वा शरण सम्प्रपन्ना योगात्मान नृत्यन्तदिव्यनृत्यम् ॥२६
पश्यामस्त्वा परमाकाशमध्ये नृत्यन्त ते महिमानं स्मरामः।
सर्वात्मान बहुधा सन्निविष्ट ब्रह्मानन्दमनुभूयानुभूय ॥२७
ओङ्कारस्ते वाचको मुक्तिबीज त्वमक्षर प्रकृतौ गूढरूपम्।
तत्त्वा सत्य प्रवदन्तीह सन्त स्वयम्प्रभ भवतो यत्प्रभावम् ॥२८

मुनिगण ने कहा—एक ईश—पुराण पुरुष—अनन्त योग वाले—प्राणेश्वर रुद्र आपको हम सब नमन करते हैं जो आप हृदय मे सन्निविष्ट—प्रचेतस ब्रह्ममय और परम पवित्र हैं ॥२१॥ जो परम दमनशील शान्त मुनिगण हैं वे ही विमल सुवर्ण के तुल्य कान्ति वाले आपका दर्शन किया करते हैं। अपने शरीर मे आस्वप्रचल—कवि परो से भी परतर एव परम आपका ध्यान करके ही आपको देखते हैं ॥२२॥ इस जगत् की यह प्रसूति आप ही से प्रसूत हुई है। आप सबके अनुभू हैं और परमाणु भूत हैं। आप अणु से भी छोटे एक अणु के समान हैं तथा महान् से भी आप महान् हैं। सब सन्तजन आपको ही इस प्रकार के कहा करते हैं ॥२३॥ यह हिरण्य गर्भ जगत् का अन्तरात्मा पुराण पुरुष भी आप से ही समुत्पन्न हुआ है। जब यह सजात हो गया तो आपने ही उसे तुरन्त सबका यथाविधान सृजन करने के लिये निसृष्ट किया था ॥२४॥ आप से ही ये समस्त वेद सम्प्रसूत हुए है और अन्त समय मे ये सब आप में ही प्राप्त होकर संस्थिति पाया करते हैं। हम सभी इस जगत् के कारण स्वरूप

आपको ही जानते हैं और इस समय मे अपने हृदय मे सन्निविष्ट आपको नृत्य करते हुए देखा है ॥२५॥ आपके द्वारा ही यह ब्रह्मचक्र भ्रमित किया जाता है आप परम मायावी हैं और जगतो के आप नाथ है। हम सब आपकी शरणागति मे प्रपन्न हुए दिव्य नृत्य को करके नाचने वाले योगात्मा आपको नमस्कार करते हैं ॥२६॥ हम सब लोग परम आकाश के मध्य मे नृत्य करते हुए आपका दर्शन कर रहे हैं और आपकी महिमा का भी स्मरण करते हैं। हे ब्रह्मानन्द का अनुभव करके अनुभव किये जाने वाले देव ! आपको सबकी आत्मा बहुध सबमे सन्निविष्ट देखते हैं। ॥२७॥ आपका वाचक और मुक्तिका बीज ओङ्कार है। आप अक्षर है और प्रकृति मे ही गूढ रूप वाले है। इन ऐसे आपको यहाँ पर सन्त लोग सत्य स्वरूप कहा करते हैं। आपका ऐसा ही प्रभाव है कि आप स्वय प्रभु है। अर्थात् अपनी प्रभा से परिपूर्ण है ॥२८॥

स्तुवन्ति त्वा सततं सर्ववेदा नमन्ति त्वामृषय. क्षीणदोषाः ।
शान्तात्मान.सत्यसन्धंर्वरिष्ठंविशन्तित्वा यतयोब्रह्मनिष्ठाः ॥२९
(मुत्तोनाशोऽनादिमान्विश्वरूपी ब्रह्मा विष्णु परमेष्ठी वरिष्ठ ।
स्वात्मानन्दमनुभूय विशन्ते स्वयंज्योतिरचला नित्यमुक्ता.) ॥३०
एको रुद्रस्त्वं करोषीह विश्वं त्व पालयस्यखिलं विश्वरूपम् ।
त्वमेवान्ते निलय विन्दतीद नमामस्त्वा शरण सम्प्रपन्ना. ॥३१
एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्तस्त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम् ।
वन्द्य त्वां ये शरण सम्प्रपन्ना मायामेता ते तारन्तीह विप्राः ॥३२
त्वामेकमाहुः कविमेकरुद्रं ब्रह्म गृणन्त हरिमग्निमीशम् ।
रुद्रं नित्यमनिलं चेकितानं धातारमादित्यमनेकरूपम् ॥३३
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्यपरं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि ॥३४
त्वमेवविष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानपीश ।
त्व विश्वनाथः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥३५

आपका समस्त वेद निरन्तर स्तवन किया करते हैं। ऋषिगण क्षीण दोष वाले होते हुए आपका नमन किया करते हैं। ब्रह्म मे निष्ठा रखने

वाले यति लोग जिनकी आत्माएँ परम शान्त हैं सत्य सत्त्वा वाले और वरिष्ठ आपके अन्दर ही प्रवेश कर जाया करते हैं ॥२६॥ भू के नाश करने वाले–अनादिमान् विश्वरूप ब्रह्मा–विष्णु–वरिष्ठ परमेष्ठी स्वात्मानन्द का अनुभव करके ही अचल और नित्य युक्त ज्योति में स्वयं ही प्रवेश कर जाया करते हैं ॥३०॥ आप एक ही रुद्र हैं जो इस विश्व को किया करते हैं। आप ही इस सम्पूर्ण विश्वरूप का पालन भी किया करते हैं। इसका निलय भी अन्त में आप में ही होता है ऐसा सब जानते हैं। ऐसे आपकी शरणागति में प्रपन्न हुए हम सब आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित करते हैं ॥३१॥ एक ही वेद बहुत सी शाखाओं वाला है और वह अनन्त है किन्तु वह आपको एक ही स्वरूप वाला एक ही बोधित किया करता है। हे विप्रगण ! ऐसे वन्द्यमान आपकी शरण में प्रपन्न होने वाले लोग यहाँ पर माया से तर जाया करते हैं ॥३२॥ आपको एक—कवि—रुद्र—ब्रह्म को गुण न करने वाले—हरि–अग्नि—ईश—नित्य—अनिल—चेकितान—धाता–आदित्य और एक रूप कहते हैं ॥३३॥ आप अक्षर—परम वदितव्य हैं। आप ही इस विश्व के परम निधान हैं। आप अव्यय हैं—आप शाश्वत धर्म की रक्षा करने वाले हैं। आप सनातन हैं और पुरुषोत्तम भी आप ही हैं ॥३४॥ आप ही विष्णु हैं और चतुरानन भी आप हैं। आप ही रुद्र हैं तथा भगवान् ईश भी आप हैं। आप इस विश्व के नाथ हैं—आप ही प्रकृति—प्रतिष्ठा–सर्वेश्वर और परमेश्वर हैं ॥३५॥

त्वामेकमाहु पुरुष पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
चिन्मात्रमव्यक्तमनन्तरूप ख ब्रह्म शून्य प्रकृतिर्गुणाश्च ॥३६
यदन्तरा सर्वमिद विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तवरूपमेतत्तदन्तरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम् ॥३७
योगेश्वरं भद्रमनन्तशक्ति परायणं ब्रह्मतनुं पुराणम् ।
नमामसर्वे शरणार्थिनस्त्वा प्रसीद भूताधिपते! महेश !॥३८
त्वत्पादपद्मस्मरणादशेषसंसारबीजं निलयं प्रयाति ।
मनोनियम्य प्रणिधायकायं प्रसादयामो वयमेकमीशम् ॥३९

नमो भवायाथ भवोद्‌भवाय कालाय सर्वाय हराय तुभ्यम्।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्दिने ते नमोऽग्नये देव नमः शिवाय ॥४०
तत स भगवान्प्रीत कपर्दी वृषवाहन ।
संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवद्भव ॥४१
ते भवं भूतभव्येश पूर्ववत्समवस्थितम् ।
दृष्ट्वानारायणं देव विस्मित वाक्यमब्रुवन् ॥४२

आपको पुराण पुरुष–आदित्य के तुल्य वर्ण वाला और तम से परे कहते हैं। आपको ही एक को चिन्मात्र—अव्यक्त—अनन्त रूप वाला—आकाश—ब्रह्म—शून्य—प्रकृति और गुण कहा जाता है ॥३६॥ जिसके अन्तरा में यह सब भासित होता है—जो अव्यय और निर्मल रूप वाला है। जो एक रूप है। आपका यह रूप कुत्र अचिन्त्य सा है। यह तत्व उस उसके अन्तरा में ही प्रतिभान होता है ॥३७॥ परम योगेश्वर–भद्र–अनन्त शक्ति संयुत—परायण—ब्रह्मतनु—पुराण आप हैं। ऐसे आपको हम सब प्रणाम करते हैं। हम आपकी शरण के अर्थी हैं। हे भूतों के अधिपति ! हे महेश ! आप हमारे सबके ऊपर प्रसन्न होइये ॥३८॥ आपके पाद पद्मों के स्मरण करने से यह सम्पूर्ण संसार का बीज विलय को प्राप्त हो जाया करता है मन को नियमित करके और काया का प्रणिधान करके हम एक ही ईश आपको प्रसन्न कर रहे हैं ॥३९॥ भव–भव के उद्भव—काल—सर्व हर आपके लिये हमारा नमस्कार है। रुद्र—कपर्दी आपकी सन्निधि में प्रणाम समर्पित है। हे देव ! अग्नि और शिव को हमारा नमस्कार अर्पित किया जाता है ॥४०॥ इसके उपरान्त वह भगवान् कपर्दी वृष वाहन परम प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने उस परम स्वरूप का संहार करके फिर वह भव अपनी प्रकृति में स्थित हो गये थे ॥४१॥ उन सबने भूत भव्य के ईश भव प्रभु को पूर्व की ही भाँति समवस्थित देखकर विस्मित देव नारायण से ये यह वाक्य बोले थे ॥४२॥

भगवान् ! भूतभव्येश ! गोवृषाङ्कितशासन ! ।
दृष्ट्वा ते परमं रूपं निवृत्ताः स्म. सनातन ॥४३

भवत्प्रसादादमले परस्मिन्परमेश्वरे ।
अस्माकजायतेभक्तिस्त्वय्येवाऽव्यभिचारिणी ॥४४
इदानी श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं तव शङ्कर ! ।
भूयोऽपि चैव यन्नित्य याथात्म्य परमेष्ठिनः ॥४५
म तेषा वाक्यमाकर्ण्य योगिना योगसिद्धिदः ।
प्राह् गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम् ॥४६

हे भगवन् ! हे भूतभव्येश ! हे गोवृष से अङ्कित शासन वाले ! हे सनातन ! आपके इस परम रूप को देखकर हम सब निवृत्त हो गये हैं। आपके ही प्रसाद से अमल पद परमेश्वर मे हमारी भक्ति उत्पन्न हो गई और आप मे भी अव्यभिचारिणी भक्ति समुत्पन्न हो गई है ॥४३-४४॥ हे शङ्कर ! अब इस समय मे हम सब आपका माहात्म्य श्रवण करने की इच्छा वाले हैं। और पुनरपि परमेष्ठी का नित्य याथात्म्य श्रवण करना चाहते हैं ॥४५॥ वह योगियो को योग की सिद्धि प्रदान करने वाले प्रभु ने उनके इस वाक्य को सुनकर माधव की ओर देखकर परम गम्भीर वाणी से यह कहा था ॥४६॥

६—सर्वत्र शिव शासन वर्णन

शृगुध्वमृषय· सर्वे यथावत्परमेष्ठिन ।
वक्ष्यामीशस्य माहात्म्ययत्तद्वेदविदो विदुः ॥१
सवलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता ।
सर्वलोकैकसहर्त्ता सर्वात्माऽह सनातनम् ॥२
सर्वेपामेव वस्तूनामन्तर्यामी महेश्वरः ।
मध्येचान्तः स्थित सर्वनाहंसर्वत्रसस्थित. ॥३
भवद्भिरद्भुत दृष्टं यत्स्वरूपञ्च मामकम् ।
ममेपा ह्युपमा विप्रा माया वै दर्शिता मया ॥४
सर्वेपामेव भावानामन्तर समवस्थित. ।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्न क्रियाशक्तिरियं मम ॥५

मयेदं चेष्टते विश्वं तद्वै भावानुवर्त्तिमे ।
सोऽहङ्कालोजगत्कृस्नप्रेरयामिकलात्मकम् ॥६
एकांशेन जगत्कृस्नं करोमि मुनिपुङ्गवाः ।
संहराम्येकरूपेणस्थितावस्था ममैव तु ॥७

ईश्वर ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! आप सब लोग श्रवण करिये । मैं यथावत् परमेष्ठी ईश का माहात्म्य कहता हूँ जिसको वेदों के वेत्ता लोग ही जानते हैं ॥१॥ मैं समस्त लोकों का एक ही निर्माण करने वाला हूँ। सब लोकों की रक्षा के करने वाला भी मैं ही एक हूँ तथा सम्पूर्ण लोकों का संहार भी मैं किया करता हूँ। मैं सर्वात्मा और सनातन हूँ ॥२॥ सभी वस्तुओं का मैं महेश्वर अन्तर्यामी हूँ। मध्य में अन्त में सबमें मैं स्थित रहता हूँ और मैं सर्वत्र संस्थित नहीं रहता हूँ ॥३॥ आप लोगों ने जो यह मेरा परम अद्भुत स्वरूप देखा है हे विप्रगण ! यह भी मेरी ही उपमा पाया है जिसको मैंने आप लोगों को दिखला दिया है ॥४॥ सब भावों के अन्तर में सभव स्थित हूँ और मैं सम्पूर्ण जगत् प्रेरित किया करता हूँ—यही मेरी क्रिया की शक्ति है ॥५॥ मेरे द्वारा ही यह विश्व चेष्टा वाला होता है और मेरे भाव का अनुवर्त्ती है। वही मैं काल इस कलात्मक समस्त जगत् को प्रेरणा दिया करता हूँ ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं एक अंश से इस सम्पूर्ण जगत् को किया करता हूँ और एक दूसरे ही स्वरूप से इस सबका संहार किया करता हूँ। मेरे ही एक रूप से इसकी स्थिति की अवस्था हुआ करती है ॥७॥

आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्त्वप्रवर्त्तकः ।
क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ ॥८
ताभ्यां सञ्जायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम् ।
महदादिकमेणैव मम तेजो विजृम्भते ॥९
यो हि सर्वजगत्साक्षीकालचक्रप्रवर्त्तकः ।
हिरण्यगर्भोमार्त्तण्डःसोऽपिमद्देहसम्भवः ॥१०
तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम् ।
दत्तवानात्मवान्वेदान् कल्पादौचतुरो द्विजाः ॥११

समन्नियोगतो देवो ब्रह्मा मद्भावभावित. ।
दिव्यतन्मामकैश्वर्यं सर्वदावगत स्वयम् ॥१२
ससर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेनसर्ववित् ।
भूत्वा चतुर्मुख सर्गं सृजत्येवात्मसम्भव ॥१३
योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकाना प्रभवोऽव्यय ।
ममैव च परा मूर्त्ति करोति परिपालनम् ॥१४

मैं आदि और मध्य से निर्मुक्त हूँ तथा माया तत्व का प्रवर्त्तक हूँ। मैं ही सर्ग के आदि म इन प्रधान पुरुष दोनों को क्षोभित किया करता हूँ ॥८॥ उन दोनो के संयुक्त होने पर उनसे ही परस्पर मे संयोग प्राप्त हो जाने से यह विश्व समुत्पन्न हुआ करता है। महत् तत्व आदि के क्रम से मेरा ही तेज विजृम्भित हुआ करता है ॥९॥ जो इस समस्त जगत् का साक्षी और काल चक्र का प्रवर्त्तक है। जो यह हिरण्य गर्भ मार्त्तण्ड है वह भी मेरे ही देह से सम्भूत होने वाला है ॥१०॥ उसके लिए मैंने अपना दिव्य ऐश्वर्य सनातन ज्ञान योग और आत्मवान् चार वेदों को कल्प के आदि में दे दिया था ॥११॥ मेरे नियोग से देव ब्रह्मा मेरे भाव से भावित होकर मेरे दिव्य ऐश्वर्य का वह सर्वदा स्वय अवगत हो गया था ॥१२॥ वह सब लोकों का निर्माता मेरे नियोग से सबका ज्ञाता होकर स्व आत्म सम्भव चतुर्मुख इस सर्ग का सृजन किया ही करता है ॥१३॥ जो यह अनन्त नारायण है जो लोकों का प्रभाव है और अव्यय है। यह भी मेरी ही परामूर्त्ति है जो परिपालन किया करते हैं ॥१४॥

योऽन्तक सर्वभूतानांरुद्र कालात्मक प्रभु ।
मदाज्ञयाऽसौसततसंहरिष्यतिमेतनु ॥१५
हव्य वहतिदेवानांकव्यंकव्याशिनामपि ।
पाकञ्चकुरुतेवह्नि सोऽपि मच्छक्तिनोदित ॥१६
भुक्तमाहारजातञ्च पचते तदहर्निशम् ।
वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगत ॥१७
योऽपि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुङ्गव ।
सोऽपि सञ्जीवयेत्कृत्स्नमीश्वरस्य नियोगत ॥१८

योऽन्तस्तिष्ठतिभूतानांबहिर्देवःप्रभञ्जनः ।
मदाज्ञयाऽसौभूतानांशरीराणिबिभर्त्तिहि ॥१९
योऽपि सञ्जीवनोन्नृणां देवानाममृताकरः ।
सोमः समन्नियोगेन नोदितःकिलवर्त्तते ॥२०
यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रभासयति सर्वशः ।
सूर्य्यो वृष्टि वितनुते स्वोसे'णैव स्वयम्भुवः ॥२१

जो समस्त प्राणियों का अन्तक है वह कलात्मक प्रभु रुद्र हैं। वह भी मेरी आज्ञा से निरन्तर संहार करेगा क्योंकि यह भी मेरा ही एक शरीर होता है ॥१५॥ देवों के लिये समर्पित हव्य का वहन किया करता है और कव्य के अशन करने वालों के कव्य का जो वहन करता है तथा पाक की क्रिया भी करता है यह वह्नि भी मेरी ही शक्ति से प्रेरित हुआ करता है ॥१६॥ भुक्त आहार मात्र को जो अहर्निश पाचन किया करता है वह वैश्वानर अग्नि है जो ईश्वर के ही नियोग से पाचन की क्रिया को करता है ॥१७॥ जो सम्पूर्ण जलों की उत्पत्ति का स्थान देवों में श्रेष्ठ वरुण है वह भी ईश्वर के ही नियोग से सबको सञ्जीवित किया करता है ॥१८॥ जो प्राणियों के अन्दर स्थित रहता है और जो बाहिर प्रभुञ्जन देव है वह भी मेरी ही आज्ञा से भूतों के शरीरों का भरण किया करता है ॥१९॥ जो नरों का और देवों का सञ्जीवन एवं अमृत का का आकर है वह सोम भी मेरे ही नियोग से प्रेरित होकर ही किया करता है ॥२०॥ जो अपनी दीप्ति से सम्पूर्ण जगत् को पूर्ण रूप से सभी ओर प्रभासित कर देता है वह सूर्य अपने उसवण से ही स्वम्भुव वृष्टि का विस्तार किया करता है ॥२१॥

योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्र. सर्वामरेश्वरः ।
यज्वना फलदो देवो वर्त्ततेसमदाज्ञया ॥२२
यः प्रशास्ता ह्यसाधुना वर्त्तते नियमादिह ।
यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगतः ॥२३
योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनाना सम्प्रदायकः ।
सोऽपीश्वरनियोगेन कुवेरो वर्त्ततेसदा ॥२४

यःसर्वरक्षसां नाथस्तामसानां फलप्रदः ।
मन्नियोगादसौ देवोवर्त्तते निर्ऋतिःसदा ॥२५
वेतालगणभूतानास्वामी भोगफलप्रदः ।
ईशानः किलभक्तानांसोऽपितिष्ठेन्मदाज्ञया ॥२६
यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणी ।
रक्षको योगिनां नित्यं वर्त्ततेऽसौ मदाज्ञया ॥२७
यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्त्तते विघ्नायक. ।
विनायको धर्मरतः सोऽपि मद्वचनात्किल ॥२८

जो सम्पूर्ण जगत् का स्वामी इन्द्र देव सब देवों का स्वामी है। वह यज्वाओं को फलों का दाता भी देव मेरी ही आज्ञा से दिया करता है ॥२२॥ जो अनतकमकारी असाधुओं का प्रशासन करने वाला है और यहाँ पर नियम से वैवस्वत देव यमराज हैं वह भी देवों के देव के नियोग से ही प्रशास्ता होता है ॥२३॥ जो भी समस्त धनों का स्वामी और धनों का प्रदायक है वह भी कुबेर सदा ईश्वर के नियोग से ही ऐसा किया करता है ॥२४॥ जो समस्त राक्षसों का नाथ है और तामस जनों को फल देने वाला है वह निर्ऋति देव भी मेरे ही नियोग से सदा अपने कर्म मे वर्तमान रहा करता है ॥२५॥ वेतालों के गण और भूतों का स्वामी जो भोगों के फलों का प्रदान करने वाला है वह भक्तों का ईशान मेरी ही आज्ञा से उपस्थित रहा करता है ॥२६॥ जो वाम देव अङ्गिरा का शिष्य और रुद्र गणों का अग्रणी है वह भी मेरी आज्ञा से नित्य ही योगियों का रक्षा करने वाला होता है ॥२७॥ जो सम्पूर्ण जगत् का पूज्य विघ्नों का नायक भगवान् विनायक हैं वह भी मेरे ही वचन से धर्म में रत रहा करते हैं ॥२८॥

योऽपि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः ।
स्कन्दोऽसौ वर्त्तते नित्यं स्वयम्भूर्विधिनोदितः ॥२९
ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्यामहर्षय. ।
सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैवनियोगतः ॥३०

याचश्री सर्वभूतानां ददातिविपुलां श्रियम् ।
पत्नीनारायणस्यासौवर्ततेमदनुग्रहात् ॥३१
वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती ।
सापीश्वरनियोगेन नोदितासप्रवर्त्तते ॥३२
याशेषपुरुषान् घोरान्नरकात्तारयिष्यति ।
सावित्रीसंस्मृतात्वापिमदाज्ञानुविधायिनी ॥३३
पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी ।
यापि ध्याता विशेषेण सापिमद्वचनानुगा ॥३४
योऽनन्तमहिमानन्त शेषोऽशेषामरप्रभु ।
दधाति शिरसालोकसोऽपिदेवनियोगत ॥३५
योग्नि सम्वर्त्तकोनित्यवडवारूपसंस्थित ।
पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्यनियोगत ॥३६

जो ब्रह्म वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ देव सेना के अधिपति प्रभु हैं जिनका नाम स्कन्द है यह भी स्वयम्भू नित्य ही विधि के द्वारा उदित होकर ही स्थित रहते हैं ॥२८॥ और जो प्रजाओं के स्वामी मरीचि आदि महर्षिगण हैं जो अनेक प्रकार के लोकों का सृजन किया करते हैं वे सब भी परात्पर देव के ही नियोग को पाकर सब कुछ करते हैं ॥३२॥ और जो सब भूतों की श्री है जो विपुल श्री का प्रदान किया करती है। यह नारायण भगवान् की पत्नी भी मेरे ही अनुग्रह से वर्तमान रहती है ॥३१॥ जो देवी सरस्वती विपुल वाणी को प्रदान किया करती है वह भी ईश्वर के ही नियोग से प्रेरित होकर ही सम्प्रवृत्त हुआ करती है ॥३२॥ जो अशेष पुरुषों को घोर नरक से तार देती है जबकि इसका संस्मरण किया जाता है वह सावित्री देवी भी मेरी ही आज्ञा की अनुविधायिनी है ॥३३॥ पार्वती देवी परमा है जो ब्रह्मविद्या के प्रदान करने वाली है जब कि विशेष रूप से इसका ध्यान किया जाता है तो वह देवी मेरे ही वचनों की अनुगामिनी है ॥३४॥ जो समस्त अमरों का प्रभु—अनन्त महिमा से अनन्त नामधारी भगवान् शेष हैं जो शिर से सम्पूर्ण लोक को धारण किया करते हैं वह भी देव के ही नियोग से करता है ॥३५॥ जो अग्नि

नित्य सम्वत्त क है और वडवा के रूप से संस्थित है घोर सम्पूर्ण सागर का पान कर जाती है यह कम भी ईश्वर के ही नियोम से उसके जल का पान किया करता है ॥३६॥

ये चतुर्दश लोकेऽस्मिन्मनवः प्रथितौजसः ।
पालयन्ति प्रजाः सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगतः ॥३७
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाऽश्विनौ ।
अन्याश्च देवताः सर्वाः शास्त्रेणैवविनिर्म्मिताः ॥३८
गन्धर्वा गरुडाद्याश्च सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ।
यक्षरक्षः पिशाचाश्च स्थिताः सृष्टाः स्वयम्भुवः ॥३९
कलाकाष्ठानिमेषाश्चमुहूर्त्तादिवसाः क्षपाः ।
ऋतवः पक्षमासाश्चस्थिताः शास्त्रे प्रजापतेः ॥४०
युगमन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने ।
पराश्चैव परार्द्धाश्च कालभेदास्तथापरे ॥४१
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणिचराणिच ।
नियोगादेव वर्त्तन्ते देवस्यपरमात्मनः ॥४२

जो चौदह लोकों में मनुगण प्रथित ओज वाले हैं और जो समस्त प्रजाओं का पालन किया करते हैं वे भी इस पालन के कम को उसी ईश्वर के आदेश को प्राप्त करके किया करते हैं ॥३७॥ आदित्य—वसुगण—रुद्रगण—मरुद्गण तथा अश्विनी कुमार और अन्य समस्त देवगण जो शास्त्र से ही विनिर्मित हैं ॥३८॥ गन्धर्व—गरुड आदि—सिद्ध—साध्य—चारण—यक्ष—राक्षस—पिशाच ये सब स्वयम्भू के द्वारा निसृष्ट होकर ही स्थित रहा करते हैं ॥३९॥ कला—काष्ठा—निमेष—मुहूर्त —दिवस क्षपा—ऋतु—पक्ष—मास ये सब प्रजापति के शास्त्र में स्थित हैं ॥४०॥ युग और मन्वन्तर भी मेरे ही शासन में स्थित रहा करते हैं। परा—परार्द्ध तथा दूसरे काल के भेद भी मेरे शासन में स्थित होते हैं ॥४१॥ स्थावर और चर ये प्राणी चार प्रकार के होते हैं जो सभी परमात्मा देव के ही नियोग से ही वर्तमान रहा करते हैं ॥४२॥

पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् ।
ब्रह्माण्डानि च वर्त्तन्ते सर्वाण्येव स्वयम्भुवः ॥४३
अतीतान्यप्यसंख्यानिब्रह्माण्डानिममाज्ञया ।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैःसहितानिसमन्ततः ॥४४
ब्रह्माण्डनिभविष्यन्तिसहचात्मभिरात्मगैः ।
करिष्यन्तिसदैवाज्ञापरस्यपरमात्मनः ॥४५
भूमिरापोऽनलो वायुः ख मनोबुद्धिरेव च ।
भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगे मम वर्त्तते ॥४६
याशेषजगता योनिर्मोहिनी सर्वदेहिनाम् ।
मायाविवर्त्तते नित्यंसापीश्वरनियोगतः ॥४७
यो वै देहभृतादेवः पुरुषः पठ्यतेपरः ।
आत्मासौ वर्त्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगतः ॥४८
विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत्पदम् ।
सापि बुद्धिर्महेशस्य नियोगवशवर्त्तिनी ॥४९

समस्त पाताल लोक और सम्पूर्ण भुवन तथा ब्रह्माण्ड सभी स्वयम्भुव के शासन से ही वर्त्तमान रहा करते हैं ॥४३॥ असंख्य अतीत ब्रह्माण्ड भी मेरी ही आज्ञा से प्रवृत्त हुए थे जो सभी ओर मे अनेक पदार्थों के समूहों के सहित है ॥४४॥ अन्य भी बहुत-से ब्रह्माण्ड आत्मगों के द्वारा आत्माओ के साथ भविष्य मे भी होंगे। वे सभी परात्पर परमात्मा की आज्ञा का ही सदैव पालन किया करेंगे ॥४५॥ भूमि—जल—वायु—आकाश—अनल—मन—बुद्धि—भूतादि और प्रकृति मेरे ही नियोग मे वर्त्तमान रहा करते हैं ॥४६॥ जो सम्पूर्ण जगतो की योनि अर्थात् उद्भव स्थल है और सब देहधारियो का मोहन करने वाली है वह माया है वह भी नित्य ही ईश्वर के नियोग से ही अपना कर्म किया करती है ॥४७॥ जो यह देहधारियो का देव है और पर पुरुष के नाम से ही पढ़ा जाया करता है वह यह आत्मा नित्य ही ईश्वर के नियोग से ही वर्त्तमान रहा करता है बिना उसके नियोगात्मक प्रेरणा के यह भी कुछ नही कर सकता है ॥४८॥ मोह के कलिल का विधूनन करके जिसके द्वारा उसके पद को

देखा करता है वह बुद्धि भी महेश के नियोग के ही वश मे वर्त्तन करने वाली होती है ॥४६॥

बहुनाऽत्र विमुक्तेन मम शक्त्यात्मक जगत् ।
मयैव प्रेर्य्यते कृत्स्न मय्येव प्रलय व्रजेत् ॥५०
अहहि भगवानीश स्वय ज्योति सनातनः ।
परमात्मापर ब्रह्ममत्तो ह्यन्योनविद्यते ॥५१
इत्येतत्परम ज्ञान युष्माक कथितमया ।
ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मससारबन्धनात् ॥५२

यहाँ पर अति अधिक कथन करने का कोई भी विशेष प्रयोजन नहीं होता है । बस यही इससे समझ लेना चाहिए कि यह सम्पूर्ण जगत् मेरी ही शक्ति के स्वरूप वाला है । मेरे ही द्वारा यह प्रेरित किया जाता है और यह सम्पूर्ण मुझ मे ही प्रलय को प्राप्त होता है ॥५०॥ मैं ही भग-वान्–ईश–स्वय ज्योति—सनातन—परमात्मा और अपर ब्रह्म हूँ । मुझ से अन्य कोई भी दूसरा नही है ॥५१॥ यही इतना सब से परम प्रमुख ज्ञान है जिसे मैंने आप लोगो को वर्णन करके सुना दिया है । इस ज्ञान प्राप्त करके जतु जन्म ग्रहण करने के सासारिक बन्धन से विमुक्त हो जाया करता है ॥५२॥

७—शिवविभूतियोगवर्णन

शृणुध्वमृषय सर्वे प्रभाव परमेष्ठिन. ।
य ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न ससारे पतेत्पुन ॥१
परात्परतर ब्रह्म शाश्वत ध्रुवमव्ययम् ।
नित्यानन्द निर्विकल्प तद्धाम परम मम ॥२
अह ब्रह्मविदा ब्रह्मा स्वयम्भूर्विश्वतोमुख ।
मायाविनामहदेव. पुराणो हरिरव्यय. ॥३
योगिनामस्म्यह शम्भु स्त्रीणा देवी गिरीन्द्रजा ।
आदित्यानामह विष्णुर्वसूनामिस्म पावक ॥४

रुद्राणां शङ्करश्चाऽहं गरुडः पततामहम् ।
ऐरावतो गजेन्द्राणां रामः शस्त्रभृतामहम् ॥५
ऋषीणाञ्च वशिष्ठोऽहं देवानाञ्च शतक्रतुः ।
शिल्पिना विश्वकर्म्माऽहं प्रह्लादः सुरविद्विषाम् ॥६
मुनीनामप्यहं व्यासो गणानाञ्च विनायकः ।
वीराणा वीरभद्रोऽहं सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥७

ईश्वर ने कहा—हे ऋषिगण ! आप सब लोग परमेष्ठी के प्रभाव का श्रवण करिये जिसका ज्ञान प्राप्त करके पुरुष मुक्त हो जाया करता है और फिर वह इस ससार मे नही पतन किया करता है ॥१॥ पर से भी परतर ब्रह्म—शाश्वत—ध्रु व—अव्यय—नित्य ही आनन्द वाला—निर्विकल्प है और उसका धाम ही मेरा परम धाम होता है ॥२॥ मैं ब्रह्म वेत्ताओ मे ब्रह्मा हूँ—स्वयम्भू—विश्वतोमुख—बिना माया वाला मैं देव हूँ—पुराण—हरि और अ यय हूँ ॥३॥ यागियो मे मैं ही शम्भु हूँ और स्त्रियो मे मैं ही गिरीन्द्रजा देवी हूँ । आदित्यो मे मैं विष्णु हूँ और वसुगण मे मैं पावक हूँ ॥४॥ रुद्रो मे शङ्कर मेरा ही स्वरूप है । पक्षियो मे गरुड मैं ही हूँ । गजेन्द्रो मे ऐरावत मेरा ही रूप समझना चाहए तथा जो शस्त्रधारी है उनमे राम मे ही हूँ ॥५॥ ऋषियो मे मैं वसिष्ठ हू । देवो मे शत ऋतु मेरा ही स्वरूप है । शिल्पियो मे मैं विश्व कर्मा हूँ । जो सुरो के शत्रु असुर हैं उनमे प्रह्लाद मेरा ही स्वरूप होता है ॥६॥ मुनिगण मे व्यास मैं ही हूँ । तथा गणो मे विनायक मेरा रूप है । वीरो म म वीरभद्र हूँ और सिद्धो मे मैं कपिल मुनि हूँ ॥७॥

पर्व्वतानामहं मेरुर्नक्षत्राणाञ्च चन्द्रमाः ।
वज्रम्प्रहरणानाञ्च व्रताना सत्यमस्म्यहम् ॥८
अनन्तो भोगिना देव. सेनानीनाञ्च पावकिः ।
आश्रमाणा गृहस्थोऽहमीश्वराणा महेश्वरः ॥९
महाकल्पश्च कल्पाना युगाना कृतमस्म्यहम् ।
कुबेर.सर्वयक्षाणातृणानाञ्चैवबीरुधः ॥१०

प्रजापतीनान्दक्षोऽहं निर्ऋतिः सर्वरक्षसाम् ।
वायुर्बलवतामस्मि द्वीपाना पुष्करोऽस्म्यहम् ॥११
मृगेन्द्राणाञ्चसिंहोऽह यन्त्राणाधनुरेव च ।
वेदाना सामवेदोऽह यजुषाशतरुद्रियम् ॥१२
सावित्रीसर्वजप्यानागुह्यानाप्रणवोऽस्म्यहम् ।
सूक्तानापौरषसूक्तं ज्येष्ठसामचसामसु ॥१३
सववेदाथविदुपा मनु स्वायम्भुवोऽस्म्यहम् ।
ब्रह्मावर्तस्तु देशाना क्षेत्राणामविमुक्तकम् ॥१४

पर्वतो मे मैं मेरु हूँ—नक्षत्रो मे चन्द्रमा हूँ—प्रहरणो मे वज्र-व्रतो मे मैं सत्य हूँ ॥८॥ योगियो मे अनन्त सेनानियो मे देव पावाकि-आश्रमों में गृहस्थ-ईश्वरो मे महेश्वर—कल्पो मे महाकल्प-युगो मे कृतयुग मैं ही हूँ। समस्त यक्षों मे कुबेर—गणो मे वीरुव—प्रजापतियो में दक्ष तथा समस्त राक्षसो में निर्ऋति मैं ही हूँ। बलवानो मे वायु और समस्त द्वीपो मे मैं पुष्कर हूँ ॥९-११॥ मृगेन्द्रो मे मैं सिंह हूँ—यन्त्रो मे धनु-वेदो में सामवेद और यजुओ शत रुद्रि मेरा ही स्वरूप है ॥१२॥ समस्त जापो मे मैं सावित्री हूँ। गुह्यो मे प्रणव मेरा ही स्वरूप होता है। सूक्तो मे पौरुष सूक्त मेरा स्वरूप है तथा सामो मे ज्येष्ठ साम मैं ही हू ॥१२-१३॥ समस्त वेदार्थ के विद्वानो मे स्वायम्भुव मनु मेरा स्वरूप है। देशो मे ब्रह्मावर्त देश मैं ही हूँ। क्षेत्रो मे अविमुक्त क्षेत्र मैं हूँ ॥१४॥

विद्यानामात्मविद्याऽहज्ञानानामैश्वर परम् ।
भूतानामस्म्यहव्योमनत्त्वानामृत्युरेवच ॥१५
पाशानामस्म्यह मायाकाल कलयतामहम् ।
गतीना मुक्तिरेवाह परेपा परमेश्वरः ॥१६
यच्चान्यदपि लोकेऽस्मिन् तत्त्वं तेजोबलाधिकम् ।
सत्सर्वं प्रतिजानीध्व मम तेजोविजृम्भितम् ॥१७
आत्मान. पशवः प्रोक्ताः सर्वे ससारवर्त्तिनः ।
तेषांपतिरह दव. स्मृत पशुपतिर्बुधैः ॥१८

मायापाशेनबध्नामिपशूनेतान् स्वलीलया।
मामेव मोचकं प्राहुः पशूनावेदवादिन. ॥१९
मायापाशेन बद्धाना मोचकोऽन्यो न विद्यते।
मामृते परमात्मान भूताधिपतिमव्ययम् ।२०
चतुर्विंशतितत्त्वानि माया कर्मगुणाइति।
एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्चपशुबन्धनाः ॥२१

विद्याओ मे आत्म विद्या—ज्ञानो मे ईश्वरीय परम ज्ञान भूतो मे व्योम और तत्त्वो मे मृत्यु मेरा ही रूप है ॥१५॥ पाशो मे मैं माया हूँ और काल का स्वरूप कलन करने वालो मे मेरा ही होना है। गतियो मे मैं ही मुक्त हूँ और परो मे परमेश्वर मेरा ही स्वरूप है ॥१६॥ और जो भी अन्य इस लोक मे सत्त्व तथा तेज बल से अधिक है उस सभी मेरा ही तेज विजृम्भित समझना चाहिए ॥१७॥ ससार वर्त्ती सभी आत्माएँ है वे सब पशु कहे गये हैं। उन सब का पति मैं हूँ और बुधो के द्वारा पशुपति कहा गया हूँ ॥१८॥ अपनी लीला से माया रूपी पाश के द्वारा मैं इन समस्त पशुओ का बन्धन किया करता हूँ। वेदवादी लोग मुझको ही इन पशुओ का मोचन करन वाला कहा करते हैं ॥१९॥ जो माया के पाश से बद्ध जीव होते हैं उनके मोचन करने वाला मुझसे अन्य कोई भी नही है। मेरे सिवाय अन्य कोई नही है मैं जोकि मैं परमात्मा—भूताधि पति और स्वाव्यय हूँ वही मैं मोचन करने वाला हूँ ॥२०॥ चौबीस तत्त्व जो हैं वे माया के कर्म गुण है। ये ही पशुपति के पाश हैं जो पशुओ के बन्धन करने वाले क्लेशदायक होते हैं ॥२१॥

मनो बुद्धिरहङ्कारः खाऽनिलाग्निजलानि भूः।
एता. प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे ॥२२
श्रोत्रन्त्वक् चक्षुषीजिह्वाघ्राणञ्चैवतुपञ्चमम्।
पायूपस्थं करौपादौवाक्‌चवदशमीमता ॥२३
शब्दः स्पर्शश्चरूपञ्च रसोगन्धस्तथैव च।
त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानिप्राकृतानि च ॥२४

चतुर्विंशकमव्यक्तं प्रधानगुणलक्षणम् ।
अनादिमध्यनिधनं कारणं जगतः परम् ॥२५
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयमुदाहृतम् ।
साम्यावस्थितिमेतेषामव्यक्तां प्रकृतिं विदुः ॥२६
सत्त्वं ज्ञानं तमो ज्ञानं राजसमुदाहृतम् ।
गुणानां बुद्धिवैषम्याद्वैषम्यं कवयो विदुः ॥२७
धर्माधर्माविति प्रोक्तौ पाशौ द्वौ कर्मसंज्ञितौ ।
मय्यर्पितानि कर्माणि निबन्धाय विमुक्तये ॥२८

मन—बुद्धि—अहङ्कार—आकाश—अनिल—अग्नि—जल—भूमि—ये आठ प्रकृतियाँ हैं और अन्य सब विकृति अर्थात् विकार हैं ॥२२॥ श्रोत्र—त्वचा—चक्षु—जिह्वा—घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । पायु—उपस्थ, दोनों हाथ, दो चरण, वाक् ये पाँच कर्मेन्द्रिया हैं—इस तरह कुल दश हैं ॥२३॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये कुल तेईस तत्त्व हैं जो प्राकृत हैं । चौबीसवाँ अव्यक्त है जो प्रधान है और गुणों के लक्षण वाला है । आदि-मध्य और अन्त से रहित इस जगत् का परम कारण है ॥२४-२५॥ रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण ये तीन गुण कहे गये हैं । इन तीनों की जो साम्यावस्था है उसी को प्रकृति कहा जाता है ॥२६॥ सत्त्व ज्ञान और तमोज्ञान इसी को राजस कहा गया है । गुणों के बुद्धि की विषमता को ही कविगण वैषम्य कहते हैं ॥२७॥ धर्म और अधर्म ये दो कर्म की संज्ञा वाले पाश हैं । मेरे लिये ही किये हुए समस्त कर्म जब समर्पित कर दिये जाते हैं तो वे फिर जीवात्मा के बन्धन करने वाले नहीं होकर विमुक्ति के लिये ही होते हैं ॥२८॥

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषञ्चाभिनिवेशनम् ।
क्लेशाख्यांस्तान् स्वयं प्राह पाशानात्मनिबन्धनात् ॥२९
एतेषामेव पाशानां माया कारणमुच्यते ।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति ॥३०
स एव मूलप्रकृतिः प्रधानं पुरुषोऽपि च ।
विकारा महदादीनि देवदेवः सनातनः ॥३१

सएव बन्धः स च बन्धकर्त्ता स एव पाशः पशुभृत्स एव ।
स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता तमाहुराद्यं पुरुषं पुराणम् ॥३२

अविद्या–अस्मिता (अहङ्कार)–राग–द्वेष और अभिनिवेश ये क्लेश नाम वाले आत्मा के निबन्धन हैं जिनको स्वयं ही कहा जाता है ॥२६॥ इन्हीं पाशों का कारण जो होता है उसी को माया कहा जाता है। वह मूल प्रकृति अव्यक्त है और वह शक्ति मुझमें ही स्थित रहा करती है ॥३०॥ वह ही मूल प्रकृति–प्रधान और पुरुष भी महादादिक सब विकार हैं केवल देवदेव ही सनातन होता है ॥३१॥ वह ही बन्ध है और वह ही उस बन्धन का कर्त्ता है—वह ही पाश है और वही पशुभृत है। वही सबको जानता है और उसको जानने वाला कोई भी नहीं है। उसी को सबका आद्य पुराण पुरुष कहते हैं ॥३२॥

८—ससारतरणोपायकथन

अन्यद्गुह्यतमं ज्ञानं वक्ष्ये ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
येनासौ तरते जन्तुर्घोरं संसारसागरम् ॥१
अयं ब्रह्मा तमः शान्तः शाश्वतोनिर्मलोऽव्ययः ।
एकाकी भगवानुक्तः केवलः परमेश्वर. ॥२
मम योनिर्महद्ब्रह्म तत्र गर्भंदधाम्यहम् ।
मूलमायाभिधानन्तं ततो जातमिदं जगत् ॥३
प्रधानं पुरुषोह्यात्मामहद्भूतादिरेव च ।
तन्मात्राणिमनोभूतानीन्द्रियाणिचजज्ञिरे ॥४
ततोऽण्डमभवद्धैममर्ककोटिसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे महाब्रह्मा मच्छक्त्याचोपबृंहितः ॥५
ये चान्ये बहवोजीवास्तन्मयाः सर्वएवते ।
न मापश्यन्तिपितरंमाययागममोहिताः ॥६
यासु योनिषु ताः सर्वा सम्भवन्तीहमूर्त्तयः ।
तामातरंपरायोनिंमामेवपितरंविदुः ॥७

ईश्वर ने कहा—हे ब्राह्मण श्रेष्ठगण ! अब हम एक अन्य परम गोपनीय ज्ञान की चर्चा करेंगे जिससे यह जन्तु इस परम घोर संसार के सागर से पार हो जाया करता है ।।१।। यह ब्रह्मा नम—शान्त—निर्मल—शाश्वत—अव्यय और एकाकी केवल परमेश्वर भगवान् कहे गये हैं ।।२।। मेरी योनि महान् ब्रह्म है । उसी में मैं गर्भ का धारण किया करता हूँ जो मूल माया भिधा अनन्त है उसी से यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ है ।।३।। प्रधान—पुरुष आत्मा—महत्—भूतादि—पञ्चतन्मात्राएँ—मन भूत और इन्द्रियाँ सब उत्पन्न हुए हैं ।।४।। इसके पश्चात् एक अण्ड समुत्पन्न हुआ था । जिसकी प्रभा सुवर्ण के समान तथा करोड़ों सूर्यों के तुल्य थी । उसी अण्ड में ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया था जो मेरी शक्ति से उपबृंहित था ।।५।। जो अन्य बहुत-से जीव हैं वे सब भी तन्मय ही हैं । मेरी माया से मोहित हुए वे मुझ जन्मदाता परम पिता का नहीं देखते हैं ।।६।। जिन योनियों में वे सब यहाँ मूर्तिमान् होकर समुत्पन्न होते हैं उस परा योनि माता को और पिता मुझको ही जानते हैं ।।७।।

यो मामेव विजानाति बीजन पितरं प्रभुम् ।
स धीर. सर्वलोकेषु नमोहमधिगच्छति ।।८
ईशानः सर्वविद्याना भूताना परमेश्वरः ।
ओङ्कारमूर्त्तिर्भगवानह ब्रह्मा प्रजापतिः ।।९
सम सर्वेपु भूतेपु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्त यः पश्यति स पश्यति ।।१०
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मान ततो याति परागतिम् ।।११
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गञ्च महेश्वरम् ।
प्रधानविनियोगज्ञ परब्रह्माधिगच्छति ।।१२
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वच्छन्दता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ।।१३
तन्मात्राणि मन आत्मा च तानि सूक्ष्माण्याहुः सप्त तत्त्वात्मकानि ।
यासाहेतु प्रकृतिःसा प्रधानं बन्ध प्रोक्तो विनयेनापि तेन ।।१४

जो कोई इस प्रकार से बीज वाला मुझको पिता प्रभु जानता है वही सब लोकों में वीर है और वह फिर मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥८॥ समस्त विद्याओं का ईशान और सब भूतों का परमेश्वर ओंकार की मूर्ति वाला मैं ही भगवान् प्रजापति ब्रह्मा हूँ ॥९॥ समस्त भूतों में समान रूप से स्थित रहने वाले परमेश्वर को विनाश होने पर अपने को भी विनाश वाला जो देखता है वही वास्तव में देखने वाला है ॥१०॥ जो सर्वत्र समान भाव से स्थित ईश्वर को देखा करता है वह कभी भी आत्मा से आत्मा का हनन नहीं किया करता है और फिर वह परागति को प्राप्त हो जाता है ॥११॥ सात सूक्ष्मों का ज्ञान प्राप्त करके और षडङ्ग महेश्वर को जानकर प्रधान के विनियोग का ज्ञाता परब्रह्म को प्राप्त किया करता है ॥१२॥ सभी कुछ का ज्ञान रखना—सदा तृप्ति रहना—अनादि बोध—स्वच्छन्दता—नित्यता—शक्ति का कभी भी लोप न होना और अनन्त शक्ति का रहना इन्हीं छैं विभु के अङ्गों का ज्ञान होना चाहिए जो महेश्वर के ये छैं अङ्ग हैं ॥१३॥ पाँच तन्मात्रा—मन और आत्मा ये ही परम सूक्ष्म सात तत्त्व कहे जाते हैं। इन सबका जो हेतु है वही प्रकृति है और उसने इसी को विलय से प्रधान बन्ध कहा है ॥१४॥

या सा शक्तिः प्रकृतौ लीनरूपा वेदेषूक्ता कारणं ब्रह्मयोनिः ।
तस्या एक. परमेष्ठी पुरस्तान्माहेश्वर पुरुषः सत्यरूपः ॥१५
ब्रह्मयोगी परमात्मा महीयान् व्योमव्यापी वेदवेद्यः पुराणः ।
एको रुद्रो मृत्युमव्यक्तमेकं बीजं विश्व देव एकः स एव ॥१६
तमेवैकं प्राहुरन्येऽप्यनेकं त्वामेवाऽऽत्मा केचिदन्य तमाहुः ।
अणोरणीयान्महतो महीयान्महादेवः प्रोच्यते विश्वरूप. ॥१७
एवं हि यो वेद गुहाशयं परं प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम् ।
हिरण्मयबुद्धिमतापराङ्गतिसबुद्धिमान्बुद्धिमतीत्यतिष्ठति ॥१८

जो शक्ति वह है वह प्रकृति मे ही लीन रूप वाली है वेदो में उसी को कारण ब्रह्म योनि कहा गया। उसका एक परमेष्ठी पुरस्तात् महेश्वर सत्य रूप वाला पुरुष है ॥१५॥ ब्रह्म योगी—महीयान् परमात्मा व्योम में

व्यापक, वेदों के द्वारा ही जानने के योग्य पुराण है, वह एक ही रुद्र है। अव्यक्त मृत्यु एक बीज है जो कि विश्व है किन्तु देव यह एक ही है ॥१६॥ उसी एक को अन्य लोग अनेक कहा करते हैं—तुमको ही आत्मा और अन्य लोग उसे अन्य कहते हैं। वही अणु से भी बहुत ही छोटा अणु है और महान् से भी परम महान् वह महादेव इस विश्व के रूप वाले कहे जाते हैं ॥१७॥ इस प्रकार से गुहा में आशय वाले उस परम प्रभु—पुराण पुरुष—विश्वरूप—हिरण्मय तथा बुद्धिमानों की परागति के स्वरूप वाले को जो जानता है वही वस्तुतः बुद्धिमान है और वह बुद्धि का अतिक्रमण करके ही स्थित रहा करता है ॥१८॥

६—निष्कलस्वरूपवर्णन

निष्कलोनिर्मलोनित्योनिष्क्रियः परमेश्वरः।
ततोवदमहादेवविश्वरूपः कथं भवान् ॥१
नाहं विश्वो न विश्वञ्च मामृते विद्यते द्विजाः !।
माया निमित्तमात्रास्ति सा चात्मनि मयाश्रिता ॥२
अनादिनिधना शक्तिर्मायाव्यक्तिसमाश्रया।
तन्निमित्तःप्रपञ्चोऽयमव्यक्ताज्जायतेखलु ॥३
अव्यक्तं कारणं प्राहुरानन्दंज्योतिरक्षरम्।
अहमेव परं ब्रह्म मत्तोह्यन्यन्न विद्यते ॥४
तस्मान्मे विश्वरूपत्वनिश्चितंब्रह्मवादिभिः।
एकत्वे च पृथक्त्वेच प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ॥५
अहंतत्परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः।
अकारणं द्विजाः प्रोक्तो न दोषो ह्यात्मनस्तथा ॥६
अनन्ताः शक्तयोऽव्यक्ता मायया संस्थिता ध्रुवाः।
तस्मिन्दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम् ॥७

ऋषिगण ने कहा—निष्कल—निर्मल—नित्य—निष्क्रिय और परमेश्वर हे महादेव! यही बतलाइए कि आप विश्वरूप कैसे हो गये हैं?

॥१॥ ईश्वर ने कहा—हे द्विज वृन्द ! मैं स्वयं ही विश्व नहीं हूँ और यह विश्व मेरे बिना भी कुछ विद्यमान नहीं रहा करता है। इसका निमित्त मात्र माया ही है और वह माया आत्मा में मेरे द्वारा ही आश्रित रहती है ॥२॥ यह माया आदि—अन्त से रहित है ऐसी ही शक्ति यह व्यक्ति के समाश्रय वाली है। उसी के निमित्त वाला यह प्रपञ्च है जो उस अव्यक्त से समुत्पन्न हुआ करता है ॥३॥ इस सबका कारण एक अव्यक्त ही होता है—ऐसा ही कहा जाता है और आनन्द स्वरूप—प्रकाशमय मैं ही परब्रह्म हूँ—मुझ से अन्य कोई भी नहीं है ॥४॥ इसी कारण से मेरा विश्वरूपत्व होना ब्रह्मवादियों ने निश्चित किया है। मेरे एकत्व होने में और मेरे पृथक्त्व के होने में यही एक निदर्शन है ॥५॥ मैं ही वह परम ब्रह्म और सनातन परमात्मा हूँ। हे द्विज गण ! बिना कारण वाला जो कहा गया है उसमें आत्मा का कोई भी दोष नहीं है ॥६॥ अनन्त शक्तियाँ हैं जो अव्यक्त है और माया के द्वारा संस्थित हैं तथा ध्रुव है। उस दिव लोक में स्थित नित्य अव्यक्त ही केवल विभागित होता है ॥७॥

अभिन्नं वक्ष्यते भिन्नं ब्रह्माव्यक्तं सनातनम्।
एकया मायया युक्तमनादिनिधनं ध्रुवम् ॥८

पुंसोऽन्याभूद्यया भूतिरन्ययानतिरोहितम् ।
अनादिमध्यन्तिष्ठन्तचेष्टतेविद्ययाकिल ॥९

तदेतत्परमव्यक्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ।
तदक्षरं परं ज्योतिस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१०

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत् ।
तदेवेदं जगत्कृत्स्नं तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥११

यतो वाचो निवर्तन्तेअप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्विभेतिनकुतश्चन ॥१२

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं पुरुषं पुरस्तात् ।
तं विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ॥१३

अस्मात्परनाऽपरमस्तिकिञ्चिद्यज्ज्योतिषाज्योतिरेकदिविस्थम्
तदेवात्मानमन्यमानोऽथविद्वानात्मानन्दीभवतिब्रह्मभूत ॥१४

जो अभिन्न है उसको भिन्न कहा जाता है। ब्रह्म अव्यक्त और सनातन है। वह एक माया से युक्त है और आदि तथा अन्त से रहित ध्रुव है ॥८॥ पुरुष की जिस तरह माया भूति है और माया से तिरोहित नहीं है वह अनादि मध्य मे स्थित विद्या के द्वारा चेष्टा किया करता है ॥९॥ सो यह परम व्यक्त प्रभामण्डल से मण्डित है। वह अक्षर पर ज्योति है और वही विष्णु का परम पद है ॥१०॥ वहाँ पर उसमे यह सम्पूर्ण जगत् ओत प्रोत है अर्थात् बाहिर भीतर सवत्र ही विद्यमान है। वह ही यह समस्त जगत् है। इसका ज्ञान भली भाँति करके मनुष्य विमुक्त हो जाया करता है ॥११॥ जहाँ पर वाणी निवृत्त हो जाती है और मन की भी वहाँ पहुँच नही होती है ऐसा ही ब्रह्म का आनन्दमय स्वरूप होना है। विद्वान् पुरुष कही भी भीत नही करता है ॥१२॥ मैं ही वेद हूँ— महान् पुरुष हूँ तथा सूर्य के समान वर्ण वाला पुरस्तात् पुरुष हूँ उस मुझ को विद्वान् भली भाँति जानकर परियुक्त हो जाता है और नित्य ही आनन्द वाला ब्रह्मभूत अर्थात् ब्रह्म के ही स्वरूप वाला हो जाया करता है ॥१३॥ इससे परे दूसरा कोई भी नही है जो ज्योतियो का भी ज्योति एक ही दिवलोक मे स्थित है। उसी को आत्मा का मानने वाला विद्वान् आनन्द से युक्त और ब्रह्म भूत हो जाया करता है ॥१४॥

तदप्यहं कलिल गूढदेह ब्रह्मानन्दममृत विश्वधामा ।
वदन्त्येव ब्राह्मणा ब्रह्मनिष्ठा यत्र गत्वा न निवर्तेत भूय ॥१५

हिरण्मये परमाकाशतत्वे यद्व दिवि प्रतिभातीव तेज ।
तद्विज्ञाने परिपश्यन्ति धीरा विभ्राजमान विमल व्योमधाम ॥१६

तत परम्परिपश्यन्ति धीरा आत्मन्यात्मानमनुभूय साक्षात् ।
स्वय प्रभु परमेष्ठी महीयान् ब्रह्मानन्दी भगवानीश एष ॥१७

एको देव सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
तमेवैक येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषा शान्ति शाश्वती नेतरेषाम् ॥१८

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मादन्यन्न विद्यते ॥१९
इत्येतदीश्वरज्ञानमुक्तं वो मुनिपुङ्गवाः ।
गोपनीयं विशेषेण योगिनामपि दुर्लभम् ॥२०

वही मैं कलिल—गूढ देह वाला—अमृत—विश्व का धाम ब्रह्मानन्द हूँ—ब्रह्म मे निष्ठा रखने वाले ब्राह्मण इस प्रकार से कहा करते हैं कि यह ऐसा स्थान है जहाँ पर एक बार पहुँच कर यह जीवात्मा पुनः इस ससार मे लौट कर नहीं आता है अर्थात् जन्म नही लेता है और मुक्त हो जाया करता है ॥१५॥ हिरण्मय परमाकाश तत्त्व मे जो दिवलोक मे तेजमान होता है उसके विज्ञान मे धीर पुरुष विभ्राजमान-विमल व्योम के धाम को देखा करते हैं ॥१६॥ इसके आगे धीर पुरुष साक्षात् आत्मा मे आत्मा का अनुभव करके पर को देखा करते है । प्रभु ही स्वयं परमेष्ठी–महीयान् ब्रह्मानन्दी—भगवान् यह ईश हैं ॥१७॥ वह एक ही देव समस्त भूतों मे व्यापी है और सब प्राणियो मे गूढ है । तथा समस्त भूतोंका अन्तरात्मा है । उसी एक को जो भली-भाँति देख लेते हैं अर्थात् उसका ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं वे धीर हैं और उनको निरन्तर रहने वाली शान्ति हो जाती है अन्य जनो को नही हुआ करती है ॥१८॥ सभी ओर अयन, शिर ग्रीवा वाला—समस्त भूतों की गुहा मे निवास करने वाला सर्वत्र व्यापक रहने वाला यह भगवान् है । इससे अन्य कोई नही है ॥१९॥ हे मुनियो मे श्रेष्ठो ! यह हमने आपको ईश्वर का ज्ञान बतला दिया है । इसको विशेष रूप से गोपनीय रखना चाहिए क्योंकि यह ऐसा ज्ञान है जो योगिजनो को भी महान् दुर्लभ होता है ॥२०॥

१०—शिव का परब्रह्मस्वरूप वर्णन

अलिङ्गमेकमव्यक्तलिङ्गं ब्रह्मेति निश्चितम् ।
स्वयञ्ज्योतिः परन्तत्त्वपूर्वे व्योम्नि व्यवस्थितम् ॥१
अव्यक्तं कारणं यत्तदक्षरं परमं पदम् ।
निर्गुणं सिद्धिविज्ञानं तद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥२

तन्नष्टस्वान्तसङ्कल्पा नित्यतद्भावभाविताः ।
पश्यन्तितत्परब्रह्मयत्तल्लिङ्गमिति श्रुति ॥३
अन्यथान हि मा द्रष्टुं शक्यंवैमुनिपुङ्गवाः ।
न हि तद्विद्यतेज्ञान येन तज्ज्ञायतेपरम् ॥४
एतत्तत्परम स्थानं केवल कवयो विदु ।
अज्ञानतिमिर ज्ञान यस्मान्मायामय जगत् ॥५
यज्ज्ञानं निर्म्मल शुद्ध निर्विकल्पन्निरञ्जनम् ।
ममात्मासौ तदेवनमितिप्राहुर्विपश्चित ॥६
येऽप्यनेकप्रपश्यन्तित्पर परम पदम् ।
आश्रिता परमान्निष्ठाबुद्ध्वैक्य तत्त्वमव्ययम् ॥७

ईश्वर ने कहा —अलिङ्ग—एक—अव्यक्त लिङ्ग—ब्रह्म इस नाम से निश्चित—स्वय ज्योति—परम तत्व और पूर्व में व्योम में व्यवस्थित—जो अव्यक्त कारण है वह अक्षर और पर यह है, वह गुणों से रहित है इस सिद्धि के विज्ञान को सूरिगण ही देखा करते हैं अर्थात् जानते हैं ॥१-२॥ जिनके अन्त करण मे सकल्प नष्ट हो गय हैं और जो नित्य ही उसी की भावना से भावित रहा करते हैं वे ही उस परब्रह्म को देखते हैं क्योंकि यही उसका लिङ्ग है—ऐसा श्रुति ने प्रतिपादन किया है ॥३॥ हे मुनि पुङ्गवो ! अन्यथा मुझको नही देखा जा सकता है अर्थात् अन्य कोई भी साधन नही है जिसके द्वारा मुझे कोई जान सके। ऐसा और कोई भी ज्ञान नहीं है जिसके द्वारा यह पर जाना जा सकता है ॥४॥ कविगण इसी को केवल यह परम स्थान जाना करते हैं। अज्ञान रूपी तिमिर से पूर्ण ही ज्ञान है जिनमे यह माया मय जगत् होता है ॥५॥ जो ज्ञान निर्मल है—शुद्ध है—निर्विकल्प और निरञ्जन है वही मेरी आत्मा है उसी को विद्वान् लोग इसे बताया करते हैं ॥६॥ जो भी अनेक को देखते हैं वह भी पर परम पद है। परम निष्ठा का आश्रय ग्रहण किए हुए हैं क्योंकि उन्होंने अव्यय ऐक्य तत्व का ज्ञान जानलिया है ॥७॥

ये पुन परमन्तत्त्वमेक वानेकमीश्वरम् ।
भक्तामासम्प्रपश्यन्तिविज्ञेयास्ते तदात्मकाः ॥८

साक्षाद्देव प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम् ।
नित्यानन्दं निर्विकल्पं सत्यरूपमिति स्थितिः ॥९
भजन्ते परमानन्दसर्वगंजगदात्मकम् ।
स्वात्मन्यवस्थिता शान्ता परेऽव्यक्तापरस्यतु ॥१०
एषा विमुक्तिः परमा मम सायुज्यमुत्तमम् ।
निर्वाणं ब्रह्मणा चैवं कैवल्यं कवयो विदुः ॥११
तस्मादनादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमशिवम् ।
स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञायप्रमुच्यते ॥१२
न तत्र सूर्यः प्रतिभातीह चन्द्रो नक्षत्राणां गणो नोत विद्युत् ।
तद्भासितह्यखिलम्भातिविश्वमतीवभासममलन्तद्विभाति॥१३
विश्वोदितंनिष्कलं निर्विकल्पं शुद्धं बृहत्परमं यद्विभाति ।
अत्रान्तरेब्रह्मविदोऽथनित्यंपश्यन्ति तत्त्वमचलं यत्स ईशः ॥१४

जो उस परम तत्त्व को एक अथवा अनेक ईश्वर को मुझको भक्त लोग देखा करते हैं वे तत्त्वरूप वाले ही जानने चाहिए ॥८॥ अपनी आत्मा परमेश्वर को ही साक्षात् देव को नित्यानन्द वाला—निर्विकल्प और सत्य रूप वाला देखते हैं यही स्थिति है ॥९॥ अपनी ही आत्मा में अवस्थित परम शान्त भाव वाले परमानन्द स्वरूप—सर्वत्र गमनशील और इस जगत् के आत्मरूप का सेवन किया करते हैं और दूसरे लोग अव्यक्त अपर का भजन करते हैं ॥१०॥ यह परम विमुक्ति होती है और मेरा उत्तम सायुज्य है। ब्रह्म के साथ एकता ही निर्वाण है जिसको कविगण कैवल्य नाम से कहा करते है ॥११॥ इसलिये आदि मध्य और अन्त से रहित परम शिव एक ही वस्तु हैं। वही ईश्वर महादेव हैं जिनका विशेष ज्ञान प्राप्त करके जीव प्रमुक्त हो जाया करता है ॥१२॥ वहाँ पर सूर्य प्रकाश नहीं करता है न चन्द्रमा ही है। वहाँ नक्षत्रों का समुदाय भी नहीं है और न विद्युत् का ही प्रकाश है। वह तो इस सम्पूर्ण विश्व को अपनी ही भा (दीप्ति) से भासित करके विभासित होता है और उसकी भासमानता अतीव अमल है इसी तरह वह दीप्ति युक्त भासित हुआ करता है ॥१३॥ विश्व में उदित या जिससे यह विश्व उदित हुआ है—निष्कल

-निर्विकल्प—शुद्ध-वृहत् और परम विभासित होता है। इस बीच में ब्रह्म वेत्ता लोग उस अचल नित्य तत्त्व को देखते हैं वही ईश है ॥१४॥

नित्यानन्दममृत सत्यरूप शुद्ध वदन्ति पुरुष सर्ववेदाः ।
प्राणानिति प्रणनेवेशितारध्यायन्तिवेदैरितिनिश्चितार्थाः ॥१५
न भूमिरापो न मनो न वह्निः प्रणोऽनिलो गगन नोत बुद्धिः ।
न चेतनोऽन्यत्परमाकाशमध्येविभातिदेव शिवएवकेवलः ॥१६
इत्येतदुक्तं परम रहस्य ज्ञानञ्चेद सर्ववेदेषु गीतम् ।
जानाति योगी विजनेऽथदेशेयुञ्जीतयोगप्रयतोह्यजस्रम् ॥१७

नित्य ही आनन्द स्वरूप—अमृत—सत्यरूप वाला—शुद्ध पुरुष को सब वेद कहा करते हैं। प्रणव मे विशिता को प्राणान्—इस तरह ध्यान किया करते है। वेदों के द्वारा इसी प्रकार से निश्चित अर्थ वाले हैं ॥१५॥ भूमि—जल—मन—वह्नि—प्राण-अनिल—गगन—बुद्धि और चेतन अन्य कोई भी इस परमाकाश के मध्य मे प्रकाशमान नही होता है केवल एक शिव देव ही विभासित हुआ करते है ॥१६॥ हमने यह परम रहस्य ज्ञान आपके समक्ष मे बतला दिया है जोकि समस्त वेदो मे गाया गया है। जो कोई योगी होता है वही विजन देश मे इसका ज्ञान प्राप्त किया करता है जो निरन्तर प्रयत होकर योग मे युक्त रहा करता है ॥१७॥

११—पशुपाशविमोक्षणयोगवर्णन

अत. पर प्रवक्ष्यामि योग परमदुर्लभम् ।
येनात्मान प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम् ॥१
योगाग्निर्दहते क्षिप्रमशेष पापपञ्जरम् ।
प्रसन्न जायतेज्ञान साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम् ॥२
योगात्सजायते ज्ञान ज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते ।
योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वर ॥३

एककाल द्विकालवा त्रिकाल नित्यमेव च ।
ये युञ्जन्ति महायोगते विज्ञेयामहेश्वरा ॥४
योगस्तु द्विविधोज्ञेयो ह्यभाव प्रथमोमतः ।
अपरस्तु महायोगः सर्वयोगोत्तमोत्तम ॥५
शून्य सर्वनिराभास स्वरूपयत्र चिन्त्यते ।
अभावयोग.मप्रोक्तो येनात्मान प्रपश्यति ॥६
यम पश्यति चाऽत्मान नित्यानन्द निरञ्जनम् ।
मयैक्य स मया योगो भाषित परम स्वयम् ॥७

ईश्वर ने कहा—इसके आगे हम परम दुर्लभ योग का वर्णन करते हैं जिसके द्वारा ईश्वर आत्मा को भानुमान् की भाँति देखा करते हैं ॥१॥ योग की अग्नि अशेष पाप क पञ्जर को शीघ्र ही दग्ध कर दिया करती है। साक्षात् निर्वाण की सिद्धि को प्रदान करने वाला प्रसन्न ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥२॥ योग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान से ही योग प्रवृत्त हुआ करता है । योग और ज्ञान से अभियुक्त पुरुष से महेश्वर प्रसन्न होते है । एक काल मे—दो कालो मे अथवा तीनो कालो म जो महायोग का अभ्यास किया करते हैं उनको महेश्वर ही जानना चाहिए ॥३-४॥ यह योग दो प्रकार का जानना चाहिए । प्रथम योग तो अभाव माना गया है और दूसरा समस्त योगो मे उत्तमोत्तम महायोग है ॥५॥ जिसमे शून्य और निराभास स्वरूप का चिन्तन किया जाता है । अभाव योग वह कहा गया है जिसके द्वारा आत्मा को देख लेता है ॥६॥ जिसमे नित्यानन्द—निरञ्जन आत्मा को देखता है । मेरे साथ जो ऐक्य है वह मैने परम योग स्वय भाषित किया है ॥७॥

ये चान्ये योगिना योगा. श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरे ।
सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥८
यत्रसाक्षात्प्रपश्यन्ति विमुक्ताविश्वमीश्वरम् ।
सर्वेषामेव योगानास योग परमोमतः ॥९
सहस्रशोऽथ बहुशो ये चेश्वरवहिष्कृता. ।
नते पश्यन्ति मामेकयोगिनो यतमानसा ॥१०

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
समाधिश्चमुनिश्रेष्ठायमश्चनियमासने ॥११
मय्येकचित्ततायोग.प्रत्यन्तरनियोगता ।
तत्साधनानिचान्यानियुष्माकंकथितानितु ॥१२
अहिंसासत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
यमा.सङ्क्षेपत प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदानृणाम् ॥१३
कर्म्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ।
अक्लेशजनन प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभि ॥१४

जो अन्य योग योगियो के ग्रन्थो के विस्तार मे सुने जाते हैं वे सब ब्रह्म योगकी सोलहवी कला की भी योग्यता प्राप्त नही किया करते हैं।।८।। जिसमे विमुक्त लोग विश्व ईश्वर को साक्षात् देखा करते हैं। सभी योगो मे वह योग परम श्रेष्ठ माना गया है। सहस्रो और बहुत-से जो ईश्वर के द्वारा बहिष्कृत हैं वे मुझ को नही देखते है। मुझको या मन वाले योगिजन ही देखा करते हैं ॥६-१०॥ प्राणायाम—ध्यान—प्रत्याहार-धारणा और समाधि—यम—नियम और आसन हे मुनिश्रेष्ठो। ये योग के आठ अङ्ग होते हैं ॥११॥ प्रत्यन्तर नियोग से मुझ मे जो एक चित्तता है वही योग होता है। उसके अन्य साधन होते हैं जो सब आपको बतला दिये गये हैं ॥१२॥ अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-परिग्रह और यम इन सब को सक्षेप से बताया गया है जो मनुष्यो के चित की शुद्धि प्रदान करने वाले हैं ॥१३॥ समस्त प्राणियो मे सर्वदा कर्म-मन और वचन से क्लेश का उत्पन्न न करना अहिंसा कही गयो है जिसको परमर्षियो ने बताया है ॥१४॥

अहिंसाया. परो धर्म्मो नास्त्यहिंसापरं सुखम् ।
विधिना या भवेद्धिसा त्वहिंसैव प्रकीर्त्तिता ॥१५
सत्येनसर्वमाप्नोतिसत्येसर्वंप्रतिष्ठितम् ।
यथार्थकथनाचार. सत्यम्प्रोक्तं द्विजातिभिः ॥१६
परद्रव्यापहरण चौर्यादथ बलेन वा ।
स्येयं तस्यानाचरणादस्तेय धर्मसाधनम् ॥१७

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्याग ब्रह्मचर्यम्प्रचक्षते ॥१८
द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि तथेच्छाया ।
अपरिग्रहमित्याहुस्त प्रयत्नेन पालयेत् ॥१९
तप. स्वाध्यायसन्तोपौ शौचमीश्वरपूजनम् ।
समासान्नियमा प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिन ॥२०
उपवासपराकादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिभि ।
शरीरशोपणम्प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम् ॥२१

अहिंसा से परम अन्य कोई भी धर्म नही है और अहिंसा से अधिक कोई सुख भी नही है। विधिपूर्वक यज्ञादि म जो हिंसा शास्त्र क होती है उसे अहिंसा ही कहा गया है ॥१५॥ सत्य से सभी कुछ की प्राप्ति हुआ करती है क्योकि सत्य मे सभी कुछ प्रतिष्ठित है। यथार्थ कथन का जो आचार है उसी को द्विजातियो के द्वारा सत्य कहा गया है ॥१६॥ पराये द्रव्य का हरण करना चाहे वह चोरी से किया गया हो अथवा बलपूर्वक किया गया हो उसी को स्तेय कहा जाता है। उसका आचरण न करना ही अस्तेय है जो धर्म का साधन होता है ॥१७॥ कर्म—मन और वचन से सर्वदा सभी अवस्थाओ मे सर्वत्र मैथुन का त्याग करना ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥१८॥ आपत्ति के समय म भी तथा इच्छा से द्रव्यो का जो ग्रहण नही करता है उसे ही अपरिग्रह कहा जाता है। उसका प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिए ॥१९॥ तप—स्वाध्याय—सन्तोष—शौच—ईश्वर का भजन ये ही सक्षेप से नियम कहे गये हैं जो योग की सिद्धि के प्रदान करने वाले होते हैं ॥२०॥ उपवास पराक आदि तथा कृच्छ्र चान्द्रायण आदि के द्वारा जो शरीर का शोषण किया जाता है उसी को तापस लोग उत्तम तप कहते हैं ॥२१॥

वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपम्बुधा ।
सत्त्वसिद्धिकर पु सा स्वाध्याय परिचक्षते ॥२२
स्वाध्यायस्यत्नयोभेदावाचिकोपाशुमानसाः ।
उत्तरोत्तरवैशिष्ठ्य प्राहुर्वेदार्थवेदिन ॥२३

य शब्दबोधजननः परेषां शृण्वतां स्फुटम् ।
स्वाध्यायो वाचिकः प्रोक्त उपांशोरथ लक्षणम् ॥२४
ओष्ठयो स्पन्दमात्रेण परस्याऽशब्दबोधकम् ।
उपांशुरेष निर्दिष्टः साध्वसौ वाचिकाज्जपात् ॥२५
यत्पदाक्षरसङ्गत्या परिस्पन्दनवर्जितम् ।
चिन्तन सर्वशब्दाना मानस तज्जप विदुः ॥२६
यदृच्छालाभतोवित्तं अलपु सोभवेदिति ।
प्राशस्त्यमृषय.प्राहु सन्तोषसुखलक्षणम् ॥२७
बाह्यमाभ्यन्तर शौच द्विधा प्रोक्तं द्विजोत्तमाः ।
मृज्जलाभ्या स्मृतं बाह्यं मनः शुद्धिरथान्तरम् ॥२८

वेदान्त-शत रुद्रिय और प्रणव आदि के जप को बुध लोग जप कहते हैं। स्वाध्याय पुरुषो को सत्व सिद्धि का करने वाला कहा जाता है ॥२२॥ स्वाध्याय के भी तीन भेद हैं—वाचिक—पांशु और मानस ये उनके नाम हैं। इन तीनो की उत्तरोत्तर विशेषता मानी गयी है। ऐसा ही वेदार्थ के वादी जन कहते हैं ॥२३॥ जो दूसरे सुनने वालो को शब्द का बोध उत्पन्न करने वाला अत्यन्त ही स्पष्ट होता है उसी स्वाध्याय को वाचिक स्वाध्याय कहा गया है। अब उपांशु का लक्षण बतलाते हैं ॥२४॥ दोनो होंठो के स्पन्दन मात्र से दूसरे का अशब्द बोधक होता है यही उपांशु जप कहा गया है। यह वाचिक जप से साधु जप होता है ॥२५॥ जो पद के अक्षरो की सङ्गति से परिस्पन्दन रहित होता है तथा मन्त्र के सब शब्दो का चिन्तन ही केवल होता है उसी जप को मानस जप कहते हैं ॥२६॥ यदृच्छा लाभ से जो वित्त पुरुषो को पर्याप्त होता है ऋषि-वृन्द इसी को सन्तोष का प्रशस्त लक्षण कहते हैं ॥२७॥ हे द्विजोत्तमो ! शौच-बाह्य और आभ्यन्तर दो प्रकार का कहा गया है। बाहिरी शौच तो मिट्टी और जल से बनाया गया है और आन्तरिक शौच मन की शुद्धि से ही हुआ करता है ॥२८॥

स्तुतिस्मरणपूजाभिर्वाङ्मन.कायकर्मभि. ।
सुनिश्चलाशिवेभक्तिरेतदीशस्यपूजनम् ॥२९

यमाश्चनियमाःप्रोक्ताःप्राणायामन्निबोधत ।
प्राणः स्वदेहजोवायुरायामस्तन्निरोधनम् ॥३०
उत्तमाधममध्यत्वात्त्रिधायं प्रतिपादितः ।
य एव द्विविधः प्रोक्तः सगर्भोऽगर्भएव च ॥३१
मात्राद्वादशको मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रकः ।
मध्यमः प्राणसरोधः षट्त्रिंशन्मात्रिकोऽन्तकः ॥३२
यः स्वेदकम्पनोच्छ्वासजनकत्वं यथाक्रमम् ।
संयोगश्च मनुष्याणामानन्दाच्चोत्तमोत्तमः ॥३३
सुनफाख्य ह्लितयोगं सगर्भविजयम्बुधाः ।
एतद्वैयोगिनामाहुः प्राणायामस्यलक्षणम् ॥३४
सव्याहृति सप्रणवागायत्रीशिरसा सह ।
त्रिर्जपेदायतप्राण प्राणायामोऽय नामतः ॥३५

वाणी—मन और शरीर के कर्मों से स्तवन—स्मरण और पूजा के द्वारा जो सुनिश्चित शिव में भक्ति की भावना होती है इसी को ईश का पूजन कहा जाता है ॥२९॥ यम और नियम पहिले ही बतला दिये गये हैं। अब प्राणायाम को समझ लो। प्राण अपनी देह में उत्पन्न वायु का नाम है उसका आयाम अर्थात् निरोध जिसमें किया जाता है वही प्राणायाम उत्तम—मध्यम और अधम तीन प्रकार का प्रतिपादित किया गया है। वह भी फिर दो प्रकार का कहा गया है—एक सगर्भ होता है और दूसरा अगर्भ है ॥३०-३१॥ बारह मात्राओं वाला मन्द होता है—चौबीस मात्राओं वाला मध्यम है और छत्तीस मात्राओं वाला उत्तम प्राणायाम होता है ॥३२॥ जो स्वेद, कम्पन, उच्छ्वास का क्रम से जनन करने वाला होता है तथा मनुष्यों का आनन्द से संयोग होता है वह उत्तमोत्तम होता है ॥३३॥ सुनफ नाम वाला—ह्लित योग को ही बुध लोग सगर्भ विजय कहते हैं। यह योगियों का ही कहा गया है। प्राणायाम का यही लक्षण है ॥३४॥ व्याहृतियों के सहित प्रणव से युक्त तथा सिर से समन्वित गायत्री मन्त्र का आयत प्राण होकर तीन बार जाप करे। इसी को नाम से प्राणायाम कहा गया है ॥३५॥

रेचक पूरकश्चैवप्राणायामोऽथ कुम्भक ।
प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसै ॥३६
रेचकोवाह्यनिश्वास पूरकस्तन्निरोधन ।
साम्येनसंस्थितिर्याऽऽकुम्भ परिगीयते ॥३७
इन्द्रियाणा विचरताविषयेषु स्वभावत ।
निग्रह प्रोच्यतेसद्‌भि प्रत्याहारस्तुसत्तमा ॥३८
हृत्पुण्डरीके नाभ्या वा मूर्ध्निपर्वसु मस्तके ।
एवमादिपु देशेषुधारणाचित्तवन्धनम् ॥३९
देशावस्थितिमालम्ब्यऊर्ध्वयावृत्तिसन्तति ।
प्रत्यन्तररसृष्टायातद्धयानसूरयोविदु ॥४०
एकाकार समाधि स्याद्देशालम्बनवर्जित ।
प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगशासनमुत्तमम् ॥४१
धारणा द्वादशायामा ध्यान द्वादश धारणा ।
ध्यान द्वादशक यावत्समाधिरभिधीयते ॥४२

रेचक—पूरक और कुम्भक ये तीन प्रकार से प्राणायाम कहा जाता है जिसका यत मन वाले योगियो ने समस्त शास्त्रो मे कहा है ॥३६॥ बाह्य निश्वास को ही रेचक कहते हैं और उसका निरोध कर लेना ही पूरक होता है। साम्य से जो संस्थिति होती है उसे ही कुम्भक कहा जाता है ॥३७॥ विषयो म स्वभाव से ही विचरण करने वाली इन्द्रियो का जो निग्रह होता है उसी को श्रेष्ठतम सत्पुरुषो के द्वारा प्रत्याहार कहा गया है ॥३८॥ हृदय कमल मे अथवा नाभि मे—मूर्द्धा पर्वों मे—मस्तक म एवमादि स्थलो मे चित्त के बन्धन को धारणा कहते हैं। देश की स्थिति का अवलम्ब ग्रहण करके ऊपर की ओर जो वृत्ति की सन्तति है जोकि प्रत्यन्तरो मे सृष्ट न हो वही ध्यान होता है जिसको सूरिगण जानते हैं ॥३९-४०॥ एकाकार समाधि होती है जोकि देश के अवलम्बन से वर्जित होती है। अर्थ मात्र से प्रत्यय उत्तम योग का शासन है। द्वादश यामा धारणा होती है और द्वादश धारणा वाला ध्यान होता है। द्वादश ध्यान जब तक हो उसे ही समाधि कहा जाता है ॥४१-४२॥

आसन स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासिन तथा ।
साधनाञ्च सर्वेषामेतत्साधनमुत्तमम् ॥४३
ऊर्वोरुपरि विप्रेन्द्रा. कृत्वा पादतले उभे ।
समासीनात्मन. पद्ममेतदासनमुत्तमम् ॥४४
उभे कृत्वापादतले जान्वोरन्तरेण हि ।
समासीनात्मन प्रोक्त मासनस्वस्तिक परम् ॥४५
एकपादमथैकस्मिन्विष्टभ्योरसि सत्तमा ।
असीनार्द्धासनमिद योगसाधनमुत्तमम् ॥४६
अदेशकाले योगस्य दर्शन न हि विद्यते ।
अग्न्यभ्यासे जले वाऽपि शुष्कपर्णचये तथा ॥४७
जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।
सशब्देसञ्चये वापिचत्यवल्मीकसञ्चये ॥४८
अशुभेदुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विवे ।
नाचरेद्देहबाधेवादौर्मनस्यादिसम्भवे ॥४९

आसन तीन प्रकार के कहे हैं—स्वस्तिक—पद्म और अर्द्धासन । समस्त साधनों में यह अति उत्तम साधन होता है ॥४३॥ हे विप्रेन्द्रो ! दोनों पादतल ऊरुओं के ऊपर कर लेवे और समासीन स्वरूप म हो तो इसी को पद्मासन उत्तम आसन कहा गया है ॥४४॥ दोनों पादतलों को जानु और ऊरु के अन्तर में रक्खे । ऐसे समासीनात्मा पुरुष का आसन परम स्वस्तिक कहा गया है । एक पाद को एवं विष्टम्य करके उर में रखे—ऐसे स्थित के आसन को अर्द्धासन कहते हैं । यह योग साधन के लिये उत्तम आसन है ॥४५-४६॥ अदेश काल में योग का दर्शन नहीं होता है । अग्नि के समीप में—जल में तथा शुष्क पत्तों के समूह में—जन्तु व्याप्त में—श्मशान में—जीर्ण गोष्ठ में—चतुष्पथ में—सशब्द में—सञ्चय म—चैत्य और वल्मीक सञ्चय में—अशुभ, दुर्जनाक्रान्त और मशक आदि समन्वित स्थल में नहीं करना चाहिए । देह की बाधा में दौर्मनस्य आदि के होने पर भी योग का साधन नहीं करना चाहिए ॥४७-४९॥

सुगुप्ते सुशुभेदेशेगुहायापर्वतस्य च ।
नद्यास्तीरे पुण्यदेशे देवतायतने तथा ॥५०
गृहे वा सुशुभे देशे निर्ज्जने जन्तुवर्जिते ।
युञ्जीत योग सततमात्मानं तत्परायणः ॥५१
नमस्कृत्वाऽथ योगीन्द्राञ्छिष्याश्चं व विनायकम् ।
गुरुञ्चैव च मा योगी युञ्जीत सुसमाहितः ॥५२
आसनस्वस्तिकबद्ध्वापद्मर्द्ध मथापिवा ।
नासिकाग्रे समादृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः ॥५३
कृत्वाथ निर्भय शान्तस्त्यक्त्वा मायामय जगत् ।
स्वात्मन्यवस्थितन्देव चिन्तयेत्परमेश्वरम् ॥५४
शिखाग्रे द्वादशाङ्गुल्ये कल्पयित्वाथ पङ्कजम् ।
धमकन्दसमुद्भूतज्ञानगनालसुशोभनम् ॥५५
ऐश्वर्याष्टदल श्वेत पर वैराग्यकर्णिकम् ।
चिन्तयेत्परमकोशकर्णिकायाहिरण्मयम् ॥५६

किसी भी भरी भाँत गुप्त—सुशुभ—निर्जन—पर्वत की गुहा—नदी का तट—पुण्य स्थल—देवायतन—गृह—जन्तु वर्जित देश मे योग का अभ्यास करना चाहिए और आत्मा को निरन्तर उसी मे परायण करके करना चाहिए ॥५०-५१॥ योगीन्द्रो को नमस्कार करके-शिष्यगण-विनायक—गुरु और मुझको नमन करके योगी को सुसमाहित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए ॥५२॥ स्वस्तिक—पद्म या अर्द्धासन को बाँध कर नासा के अग्रभाग मे समा दृष्टि करे नेत्र थोडे उन्मीलित होने चाहिए ॥५३॥ निर्भय और परम शान्त होकर अभ्यास करे तथा इस मायामय जगत् का त्याग कर देवे । अपनी आत्मा में अवस्थित देव परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए ॥५४॥ शिखा के अग्रभाग मे द्वादश अगुल वाले एक पङ्कज की कल्पना करे जोकि धर्म के केन्द्र से समुद्भूत हुआ है और ज्ञान की नाल मे परम शोभा वाला है ॥५५॥ ऐश्वर्य के आठ दल उसमे है वैराग्य की ही परमोत्तर कर्णिका है । उस कर्णिका मे हिरण्मय परम कोश का चिन्तन करना चाहिए ॥५६॥

सर्वशक्तिमयं साक्षाद्यं प्राहुर्दिव्यमव्ययम् ।
ओङ्कारवाच्यमव्यक्तं रश्मिज्वालासमाकुलम् ॥५७
चिन्तयेत्तत्र विमलं परं ज्योतिर्यदक्षरम् ।
तस्मिञ्ज्योतिषि विन्यस्य स्वानन्द मम भेदतः ॥५८
ध्यायीत कोशमध्यस्थमीशं परमकारणम् ।
तदात्मा सर्वगो भूत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥५९
एतद्गुह्यतमं ज्ञानं ध्यानान्तरमथोच्यते ।
चिन्तयित्वा तु पूर्वोक्तहृदयेपद्ममुत्तमम् ॥६०
आत्मानमथ कान्तारं तत्रानलसमत्विषम् ।
मध्ये वह्निशिखाकारं पुरुषपञ्चविंशकम् ॥६१
चिन्तयेत्परमात्मानं तन्मध्ये गगनं परम् ।
ओंकारबोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमुच्यते ॥६२
अव्यक्तं प्रकृतौ लीनं परं ज्योतिरनुत्तमम् ।
तदन्तः परमं तत्त्वमात्माधारंनिरञ्जनम् ॥६३

वह सर्व शक्तियों से परिपूर्ण—आद्य साक्षात् है जिसको दिव्य और अव्यय कहते हैं । वह ओङ्कार से वाच्य-अव्यक्त तथा रश्मियों की ज्वाला से समाकुल है ॥५७॥ वही पर जो अक्षर—विमल-पर ज्योति है उसका ही चिन्तन करना चाहिए । उस ज्योति में मेरे भेद में स्वानन्द का विन्यास करे । कोश के मध्य में स्थित परम कारण ईश का ध्यान करे । तदात्मा और सर्वगामी होकर अन्य कुछ भी नहीं चिन्तन करना चाहिए ॥५८-५९॥ यह परम गोपनीय ज्ञान है अब ध्यानान्तर कहा जाता है । पूर्वोक्त हृदय में उत्तम पद्म का चिन्तन करके आत्मा को—अनल के तुल्य कान्ति वाले वन को—मध्य में वह्नि की शिखा के आकार वाले पच्चविंशक पुरुष को परमात्मा को चिन्तन करे । उसके मध्य में परम गगन है । वहाँ पर ओङ्कार से बोधित शाश्वत तत्त्व शिव कहे जाते हैं । प्रकृति में अव्यक्तलीन है जो परम ज्योति उत्तम है । उसके मध्य में आत्मा का आधार—निरञ्जन परम तत्त्व विद्यमान है ॥६०-६३॥

ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूप महेश्वरम् ।
विशोध्यसर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुन ।।६४
सस्थाप्यमपि चात्मान निर्मले परमे पदे ।
पात्रमिवात्मनो देह तेनैव ज्ञानवारिणा ।।६५
मदात्मा मन्मना भस्म गृहीत्वा त्वाग्निहात्रिकम् ।
तेनोद्धूलितसर्वाङ्गमग्निरादित्यमन्त्रत ।।६६
चिन्तयेत्स्वात्मनीशान पर ज्योति स्वरूपिणम् ।
एष पाशुपतो योग पशुपाशविमुक्तये ।।६७
सर्ववेदान्तमार्गोऽयमत्याश्रममितिश्रुति ।
एतत्परतर गुह्य मत्सायुज्यप्रदायकम् ।।६८
द्विजातीनान्तु कथित भक्तानाब्रह्मचारिणाम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसाचक्षमाशौच तपोदम ।।६९
सन्तोष सत्यमास्तिक्यव्रताङ्गानि विशेषत ।
एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमस्यनलुप्यते ।।७०

इस प्रकार से तन्मय होकर नित्य ही एक रूप वाले महेश्वर का ध्यान करना चाहिए । समस्त तत्वो का विशेष शोधन करके अथवा पुन प्रणव के द्वारा निमल परम पद मे अपनी आत्मा को सस्थापित करके आत्मा के देह को उसी ज्ञान के वारि से पवित्र कराकर मेरे मे मन लगाने वाला होकर—महात्मा बनकर अग्निहोत्र की भस्म को ग्रहण करे ।।६४-६६।। उस भस्म से अपने सब अङ्गो को धूलित करे और यह भी अग्नि या आदित्य मन्त्र से करना चाहिए । फिर स्वात्मा मे परज्योति स्वरूपी ईशान का चिन्तन करे । यह पाशुपत योग है जो पशु पाश की विमुक्ति के ही लिये है ।।६७।। यह समस्त वेदान्त का मार्ग है यह अत्याश्रम है—एसा श्रुति का वचन है । यह परतर और परम गोपनीय है जो मेरे सायुज्य के प्रदान करने वाला है । जो द्विजाति ब्रह्मचारी एव भक्त हैं उनके लिये कहा गया है । ब्रह्मचर्य अहिंसा—क्षमा—शौच—दम—तप सन्तोष—सत्य—आस्तिकता—ये विशेष रूप व्रत के अङ्ग होते हैं । इनमे एक के भी हीन होने से इसका व्रत लुप्त नहीं होता है ।।६८-७०।।

तस्मादात्मगुणोपेतो मद्व्रतं वोढुमर्हति ।
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ॥७१
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावयोगतः ।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥७२
ज्ञानयोगेन मां तस्माद्यजेत परमेश्वरम् ।
अथवा भक्तियोगेन वैराग्येण परेण तु ॥७३
चेतसा बोधयुक्तेन पूजयेन्मां सदा शुचि ।
सर्वकर्माणि सन्न्यस्य भिक्षाशी निष्परिग्रहः ॥७४
प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम् ।
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रीकरुण एव च ॥७५
निर्ममो निरहङ्कारो यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥७६
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ॥७७

इसीलिये आत्म गुणों से युक्त मनुष्य ही मेरे व्रत का वहन करने के योग्य होता है। राग-भय और क्रोध को छोड देने वाले मुझ में ही मन लगाने वाले मेरा उपाश्रय ग्रहण करके इस योग से बहुत से मेरे भाव योग से पवित्र हो गये हैं। मुझको जो भी जिस भावना से प्रपन्न होकर प्राप्त करता है मैं भी उसको उसी भाव से भजता हूँ ॥७१-७२॥ इस लिये परमेश्वर मुझको ज्ञान योग से ही समर्चित करे अथवा भक्तियोग से तथा परम वैराग्य से मेरा यजन करे ॥७३॥ सदा पवित्र होकर बोध से संयुत चित्त से ही मेरा पूजन करना चाहिए अन्य समस्त कर्मों का त्याग करके भिक्षाटन से निर्वाह करे और परिग्रह से रहित रहे ॥७४॥ वह व्यक्ति मेरा सायुज्य प्राप्त करता है—यह परम गुह्य विषय है जो हमने आपको बतला दिया है। समस्त भूतों से कभी भी किसी भी प्रकार का द्वेष न करने वाला तथा मैत्री भाव रखने वाला हो ॥७५॥ ममता से हीन—अहङ्कार से रहित जो मेरा भक्त होता है वही मेरा परम प्रिय होता है। योगी निरन्तर सन्तुष्ट—यत आत्मा वाला और दृढ निश्चय वाला होवे

॥७६॥ जो मुझमे ही अपनी बुद्धि को अर्पित करा देता है वही मेरा प्रिय भक्त होता है जिससे कोई भी लोक उद्विग्न न हो और जो स्वय भी लोक से उद्वेग वाला न हो—ऐसा ही मेरा भक्त होना चाहिए ॥७७॥

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयः सहिमेप्रियः ।
अनपेक्षः शुचिदक्ष उदासीनो गतव्यथ. ॥७८
सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान्य. स मे प्रियः ।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो ये नकेनचिद् ॥७९
अनिकेत. स्थिरमतिर्मद्भक्तोमामुपैष्यति ।
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणोमत्परायण. ॥८०
मत्प्रसादादवाप्नोतिशाश्वत परमंपदम् ।
चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्यमत्परः ॥८१
निराशीर्निर्ममो भूत्वामामेकशरणंव्रजेत् ।
त्यक्त्वाकर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रय. ॥८२
कर्मण्यपि प्रवृत्तोऽपि कर्मणा तेन बुध्यते ।
निराशीयतचित्तात्मात्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥८३
शारीर केवलकर्मकुर्वन्नाप्नोति तत्पदम् ।
यदृच्छालाभतृप्तस्य द्वन्द्वातीतस्यचैव हि ॥८४

हर्ष—अमर्ष—भय और उद्वेग से जो मुक्त होता है वही मेरा भक्त मेरा प्यारा होता है। जो किसी भी पदार्थ या व्यक्ति की अपेक्षा न करे—शुचि—दक्ष—उदासीन और समस्त प्रकार की व्यथाओं का त्याग करने वाला हो एव सब तरह के आरम्भो का त्याग करने वाला हो और मेरी भक्ति से युक्त हो वही मेरा परम प्रिय हुआ करता है जिसके मन मे अपनी निन्दा और स्तुति दोनो ही समान हो—मौन व्रत का धारण करने वाला तथा जो कुछ भी प्राप्त हो उसी में सन्तोष करने वाला हो वह मेरा प्रिय भक्त है ॥७८-७९॥ बिना कोई अपना निज का निकेत रखने वाला, स्थिर मति से युक्त जो मेरा भक्त है वह मुझ को प्राप्त करता है। सभी कर्मों को भी करता हुआ जो मुझ मे ही परायण रहता है और निराशी—निर्मम होकर एक मेरी ही शरण ग्रहण किया करता है। सब कर्मों के

फलों में सङ्ग न करके नित्य ही तृप्त रहता है तथा चित्त से सब कर्मों को मुझ को ही समर्पित करके मेरे ही में तत्पर रहता हूँ वह मेरे प्रसाद से परम शाश्वत मेरे पद को प्राप्त कर लेता है। कर्म में प्रवृत्त रह कर भी उस कर्म से बोध युक्त रहता है और निराशी—चित्त और आत्मा को यत रखने वाला—समस्त परिग्रह का त्याग करने वाला मेरा भक्त होता है। यदृच्छा लाभ से तृप्ति प्राप्त करने वाला—द्वन्द्वों से परे अर्थात् सुख-दुःखादि को समभाव से समझने वालों के केवल शरीर सम्बन्धी कर्म करने पर वह मेरा पद उसे प्राप्त हो जाया करता है ॥८०-८४॥

कुर्वतो मत्प्रसादार्थं कर्म समारनाग्ननम् ।
मन्मनामन्नमस्कारो मद्याजीमत्परायण. ॥८५
मामुपास्यति योगीशो ज्ञात्वा मा परमेश्वरम् ।
मामेवाहु. पर ज्योतिर्बोधयन्त. परस्परम् ॥८६
कथयन्तश्च मां नित्यममसायुज्यमाप्नुयुः ।
एवंनित्याभियुक्तनांमायेयकर्मसात्त्वगम् ॥८७
नाशयामि तम. कृत्स्न ज्ञानदीपेन भास्वता ।
मद्बुद्धयो मा सततपूजयन्तीहयेजना ॥८८
तेषा नित्याभियुक्तानां योगक्षेमंवहाम्यहम् ।
येचान्येभोगकर्मार्थातजन्तेह्यन्यदेवताः ॥८९
तेषा तदन्तविज्ञेयं देवतानुगतं फलम् ।
ये चान्ये देवताभक्ता पूजयन्तीह देवता ॥९०
मद्भवनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि मानवाः ।
तस्माद्विनश्वरानन्या यक्त्वा देवानशेषतः ॥९१

केवल मेरी प्रसन्नता प्र करने के लिये ही कर्मों को संसार के नाश करने के लिये करता हुआ—मुझ को ही नमन करने वाला—मेरा ही यजन करने वाला और मुझ में ही परायण रहने वाला योगीश मुझ को परमेश्वर जानकर मेरी ही उपासना करता है—परस्पर में बोधन करते हुए मुझ को परम ज्योति कहते हैं ॥८५-८६॥ नित्य ही मेरे गुण-गणों का कथन करते हुए मेरे सायुज्य को प्राप्त किया करते हैं। इस प्रकार से

जो मुझ में ही नित्य अभियुक्त होते हैं उनको यह मेरी माया कुछ भी प्रभाव नही करती है ॥८७॥ मैं भासमान कर्मदीप के द्वारा समस्त तम का नाश कर देता हूँ। मेरे ही अन्दर बुद्धि रखने वाले जो मनुष्य यहाँ पर मेरी पूजा निरन्तर किया करते हैं उन नित्य अभियुक्त मेरे भक्तों का योग क्षेम मैं वहन किया करता हूँ। जो अन्य लोग भोग के कर्मों के प्रयोजन वाले हैं और अन्य देवों का यजन किया करते हैं उनका वैसा ही अन्त समझना चाहिए। उनको देवता के ही अनुगत फल मिलता है। जो अन्य लोग अन्य देवों के भक्त होते हैं और यहाँ पर देवताओं का पूजन किया करते हैं किन्तु मेरी भावना से समायुक्त होते हैं वे मनुष्य भी मुक्त हो जाया करते हैं। इसीलिये विनश्वर अन्य देवों का सब का त्याग करके मेरा ही आश्रय लेवे ॥८८ ९१॥

मामेव सश्रयेदीश सयाति परम पदम् ।
त्यक्त्वापुत्रादिपुस्नेहनि शोकोनिष्परिग्रहः ॥९२
यजेच्चामरणाल्लिङ्ग विरक्त परमेश्वरम् ।
येऽर्च्चयन्तिसदालिङ्ग त्यक्त्वाभोगानशेषत ॥९३
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमम्पदम् ।
परात्मन. सदा लिङ्ग केवल रजतप्रभम् ॥९४
ज्ञानात्मकसर्वगतयोगिनाहृदिसस्थितम् ।
येचान्येनियताभक्ताभावयित्वा विधानतः ॥९५
यत्र क्वचन तल्लिङ्गमर्च्चयन्तिमहेश्वरम् ।
जलेवावह्निमध्येवाव्योम्निसूर्येऽथवान्यत. ॥९६
रत्नादौ भावयित्वेशमर्च्चयेल्लिङ्गमैश्वरम् ।
सर्वलिङ्गमयह्येतत्सर्वंलिङ्गे प्रतिष्ठितम् ॥९७
तस्माल्लिङ्गेऽर्च्चयेदीश यत्र क्वचन शाश्वतम् ।
अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम् ॥९८

जो केवल ईश मेरा ही आश्रय ग्रहण किया करता है वह परम पद को प्राप्त होता है। अपने पुत्रादि में स्नेह का त्याग करके—शोक से रहित होकर बिना परिग्रह वाला रह कर मरण पर्यन्त परम विरक्त हो परमे-

श्वर के लिङ्ग का यजन करे। जो सदा समस्त भोगों का त्याग करके मेरे लिङ्ग का अर्चन किया करते हैं उनको मैं एक जन्म में परम पद प्रदान कर देता हूं। परमात्मा लिङ्ग सदा रजत की प्रभा से युक्त केवल ज्ञानात्मक—सर्वगत और योगियों के हृदय में समवस्थित है। जो अन्य भक्त नियत हैं और विधान से भावना करके महेश्वर के उस लिङ्ग का जहाँ—कहीं भी यजन किया करते हैं। जल में—अग्नि के मध्य में—वायु—व्योम—सूर्य में तथा अन्य भी किसी में रत्नादि में ईश्वरीय लिङ्ग की भावना करके उसका अर्चन करते हैं। यह सर्व लिङ्ग मय है और सर्व लिङ्ग में प्रतिष्ठित है। इसलिये ईश अर्चन लिङ्ग में ही करना चाहिए जहाँ कहीं भी हो यह शाश्वत है। क्रिया वालों का अग्नि में और मनीषियों का जल—व्योम और सूर्य में विद्यमान् है ॥९२-९८॥

काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गं तु योगिनाम् ।
यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः ॥९९
यावज्जीवं जपेद्युक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः ।
अथवा शतरुद्रीयं जपेदामरणाद् द्विजः ॥१००
एकाकी यतचित्तात्मा स याति परमम्पदम् ।
वसेच्चामरणाद्विप्रा वाराणस्यां समाहितः ॥१०१
सोऽपीश्वरप्रसादेन यातितत्परमम्पदम् ।
तत्रोत्क्रमणकाले हि सर्वेषामेव देहिनाम् ॥१०२
ददाति परमं ज्ञानं येनमुच्येत बन्धनात् ।
वर्णाश्रमविधिकृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायणः ॥१०३
तेनैवः जन्मना ज्ञानलब्ध्वा यातिशिवम्पदम् ।
येऽपितत्रवसन्तीहनीचावैपापयोनयः ॥१०४
सर्वेतरन्तिसंसारमीश्वरानुग्रहाद्द्विजाः ।
किन्तुविघ्नाभविष्यन्तिपापोपहतचेतसाम् ॥१०५

मूर्खों का लिङ्ग काष्ठ आदि में होता है और जो योगी हैं उनके हृदय में ही लिङ्ग रहता है। यदि विज्ञान के उत्पन्न न होने वाला विरक्त प्रीति से संयुक्त है तो उसे जब तक जीवित रहे ब्रह्म का वपु जो प्रणव है

उसी का जाप करना चाहिए अथवा मरणपर्यन्त शतरुद्रीय का द्विज को जप करना चाहिए ॥९९-१००॥ जो एकाकी—यतचित्त और आत्मा वाला है वह परम पद को प्राप्त होता है। हे विप्रो। मरणपर्यन्त वाराणसी में वास करे और समाहित होकर रहे ॥१०१॥ वह भी ईश्वर के प्रसाद से परम पद को प्राप्त कर लेता है। वहाँ पर उत्क्रमण के समय में समस्त देहधारियों को परम ज्ञान प्रदान कर देते हैं जिसके द्वारा वह बन्धन से मुक्त हो जाया करता है। वर्णों और आश्रमों को शास्त्र विहित विधि का सम्पादन करते हुए जो मुक्त में ही परायण रहता है वह उसी जन्म में ज्ञान प्राप्त करके शिव के पद का प्राप्त कर लेता है। जो भी नीच तथा पाप योनि वाले लोग वहाँ पर निवास किया करते हैं हे द्विजगण। वे सभी ईश्वर के अनुग्रह से इस संसार सागर को पार कर जाया करते हैं किन्तु जो पापों से उपहत चित्त वाले होते हैं उनको विघ्न होंगे ॥१०२-१०५॥

धर्मान्समाश्रयेत्तस्मान्मुक्त्यर्थं सततं द्विजा ।
एतद्रहस्यं वेदानां न देयं यस्य कस्यचित् ॥१०६
धार्मिकायैव दातव्यं भक्ताय ब्रह्मचारिणे ।
इत्येतदुक्त्वा भगवान् शाश्वतो योगमुत्तमम् ॥१०७
व्याजहार समासीनं नारायणमनामयम् ।
मयैतद्भाषितं ज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनम् ॥१०८
दातव्यं शान्तचित्तेभ्यः शिष्येभ्यो भवता शिवम् ।
उक्त्वैवमर्थं योगीन्द्रानब्रवीद्भगवानजः ॥१०९
हिताय सर्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः ।
भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥११०
उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम ।
अयं नारायणो योऽसावीश्वरो नात्र संशयः ॥१११
नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदं परम् ।
ममैषा परमा मूर्त्तिर्नारायणसमाह्वया ॥११२

हे द्विजगण ! इसीलिये मुक्ति के लिये निरन्तर धर्मों का समाश्रय करना चाहिए। यह वेदों का परम रहस्य है। इसे जिस किसी को कभी नहीं देना चाहिए ॥१०६॥ जो धार्मिक हो—भक्त हो और ब्रह्मचारी हो उसी को यह विज्ञान प्रदान करना चाहिए। व्यासजी ने कहा—शाश्वत भगवान् ने इस उत्तम योग को इतना ही कहा था ॥१०७॥ फिर अनामय नारायण से जो वहाँ पर समासीन थे कहा था कि मेरे द्वारा भाषित यह ज्ञान ब्रह्म वादियों के हित सम्पादन करने के लिये है ॥१०८॥ इसको जो यतचित्त वाले शिष्य हों उन्हीं को आपको देना चाहिए। इस प्रकार से कह कर भगवान् अज योगीन्द्रों से बोले ॥१०९॥ हे द्विजोत्तमो ! आप सब लोग भी द्विजगति भक्तों के हित के लिये मेरे इस ज्ञान को विधि-पूर्वक शिष्यों को देवें। मेरे वचन से आप भी सब भक्तों को इसका उपदेश करेंगे। यह नारायण साक्षात् ईश्वर हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो इनमें कोई भी अन्तर नहीं देखते हैं उनको ही यह ज्ञान देना चाहिए यह नारायण नाम धारण करने वाली एक दूसरी मेरी ही साक्षात् मूर्ति है ॥११०-११२॥

सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसंस्थिता ।
येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जनाः ॥११३

न ते मुक्तिं प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः ।
यैस्त्वेनिष्णुमव्यक्तमाञ्चदेवमहेश्वरम् ॥११४

एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः ।
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम् ॥११५

मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव च ।
येऽन्यथासम्प्रपश्यन्ति मत्त्वैवं देवतान्तरम् ॥११६

ते यान्ति नरकान् घोरान्नाहंतेषु व्यवस्थितः ।
मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम् ॥११७

मोचयामि श्वपाकं वा नारायणमनिन्दकम् ।
तस्मादेष महायोगीमद्भक्तैः पुरुषोत्तमः ॥११८

अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय वै ।
एवमुक्त्वा वासुदेवमालिङ्ग्य स पिनाकधृक् ॥११९

समस्त भूतों के आत्म भूतस्थ—शान्त और अक्षर संस्थित जो मुझको अन्यथा देखते हैं तथा लोक में भेद देखने वाले जन हैं वे कभी भी मुक्ति का दर्शन नहीं किया करते हैं और बारम्बार पुन: पुन: इस संसार में जन्म लिया करते हैं। जो अव्यक्त इन विष्णु देव को और महेश्वर मुझको एकीभाव से ही देखा करते हैं। उनका फिर दुबारा इस संसार में जन्म नहीं होता है। इसीलिये अनादि निधन—अव्यय आत्मा भगवान् विष्णु को मुझको ही देखो और उसी भावना से पूजन भी करो। जो लोग दूसरा देव समझकर अन्य प्रकार से ही देखा करते हैं वे परम घोर नरकों में जाया करते हैं। उनमें मैं व्यवस्थित नहीं रहता हूँ। मूर्ख हो अथवा पण्डित हो या ब्राह्मण हो जो मेरा आश्रय ग्रहण करने वाला है उस नारायण की निन्दा न करने वाले श्वपाक को भी मैं मुक्त कर देता हूँ। इसीलिये यह महायोगी पुरुषोत्तम प्रभु मेरे भक्तों के द्वारा अर्चना करने के योग्य होता है। इनका अर्चन करना चाहिए—इनको प्रणाम करना चाहिए और यह सब मेरी ही प्रीति के उत्पन्न करने के लिये करना चाहिए। इतना इस प्रकार से कहकर उन पिनाक धारी प्रभु शिव ने भगवान् वासुदेव का आलिङ्गन किया था ॥११३-११९॥

अन्तर्हितोऽभवत्तेषां सर्वेषामेव पश्यताम् ।
नारायणोऽपिभगवांस्तापसवेषमुत्तमम् ॥१२०
जग्राह योगिनः सर्वांस्त्यक्त्वा वै परमं वपुः ।
ज्ञानं भवद्भिरमलं प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥१२१
साक्षाद्देवमहेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम् ।
गच्छध्वं विज्वराः सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः ॥१२२
प्रवर्त्तयध्वंशिष्येभ्योधार्मिकेभ्योमुनीश्वराः ।
इदंभक्तायशान्तायधार्मिकायाहिताग्नये ॥१२३
विज्ञानमश्वरं देयं ब्राह्मणायविशेषतः ।
एवमुक्त्वासविश्वात्मायोगिनायोगवित्तम ॥१२४

नारायणो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम् ।
ऋषयस्तेऽपिदेवेश नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥१२५
नारायणञ्चभूतादि स्वानिस्थानानिलेभिरे ।
सनत्कुमारोभगवन्संम्वर्त्तायमहामुनि. ॥१२६

फिर भगवान् महेश्वर उन सबके देखते हुए अन्तर्धान हो गये थे। भगवान् नारायण ने भी उत्तम ताहश का वप ग्रहण कर लिया था और योगियो से कहा है योगिजनो। आप सब लोग भी सबका त्याग करके परमेष्ठी के प्रसाद से परम वपु अमल ज्ञान को धारण करो ॥१२०-१२१॥ साक्षात् दव महेश का ज्ञान इस ससार का नाश करने वाला है। इसलिय सब विज्वर होकर परमेष्ठी के इस विज्ञान का ग्रहण करो ॥१२२॥ हे मुनीश्वरो। इस विज्ञान को धार्मिक शिष्यो मे प्रवृत्त करो। यह ईश्वर सम्बन्धी विज्ञान भक्त—शान्त—धार्मिक—आहिताग्नि और विशेष रूप से ब्राह्मण को ही देना चाहिए। इस तरह कहकर योगियो मे श्रेष्ठ योग के ज्ञाता विश्वात्मा महायोगी नारायण स्वय भी अदर्शन को प्राप्त हो गये थे। उन समस्त ऋषियो ने भी देवेश महेश्वर को नमस्कार किया था ॥१२३-१२५॥ ऋषियो ने भूतों के आदि भगवान् को भी प्रणाम किया था और फिर अपने-अपने स्थानो को प्राप्त हो गये थे। महामुनि भगवान् सनत्कुमार ने सम्वर्त के लिये यह ईश्वरीय ज्ञान दिया था ॥१२६॥

दत्तवानैश्वर ज्ञान सोऽपिसत्यव्रतायवै ।
सनन्दनोऽपि योगीन्द्र पुलहाय महर्षये ॥१२७
प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापति ।
अङ्गिरावेदविदुषे भारद्वाजाय दत्तवान् ॥१२८
जैगीषव्याय कपिलस्तथा पञ्चशिखाय च ।
पराशरोऽपिसनकात्पितामेसवतत्त्वहक ॥१२९
लेभेतत्परम ज्ञान तस्माद्वाल्मीकिराप्तवान् ।
ममोवाच पुरा देव. सतीदेहभवाङ्गज. ॥१३०

वामदेवो महायोगी रुद्रःकालपिनाकधृक् ।
नारायणोऽपिभगवान्देवकीतनयो हरिः ॥१३१
अर्जुनाय स्वयं साक्षाद्दत्तवानिदमुत्तमम् ।
यदाहं लब्धवान्रुद्राद्वामदेवादनुत्तमम् ॥१३२
विशेषाद्गिरीशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत् ।
शरण्यगिरीशरुद्रप्रपन्नोऽस्मिविशेषत ॥१३३

वह सम्वर्त्त सनत्कुमार से ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करके सत्यत्व को प्राप्त हो गया था। योगीन्द्र सनन्दन ने भी महर्षि पुलह के लिये यह ज्ञान प्रदान किया था। पुलह प्रजापति ने भी गौतम को दिया था। अङ्गिरा ने वेदों के महा विद्वान् भरद्वाज को यही ज्ञान प्रदान किया था ॥१२७-१२८॥ कपिल ने जैगीषव्य तथा पञ्च शिख को दिया था। पराशर मुनि ने जो सभी तत्त्वों के दर्शक मेरे पिता थे इस ज्ञान को सनक से प्राप्त किया था। उनसे उस परम ज्ञान वाल्मीकि ने प्राप्त किया था। पहले सती के देह से समुत्पन्न देव ने मुझको कहा था ॥१२९-१३०॥ वामदेव महायोगी—रुद्र काल पिनाक के धारण करने वाले हैं और नारायण भी भगवान् देवकी के पुत्र हरि हैं। उन्होंने साक्षात् स्वयं इस उत्तम योग को अर्जुन के लिये दिया था। मैंने यह उत्तम ज्ञान वामदेव रुद्र से प्राप्त किया था विशेष रूप से गिरीश में भक्ति तभी से आरम्भ करके मेरी हुई थी। शरण्य गिरीश रुद्रदेव का मैं विशेष रूप से प्रपन्न हो गया था ॥१३१-१३३॥

भूतेश गिरीशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशूलिनम् ।
भवन्तोऽपि हि तं देवं शम्भुं गोवृषवाहनम् ॥१३४
प्रपद्यन्तां सपत्नीका सपुत्रा शरणं शिवम् ।
वर्त्तध्वन्तत्प्रसादेनकर्मयोगेन शङ्करम् ॥१३५
पूजयध्वं महादेवं गोपतिं व्यालभूषणम् ।
एवमुक्ते पुनस्ते तु शौनकाद्या महेश्वरम् ॥१३६
प्रणेमुः शाश्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवतीसुतम् ।
अब्रुवन् हृष्टमनसः कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ॥१३७

साक्षाद्देवं हृषीकेशं शिवं लोकमहेश्वरम् ।
भवत्प्रसादादचला शरण्ये गोवृषध्वजे ॥१३८
इदानी जायते भक्तिर्यादेवैरपि दुर्लभा ।
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ ! कर्मयोगमनुत्तमम् ॥१३९
येनासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः ।
त्वत्सन्निधावेवसूतःशृणोतिभगवद्वचः ॥१४०

भूतों के स्वामी—गिरीश—स्थाणु—देवों के देव—त्रिशूली गोवृष के वाहन वाले देव उस शम्भु की शरणागति मे आप सब लोग भी पत्नीयों के सहित तथा पुत्रों के सहित उस शरण शिव के प्रपन्न हो जाइये । उसके प्रसाद कर्म योग के द्वारा शङ्कर की सेवा में वर्त्तमान हो जाओ ॥१३४-१३५॥ व्यालों के भूषण वाले गोपति महादेव की पूजा करो । इस प्रकार से कहे गये शौनकादि उन मुनियों ने पुनः शङ्कर को प्रणाम किया था शाश्वत और स्थाणु है । फिर परम प्रसन्न मन वाले होते हुए सत्यवती के पुत्र प्रभु कृष्ण द्वैपायन व्यासजी से वे सब लोग बोले ॥१३६-१३७॥ लोक महेश्वर हृषीकेश देव शिव साक्षात् हुए हैं । आपके ही प्रसाद से शरण्य गोवृष की ध्वजा वाले शिव मे अब भक्ति उत्पन्न होती है जो यादवों के द्वारा भी दुर्लभ है । हे मुनिश्रेष्ठ ! अब आप परमोत्तम कर्म योग वर्णन करिये जिसके द्वारा मुमुक्षुओं के द्वारा यह भगवान् ईश समाराधन के योग्य होते हैं । आपकी सन्निधि मे ही यह सूतजी भी भगवान् के वचन का श्रवण करते हैं ॥१३८-१४०॥

तद्वदाखिललोकाना रक्षण धर्म्मसंग्रहम् ।
यदुक्तं देवदेवेन विष्णुना कूर्म्मरूपिणा ॥१४१
पृष्टेन मुनिभिः सर्वं शक्रेणामृतमन्थने ।
श्रुत्वा सत्यवतीसूनुः कर्मयोगं सनातनम् ॥१४२
मुनीना भाषित कृत्स्नं प्रोवाच सुसमाहितः ।
य इमं पठते नित्यं सम्वाद कृत्तिवाससः ॥१४३
सनत्कुमारप्रमुखैः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
श्रावयेद्वाद्विजान्शुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान् ॥१४४

वसेदविकृतं वास कार्पास वा कषायकम् ।
तदेव परिधानाय शुक्लमच्छिद्रनुत्तमम् ॥८
उत्तर तु समाख्यातवास कृष्णाजिनशुभम् ।
अभावे दिव्यमजिनरौरववा विधीयते ॥९
उद्धृत्य दक्षिणंबाहुं सव्येबाहौ समर्पितम् ।
उपवीतं भवेन्नित्य निवीतकण्ठसज्जने ॥१०
सव्यं बाहु समुद्धृत्यदक्षिणेतुधृतद्विजाः ।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पैत्रेकर्मणि योजयेत् ॥११
अग्न्यागारे गवागोष्ठेहोमेजप्यंतथैवच ।
स्वाध्याये भोजनेनित्यब्राह्मणानाञ्चसन्निधौ ॥१२
उपासने गुरूणाञ्च सन्ध्यतो साधुसगमे ।
उपवीती भवेन्नित्य विधिरेष सनातन· ॥१३
मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
कुशेन निर्म्मिता विप्रा ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः ॥१४

एक ही वस्त्र चाहे वह कपास का बना हुआ हो अथवा कषाय हो किन्तु वह विकृत नहीं होना चाहिए ऐसा ही धारण करे। वह वस्त्र शुक्ल—छिद्र रहित और उत्तम होना चाहिए ॥८॥ उत्तरीय वस्त्र तो शुभ काले मृग का चर्म ही बताया गया है उसके अभाव में दिव्य अजिन या रौरव धारण किया जा सकता है ॥९॥ दक्षिण बाहु को ऊपर उठाकर सव्य बाहु मे उपवीत को नित्य समर्पित करना चाहिए। कण्ठ सज्जन मे निवीत होता है ॥१०॥ हे द्विजगण ! सव्य बाहु को समुद्धृत करके दक्षिण बाहु मे धृत प्राचीनावीत नाम से कहा गया है जिसका योजन पैत्र्य कर्म मे ही करना चाहिए ॥११॥ अग्नि के आगार मे—गौओं के गोष्ठ मे—होम के समय मे—जप्य काल मे—स्वाध्याय में—भोजन करने के समय मे—नित्य ब्राह्मणों की सन्निधि मे—गुरुजन की सेवा मे—दोनो सन्ध्याओं की उपासना के समय मे—साधु पुरुषों के सङ्गम में उपवीत के धारण करने वाला होना ही चाहिए—यह परम सनातन विधि है ॥१२-१३॥ विप्र की मेखला मूँज की त्रिवृत्त से युक्त और

श्लक्ष्ण बनानी चाहिए। हे विप्रो! कुशा से निर्मित हो और उसमें एक ही ग्रन्थि लगी हुई हो अथवा तीन ग्रन्थियों से युक्त होनी चाहिए ॥१४॥

धारयेद्वैल्वपालाशौ दण्डौ केशान्तकौ द्विज. ।
यज्ञार्हं वृक्षजं वाथ सौम्यमव्रणमेवच ॥१५
सायं प्रातर्द्विज सन्ध्यामुपासीत समाहित ।
कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्त्यक्त्वैना पतितो भवेत् ॥१६
अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सायम्प्रातर्यथाविधि ।
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणास्तथा ॥१७
देवताभ्यर्च्चनं कुर्यात्पुष्पै पत्रेणचाम्बुना ।
अभिवादनशील स्यान्नित्य वृद्धेषुधर्मत ॥१८
असावहं भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम् ।
आयुरारोग्यसान्निध्य द्रव्यादिपरिवर्जितम् ॥१९
आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्योविप्रोऽभिवादने ।
आकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्य· पूर्वाक्षरप्लुत ॥२०
न कुर्याद्योऽभिवादस्यद्विज प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्य.स विदुपायथाशूद्रस्तथैव सः ॥२१

द्विज को इतना लम्बा दण्ड करना चाहिए कि केशो के समीप तक पहुँच जावे। वह दण्ड विल्व और पलाश इनमे से किसी भी एक का होना चाहिए। यज्ञ के योग्य किसी भी अन्य वृक्ष का हो किन्तु वह परम सौम्य और व्रणों से रहित होना चाहिए ॥१५॥ द्विज को प्रात काल और सायकाल मे परम समाहित होकर सन्ध्या की उपासना अवश्य ही करनी चाहिए। स्वेच्छा से—लोभ से—भय से और मोह से इस उपासना का त्याग करके द्विज पतित हो जाया करता है ॥१६॥ इसके अनन्तर साय और प्रातः काल मे अग्नि कार्य अर्थात् हवन यथाविधि करना चाहिए स्नान करके देवो तथा ऋषियो का तर्पण करना चाहिए और पीछे अपने पितृगण का भी तर्पण करे ॥१७॥ इसके अनन्तर पत्र—पुष्प और जल के द्वारा देव का अभ्यर्चन करना चाहिए। धर्म के अनुसार नित्य ही अपने वृद्ध जनों

नहीं करना चाहिए। अन्य गुणों से समुदित होता हुआ भी जो गुरु का द्वेषी होता है वह अधःपतन का अधिकारी हो जाया करता है। इन गुरु वर्गों के मध्य में भी पाँच विशेष रूप से पूजा के योग्य हुआ करते हैं ॥३०-३१॥ उनमें भी आदि के तीन परम श्रेष्ठ होते हैं। उनमें भी माता परम सुपूजित कही गयी है। जो जन्म देती है जो पालन करती है और जिसके द्वारा विद्या का उपदेश किया जाता है। ज्येष्ठ भाई और भर्त्ता ये पांच गुरु कहे गये हैं। अपनी आत्मा के सभी प्रयत्नों से अथवा प्राणों के भी त्याग के द्वारा ये पाँच विशेष रूप से भूति की इच्छा रखने वाले के द्वारा पूजा के योग्य होते हैं। जितने माता और पिता हैं ये दोनों ही निर्विकारी होते हैं तब तक सब का परित्याग करके पुत्र को अपने माता-पिता की सेवा में सर्वदा परायण रहना चाहिए। यदि माता-पिता पुत्र के गुण गणों से परम प्रसन्न होते हैं तो उस पुत्र का पूर्ण धर्म सम्पन्न हो जाता है ॥३२-३५॥

स पुत्र.सकल धर्ममाप्नुयात्तेनकर्मणा।
नास्ति मातृसमो देवोनास्तितातसमोगुरुः ॥२६
तयोः प्रत्युपकारो हि न कथञ्चनविद्यते।
तयोर्नित्य प्रिय कुर्यात्कर्मणामनसा गिरा ॥३७
नताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यसमाचरेत्।
वर्जयित्वा मुक्तिफलंनित्यनैमित्तिकतथा ॥३८
धर्मः सारः समुद्दिष्ट प्रेत्यानन्तफलप्रदः।
सम्यगाराध्यवक्तार विसृष्टस्तदनुज्ञया ॥३९
शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य या पूज्यते दिवि।
यो भ्रातर पितृसम ज्येष्ठं मूर्खोऽवमन्यते ॥४०
तेन दोषेण स प्रेत्य निरयङ्घोरमृच्छति।
पुंसा वर्त्मनि तिष्ठेत पूज्यो भर्त्ता च सर्वदा ॥४१
अपि मातरि लोकेऽस्मिन्नुपकाराद्धि गौरवम्।
ये नरा भर्तापिण्डार्थं स्वान्प्राणान् सन्त्यजन्ति हि ॥४२

अपने माता-पिता के पूर्ण सन्तुष्ट रखने वाला पुत्र अपने इस कर्म से सम्पूर्ण धर्म की प्राप्ति कर लेता है। माता के समान इस संसार में अन्य कोई भी देवता नहीं है और पिता के तुल्य अन्य कोई गुरु भी नहीं है। ।।३६।। उनका कोई भी प्रत्युपकार होता ही नहीं है। अतएव उनका नित्य ही मन, वाणी और कर्म के द्वारा सर्वदा प्रिय ही करना चाहिए। उनके द्वारा आज्ञा न पाये जाने पर अन्य धर्म का आचरण कभी नहीं करना चाहिए। चाहे वह कर्म नित्य हो या नैमित्तिक हो। केवल मुक्ति फल का इसमें वर्जन होता है अर्थात् मुक्ति फल बिना आज्ञा के प्राप्त करने में संलग्न हो जावे ।।३७-३८।। धर्म को ही सबका सार कहा गया है जो मरने के पश्चात् आनन्द का प्रदान करने वाला है। वक्ता का भली भाँति समाराधना करके उसकी अनुज्ञा से विसृष्ट हुआ शिष्य विद्या का फल भोगता है और मृत्यु के पश्चात् वह दिव लोक में पूजा जाया करता है। जो पिता के समान बड़े भाई का अपमान किया करता है वह महान् मूर्ख है। इसी दोष से वह मरने के पीछे परम घोर नरक में जाया करता है पुरुषों के मार्ग में पूज्य भर्ता सर्वदा स्थित रहा करता है ।।३९-४१।। इस माता के लोक में उपकार से ही गौरव होता है, जो मनुष्य भर्तपिण्ड के लिये अपने प्राणों का त्याग कर देते हैं। उन लोगों के लिये भगवान् मनु ने अक्षय लोकों को कहा है ।।४२।।

तेषामथाऽक्षयाँल्लोकान् प्रोवाच भगवान्मनुः ।
मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ।।४३
असावहमितिब्रूयुः प्रत्युत्थाययवीयस. ।
अवाच्योदीक्षितोनाम्नायवीयानपियोभवेत् ।।४४
भो भवत्पूर्वकत्वेन अभिभाषेतधर्मवित् ।
अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसावन्द्य एव च ।।४५
ब्राह्मण.क्षत्रियाद्यैश्चश्रीकामैं सादरसदा ।
नाभिवाद्यास्तुविप्रेणक्षत्रियाद्याःकथञ्चन ।।४६
ज्ञानकर्मगुणोपेता येप्यजन्तिबहुश्रुता ।
ब्राह्मणःसर्ववर्णानास्वस्तिकुर्यादितिश्रुतिः ।।४७

सवर्णेषु सवर्णानां काम्यमेवाभिवादनम् ।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानांब्राह्मणोगुरुः ॥४८
पतिरेव गुरुः स्त्रीणांसर्वस्याभ्यागतोगुरुः ।
विद्या कर्मतपोबन्धुर्वित्तभवतिपञ्चमम् ॥४९
मान्यस्थानानिपञ्चाहुः पूर्वपूर्वगुरूत्तरात् ।
एतानि त्रिषु वर्णेषुभूयासि बलवन्तिच ॥५०

मामा—चाचा—श्वशुर—ऋषि और गुरु वर्ग से 'यह मैं हूँ'-ऐसा ही बोलना चाहिए चाहे ये युवा ही हो । जो दीक्षित हो वह यवीयान् भी क्यों न हो उसे नाम लेकर कभी नही बोलना चाहिए ॥४३॥ भोमवान अर्थात् आप शब्द के साथ हो धर्म के वेत्ता को अभिभाषण करना चाहिए। यह अभिवादन करने के योग्य-अर्चन करने के योग्य और शिर से वन्दना करने के योग्य हो है ॥४४-४५॥ जो श्री की कामना रखने वाले क्षत्रिय आदि है उनको सदा आदर के सहित ब्राह्मण को अभिवादन करना चाहिए और ब्राह्मण के द्वारा क्षत्रियादिक किसी भी तरह से पहिले अभिवादन नही करना चाहिए ॥४६॥ ज्ञान कर्म और गुणो से उपेत बहुश्रुत जो भजन किया करते हैं ब्राह्मण सभी वर्णों का स्वस्ति करे—ऐसा श्रुति का वचन है । सब वर्णों मे सवर्णों का जो अभिवादन होता है वह काम्य (कामना)से युक्त ही हुआ करता है । द्विजातियो का गुरु अग्नि है और सब वर्णों का गुरु ब्राह्मण होता है ॥ ४७ ॥ स्त्रियो का गुरु एक उसका पति ही होता है । अभ्यागत जो होता है वह सब का गुरु होता है । विद्या, कर्म, तप, बन्धु और वित्त पाँचवा होता है ॥ ४८ ॥ ये पाँच ही मान्य स्थान हुआ करते हैं और इनमे जो पूर्व (पहिला) पूर्व हैं वे उत्तर (पिछल) से गुरु होता है । ये तीनो वर्णों मे अधिक होने पर बल वाले हुआ करते हैं ॥४९-५०॥

यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमी गतः ।
पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे ॥५१
वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणेदुर्बलाय च ।
भिक्षामाहृत्यशिष्टानागृहेभ्य प्रयतोन्वहम् ॥५२

निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्यतस्तदनुज्ञया ।
भवत्पूर्वञ्चरेद्भैक्ष्यमुपनीतोद्विजोत्तमः ॥५३
भवन्मध्यन्तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ।
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनी निजाम् ॥५४
भिक्षेतभिक्षा प्रथमं या चैनं न विमानयेत् ।
स्वजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा ॥५५
भैक्ष्यस्यचरण युक्तं पतितादिषु वर्जितम् ।
वेदयज्ञैरहीनाना प्रपन्नाना स्वकर्मसु ॥५६

जहाँ पर ये उक्त वस्तु हैं वही यहाँ लोक मे मान्य होता है । दसमी की गत शूद्र भी मान्य होता है । ब्राह्मण, सती, राजा और चक्षुहीन को स्वय रुक कर मार्ग दे देना चाहिए ॥ ५१ ॥ जो वृद्ध हैं, भार से पीडित हो, रोगी हो और दुर्बल हो उनको भी मार्ग पहिले दे देना चाहिए । शिष्टो के यहाँ से नित्य भिक्षा ग्रहण करके प्रसन्न रहे ॥ ५२ ॥ जो भिक्षा लावे उसे ब्रह्मचारी को सर्व प्रथम अपने गुरुदेव की सेवा मे समर्पित करना चाहिए । गुरु की आज्ञा प्राप्त करके ही उसका पीछे अशन करे तथा मौन होकर ही अशन करना चाहिए । जो द्विज उपनीत होगया है उसे भवत् शब्द का प्रयोग करके ही भिक्षा करनी चाहिए अर्थात् 'भोमवति'–ऐसा भवत शब्द का पहिले प्रयोग कर 'भिक्षा देहि' इसे बोलना चाहिये ॥५३॥ जो क्षत्रिय है उसे 'भवत्'–इस शब्द का प्रयोग मध्य मे करना चाहिए यथा—'भिक्षा भो भवति देहि' यही कहना चाहिए । वैश्य को सब स अन्त मे भवत् करना चाहिए । माता, स्वसा, माता की भगिनी से प्रथम भिक्षा ग्रहण करे और इन सबका भी कर्त्तव्य है कि ब्रह्मचारी का अवमान न करे । स्वजाति के गृहो मे अथवा सवर्णों के गृहों मे ही भिक्षा करे । इनमे ही भिक्षा का समाचरण युक्त होता है । जो पतित आदि हो उनका त्याग कर देवे । जो वेद और यज्ञो से हीन हो तथा अपने ही कर्मों मे प्रपन्न रहने वाले हो उनको भी वर्जित कर देवें ॥५४-५६॥

ब्रह्मचारी हरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ।
गुरोः कुले न भिक्षेतनज्ञातिकुलबन्धुषु ॥५७

अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ।
सर्वं वाविचरेद्ग्राम पूर्वोक्तानामसम्भवे ॥५८
नियम्य प्रयतो वाचं दिशास्त्वनवलोकयत् ।
समाहृत्य तु तद्भैक्ष्य पचेदन्नममायया ॥५९
भुञ्जीत प्रयतोनित्यवाग्यतोऽनन्यमानसः ।
भैक्ष्येणावर्त्तयेन्नित्यमेकान्नादीभवेद् व्रती ॥६०
भैक्ष्येण वृत्तिनो वृत्तिरुपवाससमास्मृता ।
पूजयेदन्नं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् । ७१

ब्रह्मचारी को प्रतिदिन प्रयत होकर ही भिक्षा का आहरण करना चाहिए। गुरु के कुल में और ज्ञाति कुल के बन्धुओं में भिक्षा नहीं करे। ॥५७॥ लाभ न होने पर अन्य गृहों के पूर्व पूर्व को वर्जित कर देवे। पूर्व में कहे हुए यदि सम्भव न हो तो समस्त ग्राम मे विचरण करना चाहिए। ॥५८॥ प्रयत होकर वाणी का नियम न करे और दिशाओं को न देखते हुए ही उस भिक्षा को लाकर अमाया से अन्न का पाचन करना चाहिये। ॥५९॥ अनन्य मन होकर प्रयत रहते हुए ही मौन व्रत से नित्य भोजन करे। नित्य ही भिक्षा कर के निर्वाह करे। एक ही अन्न को खाने वाला व्रती को होना चाहिए। भिक्षा से अपनी वृत्ति का चलाना भी उपवास के ही समान बताया गया है। नित्य ही अन्न का पूजन करे और उसकी बुराई न करते हुए ही उसका अशन करना चाहिए ॥६०-६१॥

दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च ततो भुञ्जीत वाग्यत. ॥६२
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम् ।
अपुण्य लोकविद्विष्ट तस्मात्तत्परिवर्ज्जयेत् ॥६३
प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ।
नाद्यादुदङ्मुखो नित्य विधिरेष सनातनः ।
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत् ॥६४
शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत् ॥६५

पहिले जो भोज्य पदार्थ सामने हो उसे देख कर हर्षित होना चाहिए और प्रसन्न होना चाहिए। इसके पश्चात् मौन रहकर ही उसका भोजन

करे। जो भोजन आरोग्य न देने वाला, आयु न बढ़ाने वाला, स्वर्गीय सुख न देने वाला हो तथा अत्यधिक भोजन हो, अपुण्य, लोक के द्वारा विद्विष्ट हो उसका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ६३ ॥ पूर्व की ओर मुख करके अथवा सूर्य के सम्मुख होकर ही अन्नों का भोजन करे। उत्तर की ओर मुख करके कभी भी भोजन नहीं करे–यह ऐसा एक सनातन विधान है। हाथ और पैरों को धोकर भोजन करने वाले को दो बार उप स्पर्शन करना चाहिए ॥६४॥ किसी परम शुचि स्थल में समासीन होकर ही भोजन करके पुनः दो बार आचमन करे ॥६५॥

१३—सदाचारवर्णन

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे ।
ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वावासो विपरिधाय च ॥१
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽयुक्तभाषणे ।
ष्ठीवित्वाध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ॥२
चत्वरं वा श्मशानं वा समागम्य द्विजोत्तम ।
सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः ॥३
चण्डालम्लेच्छसभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।
उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यञ्चापि तथाविधम् ॥४
आचामेदश्रुपाते वा लोहितस्यतथैवच ।
भोजनेसन्ध्ययोः स्नात्वात्यागेमूत्रपुरीषयोः ॥५
आचान्तोऽप्याचमेत्सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यथः ।
अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव च ॥६
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शनीवीवापरिधायच ।
उपस्पृशेज्जलञ्चान्तस्तृणंवाभूमिमेवच ॥७

महर्षि व्यास देव ने कहा—भोजन करके, पान करके, सोकर, स्नान करके, गली में उपसर्पण करके, विलोमक ओष्ठों का स्पर्श करके, वस्त्र पहिन करके, रेत (वीर्य), मूत्र और मल का त्याग करके, अयुक्त भाषण

करने मे, थूकवर, अध्ययन के आरम्भ में, कास और श्वास के आगम में, चत्वर या श्मशान मे समागम करके द्विजोत्तम को दोनों सन्ध्याओं में उसी भाँति आचान्त होकर भी पुनः आचमन करना चाहिए ।।१-३।। चाण्डाल और म्लेच्छ के साथ सम्भाषण करने पर—स्त्री और शूद्र के उच्छिष्ट भाषण मे—उच्छिष्ट पुरुष का स्पर्श कर के तथा उस प्रकार का भोज्य का भी स्पर्श करके आचमन करना चाहिए। अश्रु पात मे तथा लोहित के पात मे—भोजन मे—दोनों सन्ध्याओं मे—स्नान करे—मूत्र और मल का त्याग करने मे आचान्त होकर भी पुनः आचमन करना चाहिए। सुप्तोत्थित होकर एक बार आचमन करे। अग्नि के और गौओं के आलम्भ मे स्पर्श करके प्रयत होते हुए आचमन करे ।।४-६।। स्त्रियों का अपने से स्पर्श होने पर नीवी का परिधान करके जल के मध्य मे जाकर उपस्पर्शन करे अथवा तृण और भूमिका स्पर्श करे ।।७।।

केशानाञ्चात्मनः स्पर्शं वाससोऽक्षालितस्य च ।
अनुष्णाभिरफेनाभिर्विशुद्धाद्भिश्च वाग्यत. ।।८
शौचेप्सु सर्वदाऽऽचामेदासीन. प्रागुदङ्मुखः ।
शिर प्रावृत्य कण्ठ वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा ।।९
अकृत्वा पादयोःशौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत ।
सोपानत्का जलस्थो वा नोष्णीषी चाऽऽचमेद्बुध' ।।१०
न चैव वर्षधाराभिर्हस्तोच्छिष्टे तथा बुध ।
नैकहस्तार्पितजर्लैर्विना सूत्रेण वा पुनः ।।११
नपादुकासनस्थोवाबहिर्जानुकराऽपिवा ।
विट्शूद्रादिकरामुक्तैर्नचोच्छिष्टैस्तथैवच ।।१२
नचैवाङ्गुलिभि.शस्तमकुर्वन्नन्यमानस. ।
नवर्णरसदुष्टाभिर्नचैवाप्रचुरोदकैः ।।१३
नपाणिक्षुभिताभिर्वानिबहिष्कक्षएवना ।
हृद्गाभि पूयतेविप्र.कण्ठगाभि क्षत्रिय.शुचि ।।१४
प्राशिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽन्ततः ।
अङ्गुष्ठमूलरेखाया तीर्थं ब्राह्मभिहोच्यते ।।१५

अपने ही केशों का स्पर्श तथा बिना धुले हुए वस्त्र का स्पर्श करके मनुष्यों (शीतल) फेन से रहित और विशुद्ध जल से मौन होकर शौच की इच्छा रखने वाले को पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठकर आचमन सर्वदा करना चाहिए। सिर को ढक कर अथवा कण्ठ को आवृत करके—कच्छ और शिखा को खोल कर तथा पैरों का शौच न करके आचान्त भी पुरुष अशुचि होता है। जूते पहिने हुए—जल में स्थित होकर उष्णीष (शिरोवेष्टन) को धारण करके बुध पुरुष को कभी आचमन नहीं करना चाहिए ॥८-१०॥ बुध पुरुष को वर्षा की धाराओं से आचमन नहीं करना चाहिए। तथा हाथ के उच्छिष्ट होने पर—एक ही हाथ में अर्पित जल से—सूत्र के न होने से—पादुका तथा आसन पर स्थित होकर—जानुओं के बाहिर हाथों को रखते हुए—विट् और शूद्र आदि के करों द्वारा छोड़े हुए तथा उच्छिष्ट जल से—अंगुलियों से शब्द करते हुए तथा अन्य मानस होकर कभी आचमन नहीं करना चाहिए। जो वर्ण और रस से दूषित जल हो या बहुत ही थोड़ा जल हो तथा जो पाणि से क्षुभित हो उससे बहिष्कक्ष न होकर ही आचमन करे। विप्रहृदय तक जल से पवित्र होता है और कण्ठ तक रहने वाले जल से क्षत्रिय शुचि होता है। वैश्य तो प्राशित जल से ही शुद्ध हो जाया करता है। स्त्री और शूद्र जल के स्पर्श मात्र से ही शुद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। अंगुष्ठ के मूल की रेखा में ब्राह्म तीर्थ कहा जाता है ॥११-१५॥

प्रदेशिन्याश्च यन्मूलं पितृतीर्थमनुत्तमम्।
कनिष्ठामूलतः पश्चात्प्राजापत्यं प्रचक्षते ॥१६

अङ्गुल्यग्रं स्मृतं दैवं तद्देवार्थं प्रकीर्त्तितम्।
मूलेवादैवमादिष्टमाग्नेयमध्यतः स्मृतम् ॥१७

तदेव सौमिकं तीर्थमेवज्ञात्वा नमुह्यति।
ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥१८

कायेन वाथ दैवेन याथाचान्ती शुचिर्भवेत्।
त्रिराचामेदपः पूर्वं ब्राह्मणः प्रयतस्ततः ॥१९

सवृताङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत् ।
अगुष्ठानामिकाभ्यान्तु स्पृशेन्नेत्रद्वय ततः ॥२०
तर्ज्जन्यगुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ।
कनिष्ठागुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत् ॥२१

प्रदेशिनी अगुलि का जो मूल होता है उसे आम पितृ तीर्थ कहा गया है। कनिष्ठा क मूल से पीछे प्राजापत्य कहा जाता है ॥१६॥ अगुलि के अग्रभाग मे दैव तीर्थ होता है उसको देव के लिये कीर्तित किया गया है। अथवा मूल मे देव आदिष्ट है और मध्य मे आग्नेय कहा गया है। वह ही सौमिक तीर्थ है इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता है। ब्राह्मण को ब्रह्म तीर्थ से ही नित्य उपस्पर्शन करना चाहिए ॥१७-१८॥ काम अथवा दैव से भी उसी भाँति आचान्त होने पर शुचि होता है। ब्राह्मण को प्रयत होकर तीन बार आचमन करना चाहिए। सवृत अगुष्ठ क मूल से मुख का समुपर्शन करना चाहिए। अगुष्ठ और अनामिका से दोनो नेत्रो का स्पर्श करना चाहिए ॥१६-२०॥ तर्जनी और अगुष्ठ के योग से दोनो नासिका के पुरो का स्पर्श करना चाहिए। कनिष्ठिका और अगुष्ठ के योग से दोनो कानो का स्पर्श करे ॥२१॥

सर्वाङ्गुलीभिर्बाहू च हृदयन्तु तलेन वा ।
नाभिः शिरश्च सर्वाभिरगष्ठेनाथवा द्वयम् ॥२२
त्रि प्राश्नीयात्तदम्भस्तुसुप्रीतास्तेनदेवता ।
ब्रह्मा विष्णुमहेशश्चभवन्तीत्यनुशुश्रुम ॥२३
गगाच यमुनाचैव प्रीयेतेपरिमार्ज्जनात् ।
सस्पृष्टयोर्लोचनयो प्रीयेते शशिभास्करौ ॥२४
नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये ।
श्रोत्रयो स्पृष्टयोस्तद्वत्प्रीयेतेचानिलानलौ ॥२५
सस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः ।
मूर्ध्नि सस्पर्शनादेव प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥२६

नोच्छिष्टं कुर्वते नित्यं विप्रुषोऽङ्गं नयन्तिया: ।
दन्तान्तर्दन्तलग्नेषु जिह्वोष्ठे रशुचिर्भवेत् ॥२७
स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
भूमिकास्ते समाज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥२८

अपनी समस्त अंगुलियों से दोनों बाहुओं और तल भाग में हृदय का स्पर्श करे। नाभि और शिर का स्पर्श सभी अंगुलियों से और अंगुष्ठ से या दोनों से स्पर्श करना चाहिए। उस जल को तीन बार प्राशन करे। इससे समस्त देवता परम प्रसन्न होते हैं। ब्रह्मा-विष्णु और महेश भी प्रसन्न होते हैं—ऐसा ही सुनते हैं ॥२२-२३॥ परिमार्जन करने से गङ्गा और यमुना प्रसन्न हुआ करती है लाचनों के सस्पर्श करने से सूर्य और चन्द्र देव प्रसन्न होते हैं। दोनों नासापुटों के स्पर्श करने से नासत्य और दस्त्र प्रसन्न हुआ करते हैं। दोनों श्रोत्रों के स्पर्श किये जाने पर अनिल और अनल देवता परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२४-२५॥ हृदय के स्पर्श करने पर सभी देवगण प्रसन्न होते हैं। मस्तक पर स्पर्श करने से परम-पुरुष प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२६॥ जो छोटे-छोटे जल के कण अङ्ग पर लग जाते हैं वे नित्य ही उच्छिष्ट नहीं किया करते हैं। दाँतों के अन्दर और दाँतों में लगे हुओं में जिह्वा और ओष्ठों से अशुचि हो जाता है ॥२७॥ दूसरों के आचमन करते हुए जो बिन्दु पादों का स्पर्श करते हैं उनको भूमिक ही मानना चाहिए। उनसे कभी भी अप्रयत नहीं होना चाहिए ॥२८॥

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे ।
फले मूलेक्षुदण्डे च न दोषम्प्राहुर्वै मनुः ॥२९
[illegible] ।
[illegible] ॥३०
तैजसं वा समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद् द्विजः ।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याह्रियते तु तत ॥३१
यद्यमन्यं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः ।
अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ॥३२

वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात्संस्पृष्टाचैवमेव हि ।
अरण्येऽनुदकेरात्रौ चौरव्याघ्राकुलेपथि ॥३३
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तोन दुष्यति ।
निधायदक्षिणेकर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ मुखः ॥३४
अह्निकुर्याच्छकृन्मूत्रंहात्रौचेद्दक्षिणामुख. ।
अन्तर्द्धायमहीकाष्ठैं पत्रैर्लोष्टैस्तृणेन वा ॥६५

मधुपर्क मे—सोम मे और ताम्बूल के भक्षण करने मे—फल मे—मूल ईत्व के दण्ड मे मनु ने कोई भी दोष नहीं कहा है ॥२६॥ प्रचुर अन्न और उदक के पान मे जो-जो द्विज दिष्ट हो उस द्रव्य को भूमि मे निक्षिप्त करके फिर आचमन करके अभ्युक्षेपण कर देना चाहिए ॥३०॥ तैजस को ग्रहण करके यदि द्विज उच्छिष्ट होता है तो भूमि में उस द्रव्य को डाल कर आचमन करके फिर उसका आहरण किया जाता है ॥३१॥ यदि यमन्त्र का ग्रहण कर उच्छेपण से सयुत होवे तो इस द्रव्य को न रखकर ही आचान्त होने पर शुचिता को प्राप्त कर लेता है ॥३२॥ वस्त्र आदि मे विकल्प होना है इस प्रकार से स्पर्श न करके ही होना है। अरण्य मे-बिना जल वाले स्थल मे—रात्रि मे—चोर तथा व्याघ्र से समाकुलित मार्ग मे मूत्र तथा मल को करके भी हाथ मे द्रव्य रखने वाला दूषित नही होता है। दक्षिण कर्ण मे ब्रह्म सूत्र को रखकर उत्तर की ओर मुख करके दिन मे शकृत और मूत्र का त्याग करे और रात्रि मे दक्षिणाभिमुख होकर त्याग करना चाहिए। उस भूमि को काष्ठ—पत्र-लोष्ठ और तृणो से ढक देवे ॥३५॥

प्रावृत्य च शिर' कुर्याद्विण्मूत्रस्य विसर्ज्जनम् ।
छायाकूपनदीगोष्ठचैत्यान्त पथि भस्मसु ॥३६
अग्नौ वेश्मश्मशानेचविण्मूत्रे न समाचरेत् ।
न गोपथे न कृष्टे वा महावृक्षेनशाड्वले ॥३७
न तिष्ठन्वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके ।
न जीर्णदेवायतने न वाल्मीके कदाचन ॥३८

न ससत्त्वेषु गर्त्तेषु नागच्छन्वा समाचरेत् ।
तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च ॥३९
न क्षेत्रे विमले चापि न तीर्थे न चतुष्पथे ।
नोद्याने न समीपे वानोपरे न पराशुचौ ॥४०
न सोपानत्पादुको वा गत्वा यानान्तरिक्षगः ।
न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्न च ॥४१

सिर को आवृत करके ही विट्—मूत्र का विसर्जन करना चाहिए। छाया—कूप—नदी—गोष्ठ—चैत्य के अन्दर—मार्ग—भस्म—अग्नि—वेश्म—श्मशान में कभी भी मल-मत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। गोपक में—जुती हुई भूमि में—महा वृक्ष के नीचे—शाद्वल में खड़े होकर या बिना वस्त्र वाला होकर और पर्वत की चोटी पर—जीर्ण देवता के आयतन में—वल्मीक में—जीवों से युक्त गर्त्तों में—चलते हुए कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। तुषाङ्गार—कपालों में तथा राज मार्गों में—विमल क्षेत्र में—तीर्थ में—चौराहे पर—उद्यान में—ऊपर भूमि में तथा परम अशुचि स्थल में भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। उपानहों को पहिने हुए तथा पादुका पहिने हुए-गमन करने वाला—यान में अन्तरिक्ष गामी होकर—स्त्रियों के सामने और गुरु ब्राह्मणों के समक्ष में भी मल-मूत्र का उत्सर्ग नहीं करे ॥३६-४१॥

न देवदेवालययोर्नद्यामपि कदाचन ।
ज्योतींषि वीक्षित्वा न वार्यभिमुखोऽथवा ॥४२
प्रत्यादित्यंप्रत्यनलंप्रतिसोमंतथैव च ।
आहृत्यमृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षणात् ॥४३
कुर्य्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः ।
नाहरेन्मृत्तिकांविप्रःपांशुलान्नचकर्दमात् ।
नमार्गान्नोपरादेशाच्छौचोच्छिष्टात्तथैवच ॥४४
न देवायतनात्कूपाद्ग्रामादन्तर्जलात्तथा ।
उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः ॥४५

देवों के देवालयों में और नदी में भी त्याग न करे। नदी और ज्योतियों को देख कर अथवा जल के सामने होकर—आदित्य—अग्नि और सोम की ओर मुख करके भी त्याग नहीं करना चाहिए। कच से मृत्तिका का लेकर जो लिप्त मल होता है उसका अपकर्षण करके अतन्द्रित होते हुए विशुद्ध जल से शौच करना चाहिए ॥४२-४३॥ विप्र को पांशुल से और कर्दम से मृत्तिका का ग्रहण नहीं करना चाहिए। मार्ग से और ऊपर स्थल से तथा शौच से उच्छिष्ट स्थान से—देवता के आयतन से—कूप से—ग्राम से और जल के अन्दर से भी कभी मृतिका का ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसके पश्चात् नित्य ही पूर्व में कहे हुए विधान से उपस्पर्शन करना चाहिए ॥४४-४५॥

१४—ब्रह्मचारी–धर्मवर्णन

एव दण्डोदिभिर्युक्त शौचचारसमन्वित ।
आहूतोऽध्ययन कुर्याद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१
नित्यमुद्धृतपाणि स्यात्सन्ध्याचार समन्वित ।
आस्यतामिति चोक्त सन्नाऽऽसीताभिमुखगुरो ॥२
प्रतिश्रवणसम्भाषेशयानोनसमाचरेत् ।
आसीनो न च तिष्ठन्वाउत्तिष्ठन्वापराङ्मुख. ॥३
न च शय्यासनञ्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनोभवेत् ॥४
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥५
गुरोर्यत्र प्रतीवादा निन्दाचापिप्रवर्त्तते ।
कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यवाततोऽन्यत ॥६
दूरस्थो नार्च्चयेदेन न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रिया ।
न चैवास्योत्तार ब्रूयात् स्थिते नासीतसन्निधौ ॥७

श्री व्यास देव ने कहा—इस प्रकार से दण्ड मेखला आदि सामान से युक्त ब्रह्मचारी को होना चाहिए और उसे शौच के आचार से समन्वित

होकर उसे रहना चाहिए । जब उसे गुरुदेव आहूत करें तो गुरु के समीप में उपस्थित होकर ही अध्ययन करना चाहिए तथा अध्ययन करने के समय में गुरु के मुख की ओर देखते रहना चाहिए ॥१॥ नित्य ही उद्धृत पाणि वाला होवे और सदाचार से समन्वित ब्रह्मचारी को रहना चाहिए। जब ब्रह्मचारी से कहा जावे 'बैठ जाओ'—तभी गुरु के समक्ष में उसे बैठना चाहिए ॥२॥ शयन करते हुए प्रतिश्रवण के सम्भाष में समाचरण न करे । बैठे हुए—खड़े होकर—उठते हुए और पराङ्मुख होकर तथा शय्या और आसन पर स्थित होकर गुरु की सन्निधि में सर्वदा नहीं रहना चाहिए । गुरु के चक्षु के विषय में यथेष्ट रूप से आसन पर स्थिति करने वाला भी कभी नहीं रहना चाहिए ॥३-४॥ परोक्ष में भी गुरुदेव के नाम का उच्चारण केवल नहीं करना चाहिए । गुरु की गति—भाषित और चेष्टित का अनुकरण भी कभी नहीं करना चाहिए । गुरुदेव का जहाँ पर कोई भी प्रतिवाद अथवा निन्दा हो रही हो वहाँ पर उसे न सुनने के लिये दोनों कानों को बन्द कर लेना ही उचित है अथवा तुरन्त ही उस स्थान का त्याग करके अन्य किसी स्थान में चले जाना चाहिए ॥५-६॥ दूर में स्थित होकर गुरु का अर्चन न करे तथा क्रुद्ध होकर अथवा स्त्री के समीप में रहकर भी गुरु की पूजा नहीं करनी चाहिए । गुरु के स्थित होने पर उसकी सन्निधि में कभी बैठना नहीं चाहिए । और गुरु के उत्तर को भी नहीं बोलना चाहिए ॥७॥

उदकुम्भं कुशान्पुष्पं समिधोऽस्याहरेत्सदा ।
मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वा समाचरेत् ॥८

नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि ।
आक्रमेदासनच्छायामासन्दी वा कदाचन ॥९

साधयेद्दन्तकाष्ठादीन् कृत्यञ्चास्मै निवेदयेत् ।
अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत्प्रियहिते रतः ॥१०

न पादौ सारयेदस्य सन्निधाने कदाचन ।
जृम्भाहास्यादिकञ्चैव कण्ठप्रावरणं तथा ॥११

वर्ज्जयेत्सन्निधौ नित्यमथास्फोटतमेव च ।
यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरु. ॥१२
आसीताध गुरोरुक्ते फलके वा समाहितः ।
आसने शयने याने नैवस्तिष्ठेत्कदाचन ॥१३
धावन्तमनुधावेत्तं गच्छन्तञ्चानुगच्छति ।
गाऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च ॥१४

जल का कलश—कुशा—पुष्प और समिधाऐं गुरु के लिये सर्वदा आहरण करना चाहिए । मार्जन—लेपन—अङ्गों का नित्य ही करे ॥८॥ गुरु के निर्माल्य पर शयन नहीं करे और इनकी तथा उपानहो को भी धारण नहीं करना चाहिए । आसन और छाया का आक्रमण न करे और किसी भी समय मे आसन्दी नही होना चाहिए ॥ ६ ॥ दन्तकाष्ठ (दांतुन) आदि का सायन करे और जो भी कृत्य हो उसे इनको निवेदन कर देना चाहिए । अपने गुरुदेव से बिना पूछे हुए ब्रह्मचारी शिष्य को कहीं भी नहीं जाना चाहिए । गुरुदेव के प्रिय कार्य तथा हित के कार्य मे रति रखने वाला होना चाहिए ॥१०॥ गुरुदेव के सन्निधान म कभी भी अपने पैरो को नहीं फैलाना चाहिए। जंभाई—हास्य आदिक तथा कण्ठ का प्रावरण और आस्फोटतम वचन का नित्य हो गुरु की सन्निधि में वर्जित रखना चाहिए । यथा समय पर अध्ययन करे जब तक गुरुदेव विमना न होवें ॥११-१२॥ गुरु के कथन करने पर ही समाहित होकर फलक (पट्टा) पर बैठ जावे । आसन—शयन और यान मे कभी भी एक साथ नही बैठना चाहिए । गुरुदेव धावन करते हो तो स्वय भी उनके पीछे दौड लगावें । गुरुदेव गमन करते हो तो उनके ही पीछे स्वयं भी शिष्य ब्रह्मचारी को गमन करना चाहिए । गौ—अश्व—ऊँट—यान-प्रासाद और प्रस्तर पर तथा कट पर एक साथ गुरु के नही बैठे ॥१३-१४॥

नाऽऽसीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलकनौषु च ।
जितेन्द्रियः स्यात्सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः ॥१५
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां मितभाषिणीम् ।
गन्धमाल्यं रसम्भव्यं शुक्लम्प्राणिविहिंसनम् ॥१६

अभ्यगञ्चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च ।
कामं लोभं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्तनम् ॥१७
द्यूतंजनपरीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा ।
परोपघातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥१८
उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् ।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्ष्यञ्चाहरहश्चरेत् ॥१९
कृतञ्च लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्युषितञ्च यत् ।
अनृत्यदर्शी सततं भवेद्गीतादिनिस्पृहः ॥२०
नाऽऽदित्यं वै समीक्षेत न चरेद्दन्तधावनम् ।
एकान्तमशुचिस्त्रीभिः शूद्रान्त्यैरभिभाषणम् ॥२१

शिला के फलक पर और नाव में अपने गुरु के साथ में नहीं बैठना चाहिए। ब्रह्मचारी को निरन्तर इन्द्रियों को जीतने वाला–आत्मा को वश में रखने वाला—शुचि और क्रोध रहित होना चाहिए ॥१५॥ सर्वदा हित का भाषण करने वाली मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए। गन्ध—माल्य—मध्य रस—शुक्ल—प्राणियों की विशेष हिंसा–अभ्यङ्ग–अञ्जन—उपानत्—छत्र धारण—काम—क्रोध—लोभ—भय–निद्रा—गीत–वादित्र—नृत्य—द्यूत—जनों का परीवाद—स्त्री की प्रेक्षा—आलम्भन—पर का उपघात–पैशुन्य इन सब का परित्याग ब्रह्मचारी को कर देना चाहिए ॥१५-१८॥ जल का कलश—पुष्प—गोबर—मृत्तिका—कुश आदि पदार्थ जितने भी आवश्यक हो लाने चाहिए और नित्य-प्रति भिक्षाचरण का समाचरण करे। कृत और सब प्रकार कालवण तथा पर्युषित का वर्जन करना चाहिए। सर्वदा नृत्य देखने वाला नहीं होवे और ब्रह्मचारी को गीत आदि स्पृहा नहीं रखनी चाहिए। सूर्य के सामने दृष्टि करके नहीं देखे और दन्त धावन नहीं करे। एकान्त में अशुचि स्त्रियों के साथ तथा शूद्र और अन्त्यजों के साथ अभिभाषण नहीं करना चाहिए ॥१९-२१॥

गुरुप्रियार्थं सर्वं हि प्रयुञ्जीत न कामतः ।
मलापकर्पणं स्नानमाचरेद्वै कथञ्चन ॥२२

न कुर्यान्मानस विप्रो गुरोस्त्यागे कदाचन ।
मोहाद्वा यदि वा लोभात्त्यक्त्वैन पतितो भवेत् ॥२३
लौकिकं वैदिकञ्चापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
आददीतयतो ज्ञानं न तद्रुह्येत्कदाचन ॥२४
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत् ॥२५
गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्‌वृत्तिमाचरेत् ।
नचातिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत् ॥२६
विद्यागुरुष्वेतदेव नित्यावृत्तिः स्वयोनिषु ।
प्रतिषेधत्सु चाधर्माद्धितञ्चोपदिशत्स्वपि ॥२७
श्रेयस्सु गुरुवद्‌वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ।
गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥२८

जो कुछ भी करे वह सब गुरुदेव के प्रियता के लिये ही करे अपनी इच्छा से कुछ भी न करे। मल का उत्सर्ग और स्नान किसी प्रकार से करे। विप्र को गुरु का मानस त्याग भी कभी नहीं करना चाहिए। मोह के वश में होकर अथवा लोभ में फँस कर गुरु का त्याग करने से मनुष्य पतित हो जाया करता है ॥२२-२३॥ लोक से सम्बन्ध रखने वाला—वैदिक और आध्यात्मिक ज्ञान इनमें से जो या जिनसे ग्रहण करे उसको गुरु मानना चाहिए और कभी भी उससे द्रोह नहीं करे ॥२४॥ यदि गुरु भी अवलिप्त घर निस (घमण्डी) हो तथा क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए—इसका तनिक भी ज्ञान न रखता हो तथा उत्पथ में प्रतिपन्न हो गया हो एवं गुरु के त्याग कर देने का वचन मनु ने कहा है। गुरु के भी गुरु के सन्निहित होने पर गुरु के समान ही भक्ति का समाचरण करना चाहिए। गुरु के द्वारा अति सृष्ट हाता हुआ अपने गुरुओं का अभिवादन करना चाहिए ॥२५-२६॥ इसी प्रकार का व्यवहार विद्या गुरुओं के विषय में भी करना चाहिए-नित्यावृत्ति स्व योनियों में और अधर्म से प्रतिषेध करने वाला में और हित का उपदेश करने वाले में भी वैसा ही गुरु के तुल्य व्यवहार करना चाहिए। गुरु के पुत्रों में गुरु की

स्त्रियों में और गुरु के अपने बन्धुओं में नित्य ही गुरु के समान ही वृत्ति करनी चाहिए यही धर्म की बात है ॥२७-२८॥

बाल:सम्मानयन्मान्यान् शिष्योवायज्ञकर्मणि ।
अध्यापयन् गुरुसुतोगुरुवन्मानमर्हति ॥२९
उत्सादनवं गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने ।
न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयो शौचमेवच ॥३०
गुरुवत्परिपूज्याश्चसवर्णागुरुयोषितः ।
असवर्णास्तुसम्पूज्या प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥३१
अभ्यञ्जन स्नापनञ्च गात्रोत्सादनमेव च ।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानाञ्चप्रसाधनम् ॥३२
गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाद्येह पादयोः ।
कुर्वीत वन्दन भूमावसावहमिति ब्रुवन् ॥३३
विप्रोष्य पादग्रहणमन्वसञ्चाभिवादनम् ।
गुरुदारेषु सर्वेषु सता धर्ममनुस्मरन् ॥३४
मातृष्वसा मातुलानाश्वश्रूश्चाथपितृष्वसा ।
सम्पूज्यागुरुपत्नीचसमास्तागुरुभार्यया ॥३५

यज्ञ कर्म मे बाल शिष्य मान्यों का सम्मान करते हुए और अध्यापन करते हुए गुरु का पुत्र गुरु के समान ही सम्मान करने के योग्य होता है। गात्रों का उत्सादन—स्नापन—उच्छिष्ट भोजन और पादों का शौच गुरु-पुत्र का नहीं करना चाहिए ॥२९ ३०॥ गुरु के समान ही सवर्ण गुरु की पत्नियाँ पूजा के योग्य होती है। जो असवर्णा पत्नियाँ हो व भी प्रत्युत्थान और अभिवादनों के द्वारा सम्पूज्य होती है ॥३१॥ अभ्यञ्जन—स्नापन और गात्रोत्सादन तथा केशों का प्रसाधन गुरु की पत्नियों के कभी भी नहीं करने चाहिएँ ॥३२॥ जो गुरु की पत्नी युवती हो तो उनके चरणों में अभिवादन नहीं करना चाहिए। यह मैं अमुक हूँ—ऐसा मुख से बोलते हुए केवल दूर से भूमि मे ही प्रणाम करना चाहिए ॥३३॥ विप्रोष्यपादों का ग्रहण और प्रतिदिन अभिवादन सब गुरु की पत्नियों मे सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करते हुए मातृष्वसा—मातुला—श्वश्रू—पितृष्वसा—

गुरु पत्नी ये सभी गुरु की भार्या के समान भली-भाँति पूजा के योग्य होती हैं ॥३४-३५॥

सवर्णाऽहन्यहन्यपि ।
भ्रातुर्भार्या (भार्याण) च संग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि ।
विप्रस्य तूपसग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥३६॥
पितुर्भगिन्या मातुश्च ज्यायस्या च स्वसर्यपि ।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥३७
एवमाचारसम्पन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम् ।
वेदमध्यापयेद्धर्मं पुराणाङ्गानि नित्यश ॥३८
सम्वत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन् ।
हरते दुष्कृत तस्य शिष्यस्यवसतोगुरुः३९
आचार्यपुत्र शुश्रूषुर्ज्ञानदोधार्मिक शुचि ।
सूक्तार्थदोऽरस.साधु.स्वाध्यायादशधर्मत. ॥४०
कृतज्ञश्च तथाद्रोहीमेधावीलु भकृन्नर ।
आप्तःप्रियोऽथविधिवत् षडध्याप्याद्विजातय ॥४१
एतेषु बा (ब्र)ह्मणो दानमन्यत्र च यथोदितान् ।
आचम्य सयतो नित्यमधीयीत ह्युदङ् मुख ॥४२

भाई की भार्या जो सवर्णा हो उसका भी सग्रहण करना चाहिए और दिन प्रति-दिन उसका भी अभिवादन करे। विप्र की ज्ञाति सम्बन्धी योषितों का उप सग्रह करना चाहिए। पिता की भगिनी तथा माता की भगिनी और बड़ी बहिन का भी माता की ही भाँति समादर करना चाहिए किन्तु माता वस्तुत इन सब में अत्यधिक गौरव युत होती है ॥३६-३७॥ इस प्रकार के आचार से युक्त—आत्मवान्—अदाम्भिक को वेद का अध्यापन कराना चाहिए और नित्य ही धर्म पुराण तथा अङ्गों का भी अध्यापन करे ॥३८॥ एक सम्वत्सर तक शिष्य के रहने पर गुरु ज्ञान का निर्देश करते हुए वहाँ पर निवास करने वाले शिष्य का दुष्कृत गुरु हरण किया करते हैं ॥३९॥ आचार्य का पुत्र—शुश्रूषा करने वाला—ज्ञान का दाता—धार्मिक—शुचि—सूक्त के अर्थ को देने वाला—अरस—साधु—स्वाध्याय वाला तथा दश धर्मों वाले धर्म

से युक्त—कृतज्ञ—अद्रोही—मेधावी—उपकारी आप्त—प्रिय—विधि का ज्ञाता थे छै द्विजाति अध्यापन करने योग्य हैं ॥४०-४१॥ इनमे ब्राह्मण दान है और अन्यत्र यथोदितो को देवे। आचमन करके संयत होकर उत्तर की ओर मुख करके नित्य ही अध्ययन करना चाहिए ॥४२॥

''उपसंगृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामस्त्विति नारभेत् ॥४३
अनुकूलं समासीन. पवित्रैश्चैव पावित'।
प्राणायामैस्त्रिभि' पूतस्तत ओङ्कारमर्हति ॥४४
ब्राह्मण: प्रणवकुर्यादन्तेचविधिवद्द्विज:।
कुर्यादध्ययन नित्यब्रह्माञ्जलिकरस्थित: ॥४५
सर्वेषामेवभूतानावेदश्चक्षु:सनातनम्।
अधीयीताप्ययनित्यब्राह्मण्याच्च्यवतेऽन्यथा ॥४६
योऽधीयीतऋचोनित्यक्षीराहुत्यासदेवता:।
प्रीणातितर्पयन्त्येनकामैस्तृप्ता सदैवहि ॥४७
यजूंष्यधीते नियत दध्ना प्रीणाति देवता:।
सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम् ॥४८
अथर्वाङ्गिरसो नित्यमध्वाप्रीणातिदेवता.।
वेदाङ्गानिपुराणानिमासैश्चतर्पयेत्सुरान् ॥४९

गुरु देव के चरणो का उप सग्रह करके गुरु के मुख को देखता हुआ ही जब-जो अध्ययन करो—ऐसा बोलना चाहिए। विराम ही—ऐसा कहने पर आरम्भ नही करना चाहिए ॥४३॥ अनुकूल समासीन होते हुए पवित्रो से पावित तथा तीन प्राणायामो से पूत होकर फिर ओङ्कार के योग्य होना है ॥४४॥ ब्राह्मण को प्रणव का जाप करना चाहिए और फिर अन्त मे द्विज को विधि के साथ ब्रह्माञ्जलि करो से स्थिर होकर नित्य ही अध्ययन करना चाहिए ॥४५॥ सभी भूतो का वेद सनातन चक्षु है। इसका नित्य ही अध्ययन करना चाहिए अन्यथा इसके अध्ययन न करने पर ब्राह्मणत्व से ही च्युत हो जाया करता है ॥४६॥ जो नित्य ही ऋचाओ का अध्ययन किया करता है और क्षीर की आहुतियो से देवता

को सन्तृप्त किया करता है उसको वे तृप्त हुए देवता कामनाओं से सदैव ही सन्तृप्त किया करते हैं ॥४७॥ जो यजुर्वेद का नियत रूप से अध्ययन करता है और दधि से देवों का तर्पण किया करता है तथा जो सामवेद का अध्ययन किया करता है और प्रतिदिन घृत की आहुतियाँ देता है ॥४८॥ अथर्व आङ्गिरस और वेदों के अङ्ग शास्त्र और पुराण का अध्ययन करने वाला गुरो का तर्पण किया करता है ॥४६॥

अपांसमीपेनियतो नैत्यकविधिमाश्रित ।
गायत्रीमप्यधीयीतगत्वारण्यसमाहित ॥५०
सहस्रपरमादेवीं शतमध्या दशावराम् ।
गायत्री वै जपेन्नित्य जपयज्ञ प्रकीर्त्तित. ॥५१
गायत्रीञ्चैव वेदांस्तु तुलयातोलयत्प्रभुः ।
एकतश्चतुरो वेदान् गायत्रीञ्च तथैकत ॥५२
ओङ्कारमादित कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम् ।
ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्र श्रद्धयान्वित ॥५३
पुराकल्पे समुत्पन्नाभूर्भुव स्व सनातना: ।
महाव्याहृतयस्तिस्र सर्वा शुभनिवर्हणा ॥५४
प्रधानपुरुष कालोविष्णुर्ब्रह्मा महेश्वर ।
सत्त्वरजस्तमस्तिस्र क्रमाद्व्याहृतय स्मृता ॥५५
ओङ्कारस्तत्परं ब्रह्मसावित्री स्यात्तदक्षरम् ।
एषमन्त्रोमहायोग सारात्सारउदाहृत ॥५६

किसी जलाशय के समीप में नियत होकर नैत्यिक विधि का आश्रय ग्रहण करने वाला अरण्य में जाकर पूर्ण समाहित होते हुए गायत्री का भी अध्ययन करे ॥५०॥ गायत्री का एक सहस्र नित्य जाप सर्वोत्तम है—सौ मन्त्र का जप मध्यम है और कम से कम दस ही बार जाप करना अवर श्रेणी का जप होता है। गायत्री का नित्य ही जप करना चाहिए। यही जप यज्ञ कहा गया है ॥५१॥ गायत्री मन्त्र को और समस्त वेदों को प्रभु ने एक बार तुला में रखकर तोला था एक तरफ तो पलड़े में चारों वेद थे और एक ओर केवल एक गायत्री मन्त्र ही था। आदि में ओङ्कार

करके उसके अनन्तर व्याहृतियाँ हैं इसके पश्चात् सावित्री है उसका एकाग्र चित्त वाला होकर ही श्रद्धा से समन्वित होकर जप करना चाहिए ॥५२-५३॥ पहिले कल्प में भूः भुवः स्वः ये सनातन समुत्पन्न हुई थीं। ये तीनों महाव्याहृतियाँ हैं। क्रम से ही ये व्याहृतियाँ कही गई हैं। ये सब शुभ की निर्वहण करने वाली है। प्रधान पुरुष काल—ब्रह्मा—विष्णु महेश्वर—सत्व, रजतम ये क्रम से व्याहृतियाँ पुकारी गयी हैं। ओङ्कार उससे पर वह अक्षर ब्रह्म सावित्री है। यह मन्त्र महायोग है जो सार में भी सार कह दिया गया है ॥५४-५६॥

याऽधीतेऽहन्यहन्येतां सावित्रीं वेदमातरम्।
विज्ञायार्थं ब्रह्मचारीमयातिपरमांगतिम् ॥५७
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी।
न गायत्र्याः परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते ॥ ५८
श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः।
आषाढ्यां प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम् ॥५९
उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान्विप्रोर्द्धपञ्चमान्।
अधीयीत शुचौदेशे ब्रह्मचारीसमाहितः ॥६०
पुष्ये तु छन्दसांकुर्याद्बहिरुत्सर्जनन्द्विजा।
माघशुक्लस्यवा प्राप्तेपूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥६१
छन्दसां प्रीणनंकुर्यात्स्वेषुऋक्षेपुवैद्विजाः।
वेदाङ्गानि पुराणानिकृष्णपक्षेच मानव ॥६२
इमान्नित्यमनध्यायनधीयानो विवर्जयेत्।
अध्यापनं च कुर्वाणो ह्यनध्यायन्विवर्जयत् ॥६३

जो पुरुष दिन प्रतिदिन इस वेद माता सावित्री देवी का अध्ययन किया करता है और ब्रह्मचारी इसके अर्थ को समझ कर इसका जाप करता है वह परम गति को प्राप्त होता है। यह गायत्री वेदो की जननी है और गायत्री लोकों को पावन करने वाली है। गायत्री से परम अन्य जाप ही नही है—यही विशेष रूप से जान कर मुक्त हो जाता है ॥५७-५८॥ श्रावण मास की पूर्णमासी में—आषाढ की अथवा भाद्रपद की

पूर्णमासी मे हे द्विजोत्तमो ! वेद का उपाकरण कहा गया है ।।५९।। हे विप्र ! ऊर्ध्व पाँच मासो तक ग्राम—नगर का त्याग करके किसी शुचि देश मे ब्रह्मचारी को समाहित होकर पुष्य नक्षत्र मे बाहिर छन्दो का उत्सर्जन करना चाहिए । हे द्विजगण ! माघ शुक्ल के प्राप्त होने पर प्रथम दिन मे पूर्वाह्न म छन्दो का प्राशन करे । अपने ही नक्षत्रो मे वेदो के अङ्गो का करे तथा पुराणो का मानव का कृष्ण पक्ष मे करना चाहिए ।।६०-६२।। इन सब को नित्य करे किन्तु अध्ययन करने वालो को जो अनध्याय हो उनमे अध्ययन का वर्जन कर देवे जो अध्यापन का कार्य करता है उसको भी अध्यापन का कार्य वर्जित कर देना चाहिए ।।६३।।

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवापांशुसमूहने ।
विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानाञ्च सम्प्लवे ।।६४
आकालिकमनध्यायमेते ष्वाह प्रजापतिः ।
निर्घातेभूमिचलने ज्योतिषाञ्चोपसर्जने ।।६५
एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ।
प्रादुष्कृतेऽग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने ।।६६
सज्योति स्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ।
नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ।।६७
धर्मनैपुण्यकामाना पूतिगन्धेन नित्यश. ।
अन्तःशवगते ग्रामे वृपलस्यच सन्निधौ ।।६८
अनध्यायो मुच्यमाने समवायेजनस्य च ।
उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रेचाविवर्जयेत ।।६९
उच्छिष्ट· श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत् ।
प्रतिगृह्य: द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् ।।७०

रात्रि मे कर्णश्रव वायु मे—दिन मे पाँशु के समूहन मे—विद्युत्—स्तनित और वर्षा मे—महान् उल्काओ के सम्प्लव मे प्रजापति ने इन अनाध्यायो को आकालिक अनध्याय कहा है । निर्घात मे—भूमि कम्पन मे—ज्योतियो के उपसर्जन मे इन अनाध्यायो को भी ऋतु मे भी आकालिक ही समझना चाहिए । अग्नि के प्रादुष्कृत होने पर और विद्युत्स्तनित

के होने पर वह ज्योति अनाध्याय होती है बिनाऋतु के यहाँ ५२ दर्शन होने पर होता है। नित्य अनध्याय ग्रामों मे और नगरों मे ही होता है ।।६४-६७।। धर्म मे पुण्य काम वालो का पूति गन्ध से नित्य ही होता है। ग्राम मे अन्दर शव के जाने पर—वृषल की सन्निधि मे जनों के समवाय के युग्यमान होने पर अनध्याय होता है। उदक मे मध्यरात्र मे विट् और मूत्र को वर्जित कर देवे। उच्छिष्ट और श्राद्ध भोगी को मन से भी चिन्तन नहीं करना चाहिए। विद्वान् द्विज प्रतिग्रहण करके एकोद्दिष्ट का केतन होता है ।।६८-७०।।

श्राद्धं न कीर्त्तयेद्ब्रह्मराज्ञो राह्योश्चसूतके।
यावदेकोऽनुदिष्टस्य स्नेहो लेपश्चतिष्ठति ।।७१
विप्रस्य विपुले (विद्रुषु) देहे तावद्ब्रह्म न कीर्त्तयेत्।
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा वै चावसिक्थकाम् ।।७२
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा मूलकाद्यन्नमेव च।
नीहारेबाणपाते च सन्ध्ययोरुभयोरपि ।।७३
अमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषु च।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ।।७४
अष्टकासु त्र्यहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु।
मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च ।।७५
तिस्रोऽष्टका समाख्याताः कृष्णपक्षे तु सूरिभिः।
श्लेष्मान्तकस्य च्छायाया शाल्मलेर्मधुकस्य च ।।७६
कदाचिदपिनाध्येयं कोविदारकपित्थयोः।
समानविद्ये च मृते तथा सब्रह्मचारिणि ।।७७

राजा और राहु के सूतक मे तीन दिन तक ब्रह्म कीर्तन नही करना चाहिए। जब तक अनुदिष्ट का एक स्नेह और लेप स्थित रहता है। विप्र के विपुल देह मे तब तक ब्रह्म का कीर्तन नहीं होना चाहिए। शयन करते हुए—प्रौढ़पादो वाला होकर और अवसक्थिका को करके आमिष खाकर तथा मूलकादि के अन्न को खाकर अध्ययन नहीं करना चाहिए। नीहार मे—बाणपात मे और दोनो से सन्ध्याओं मे भी—अमावस्या—

पूर्णमासी—चतुर्दशी—अष्टमी तिथियों में—उपाकर्म में और उत्सर्ग में तीन रात्रि तक क्षपण कहा गया है ।।७३-७४।। अष्टकाओं में अहोरात्र अनध्याय रहता है। ऋतु की अन्तिम रात्रियों में—मार्गशीर्ष—पौष—माघ मासों में तीन अष्टका कही गयी हैं जो सूरियों ने कृष्ण पक्ष में बतलाई हैं। श्लेष्मान्तक—शाल्मलि और मधुक की छाया में तथा को-विदार और कपित्थ की छाया में कभी भी अध्ययन नहीं करना चाहिए। किसी समान विद्या वाले पुरुष के मृत हो जाने पर तथा ब्रह्मचारी की मृत्यु होने पर भी अनाध्याय होता है ।।७५-७७।।

आचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ।
छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्त्तिताः ।।७८
हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान्विस (व) र्जयेत् ।
नैत्यिके नास्त्यनध्यायः सन्ध्योपासन एव च ।।७९
उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि ।
एकामृचमथैकं वा यजुः सामाथ वा पुनः ।।८०
अष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चातिवायति ।
अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ।।८१
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वाण्येतानि वर्जयेत् ।
एष धर्मः समासेन कीर्त्तितो ब्रह्मचारिणाम् ।।८२
ब्रह्मणाभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।
योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजाः ।।८३

आचार्य के संस्थित होने पर भी तीन रात्रि का क्षपण कहा गया है। ये विप्रों के छिद्र हैं जो अनाध्याय कीर्तित किये गये हैं ।।७८।। उनमें राक्षस लोग हिंसन किया करते हैं इसीलिये इनका वर्जन कर देना चाहिए। नित्य होने वाले कर्म में कभी अनध्याय नहीं होता है और सन्ध्योपासन में ही अनाध्याय नहीं होता है ।।७९।। उपाकर्म में कर्म के अन्त में होम के मन्त्रों में एक ऋचा को अथवा एक यजुर्वेद के मन्त्र को अथवा सामवेद के मन्त्र को अष्टकाओं में तथा मारुत के अतिवायित होने पर भी अध्ययन करना चाहिए। वेद के अङ्गों शास्त्रों में तथा इतिहास पुराणों में अनाध्याय

नहीं होता है। अन्य धर्म शास्त्रों में भी इन पर्वों में वर्णन नहीं करना चाहिए। हमने यह ब्रह्मचारियों का धर्म संक्षेप से बतला दिया है ॥८०-८२॥ पहिले इसे ब्रह्माजी ने भावित आत्मा वाले ऋषियों से कहा था। हे द्विजगण! जो श्रुति का अध्ययन न करके अन्यत्र यत्न किया करता है ॥८३॥

सचम्मूढोनतम्भाष्योवेदवाह्योद्विजातिभिः ।
नवेदपाठमात्रेणसन्तुष्टोर्वैद्विजोत्तम. ॥८४
एवमाचारहीनस्तु पङ्के गौरिवसीदति ।
योऽधीत्य विधिवद्वदं वेदार्थनविचारयेत् ॥८५
स चान्धशूद्रकल्पस्तु पदार्थं न प्रपद्यते ।
यदिवात्यन्तिकं वासं कर्तुमिच्छतिवैगुरौ ॥८६
युक्तः परिचरेदेनमाशरीराभिघातनात् ।
गत्वा वनं वा विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥८७
अभ्यसेत्स तदा नित्यं ब्रह्मनिष्ठ. समाहित. ।
सावित्री शतरुद्रीय वेदाङ्गानि विशेषतः ।
अभ्यसेत्ससततं युक्तो भस्मस्नानपरायणः ॥८८
एतद्विधानंपरमंपुराणं वेदागमे(वेदांगत) सम्यगिहेरितञ्च ।
पुरा महर्षिप्रवरानुपृष्ट स्वायम्भुवो यन्मनुराह देवः ॥८९
एवमीश्वरसमर्पितान्तरो योऽनुतिष्ठति विधिं विधानवि(व)त् ।
मोहजालमपहाय सोऽमृत याति तत्पदमनामय शिवम् ॥९०

वह परम सम्मूढ है और सम्भाषण करने के योग्य नहीं है तथा द्विजातियों के द्वारा वह वेद बहिष्कृत भी होने के योग्य ही होता है। द्विजोत्तम केवल वेद के पाठ से ही सन्तुष्ट नहीं होता है। इस प्रकार से जो आचार से हीन होता है वह मनुष्य पङ्क (दलदल) में फँसी हुई गौ की भाँति ही दुःखभागी हुआ करता है। जो विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके भी वेद के अर्थों का विचार नहीं करता है वह तो एक प्रकार से अन्धा ही है और वह शूद्र के ही समान होता है क्योंकि उसके पास पदार्थ प्रपन्न नहीं हुआ करता है। यदि गुरु के समीप में ही आत्यन्तिक निवास

करने की इच्छा करता है तो युक्त होकर गुरु की परिचर्या करनी चाहिए जब तक भी इस शरीर का अभियानन नहीं होना है अर्थात् मृत्यु पर्यन्त करना चाहिए। अथवा वन में जाकर अग्नि का विधि विधान के साथ हवन करना चाहिए ॥८४ ८७॥ उसे नित्य ही उस समय में ब्रह्म में निष्ठ होकर परम समाहित रहते हुए अभ्यास करना चाहिए। विशेष करके उसे सावित्री—शतरुद्रीय और वेदों के अङ्ग शास्त्रों का निरन्तर भस्म और स्नान में परायण होकर ही युक्त होकर अभ्यास करना चाहिए। ॥८८॥ यह विधान परम पुराण है वेदों में और आगम में भली भाँति कहा गया है। पहिले समय में महर्षि प्रवरों के द्वारा पूछे गये स्वायम्भुव मनु देव ने इसको कहा है ॥८६॥ इस प्रकार से ईश्वर के ही लिये अपने अन्तर को समर्पित करने वाला जो विधान का जाता इस विधि को किया करता है वह सांसारिक मोह के जाल को काट कर वह अमृत पद को प्राप्त किया करता है जो वह पद अनामय और परम शिव होता है ॥६०॥

१५—गृहस्थधर्मवर्णन

वेद वेदौ तथा वेदान्विन्द्याद्वा चतुरो द्विजा ॥
अधीत्य चाभिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः ॥१
गुरवे तु धनदत्त्वास्नायीनतदनुज्ञया ।
चीर्णव्रतोऽथयुक्तात्मा स शक्तःस्नातुमर्हति ॥२
वैण्ववीधारयेद्यष्टिमन्तर्वास तथोत्तरम् ।
यज्ञोपवीतद्वितय सोदकञ्च कमण्डलुम् ॥ ३
छत्रं चोष्णीषममल पादुके चाप्युपानहौ ।
रौक्मे च कुण्डलेवेदव्युप्तकेशनख शुचि ॥४
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्वहिर्माल्य न धारयेत् ।
अन्यत्र काञ्चनाद्विप्र. नरक्ता विभृयात्स्रजम् ॥५

शुक्लाम्बरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः ।
न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै वैभवे सति ॥६
नारक्तमुल्वणञ्चान्यधृतवासो न कुण्डिकाम् ।
नोपानहौस्रजवाथपादुकेन प्रयोजयेत् ॥७

श्री व्यास देव ने कहा—हे द्विजगण ! एक ही वेद को दो वेदों को अथवा चारों ही वेदों को प्राप्त करना चाहिए इन वेदों का अध्ययन करके और इनके अर्थ को जान कर फिर ब्रह्मचारी को स्नान करना चाहिए। ॥१॥ अपने गुरु देव को धन समर्पित करके उनकी आज्ञा से ही स्नान करे। जो चीर्ण व्रत वाला हो गया है और युक्त आत्मा वाला है वह शक्त है और स्नान करने की योग्यता को प्राप्त करता है ॥२॥ फिर ब्रह्मचारी के दण्ड का त्याग करके उसे वैणवी यष्टि धारण करनी चाहिए। उसके पास अन्तर्वास और उत्तरीय वस्त्र होना चाहिए। दसरा यज्ञोपवीत और जल के सहित एक कमण्डलु होवे ॥३॥ छत्र—अमल उष्णीष—पादुका—अथवा उपानह—सुवर्ण के कुण्डल—वेद उसके पास हों तथा और केश तथा नख गुप्त होने वाला उसे होना चाहिए एवं शुचि होवे ॥४॥ स्वाध्याय में नित्य ही युक्त रहे तथा बहिर्माल्य का धारण नहीं करे। फिर विप्र को सुवर्ण की माला के अतिरिक्त अन्य किसी रक्त वर्ण की माला को धारण नहीं करना चाहिए ॥५॥ नित्य ही शुक्ल वस्त्रों के धारण करने वाला—सुन्दर गन्ध से युक्त और प्रिय दर्शन वाला हो जाना चाहिए। जीर्ण और मल वाले वस्त्र को कभी धारण करने वाला न होवे वैभव के होते हुए भी ऐसी वेश भूषा से युक्त नहीं रहना चाहिए ॥६॥ रक्त—उल्वण और दूसरे के द्वारा धारण किया हुआ वस्त्र तथा कुण्डिका—उपानह—माला और पादुका का प्रयोग नहीं करना चाहिए ॥७॥

उपवीतकरान् दर्भान्तिथा कृष्णाजिनानि च ।
नापसव्यं परीदध्याद्वासो न विकृतञ्च यत् ॥८
आहरेद्विधिवद्दारान्सदृशानात्मन शुभाम् ।
रूपलक्षणसंयुक्तान्योनिदोषविवर्जितान् ॥९

अमातृगोत्रप्रभावसमानर्षिगोत्रजाम् ।
आहरेद् ब्राह्मणो भार्य्यां शीलशौचसमन्विताम् ॥१०
ऋतुकालाभिगामीस्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते ।
वर्ययेत्प्रतिषिद्धानिदिनानितुप्रयत्नतः ॥११
षष्ठ्यष्टमीपञ्चदशीद्वादशी च चतुर्दशाम् ।
ब्रह्मचारीभवेन्नित्यं ब्राह्मण सयतेन्द्रियः ॥१२
आदधीतावसथ्याग्निजुहुयाज्जातवेदसम् ।
व्रतानिस्नातकोनित्यं पावनानिचपालयेत् ॥१३
वेदोदितं स्वकं कर्म्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
अकुर्वाण पतत्याशु नरकान्याति भीषणात् ॥१४

उपवीत कर दर्भ और कृष्ण मृग चर्म को अपसव्य में कभी परिधान नहीं करे, तथा वस्त्र भी विकृत न पहिने ॥८॥ विधि पूर्वक पत्नी का आहरण करना चाहिए जो अपने ही सदृश और परम सुन्दर हो। पत्नी भी रूप के लक्षणों से युक्त और योनि के दोषों से वर्जित हो ग्रहण करनी चाहिए ॥६॥ पत्नी माता के गोत्र से रहित तथा असम्भव ऋषि गोत्र में जन्म ग्रहण करने वाली होनी चाहिए ब्राह्मण को ऐसी ही शील और शौच से समन्वित भार्या का आहरण करना उचित है ॥१०॥ उस पत्नी का जिस समय में ऋतु काल उपस्थित हो तभी उसका गमन करे और यह भी तभी तक जब तक किसी पुत्र की उत्पत्ति न होवे। जो दिन शास्त्र में प्रतिषिद्ध बताये गये हैं उनको वर्जित करके ही ऋतुकाल में भी गमन करे और प्रयत्न पूर्वक वर्जित दिनों में भार्याभिगमन नहीं करना चाहिए ॥११॥ षष्ठी-अष्टमी—पञ्चदशी—द्वादशी और चतुर्दशी इन तिथियों में नित्य ही संयत इन्द्रियों वाले ब्राह्मण को ब्रह्मचारी होना चाहिए ॥१२॥ अवसथ्याग्नि का धारण करे और जात वेदा का हवन भी नित्य ही करना चाहिए। स्नातक को नित्य ही पावन व्रतों का पूर्ण परिपालन करना चाहिए ॥१३॥ तन्द्रा से रहित होकर वेदों में कहे हुए कर्मों का नित्य नियम से करना चाहिए। वेद विहित कर्मों को न करता हुआ शीघ्र ही परम भीषण नरकों में जाकर पतित हो जाया करता है ॥१४॥

अभ्यसेत्प्रयतोवेदं महायज्ञांश्चभावयेत् ।
कुर्याद्गृह्याणि कर्माणिसन्ध्योपासनमेवच ॥१५
सख्यंसमाधिकैःकुर्य्यादच्चयेदीश्वरंसदा ।
दैवतान्यभिगच्छेत्कुर्य्याद्भार्याविभूषणम् ॥१६
न धर्म्मं ख्यापयेद्विद्वान्न पापं गूहयेदपि ।
कुर्वीतात्महितं नित्य सर्वभूतानुकम्पनम् ॥१७
वयस. कर्मणोऽर्थस्यश्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेदवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरेद्विहरेत्सदा ॥१८
श्रुतिस्मृत्युदित. सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः ।
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित् ॥१९
येनास्यपितरोयाता येनयाताःपितामहाः ।
तेनयायात्सतामार्गेनेन गच्छन्तरिष्यति ॥२०
नित्य स्वाध्यायशील स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् ।
सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२१

प्रयत होते हुए वेदो का अभ्यास गृहस्थाश्रम मे भी रह कर बराबर करते रहना चाहिए तथा महान् यज्ञों को भावित करे। जो गृह्य कर्म हैं उनका सम्पादन करे और सन्ध्योपासन किया करे ॥१५॥ जो अपने *अधिक गुणगण वाले सत्पुरुष हो उनके ही साथ सख्यभाव समुत्पन्न करना* समुचित है और सर्वदा ईश्वर का गार्हस्थ्य मे अर्चन करना चाहिए। देवताओं का भी पूजन करे और अपनी भार्या को विशेष भूषित करना चाहिए ॥१६॥ विद्वान् पुरुष को कभी भी अपने द्वारा किये धर्म का ख्यापन नहीं करना चाहिए और पाप कर्म का कभी गूहन भी न करे। समस्त भूत मात्र पर अनुकम्पा की भावना रखते हुए ही नित्य अपने हित का कार्य करना चाहिए ॥१७॥ सदा अपनी अवस्था—कर्म-अर्थ-श्रुत-अभिजन-वेद वाणी और बुद्धि के समान ही सब कुछ करना तथा विहार करना चाहिए अर्थात् इन उपर्युक्त के विपरीत कर्म कभी नहीं करे ॥१८॥ जो आचार श्रुति और स्मृतियो मे बताया गया है और जिस आचार साधु पुरुषो ने सर्वदा सेवन किया है उसी आचार का समाचरण करना

चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी कभी नहीं करना चाहिए ।।१६।। जिस मार्ग एवं आचार का परिपालन करते हुए इसके पितृगण आदि गये है और जिस मार्ग से पितामह आदि गये हैं उसी सत्पुरुषों के मार्ग से स्वयं भी गमन करना चाहिए। उसी मार्ग से जाते हुए वह अवश्य ही तर जायगा अर्थात् सद्गति की प्राप्ति कर लेगा ।।२०।। नित्य ही स्वाध्याय करने के स्वभाव वाला होना चाहिए। और नित्य ही यज्ञोपवीत के धारण करने वाला भी रहना चाहिए। सर्वदा सत्य ही भाषण करने वाला और क्रोध का जीत लेने वाला रहे। ऐसा ही गृहस्थाश्रमी ब्रह्मरूप होने के योग्य कल्पित किया जाता है ।।२१।।

सन्ध्यास्नानपरो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायण ।
अनसूयी मृदुर्दान्तो गृहस्थ प्रेत्य वर्द्धते ।।२२
वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जित ।
सावित्रीजापनिरत श्राद्धकृन्मुच्यते गृही ।।२३
मातापित्रोर्हिते युक्तो गोब्राह्मणहिते रत ।
दान्तो यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।२४
त्रिवर्गसेवी सततं देवतानाञ्च पूजनम् ।
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्प्रयत सुरान् ।।२५
विभागशील सततं क्षमायुक्तो दयालुक ।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत् ।।२६
क्षमा दया च विज्ञानं सत्यञ्चैव दम शम ।
अध्यात्मनिरतं ज्ञानमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ।।२७
एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तम ।
यथाशक्ति चरेत्कर्म निन्दितानि विवर्जयेत् ।।२८

नित्य ही सन्ध्या वन्दना तथा स्नान करने में तत्पर रहे और ब्रह्म यज्ञ भी नित्य परायण होकर करे। किसी की भी असूया न करने वाला—कोमल स्वभाव से सुसम्पन्न एवं दमन शील गृहस्थ मृत्यु के पश्चात् भी वर्द्धनशील हुआ करता है ।।२२।। जिसके अन्दर से राग द्वेष—भय और क्रोध निकल गया है तथा जो लोभ और मोह से शून्य रहता है—जिसकी

रति सदा सावित्री के जाप करने मे रहा करती है और जो श्राद्धो के करने वाला है वही गृही मुक्त होता है ॥२३॥ अपने माता-पिता के हित मे जो युक्त होता है तथा जिसकी रति सर्वदा गौ और ब्राह्मणो के हित कर कार्यों मे रहा करती है जो दमनशील—यजन करने वाला—देवो का भक्त होता है वही ब्रह्मलोक में मृत्यु के पश्चात पहुंच कर प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२४॥ निरन्तर त्रिवर्ग की सेवा करने वाला होकर देवो का पूजन अहर्निश नित्य ही करना चाहिए तथा प्रयत होकर सदा सुरगणो को नमन करना चाहिए ॥२५॥ गृहस्थी को सदा सम्यक् विभाजन करने के स्वभाव वाला होना चाहिए। क्षमा से युक्त और दयालु भी होवे। वही गृहस्थ उस गृह से गृह वाला समाख्यात होता है ॥२६॥ क्षमा—दया—विज्ञान—सत्य—दम—शम और अध्यात्म ज्ञान मे सर्वदा विशेष रति का रखना ये ही सद्गुणो का होना ब्राह्मण का सच्चा लक्षण होता है ॥२७॥ द्विजोत्तम को विशेष रूप मे इन सद्गुणो से कभी भी प्रमाद नही करना चाहिए। जितनी भी अपने आप मे करने की शक्ति हो उसी के अनुसार शास्त्रोक्त समुचित कर्मों का सम्पादन करना चाहिए। और जिनको वेद शास्त्रो ने निन्दित कर्म बतलाया है उनका सर्वदा त्याग ही कर देना चाहिए ॥२८॥

विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम्।
गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥२९
विगर्हातिक्रमाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम्।
अन्यमन्युसमुत्थाना दोषाणा मर्षणक्षमा ॥३०
स्वदुःखेष्विवकारुण्यंपरदुःखेषु सौहृदात्।
दयेति मुनयःप्राहुःसाक्षाद्धर्मस्यसाधनम् ॥३१
चतुर्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः।
विज्ञानमिति तद्विद्याद्येन धर्मो विवर्द्धते ॥३२
अधीत्य विधिवद्वेदानर्थञ्चैवोपलभ्य तु।
धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद्विज्ञानमिष्यते ॥३३

सत्येन लोकाञ्जयति सत्यं तत्परमं पदम् ।
यथाभूतप्रवादन्तु सत्यमाहुर्मनीषिणः ॥३४
दम शरीरोपरम शम प्रज्ञाप्रसादजः ।
अध्यात्ममक्षरं विद्याद्यत्र गत्वा न शोचति ॥३५

इस सांसारिक मोह के कलिल का विभ्रम करके उत्तम योग का लाभ करे । ऐसा करने से एक अच्छा गृहस्थ भी बन्धन से मुक्त अवश्य ही हो जाया करता है—इसमें तनिक भी विचार करने की या सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है ॥२९॥ विगर्हा-अतिक्रम-आक्षेप-हिंसा-बन्ध और वध के स्वरूप वाले अन्य पर क्रोध से समुत्पन्न दोषों का क्षपण कर जाना ही क्षमा हुआ करती है ॥३०॥ अपने दुःखों के समान सौहार्द से पराये दुःखों में दया हुआ करती है—ऐसा ही मुनियों ने कहा है । यह दया का भाव साक्षात् धर्म का लक्षण तथा साधन होता है ।३१। चौदह विद्याओं का यथार्थ रूप से धारण करना ही विज्ञान होता है । इसीलिये उसका ज्ञान अवश्य ही प्राप्त करना चाहिए जिससे धर्म की वृद्धि हुआ करती है ॥३२॥ विधि विधान के साथ वेदों का अध्ययन करके और अर्थ को भी प्राप्त करके यदि धर्म के कार्य से निवृत्त हो जाता है तो उसे विज्ञान नहीं माना जाता है ॥३३॥ सत्य ही एक ऐसा उत्तम साधन है जिसके द्वारा लोकों को जीत लिया करता है और यह सत्य ही परम पद है । मनीषीगण सत्य को यथाभूत प्रवाद बताया करते हैं ॥३४॥ दम-शरीर में उपरम होने वाला शम जो प्रज्ञा के प्रसाद से समुत्पन्न होता है । अध्यात्म को अक्षर जानना चाहिए जहाँ पर पहुँच कर किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहा करती है ॥३५॥

यथा स देवो भगवान्विद्यया वेद्यते परः ।
साक्षाद्देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम् ॥३६
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनः शुचिः ।
महायज्ञपरो विद्वान्न भवेत्तदनुत्तमम् ॥३७
धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं प्रतिपालयेत् ।
न च देहं विना रुद्रो विद्यते पुरुषैः परः ॥३८

नित्यधर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः ।
न धर्म्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ॥३६
सीदन्नपि हि धर्मेणन त्वधर्म समाचरेत् ।
धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषुजन्तुषु ॥४०
भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकमधीः ।
न वेददेवतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न सम्वदेत् ॥४१
यस्त्विमनियतं विप्रो धर्माध्यायपठेच्छुचिः ।
अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोकेमहीयते ॥४२

जिस विद्या से वह पर देव भगवान् जाना जाता है वह साक्षात् देव महादेव हैं और उसी का ज्ञान कीर्तित किया गया है ॥३६॥ उसमें निष्ठा रखने वाला—उसी में तत्पर विद्वान् नित्य ही क्रोध से रहित और शुचि होता है। वह महायज्ञ में परायण विद्वान् है और उत्तम मही है ॥३७॥ यह शरीर भी एक धर्म का आयतन ही होता है इसकी सुरक्षा यत्न से करके इसका प्रति पालन करना चाहिए। इस देह के बिना पुरुषों के द्वारा पर पुरुष विद्यमान नहीं हुआ करता है ॥३८॥ द्विज को नित्य ही नियत होकर धर्म-अर्थ और काम इस त्रिवर्ग युक्त होना चाहिए। जो अर्थ और काम धर्म से वर्जित हो उनका मन से भी कभी स्मरण नहीं करना चाहिए ॥३९॥ धर्म के कर्म में दुःख भोगता हुआ भी रहे किन्तु अधर्म का समाचरण कभी भी नहीं करना चाहिए। धर्म ही साक्षात् देव भगवान् हैं और सभी जन्तुओं में धर्म ही परम गति है ॥४०॥ द्विज गृहस्थ को समस्त भूतों के हित तथा प्रिय कर्मों का करने वाला होना चाहिए और कभी भी भूलकर पर जनों के साथ द्रोह करने की रति नहीं रखनी चाहिए तथा ऐसी बुद्धि भी नहीं करे। वेदों में कथित अथवा वेद स्वरूपी देवों की कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिए। जो निन्दक पुरुष हों उनके साथ कभी सम्वाद भी नहीं करे ॥४१॥ जो कोई पुरुष विप्र इस धर्माध्याय का नियत रूप से शुचि होकर पाठ किया करता है या इसका दूसरों को श्रवण कराता है अथवा इसको पढ़ाता है वह अन्त समय में ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥४२॥

१६—ब्राह्मणों के नित्यकर्म निरूपण

न हिंस्यात्सर्वभूतानि नानृतवावदेत्क्वचित् ।
नाहितनाप्रियब्रूयान्नस्तेन स्यात्कथञ्चन ॥१
तृण वा यदि वा शाक मृद वा जलमेव च ।
परस्यापहरञ्जन्तुर्नरक प्रतिपद्यते ॥२
नराज्ञ प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात्पतितादपि ।
नान्यस्माद्याचकत्वञ्चनिन्दिताद्वर्जयेद्बुध ॥३
नित्य याचनको न स्यात्पुनस्तत्रैव याचयेत् ।
प्राणानपहरत्येप याचकस्तस्य दुर्मति ॥४
न देवद्रव्यहारी स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमा ।
ब्रह्मस्व वा नापहरेदापद्यपि कदाचन ॥५
न विष विषमित्याहुर्ब्रह्मस्व विषमुच्यते ।
देवस्व चापि यत्नेन सदा परिहरेत्तत ॥६
पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूले तृणे फले ।
अदत्तादानमस्तेय मनु प्राह प्रजापति ॥७

श्री व्यास देव ने कहा—समस्त भूतों में किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए और कभी भी मिथ्या भाषण भी नहीं करना चाहिए। न तो किसी के अहित की बात बोले और न किसी भी समय में किसी को अप्रिय लगने वाली बात ही कहनी चाहिए। मनुष्य को स्तेन अर्थात् चोरी के कर्म करने वाला भी किसी भी प्रकार से नहीं होना चाहिए ॥१॥ तृण हो अथवा शाक हो, मिट्टी हो या जल हो क्यों न हो, जो वस्तु पराई है उसका अपहरण करने वाला जन्तु अवश्य ही नरक का गामी होता है ॥२॥ राजा का प्रतिग्रह कभी भी ग्रहण नहीं करे और शूद्र तथा जो पतित हो उसका भी दान नहीं ग्रहण करना चाहिए। जो भी कोई अन्य निन्दित पुरुष हो उसका याचक बुध पुरुष को कभी भी नहीं होना चाहिए और ऐसी याचकता को वर्जित कर देवे ॥३॥ नित्य याचना करने वाला न होवे और फिर वहीं पर ही याचना करे। यह याचक है ऐसी उसकी दुर्मति प्राणों का अपहरण किया करती है ॥४॥ विशेष रूप से

द्विजोत्तमों को कभी भी देवो के द्रव्य का अपहरण करने वाला नही होना चाहिए। जो ब्राह्मण का धन ब्रह्मस्व है उसका तो आपत्ति के समय में भी कभी भी किसी तरह से अपहरण करना ही नही चाहिए ।।५।। विष को विष नही कहा जाता है ब्रह्मस्व को ही विष कहते हैं। ब्रह्मस्व की भाँति ही देवस्व का भी सदा परिहरण कर देना चाहिए ।।६।। पुष्प मे, शाक, उदक, काष्ठ, मूल, तृण, फल इनका न दिया हुआ जो आदान है वही अस्तेय होता है—ऐसा प्रजापति मनु ने कहा है ।।७।।

गृहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजैः ।
नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम् ।।८
तृण काष्ठ फलपुष्प प्रकाशं वै हरेद्‌बुधः ।
धर्मार्थं केवल ग्राह्यं ह्यन्यथा पतितोभवेत् ।।९
तिलमुद्गयवादाना मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः ।
क्षुधार्त्तैर्नान्यथा विप्रा धर्मविद्भिरिति स्थितिः ।।१०
न धर्मस्यापदेशेन पाप कृत्वाव्रतं चरेत् ।
व्रतेन पाप प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रलम्भनम् ।।११
प्रेत्येह चेदृशोविप्रा गह्यते ब्रह्मवादिभिः ।
छद्मना चरितयच्च व्रतं रक्षासि गच्छति ।।१२
अलिङ्गी लिङ्गिवेशेनयो वृत्तिमुपजीवति ।
स लिङ्गिना हरेदेनस्तिर्यग्योनौ चजायते ।।१३
वैडालव्रतिनः पापलोके धर्मविनाशकाः ।
सद्यः पतन्तिपापेषुकर्मणस्तस्य तत्फलम् ।।१४

द्विजो के द्वारा देवो की पूजा की विधि का सम्पादन करने के लिये पुष्पों का ग्रहण कर लेना चाहिए किन्तु यह पुष्पों का ग्रहण भी एक ही स्थल मे नियत रूप से न करे और केवल अनुज्ञा प्राप्त न करके भी ग्रहण नही करने चाहिए ।।८।। तृण, काष्ठ, फल और पुष्प बुध को प्रकाश मे ही हरण करने चाहिए। वे भी जितने धर्म के कर्म के लिये आवश्यक हों उतने ही ग्रहण करे अन्यथा ग्रहण करने पर पतित हो जायगा ।।९।। तिल, मूंग और यव आदि को केवल एक मुट्ठी ही मार्ग में स्थित होने

धान लोगों के द्वारा ग्रहण करनी चाहिए, वह भी जब कि क्षुधा से जो लोग अत्यन्त आर्त्त हों उनका ही लेनी चाहिए। हे विप्रगण! अन्यथा जो धर्म के ज्ञाता हैं उनको कभी भी नहीं लेनी चाहिए—एसी ही वास्तविक स्थिति है ॥१०॥ धर्म के बहाने से पाप कर्म करके कभी भी व्रत का समाचरण नहीं करना चाहिए। व्रत से किये हुए पाप का प्रच्छादन करके स्त्री और शूद्र का समानम्भन करता हुआ जो इस प्रकार का विप्र होता है उसे मरने पर भी ब्रह्मवादियों के द्वारा वह गर्हित ही कहा जाया करता है। जो व्रत छद्म के साथ किया जाता है वह राक्षसों का कहा जाया करता है ॥११-१२॥ जो वास्तव में लिङ्गधारी न हो और लिङ्ग-वश से अपनी वृत्ति की उपजीविका करके जीवित रहा करता है वह लिङ्गियों के पाप का हरण किया करता है और फिर तिर्यग् योनि में जन्म ग्रहण किया करता है ॥१३॥ इस लोक में एसे लोग वैडाल व्रत वाले पापी और धर्म के विनाश करने वाले ही होते हैं। उनके ऐसे कर्मों का फल यही होता है कि वे तुरन्त ही पापों में पतित हो जाया करते हैं ॥१४॥

पाखण्डिनो विकर्मस्थान्वामाचारांस्तथैव च ।
पञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥१५
वेदनिन्दारतान् मर्त्यान्देवनिन्दारतांस्तथा ।
द्विजनिन्दारतांश्चैव मनसापि न चिन्तयेत् ॥१६
याजनं योनिसम्बन्धं सहवासञ्च भाषणम् ।
कुर्वाणः पतते जन्तुस्तस्माद्यत्नेन वर्जयेत् ॥१७
देवद्रोहाद् गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः ।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात्कोटिगुणाधिकम् ॥१८
गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्यागजोऽसेवया ।
कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि धर्मतः ॥१९
कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥२०
अनृतात्पारदार्याच्च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात् ।
अश्रौतधर्माचरणात्क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ॥२१

जो पाषण्ड करने वाले हैं और विकर्मों में स्थित रहा करते हैं तथा वाम आचरण वाले होते हैं ऐसे पञ्चरात्र पाशु यज्ञों का वाणी मात्रसे भी अर्चन नहीं करना चाहिए ॥१५॥ जो वेदों की निन्दा करने में रति रखते हैं और जो मनुष्य देवों की निन्दा करने मे निरत होते हैं तथा जो द्विजों की बुराई करने मे रत रहते हैं उनका कभी मन से भी चिन्तन नहीं करना चाहिए ॥१६॥ यातन–योनि का सम्बन्ध–साथ में वास करना–सह सम्भाषण करता हुआ भी जन्तु पतित हो जाया करता है अतएव ऐसे महा पातकियों का दूर से ही प्रयत्न पूर्वक परिवर्जन कर देना ही उचित होता है ॥१७॥ देवों के साथ द्रोह करने से गुरु के साथ किया हुआ द्रोह करोड़ो–करोड़ अधिक गुण वाला होता है क्योंकि ज्ञान का अपवाद करना नास्तिकता है अतएव यह करोड़ो गुना अधिक माना गया है ॥१८॥ गौओं, देवताओं और विप्रों के द्वारा कृषि से तथा राजा की उपसेवा से कुल के कुल धाकुलता को प्राप्त हो जाया करते हैं क्योंकि ये सब धर्म से हीन होते हैं ॥१९॥ बुरे विवाहों से—क्रियाओं के लोपों से और वेदा के अध्ययन न करने से एव ब्राह्मणों का अतिक्रमण करने, कुल दुषित कुल होकर अकुलता को प्राप्त हो जाया करते है, मिथ्या व्यवहार तथा भाषण से, पराई स्त्रियों के साथ सम्पर्क करने से, जो अभक्ष्य पदार्थ है उनके खाने से जो श्रुति के द्वारा प्रतिपादित नहीं है ऐसे धर्म के समाचरण से कुल बहुत ही शीघ्र विनष्ट हो जाया करता है ॥२०-२१॥

अश्रोत्रियेषु वै दानादवृपलेषु तथैव च ।
विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति व कुलम् ॥२२
नाधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ।
न शूद्रराज्यनिवसेन्न पाखण्डजनैर्वृत ॥२३
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पूर्वपश्चिमयो.शुभम् ।
मुक्त्वासमुद्रयोर्देशनान्यत्रनिनसेद्द्विजः ॥२४
कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्य स्वभावतः ।
पुण्याश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद् द्विजः ॥२५

अर्द्धकोशान्नदीकूलवर्जयित्वाद्विजोत्तम ।
नान्यत्रनिवसेत्पुण्यानान्त्यजग्रामसन्निधौ ।।२६
नसम्वसेच्चपतितैर्नचण्डालैर्नपुक्कसैः ।
नमूर्खैर्नावलिप्तैश्चनान्त्यावसायिभि ।।२७
एकशय्यासनम्पंक्तिर्भाण्डपक्वान्नमिश्रणम् ।
याजनाध्यापन योनिस्तथैवसहभोजनम् ।।२८
सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च ।
एकादशैते निर्दिष्टादोषा साङ्कर्यसञ्ज्ञिता ।।२९

जो श्रोत्रिय नही है उनको दिया हुआ दान तथा वृषलो को और विदित आचार से हीनो को दिया हुआ दान शीघ्र ही कुल का नाश कर दिया करता है ।।२२।। जो ग्राम धर्म हीनो से समावृत हो ओर जो बहुत सी व्याधियो से अत्यन्त समाकुल हो उस ग्राम में और शूद्रो के राज्य मे एव पाखण्डियो से सयुत ग्राम मे कभी भी अपना निवास नही करना चाहिए ।।२३।। हिमवान् और विन्ध्याचल मध्य मे पूर्व और पश्चिम दिशामा मे परम शुभ स्थल है । समुद्रो के देश को छोड कर अन्यत्र द्विज को कही पर भी निवास नही करना चाहिए ।।२४।। जहाँ पर कृष्ण मृग नित्य ही स्वाभाविक रूप से विचरण किया करता है और जहाँ पर पुण्य एव विश्रुत नदियाँ वहन किया करती हैं वहाँ पर द्विज को निवास करना चाहिए ।।२५।। द्विजोत्तम को नदी के कूल से आधा कोश चलकर निवास करे । अन्य स्थान म पुण्या नदी पर भी वास नही करे । तथा अन्त्यजो के ग्राम की सन्निधि मे भी कभी निवास नही करना चाहिए । पतित—चण्डाल—पुक्कसो के साथ भी कभी निवास नही करे । मूर्ख-अवलिप्त—अन्त्य और अन्त्यावसायियो के साथ भी निवास तथा एक ही शय्या—एक ही आसन-पंक्ति—भाण्ड-पक्वान्न मिश्रण—याजन—अध्यापन—योनि तथा सह भोजन—साथ अध्ययन दशवाँ तथा सहयाजन एकादश ये दोष निर्दिष्ट किए गये हैं जो साङ्कर्य की सज्ञा वाले होते हैं ।।२६-२९।।

समीपे वाप्यवस्थानात्पापं सक्रमते नृणाम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सङ्कर वर्जयेद् बुधः ।।३०

एकपङ्क्त्युपविष्टा ये नस्पृशन्ति परस्परम् ।
भस्मनाकृतमर्यादा नतेषांसङ्करोभवेत् ॥३१
अग्निनाभस्मनाचैवसलिलेनविशेषत. ।
द्वारेणस्तम्भमार्गेणड्भि पङ्क्तिर्विभिद्यते ॥३२
न कुर्याद्दु खवैराणिविवादचैवपैशुनम् ।
परक्षेत्रे गा चरन्तीनचाचक्षीतकस्यचित् ॥३३
न सम्वसेत्सूतकिना न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत् ।
न सूर्यपरिवेश वा नेन्द्रचाप शवाग्निकम् ॥३४
परस्मै कथयेद्विद्वाञ्छशिनवा कदाचन ।
न कुर्याद्‌बहुभि॰ सार्द्ध विरोध वा कदाचन ॥३५

समीप मे प्रवस्थान से भी पाप एक से दूसरे पर सक्रमण किया करता है । इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा बुध पुरुष को सङ्कर को वर्जित कर देना चाहिए ॥३०॥ जो एक ही पंक्ति मे उपविष्ट होकर परस्पर मे स्पर्श नही करते हैं और भस्म से मर्यादा किये हुए हैं उनको सङ्कर दोष नही होता है ॥३१॥ अग्नि से—भस्म से—विशेष करके जल से—द्वार से—स्तम्भ के मार्ग से—इन छै उपायों से पंक्ति का भेद किया जाता है ॥३२॥ दु ख वैर कभी नही करने चाहिए—विवाद और पैशुन कर्म भी न करे । पराये खेत मे चरती हुई गाय को किसी को भी न बतावे या दिखलावे ॥३३॥ सूत की के साथ वास न करे और किसी के मर्म स्थल मे स्पर्श नही करना चाहिए । सूर्य के परिवेश को—इन्द्र धनुष को और शव की अग्नि को भी नही देखना चाहिए ॥३४॥ पर पुरुष से विद्वान् को चन्द्र कहना चाहिए और कभी भी बहुतों के साथ विरोधभाव नही करे ॥३५॥

आत्मन प्रतिकूलानिपरेषानसमाचरेत् ।
तिथि पक्षस्यनक्षत्र्यान्नक्षत्राणि विनिर्दिशेत् ॥३६
नोदक्यामभिभाषेत नाशुचि वाद्विजोत्तमः ।
नदेवगुरुविप्राणा दीयमान तु वारयेत् ॥३७

न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दाञ्च वर्जयेत् ।
वेदनिन्दादेवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३८
यस्तु देवानृषीन् विप्रान् वेदान्वा निन्दति द्विजः ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीश्वराः ॥३९
निन्दयेद्वै गुरुं देवं वेदं वा सोपबृंहणम् ।
कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः ॥४०
तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात्किञ्चिदुत्तरम् ।
कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैतानवलोकयेत् ॥४१
वर्जयेद्वै रहस्यन्तु परेषां गूहयेद्बुधः ।
विवादं स्वजनैः सार्द्धं न कुर्याद्वै कदाचन ॥४२

जिस व्यवहार को अपने आपके प्रति किए जाने पर प्रतिकूल समझा जावे उस व्यवहार को दूसरों के प्रति कभी भी नहीं करना चाहिए। धर्म की निधि को तथा न धर्म को नहीं खोलना चाहिए। अर्थात् विनिर्दिष्ट करना चाहिये ॥३६॥ द्विजोत्तम को उदकी स्त्री से तथा अशुचि पुरुष से अभिभाषण नहीं करना चाहिए। देव—द्विज—और गुरुओं के लिए हुए को वारण नहीं करना चाहिए। अपने आपकी प्रशंसा कभी न करे और पराई निन्दा का वर्जित करे। वेदों की निन्दा और देवगण की निन्दा का प्रयत्न पूर्वक विशेष रूप से वर्जित कर देना चाहिए ॥३७-३८॥ जो द्विज देवों की ऋषियों की—विप्रों का और वेदों की निन्दा किया करता है उसकी कोई भी निष्कृति (प्रायश्चित्त) नहीं देखी गई है। हे मुनीश्वरो! शास्त्रों में इस अपराध का कहीं भी प्रायश्चित नहीं बताया गया है ॥३९॥ गुरु देव और वेद की जो उपबृंहण के साथ निन्दा किया करता है वह नर सैकड़ों करोड़ कल्पों तक नरक में अर्थात् रौरव नरक में पच-मान होकर यातनाएं भोगा करता है ॥४०॥ यदि इनकी निन्दा भी स्थान पर निन्दा की जा रही हो तो स्वयं चुप रहना चाहिए और कोई भी उत्तर नहीं देना चाहिए। अथवा दोनों कानों को बन्द कर ही वहाँ से चल देना चाहिए और इनका अवलोकन नहीं करे ॥४१॥ बुध पुरुष को रहस्य का वर्जित करना चाहिए तथा दूसरों से इसे गुप्त रखना

चाहिए । अपने मनुष्यों के साथ किसी भी समय में विवाद नहीं करना चाहिये ॥४२॥

नपापपापिनब्रूयादपापवाद्विजोत्तमा ।
सतेनतुल्यदोषः स्यान्मिथ्यादिदोषवान्भवेत् ॥४३
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात् ।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम् ॥४४
ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेयगुर्वङ्गनागमे ।
दृष्टं विशोधनं सद्भिर्नास्ति मिथ्याभिशंसने ॥४५
नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनञ्चानिमित्तत. ।
नास्तयातं न वारिस्थं नोपसृष्टं नमध्यगम् ॥४६
तिरोहितं वाससा वा नादर्शान्तरगामिनम् ।
न नग्नांस्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन ॥४७
न च मूत्रं पुरीषं वा न च संसृष्टमैथुनम् ।
नाशुचि सूर्यसोमादीन्ग्रहानालोकयद्बुधः ॥४८
पतितव्यङ्गचण्डालानुच्छिष्टान्नावलोकयेत् ।
नाभिभाषेत चपरमुच्छिष्टोवावगर्वित ॥
न स्पृशेत्प्रेतसस्पर्शं नक्रुद्धस्यगुरोर्मुखम् ।
न तैलोदकयोश्छायानपत्नीभोजनेसति ॥४९

हे द्विजोत्तमो ! पापी पुरुष का पाप नहीं बोलना चाहिये अथवा पापी को और पाप को कभी मुख से न कहे। बोलने से उसके तुल्य ही दोष हुआ करता है और मिथ्यादि दोष वाला हुआ करता है ॥४३॥ मिथ्या रूप से अभिशस्तों के रोदन से जो अश्रु गिरा करते हैं वे अश्रु उन मिथ्या अभिशंसियों के पुत्रों का और पशुओं का हनन किया करते है ॥४४॥ ब्रह्म हत्या–सुरापान—स्तेय— गुरु की अङ्गना का अभिगमन इन महापापों का विशोधन सत्पुरुषों ने देखा है किन्तु मिथ्या अभिशंसन में कोई भी विशोधन नहीं होता है ॥४५॥ उदय होते हुए आदित्य को नहीं देखे और बिना किसी निमित्त विशेष के चन्द्रमा को भी नहीं देखना चाहिये। अस्त होते हुए—जल में

स्थित प्रतिबिम्ब को-उपसृष्ट अर्थात् ग्रहण ग्रस्त को—मध्य काल में गमन करते हुए को-वस्त्र से तिरोहित किये हुए का और दर्पण में गामी को कभी नहीं देखना चाहिए। किसी भी नग्न स्त्री का तथा नग्न पुरुष को भी कभी नहीं देखना चाहिए ॥४५-४७॥ पुरीष (विष्ठा) मूत्र और समर्ग में होने वाला मैथुन का कभी नहीं देखे। अशुचि होते हुए सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों को बुद्ध पुरुष का कभी नहीं देखना चाहिए ॥४८॥ पतित पुरुष—व्यङ्ग (अङ्गहीन या विरूप अङ्गयुक्त)-चण्डाल और उच्छिष्टों का कभी अवलोकन न करे। उच्छिष्ट या अवर्गाहित होते हुए दूसरे से सम्भाषण नहीं करना चाहिए। प्रेत से जिसका संस्पर्श हुआ हो उसका स्पर्श न करे और क्रोधित हुए गुरु के मुख को भी नहीं देखे। तैल या जल में अपनी छाया का और भोजन करती हुई पत्नी को भी कभी नहीं देखना चाहिए ॥४६॥

नियुक्तबन्धनागां वा नान्मत्तं मत्तमेव वा ॥५०
नाऽश्नीयाद्भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत मेहनीम् ।
क्षुवन्तीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम् ॥५१
नोदके चात्मनो रूपं न कूलं श्वभ्रमेव वा ।
न लङ्घयेच्च मूत्रं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन ॥५२
न शूद्राय मतिं दद्यात्कृशरपायसदधि ।
नोच्छिष्टं वा धृतमधु नचकृष्णाजिनहविः ॥५३
न चैवास्मै व्रतं दद्यान्न च धर्मं वदेद्बुधः ।
न च क्रोधवशं गच्छेद्द्वेषरागञ्च वर्जयेत् ॥५४
लोभदम्भ तथावर्ज्यं यत्नाद्विज्ञानदूषनम् ।
मानं मोहं तथाक्रोधं द्वेषञ्च परिवर्ज्जयेत् ॥५५
न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यञ्च ताडयेत् ।
न हीनानुपसेवेत न च तीक्ष्णमतीन् क्वचित् ॥५६

नियुक्त बन्धन में रहने वाली गौ को—उन्मत्त को—मत्त का भी नहीं देखना चाहिये। भार्या के साथ ही एक ही थाली या पात्र में कभी भोजन नहीं करना चाहिए और मेहन करती हुई भी अपनी भार्या का

अवलोकन नहीं करना चाहिये। छींक लेती हुई-जँभाई लेती हुई और आसन पर सुख पूर्वक बैठी पत्नी को (साधारणतया स्त्री मात्र को) नहीं देखना चाहिये ॥५०-५१॥ जल में अपना रूप नहीं देवे तथा कूप और श्वभ्र को भी नहीं देखना चाहिये। वृष का कभी उल्लंघन न करे और न कभी इस पर आवस्थित ही होना चाहिए ॥५२॥ नीच को मति न देवे तथा कृसार-पायस और दधि भी नहीं देवे। उच्छिष्ट घृत और मधु और कृष्णाजिन तथा हवि ही नहीं देना चाहिये ॥५३॥ नीच को कोई व्रत नहीं देवे तथा व्रत पुरुष कोई धर्म की बात भी शूद्र को नहीं बतानी चाहिये। मनुष्य को कभी भी क्रोध के वश वर्ती न होना चाहिए तथा द्वेष और राग का वर्जन कर देनाही उचित है ॥५४॥ लोभ—दम्भ—माया विज्ञान कुत्सन—यान—मोह—क्रोध और द्वेष को वर्जित कर देवे ॥५५॥ कहीं पर भी किसी को पीड़ा नहीं देवे। सुत और शिष्य को ताड़ना देनी चाहिये हीन जनों का उपसेवन नहीं करे और तीक्ष्ण मति वालों को भी कहीं पर उपसेवित न करे ॥५६॥

नात्मानञ्चावमन्येतदैन्यंयत्नेनवर्जयेत् ।
न चाशिष्टान्विशिष्टान्नात्मानदासयेद्बुध. ॥५७
न नखैर्विलिखेद्भूमिं गां चसम्वेशयेन्न हि।
न नदीषु नदीं ब्रूयात्पर्वते न च पर्वतान् ॥५८
आवसेत्तेन नैवापि न त्यजेत्सहयायिनम् ।
नावगाहेदपो नग्नो वह्निञ्चापि व्रजेत्पदा ॥५९
शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेनतैलेनाङ्गंनलेपयेत् ।
नशस्त्रसर्पैःक्रीडेननस्वानिखानिचस्पृशेत् ॥६०
रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेनसहव्रजेत् ।
न पाणिपादावग्नौचचापल्यानिसमाश्रयेत् ॥६१
न शिश्नोदरयोर्नित्य न चश्रवणयो क्वचित् ।
नचाङ्गनखवादं वै कुर्यान्नाञ्जलिनापिबेत् ॥६२
नाभिहन्याज्जलं पद्भ्या पाणिना वा कदाचन ।
न शातयेदिष्टकाभिः फलानि सफलानि (न फलेन) च ॥६३

अपने आपका कभी अवमान नहीं करना चाहिये। दीनता के भाव को यत्न पूर्वक वर्जित करे। जो शिष्य नहीं हो उसका सत्कार नहीं करे और अपने आपको कभी भी बुध पुरुष को संशय में नहीं डालना चाहिये ।।५७।। अपने नखों से भूमि पर लिखना नहीं चाहिए और पृथ्वी पर शयन भी न करे। नदियों में नदी और पर्वत नहीं बोले ।।५८।। उसके साथ आवास कभी नहीं करे तथा जो सहवासी हो उसका त्याग भी न करे। बिल्कुल नंगा होकर अवगाहन नहीं करना चाहिये। अग्नि को भी पद से गमन न करे। मस्तक में किये हुए से जो शेष बच गया है उससे फिर अंग में लेपन न करे। सर्पों से और शस्त्रों से कभी क्रीड़ा न करे। अपनी खानियों का स्पर्श नहीं करे ।।५९-६०।। ये रोम रहस्य हैं। अशिष्ट पुरुष के साथ कहीं पर भी गमन नहीं करे। हाथ पैरों में और अग्नि में चपलता के कर्म नहीं करे ।।६१।। शिश्न और उदर में भी चापलता कर्म नित्य नहीं करना चाहिये और श्रवणों में नखाग्र और नखवाद न करे तथा अञ्जलि से कभी जल का पान नहीं करे ।।६२।। पैरों से जल में हनन नहीं करे और हाथों से भी न करे। जो फल वाले वृक्ष हैं उन पर तथा फलों पर ईंटों के द्वारा शातन नहीं करना चाहिए ।।६३।।

न म्लेच्छभाषणं शिक्षेन्नाकर्षेच्चपदासनम् ।
न भेदनमविस्फोटं छेदनं वा विलेखनम् ।।६४
कुर्याद्विमर्दनं धीमान्नाकस्मादेव निष्फलम् ।
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान् वृथाचेष्टाञ्च नाञ्चरेत् ।।६५
ननृत्येदथवागायेन्नवादित्राणिवादयेत् ।
नसंहताभ्यांपाणिभ्यांकण्डूयेदात्मनःशिरः। ६६
न लौकिकैस्स्तवैर्देवास्तोषयेद्भेषजैरपि ।
नाक्षैः क्रीडेन्नधावेतनाप्सुविण्मूत्रमाचरेत् ।।६७
नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
न गच्छेन्नपठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत् ।।६८

न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात्सुप्तं न बोधयेत् ।
न बालातपमासेवेत् प्रेतधूम विवर्जयेत् ॥६९
नैकः सुप्याच्छून्यगृहेस्त्रयनोपानहौहरेत् ।
नाकारणाद्वानिष्ठीवेन्नबाहुभ्यानदीतरेत् ॥७०

म्लेच्छों के भाषण को कभी नहीं सीखे और पदासन का आकर्षण न करे। अविस्फोट का भेदन-छेदन अथवा विलेखन नहीं करना चाहिए ॥६४॥ धीमान् पुरुष को अचानक निष्फल विमर्दन नहीं करना चाहिए। अपनी गोद में रखकर भक्ष्य पदार्थों का भोजन नहीं करना चाहिए। कभी भी वृथा चेष्टाओं का समाचरण नहीं करना चाहिए अर्थात् ऐसी कोई भी चेष्टा न करें जिसका कोई भी प्रयोजन न हो ॥६५॥ नृत्य न करे—गायन न करे और वाद्यों का वादन नहीं करे। दोनों हाथों को संहत अर्थात् मिलाकर अपने शिर को न खुजावे ॥६६॥ लौकिक स्तवों से तथा भेषजों से देवों को सन्तोषण नहीं करना चाहिए। अक्षों के द्वारा कभी क्रीडा न करे अर्थात् द्यूत न खेले—कभी धावन न करे और जल में कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ॥६७॥ उच्छिष्ट होकर ही शयन नहीं करे तथा नित्य ही नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिए। जाते हुए अर्थात् मार्ग में गमन करते हुए पठन न करें तथा अपने शिर का स्पर्श न करे ॥६८॥ अपने ही दाँतों से नखों को और रोमों को छिन्न नहीं करना चाहिए। जो कोई सो रहा हो उसको जगाना भी नहीं चाहिए। बालातप का सेवन न करे और प्रेत अर्थात् मुर्दे की धूँआ को वर्जित कर देना चाहिए ॥६९॥ किसी भी सूने घर में अकेला शयन न करे। स्वयं उपानहो (जूतो) का हरण (लेकर चलना) न करें। बिना ही कारण के कभी थूक न थूके और अपनी बाहुओं के सहारे अर्थात् तैर कर नदी को पार न करे ॥७०॥

न पादक्षालनं कुर्यात्पादेनैव कदाचन ।
नाग्नौ प्रतापयेत्पादौ न कांस्ये धावयेद्बुधः ॥७१
नातिप्रसारयेद्देवं ब्राह्मणान् गामथापिवा ।
वाय्वग्निगुरुविप्रान्वासूर्यंवाशशिनम्प्रति ॥७२

अशुद्धःशयनं यानं स्वाध्यायं स्नानभोजनम् ।
बहिर्निष्क्रमणञ्चैव न कुर्वीत कथञ्चन ॥७३
स्वप्नमध्ययनंयानमुच्चारंभोजनंगतिम् ।
उभयोःसन्ध्ययोर्नित्य मध्याह्नेनुविवर्जयेत् ॥७४
न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ।
न चैवान्नं पदा वापि न देवप्रतिमा स्पृशेत् ॥७५
नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान्कीर्त्तयेदृषीन् ।
नावगाहेदगाधाम्बु धारयेन्नाग्निमेकतः ॥७६
न वामहस्तेनोद्धृत्यपिवेद्वक्त्रेणवा जलम् ।
नोत्तरेदनुपस्पृश्यनाप्सुरेतःसमुत्सृजेत् ॥७७

अपने पाद से ही पाद का धावन न करे और अपने पैरों को अग्नि की ज्वाला में कभी नहीं तपावे तथा बुद्ध पुरुष को कांस्य पात्र में धावन नहीं करना चाहिए ॥७१॥ देव को—ब्राह्मणों को और गौ को—वायु—अग्नि—गुरु—विप्र—सूर्य और चन्द्र के प्रति प्रतिप्रसारण न करे अर्थात् पैरों को न फैलाए। अशुद्ध शयन—स्नान—यान—स्वाध्याय—भोजन और बाहिर निष्क्रमण किसी भी प्रकार से नहीं करना चाहिए ॥७२-७३॥ स्वप्न (शयन करना)—अध्ययन—यान—उच्चार—भोजन और गति अर्थात् गमन ये कर्म नित्य ही दोनों सन्धि कालों में और ठीक मध्याह्न के समय में नहीं करने चाहिए ॥७४॥ उच्छिष्ट होकर अपने ही हाथ से विप्र को गौ-ब्राह्मण और अग्नि का स्पर्श नहीं करना चाहिए। पैर से कभी अन्न का तथा देव की प्रतिमा का स्पर्श नहीं करे ॥७५॥ जिस समय में स्वयं अशुद्धि की दशा में वर्त्तमान हो तो उस समय में अग्नि की परिचर्या तथा देवों और ऋषियों का कीर्त्तन नहीं करना चाहिए। जो जल कहीं भी जलाशय में अगाध हो वहाँ पर अवगाहन नहीं करना चाहिए। अकेला अग्नि को धारण कभी न करे ॥७६॥ कभी भी बाँये हाथ से उठाकर मुख से जल का पान नहीं करे। उपस्पर्शन किए बिना कभी भी जल में उतरना नहीं करना चाहिए। जल में रेत का समुत्सर्जन कभी नहीं करे ॥७७॥

अमेध्यलिप्तमन्यद्वालोहितं वाविषाणि वा ।
व्यतिक्रमेन्नस्रवन्तीनाप्सुमैथुनमाचरेत् ॥७८
चैत्यं वृक्षं न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमुत्सृजेत् ।
नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान् ।
श्रोपाङ्गारकरीषं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन ॥७९
न चाग्निलङ्घयेद्धीमान्नोपदध्यादधःक्वचित् ।
न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद्बुधः ॥८०
न कूपमवरोहेत नाऽवक्षीताशुचिःक्वचित् ।
नग्नौ न प्रक्षिपेदग्नि नाद्भिःप्रशमयेत्तथा ॥८१
सुहृन्मरणमात्ति वा न स्वयंश्रावयेत्परान् ।
अपण्यमथपण्यम्वा विक्रयेनप्रयोजयेत् ॥८२
न वह्निं मुखनिश्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः ।
पुण्यस्नानोदकस्नानेसीमान्तंवाकृषेन्नतु ॥८३
न भिन्द्यात्पूर्वसमयमभ्युपेतं कदाचन ।
परस्परपशून् व्यालान् पक्षिणोनावबोधयेत् ॥८४

अपवित्र पदार्थ से लिप्त अन्य को—लोहित अथवा विषों का कभी व्यतिक्रमण न करे। स्रवण करती हुई से जल में कभी मैथुन न करे। ॥७८॥ चैत्य वृक्ष का छेदन न करे और जल में ष्ठीवन (थूकना) न करे। अस्थि—भस्म—कपाल केश—कंटक—श्रोपाङ्गार करीष इन पर कभी भी अधिष्ठित नहीं होना चाहिए ॥७९॥ जो बुद्धिमान है उसका कर्त्तव्य है कि अग्नि का समुल्लंघन नहीं करे और कहीं पर भी नीचे की ओर उपध्यान न करे। अग्नि को पैर से न छूए और बुध नर को अग्नि का धमन मुख से फूँक मारकर कभी भी नहीं करना चाहिए ॥८०॥ कूप में कभी भी अवतरण न करे और अशुचि होकर कहीं पर भी नहीं देखे। अग्नि में अग्नि का प्रक्षेप नहीं करना चाहिए तथा जल से प्रशमन भी नहीं करे। ॥८१॥ अपने किसी मित्र की मृत्यु का समाचार तथा पीड़ा को दूसरों को स्वयं ही कभी श्रवण नहीं कराना चाहिए। अपण्य अथवा पण्य के विक्रय में प्रयुक्त न करे ॥८२॥ बुध पुरुष को अशुचि रहते हुए

अपने ही मुख के निरवासो के द्वारा अग्नि का ज्वालन नहीं करना चाहिए। पुण्य स्नान और उदक स्नान अथवा सीमान्त न करे ॥८३॥ सत्य से उपेत पूर्व समय को कभी भी भेदन नहीं करना चाहिए। परस्पर में पशुओं—व्यालों और पक्षियों का कभी भी अवबोधन नहीं कराना चाहिए ॥८४॥

परबाधा न कुर्वीतजलपानायनादिभिः ।
कारयित्वासुकर्माणिकारून्पश्चान्नवर्जयेत् ।
साय प्रातर्गृहद्वारान् भिक्षार्थं नाऽवघाटयेत् ॥८५
बहिर्माल्य बहिर्गन्ध भार्य्यया सह भोजनम् ।
विगृह्य वाद कुद्वारप्रवेशञ्चविवर्जयेत् ॥८६
न खादन्ब्राह्मणस्तिष्ठेन्नजल्पन्नहसन् बुधः ।
स्वमग्निनं वहस्तेनस्पृशेन्नाप्सुचिरवसेत् ॥८७
न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना ।
मुखेनैव धमेदग्नि मुखादग्निरजायत ॥८८
परस्त्रिय न भाषतनायाज्य याजयेद्द्विजः ।
नैकश्चरेत्सभाविप्र समवायञ्चवर्जयेत् ।
देवतायतनं गच्छेत्कदाचिन्नाप्रदक्षिणम् ॥८९
न वीजयेद्वा वस्त्रेण न देवायलने स्वपेत् ।
नैकोऽध्वान प्रपद्येत नाधार्म्मिकजनैः सह ॥९०
न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैःपतितैर्न वा ।
नोपानद्वर्जितोऽध्वानजलादिरहितस्तथा ९१

जलपान और शयन आदि के द्वारा दूसरों को बाधा कभी नहीं करनी चाहिए। अच्छे कर्मों को कराकर जो उन कर्मों के करने वाले कारु अर्थात् कारीगर हैं पीछे कभी वर्जित नहीं करना चाहिए। साय काल में और प्रातःकाल में घर के द्वारों को भिक्षा के लिए कभी बन्द नहीं करना चाहिए ॥८५॥ बहिर्माल्य—बहिर्गन्ध—भार्या के साथ में एक साथ एक ही पात्र में भोजन करना—विग्रह करके वाद और कुद्वार से प्रवेश करना—इन सब कर्मों को वर्जित कर देना चाहिए ॥८६॥ ब्राह्मण को कुछ भी

खड़े होकर नहीं खाना चाहिए। और बुध पुरुषों को बातचीत करते हुए तथा हास्य हंसते हुए भी कभी भोजन नहीं करना चाहिए। अपनी अग्नि का हाथ से स्पर्श नहीं करे और चिर काल पर्यन्त जल में भी वास नहीं करे ॥८७॥ किसी पक्षक (परेवा) के द्वारा—सूर्प से तथा हाथ से अग्नि का धमन नहीं करे। मुख से ही किसी साधन के द्वारा अग्नि का धमन करे क्योंकि यह अग्नि मुख से ही समुत्पन्न भी हुए हैं ॥८८॥ जो स्त्री किसी दूसरे पुरुष की है उससे कभी भी भाषण नहीं करना चाहिए। द्विज को जो कोई भी यजन करने की योग्यता से शून्य है उससे याजन नहीं कराना चाहिए। विप्र को एकाकी सभा में सञ्चरण नहीं करना चाहिए और अधिक समवाय को भी वर्जित कर देना चाहिए ॥८९॥ बिना प्रदक्षिणा के किसी भी देवता के आयतन में कभी भी नहीं जाना चाहिए। वस्त्र से बीजन न करे और देवायतन में कभी वमन भी नहीं करना चाहिए। मार्ग भी कभी अकेला नहीं गमन करे तथा जो जन अधार्मिक हों उनके साथ भी कभी मार्ग गमन नहीं करे। किसी भी व्याधि से दूषित हो—शूद्र अथवा पतित हो उनके साथ भी मार्ग में गमन नहीं करे। मार्ग गमन कभी जूतों से रहित अर्थात् नंगे पैरों से नहीं करे और जलपात्र आदि से रहित होकर भी मार्ग गमन नहीं करना चाहिए ॥९०-९१॥

न राम्रावरिणासार्द्धंनबिनाकमण्डलुम् ।
नाग्निगोब्राह्मणादानामन्तरेणव्रजेत्क्वचित् ॥९२
निवत्स्यन्ती न वनितामतिक्रामेद् द्विजोत्तमा. ।
न निन्देद्योगिनः सिद्धान् गुणिनो वा यतींस्तथा ॥९३
देवतायतने प्राज्ञो न देवानाञ्च सन्निधौ ।
नाक्रामेत्कामतश्छायाब्राह्मणानागवामपि ॥९४
स्वां तु नाऽऽक्रमयेच्छाया पतिताद्यैर्न रोगिभिः ।
नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत्कदाचन ॥९५
वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम् ।
न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयञ्चपिबेद्द्विजाः ॥९६

रात्रि के समय मे और किसी शत्रु के साथ मे तथा बिना कमण्डलु आदि जल पात्र के भी यात्रा अर्थात् मार्ग मे गमन नहीं करना चाहिए। अग्नि—गौ—ब्राह्मण आदि के अन्तर से कहीं भी गमन न करे ॥६२॥ हे द्विजोत्तमो! निवास करती हुई वनिता का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। जो योगी पुरुष हो—सिद्ध हो—गुणवान् हो अथवा यति हो उनकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए ॥६३॥ प्राज्ञ पुरुष को किसी भी देवता के आयतन मे तथा देवताओ की सन्निधि मे स्वच्छा से ब्राह्मणो की और गौओ की भी छाया का आक्रमण नहीं करना चाहिए ॥६४॥ अपनी छाया को भी पतित आदि पुरुषो के तथा रोग युक्तो के द्वारा आक्रान्त न होने देना चाहिए। अङ्गार—भस्म और केश आदि पर कभी भी अधिष्ठित नहीं होना चाहिए ॥६५॥ मार्जनी (बुहारी) की धूलि है उसका और स्नान वस्त्र के घटोदक को भी वर्जित कर देवे। हे द्विजगण! जो पदार्थ शास्त्र मे अभक्ष्य बताये गये हैं उनको कभी नहीं खाना चाहिए। जो अपेय हो उसका पान भी कभी न करे ॥६६॥

१७—भक्ष्याभक्ष्यनिर्णयवर्णन

नाद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि वाऽन्यतः।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुङ्क्ते ह्यनापदि ॥१
षण्मासान्यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः (मृतः श्वा) एवाभिजायते ॥२
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वराः।
यस्यान्नेनोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात् ॥३
नटान्नं नर्तकान्नञ्च तक्ष्णोऽन्नं कर्मकारिणः।
गणान्नं गणिकान्नञ्च षण्ढान्नानि च वर्जयेत् ॥४
चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा।
गन्धर्वलोहकारान्नं सूतकान्नञ्च वर्जयेत् ॥५

कुलालचित्रकर्म्मान्नं वार्द्धुषं पतितस्यच ।
सुवर्णकारशैलूषव्याधबद्धातुरस्य च ॥६
चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डकस्य च ।
स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च ॥७

महर्षि प्रवर श्रीव्यास देव ने कहा—विप्र को शूद्र का अन्न मोह के वश में आकर अन्य लोभादि के कारण कभी भी नहीं खाना चाहिए । जो बिना ही किसी आपत्ति के समय के शूद्र का अन्न खाता है वह शूद्र की ही योनि को प्राप्त किया करता है ॥१॥ कोई विशेष आपत्ति का समय ही उपस्थित हो तो भले ही विप्र शूद्रान्न का सेवन कर लेवे अन्यथा जो द्विज छै मास पर्यन्त विगर्हित शूद्र के अन्न का सेवन करता है अर्थात् खाता है वह जीवित रहते हुए ही शूद्र हो जाता है और मरकर तो कुत्ता हुआ करता है ॥२॥ हे मुनीश्वरो ! ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य के तथा शूद्र के अन्दर जिस किसी का भी अन्न उदर में रखते हुए मनुष्य मृत होता है वह उसी की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है—यह अन्न का महान् प्रभाव होता है ॥३॥ नट का अन्न—नृत्य करने वाले का अन्न—तक्षा (बढ़ई) का अन्न—कर्मकारी का अन्न—गण का अन्न और वन्ध्या का अन्न ये छै लोगों के अन्नों को वर्जित कर देना चाहिए अर्थात् इन छै का अन्न अत्यन्त निषिद्ध अन्न होता है ॥४॥ चक्र (चाक) के द्वारा उपजीविका करने वाला (कुम्हार)—रजक—तस्कर—ध्वजी—गन्धर्व—लोहकार (लुहार) का अन्न तथा सूतक जिसको भी हो चाहे जातक या मृतक कैसा ही हो उसका अन्न—इन समस्त अन्नों को वर्जित कर देना चाहिए ॥५॥ कुलाल—चित्र कर्मों के करने वाला—वार्द्धुषि—पतित—सुवर्णकार—शैलूष—व्याध—बद्ध—आतुर—चिकित्सा करने वाला—पुंश्चली स्त्री—दण्डक—स्तेन—नास्तिक और देवों की निन्दा करने वाला—इन सबके अन्न को विप्र को वर्जित कर देना चाहिए ॥६-७॥

सोमविक्रयिणश्चान्नं श्वपाकस्य विशेषतः ।
भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिर्गृहे ॥८

उच्छिष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः ।
अपङ्क्तयन्नञ्च सघान्नं शस्त्रजीवस्य चैव हि ॥९
क्लीवसन्न्यासिनश्चान्नमत्तोन्मत्तस्य चैव हि ।
भीतस्यरुदितस्यान्नमवक्रुष्ट परिग्रहम् १०
ब्रह्मद्विपः पापरुचेः श्राद्धान्नं सूतकस्य च ।
वृथापाकस्य चैवान्नं शठान्नं चतुरस्यच ॥११
अप्रजानान्नुनारीणाभृतकस्यतथैव च ।
कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥१२
शौण्डान्नं घातिकान्नञ्च भिषजामन्नमेव च ।
विद्धप्रजननस्यान्नं परिवेत्रन्नमेव च ॥१३
पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपतेः ।
अवज्ञात चावधूतं सरोष विस्मयान्वितम् ॥१४
गुरोरपिनभोक्तव्यमन्नसस्कारवर्जितम् ।
दुष्कृतं हिमनुष्यस्यसर्वमन्नेव्यवस्थितम् ॥१५

जो सोम का विक्रय किया करता है उसका अन्न और विशेष रूप से श्वपाक का अन्न—जो अपनी भार्या से जीत लिया गया हो उसका अन्न जिसके घर मे ही कोई भार्या का उपपति रहता हो वर्जित करे। ॥८॥ उच्छिष्ट—कदर्य—उच्छिष्ट भोगी का अन्न तथा पंक्ति से हीन अन्न—संघ का अन्न और जो शस्त्रो के द्वारा ही जीविका चलाता हो उसका अन्न भी विप्र को वर्जित कर देना चाहिए ॥९॥ क्लीव—सन्यासी—मत्त—उन्मत्त—भीत—रुदित का अन्न अवक्रुष्ट परिग्रह अन्न को वर्जित करे ॥१०॥ ब्राह्मण से द्वेष करने वाले—पाप कर्म में रुचि रखने वाले का अन्न—श्राद्ध का अन्न—सूतक से संयुत का अन्न—वृथापाक का अन्न—शठ और चतुर का अन्न भी वर्जित अन्न कहा गया है ॥११॥ जिन स्त्रियों के कोई भी सन्तान न हो उन नारियों का अन्न—भृतकों का अन्न—कारुओं का अन्न और विशेष करके शास्त्रो के विक्रय करने वाले का अन्न भी वर्जित अन्न होता है ॥१२॥ शौण्डान्न—घातिक का अन्न—भिषजों का अन्न—विद्ध प्रजनन का अन्न—परिवेत्ता का अन्न—विशेष करके पुनर्भू

का अन्न—दिधिषूपत्व का अन्न—अवज्ञात—अवधूत—रोषसहित विस्मय मे अन्वित—गुरु का अन्न और सत्कार से वर्जित अन्न कभी नहीं खाना चाहिए। मनुष्य का सारा दुष्कृत अन्न में ही व्यवस्थित होता है ॥१३-१५॥

यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् ।
आर्द्धिकः कुलमित्रश्च स्वगोपालश्च नापितः ॥१६
कुशीलवः कुम्भकारः क्षेत्रकर्मक एवच ।
एते शूद्रेपुभोज्यान्नं दत्वा स्वल्पपणंबुधैः ।
पायसं स्नेहपक्वं यत् गोरसञ्चैव सक्तवः ॥१७
पिण्याकञ्चैवतैलञ्चशूद्राद्ग्राह्यं तथैवच ।
वृन्ताकञ्जालिकाशाककुसुम्भाश्मन्तकं तथा ॥१८
पलाण्डुं लशुनं निर्यासञ्चैव वर्जयेत् ।
छत्राकं विड्वराहञ्च शैलं पीयूषमेवच ॥
विलयं सुमुखञ्चैव कवकानिच वर्जयेत् ।
गृञ्जनं किंशुकञ्चैव कुक्कुटं च तथैव च ॥१९
उदुम्बरमलावुं च जग्ध्वा पतति वै द्विजः ।
वृथाकृशरसयावं पायसापूपमेव च ॥२०

जो जिसका अन्न खाता है वह उसके किल्विष को खा लेता है। आर्द्धिक—कुलमित्र—अपना गोपाल—नापित—कुशीलव—कुम्भकार—क्षेत्र पर कर्म करने वाला—इन शूद्रों को भोज्यान्न देकर बुधों के द्वारा स्वल्प पण देकर पायस—स्नेह (घृतादि) से पक्व—गोरस—सतुआ—पिण्याक और तैल शूद्र से भी ग्रहण कर लेना चाहिए। वृन्ताक—जालिका शाक—कुसुम्भाश्मन्तक—पलाण्डु (प्याज)—लशुन—सूक्त और निर्यास (गोंद) इन सबको वर्जित कर देना चाहिए। गाजर—किंशुक—उदुम्बर—अलावु को खाकर द्विज पतित हो जाया करता है। वृथा कृशरसयाव—पायसा पूप को भी वर्जित कर देवे ॥१६-२०॥

नीपंकपित्थंप्लक्षं च प्रयत्नेनविवर्जयेत् ॥२१

पिण्याकं चोद्धृतस्नेहदिवाधानास्तथैव च ॥२२
रात्रौ च तिलसम्बद्धं प्रयत्नेन दधि त्यजेत् ।
नाश्नीयात्पयसा तक्रं न बीजान्युपजीवयेत् ॥२३
क्रियादुष्टं भावदुष्टमसत्सङ्गं विवर्जयेत् ।
केशकीटावपन्नं च स्वभूल्लेखं च नित्यशः ॥२४
श्वाघ्रातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेक्षितं तथा ।
उदक्यया च पतितैर्गवा चाघ्रातमेव च ॥२५
अनर्चितं पर्युषितं पर्याभ्रान्तं च नित्यशः ।
काककुक्कुटसंस्पृष्टं कृमिभिश्चैव संयुतम् ॥२६
मनुष्यैरथवा घ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च ।
न रजस्वलया दत्तं न पुंश्चल्या सरोषकम् ॥२७

नीप—कपित्थ—प्लक्ष को प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए। पिण्याक—उद्धृत स्नेह—दिवाधान—रात्रि में तिलों से सम्बन्ध पदार्थ का भी परिवर्जन कर देना चाहिए। तथा दधि का भी रात्रि में त्याग कर देवे। पायस और तक्र एक ही बार में कभी नहीं खाने चाहिए और बीजों को कभी उपजीवित नहीं करे ॥२१-२३॥ जो भोज्य पदार्थ क्रिया से दुष्ट हो—भाव से दूषित हो और असत्सङ्ग वाला हो उसको विवर्जित कर देना चाहिए। केश और कीटों से अवपन्न-नित्य स्वभूल्लेख-कुत्तों के द्वारा आघ्रात-पुनः सिद्ध-चण्डाल के द्वारा अवेक्षित-उदक्या (रजस्वला स्त्री) के द्वारा—पतितों से और गौ के द्वारा आघ्रात—अनर्चित—पर्युषित—नित्य ही पर्याभ्रान्त-काक तथा कुक्कुट के द्वारा संस्पृष्ट किया हुआ तथा कृमियों से समन्वित—मनुष्य अथवा कुष्ठी के द्वारा स्पर्श किया हुआ-रजस्वला के द्वारा दिया हुआ-पुंश्चली स्त्री के द्वारा दिया हुआ और रोष पूर्वक दिया हुआ भी भोज्य पदार्थ अभक्ष्य हो जाता है और उसे वर्जित कर देना चाहिए ॥२४-२८॥

१८—आदित्यहृदय,सन्ध्योपासनवर्णन

अहन्यहनिकर्त्तव्य ब्राह्मणाना महामुने ।
तदाचक्ष्वाखिलकम येन मुच्येत् बन्धनात् ।।१
वक्ष्येसमाहिता यूय शृणुघ्वगदतो मम ।
अहन्यहनि कर्त्तव्यब्राह्मणानाक्रमाद्विधिम् ।।२
ब्राह्मे मुहूर्त्ते तूत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् ।
कायक्लेशञ्च यन्मूल ध्यायेयमनसेश्वरम् ।।३
उष काले चसम्प्राप्तेकृत्वाचावश्यक बुधः।
स्नायान्नदीषुशुद्धासुशौचकृत्वायथाविधि ।।४
प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपिपापकृतोजनाः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनप्रातःस्नानसमाचरेत् ।।५
प्रात स्नान प्रशसन्ति दृष्टादृष्टकरहि तत् ।
ऋषीणामृषितानित्यप्रात स्नानान्नसशय ।।६
मुखे सुप्तस्य सतत लाला या सस्रवन्ति हि ।
ततो नैवाचरेत्कर्म अकृत्वा स्नानमादित ।।७

ऋषिगण ने कहा—हे महामुने ! दिन प्रतिदिन ब्राह्मणों का जो भी कर्तव्य कर्म हो उसे सम्पूर्ण को आप हमको बतलाइये जिसके द्वारा विप्र सांसारिक बन्धन से विमुक्त हो जाया करता है । महर्षि श्रीव्यास देव ने कहा—आप लोग पूर्णतया समाहित हो जाइय मैं सब बतलाऊँगा आप लोग कहते हुए मुझसे श्रवण कीजिए कि नित्य प्रति ब्राह्मण का क्या कर्त्तव्य होता है और क्रम से उसकी क्या विधि है ।।१-२।। ब्राह्मण को ब्रह्ममुहूर्त्त म ही शय्या का त्याग कर उठ जाना चाहिए और उठकर उसे सर्वप्रथम धर्म्म तथा अर्थ का चिन्तन करना चाहिए । काया के क्लेश का जो मूल कारण है उस मन से ईश्वर का ध्यान करना चाहिए ।।३।। जब उषा काल सम्प्राप्त हो जाव तो बुध पुरुष को शौचादि शरीर के आवश्यक कर्म करने चाहिए । फिर शुद्ध नदी म यथाविधि शौच का सम्पादन करके स्नान करना चाहिए ।।४।। प्रातःकाल के समय म स्नान करने

पाप कर्म करने वाले भी मनुष्य पवित्र हो जाया करते हैं। इसलिये सब प्रकार के प्रयत्न से प्रातः काल में ही स्नान करना चाहिए ॥५॥ प्रातः काल के स्नान की बहुत अधिक महिमा है। प्रातः काल में किये गये स्नान की सब अत्यधिक प्रशंसा किया करते हैं क्योंकि यह दृष्ट और अदृष्ट का सम्पादन करने वाला होता है। अर्थात् इससे ही अदृष्ट का निर्माण होता है। ऋषिगणों की जो ऋषित्व है वह भी प्रातः स्नान के कारण से ही है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६॥ सोये हुए मनुष्य के मुख में जो लाला (लार) स्रवण किया करती है। आदि में स्नान न करके फिर कोई भी कर्म नहीं करना चाहिए ॥७॥

अलक्ष्मको जल किञ्चित् दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम्।
प्रातःस्नानेन पापानि पूयन्ते नात्र संशयः ॥८
अत स्नानं विना पुंसा पावनं (पापित्वं) कर्म सुस्मृतम्।
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥९
अशक्तावशिरस्कं वास्नानमस्य विधीयते।
आर्द्रेणवाससावाथमार्जनं पावनं स्मृतम् ॥१०
आयत्य वैसमुत्पन्नेस्नानमेवमसमाचरेत्।
ब्राह्मादीनामयाशक्तौस्नानान्याहुर्मनीषिणः ॥११
ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च।
वारुणयौगिकयच्चषोढास्नानं समासतः ॥१२
ब्राह्मं तुमार्जनं मन्त्रं कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आग्नेयंभस्मनापादमस्तकाद्देहधूलनम् ॥१३
गवां हि रजसाप्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम्।
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ॥१४

अलक्ष्मक जल—कोई भी दुःस्वप्न और दुर्विचिन्तित ये सब प्रातः स्नान करने से पाप पवित्र हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८॥ इसीलिये स्नान के बिना मनुष्यों का पावन (पापित्व) कर्म सुस्मृत किया गया है। विशेष रूप से होम में—जाप में इसीलिये स्नान अवश्य ही करना चाहिए ॥९॥ यदि सर्वाङ्ग स्नान करने में असमर्थता हो तो

सिर के ऊपर जल न देकर ही इसके स्नान का विधान किया जाता है। और इसके भी करने की शक्ति न हो तो गीले वस्त्र से सर्वांग का मार्जन करना ही पावन बताया गया है ॥१०॥ आगत्य के समुत्पन्न होने पर तो स्नान ही करना चाहिए। ब्राह्मण आदि वर्णों की अशक्ति होने पर मनीषियों ने अन्य स्नान भी बतलाये हैं ॥११॥ संक्षेप से छै प्रकार के स्नान बताये गये हैं। उनके नाम—ब्राह्म—आग्नेय—वायव्य—दिव्य—वारुण और यौगिक ये छै उन स्नानों के नाम हैं ॥१२॥ ब्राह्म स्नान यह होता है जिसमें मन्त्रों से उदक की विन्दुओं के सहित कुशाओं से मार्जन किया जाता है। आग्नेय वह स्नान कहा जाता है जिसमें भस्म से मस्तक से लेकर पाद पर्यन्त सम्पूर्ण देह को धूलित कर लिया जाता है ॥१३॥ वायव्य स्नान वह होता है जिसमें गौओं के खुरों से समुत्थित धूलि से उत्तम स्नान किया जाता है। जो सूर्यातप के होते हुए वर्षा की बूँदें पड़ा करती हैं उनसे ही स्नान किया जाता है वही दिव्य स्नान कहा जाया करता है ॥१४॥

वारुणञ्चावगाहस्तु मानसं स्वात्मवेदनम्।
योगिनां स्नानमाख्यातं योगे विश्वादिचिन्तनम् ॥१५

आत्मतीर्थमितिख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः।
मनःशुद्धिकरं पुंसानित्यंतत्स्नानमाचरेत् ॥१६

शक्तश्चेद्वारुणं विद्वान् प्रायश्चित्तेतथैव च।
प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं वै भक्षयित्वाविधानतः ॥१७

आचम्य प्रयतो नित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत्।
मध्याङ्गुलिसमस्थौल्यं द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ॥१८

सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण तु धावयेत्।
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम्।
अपामार्गञ्च बिल्वञ्च करवीरं विशेषतः ॥१९

वर्जयित्वा निन्दितानिगृहीत्वैकंयथोदितम्।
परिहृत्यदिनं पापभक्षयेद्वैविधानवित् ॥२०

नोत्पादयेद्दन्तकाष्ठं नांगुल्यग्रेणधारयेत् ।
प्रक्षाल्य भक्त्वातज्जह्याच्छुचौ देशेनमाहित. ॥२१
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवान् षीन् पितृगणास्तथा ।
आचम्य मन्त्रविन्नित्य पुनराचम्य वाग्यतः ॥२२

वारुण स्नान वह होता है जिसमें अपनी आत्मा का ज्ञान स्वरूप अवगाहन किया जाता है। योगियों का योगिक स्नान हुआ करता है और यह स्नान उन्हीं का बतलाया गया है जो योगाभ्यास में विश्व आदि का चिन्तन किया जाता है ॥१५॥ आत्मा को तीर्थ कहा गया है जो आत्मतीर्थ नाम से विश्रुत है और ब्रह्मवादियों के द्वारा सेवित होता है। यह पुरुषों के मन की शुद्धि करने वाला स्नान है अतएव नित्य ही इस स्नान को करना चाहिए ॥१६॥ यदि शक्ति सम्पन्न हो तो वारुण स्नान करे तथा प्रायश्चित्त में भी करे। दन्तकाष्ठ (दाँतुन) को प्रक्षालित करके विधान से उसका भक्षण करे ॥१७॥ फिर प्रयत होकर नित्य ही आचमन करे और फिर प्रात स्नान करना चाहिए। दाँतुन मध्यमा अंगुलि के समान स्थूल होनी चाहिए और बारह अंगुल बड़ी होनी चाहिए ॥१८॥ त्वचा के सहित ही दन्त काष्ठ होना चाहिए। उसके अग्र भाग से उससे द्वारा धावन करे। जो वृक्ष ऐसे हैं कि जिनमें दूध निकलता है उन वृक्षों से समुत्पन्न—मालती लता की शुभ—अपामार्ग—विल्व—विशेष रूप से करवीर को ॥१९॥ निन्दितों का वर्णन करके जैसा भी बताया गया है एक का ग्रहण करे। दिन के पाप का परिहार करके विधान के वेत्ता को भक्षण करना चाहिए ॥२०॥ दन्त काष्ठ का उत्पादन नहीं करे और अंगुली के अग्र भाग से धारण नहीं करना चाहिए। भक्षण करके प्रक्षालन करे और समाहित होते हुए किसी शुचि देश में उसका त्याग करें ॥२१॥ स्नान करके देवों को—ऋषियों को—पितृगणों को तर्पण करे। मन्त्रवेत्ता को आचमन करके नित्य ही मौन व्रत में स्थित रह कर पुनः आचमन करना चाहिए ॥२२॥

सम्मार्जयेत् मन्त्रैरेभिः शुभैः सोदर्कबिन्दुभिः ।
आपोहिष्ठाभ्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः ॥२३

ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रीदेवमातरम् ।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद्भास्करं प्रति तन्मनाः ॥२४
प्राक्कूलेषु ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति स्मृतिः ॥२५
या च सन्ध्या जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला ।
ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ॥२६
ध्यात्वार्कमण्डलगतां सावित्रीं वै जपेद् बुधः ।
प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥२७
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्नतस्य फलमाप्नुयात् ॥२८

उदक की बिन्दुओं के सहित कुशाग्रों से मन्त्रों के द्वारा अपने आपका मार्जन करके जोकि "आपोहिष्ठा मयो भुवः" इत्यादि व्याहृतियों से हो— सावित्री मन्त्र से या शुभ वारुण मन्त्रों से मार्जन करना चाहिए ॥२३॥ ओङ्कार और व्याहृतियों से युक्त देव माता गायत्री का जाप करके तन्मना होकर भास्कर देव के प्रति जलाञ्जलि देनी चाहिए ॥२४॥ प्राक्कूलों में तथा दर्भों में सुसमाहित होकर स्थित होवे और तीन प्राणायाम करके सन्ध्या का ध्यान करना चाहिए—ऐसा स्मृति का आदेश या वचन है ॥२५॥ जो सन्ध्या इस जगत् की प्रसूति है माया से अतीत और निष्कला है। वह केवल ईश्वरीय शक्ति ही है जिसका समुद्भव तीन तत्त्वों से ही होता है ॥२६॥ बुध पुरुष उस सावित्री देवी को सूर्य मण्डल में संस्थित हुई का ध्यान करना चाहिए और फिर उसका जाप करे। विप्र को सर्वदा पूर्व दिशा की ओर मुख करके सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए ॥२७॥ जो पुरुष सन्ध्या वन्दन से हीन होता है वह नित्य ही अशुचि और समस्त कर्मों में अनर्ह होता है। इसके अतिरिक्त अन्य जो भी वह कर्म करता है उसका फल उसको नहीं मिला करता है ॥२८॥

अनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वेऽपरां गतिम् ॥२९

योऽन्यत्र कुरुतेयत्नंधर्मकार्यं द्विजोत्तमः ।
विहाय सन्ध्याप्रणतिसयातिनरकायुतम् ॥३०
तस्मात्सर्वंप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् ।
उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः ॥३१
सहस्रपरमानित्यशतमध्यादशावराम् ।
सावित्रीवंजपेद्विद्वान्प्रागमुखः प्रयत स्थितः ॥३२
अथोपतिष्ठेदादित्यमुद्यन्तंवैसमाहितः ।
मन्त्रैस्तुविविधं सौरै ऋग्यजुः साममम्भवैः ॥३३
उपस्थाय महायोग देवदेवं दिवाकरम् ।
कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्ध्ना तेनैव मन्त्रतः ॥३४
ओंखखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामिचात्मान नमस्ते विश्वरूपिणे ॥३५

अनन्यचित्त वाले, परम शान्त—वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मण विधि पूर्वक सन्ध्या की उपासना करके परागति को प्राप्त हुए हैं ॥२॥ जो द्विजोत्तम अन्यत्र धर्म कार्य में यत्न किया करता है और सन्ध्या की प्रणति का त्याग कर दिया करता है वह दश हजार वर्ष पर्यन्त नरका की यातनायें सहन किया करता है ॥३०॥ इसलिये सभी प्रयत्नों के द्वारा सन्ध्या की उपासना अवश्य ही करनी चाहिए। उसकी उपासना से युक्त उसके कारण ही योग के शरीर वाले पर देव हो जाता है ॥३१॥ एक सहस्र सावित्री का जाप सर्वश्रेष्ठ नैत्यिक जाप है—एक सौ मध्यम श्रेणी का है और कम से कम दश बार ही जाप करना अधम कोटि में आता है। विद्वान् पुरुष को इस सावित्री का जाप पूर्वाभिमुख होकर प्रयत समवस्थित रह कर ही करना चाहिए ॥३२॥ समाहित होकर आदित्य देव का जबकि वह उदय हो रहे हों उपस्थान करना चाहिए। इस उपस्थान के अनेक मन्त्र हैं जो सौर है तथा ऋग्-यजु और सामवेद के हैं ॥३३॥ महान् योग वाले देवों के देव भगवान् भुवन भास्कर देव का उपस्थान करके उसी मन्त्र के द्वारा मस्तक से भूमि में प्रणाम करना चाहिए ॥३४॥ उसका प्रणति करने का यह मन्त्र है जिसका अर्थ है

सोम ग के उल्का-परम शान्त स्वरूप तीनों कारणों के हेतु विश्व रूपी आपकी सेवा मे मैं अपने आपको समर्पित करता हूं और आपके लिये मेरा प्रणाम अर्पित है ॥३५॥

नमस्ते घृणिने तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे ।
त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम् ॥
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः शर्वो रुद्रः सनातनः ॥३६
पुरुषःसन्महोऽन्तस्थप्रणमामि कपर्दिनम् ।
त्वमेव विश्वम्बहुधाजातंयज्जायतेच यत् ॥
नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं शरणं गतः ॥३७
प्रचेतसे नमस्तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय च ।
नमो नमस्ते रुद्राय त्वामहं शरणगतः ।
हिरण्यबाहवे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः ॥३८
अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाःपतये नमः।
नमोऽस्तुनीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने ॥३९
विलोहिताय भर्गायसहस्राक्षायते नमः ।
तमोपहाय ते नित्यमादित्यायनमोऽस्तुते ॥४०
नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमो नमः ।
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम् ॥४१
हिरण्मयेगृहेगुप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।
नमस्यामिपरं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वां परामृतम् ॥४२

घृणी ब्रह्म रूपी सूर्य आपके लिये मेरा प्रणाम है। आप ही परम ब्रह्म हैं और आप ही आप-ज्योति रस और अमृत हैं। भू भुवः स्वः आप ओङ्कार हैं तथा शर्व रुद्र और सनातन है ॥३६॥ पुरुष होते हुए मद के मन्दर स्थित कपर्दी आपको मैं प्रणाम करता हूँ आप ही बहुधा विश्व समुत्पन्न हुए हैं और उत्पन्न होते भी हैं। अथवा जो कुछ भी होता है वह आप ही हैं। रुद्र देव सूर्य के लिये नमस्कार है। मैं आपकी शरणागति में प्रपन्न हो गया हूँ ॥३७॥ प्रचेता आपके लिये नमस्कार है-मीढुष्टम के लिये अभिवादन है। रुद्र आपको बारम्बार नमस्कार समर्पित है। मैं

प्रोम ख के उत्का—परम शान्त स्वरूप तीनों कारणों के हेतु विश्व रूपी आपकी सेवा मे मैं अपने आपको समर्पित करता हूँ और आपके लिये मेरा प्रणाम अर्पित है ॥३५॥

नमस्ते घृणिने तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे ।
त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम् ॥
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः शर्वो रुद्रः सनातनः ॥३६
पुरुषःसन्महोऽन्तस्थप्रणमामि कपर्दिनम् ।
त्वमेव विश्वम्बहुधाजातंयज्जायतेच यत् ॥
नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं शरणं गतः ॥३७
प्रचेतसे नमस्तुभ्य नमो मीढुष्टमाय च ।
नमो नमस्ते रुद्राय त्वामहं शरणगतः ।
हिरण्यवाहवे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः ॥३८
अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाःपतये नमः ।
नमोऽस्तुनीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने ॥३९
विलोहिताय भर्गायसहस्राक्षायते नमः ।
तमोपहाय ते नित्यमादित्यायनमोऽस्तुते ॥४०
नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमो नमः ।
प्रपद्ये त्वा विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम् ॥ -१
हिरण्मयेगृहेगुप्तमात्मान सर्वदेहिनाम् ।
नमस्यामिपरं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वा परामृतम् ॥४२

घृणी ब्रह्म रूपी सूर्य आपके लिये मेरा प्रणाम है। आप ही परम ब्रह्म हैं और आप ही आप-ज्योति रस और अमृत हैं। भू र्भुवः स्वः आप ओङ्कार हैं तथा शर्व रुद्र और सनातन है ॥३६॥ पुरुष होते हुए मद के अन्दर स्थित कपर्दी आपको मैं प्रणाम करता हूँ आप ही बहुधा विश्व समुत्पन्न हुए हैं और उत्पन्न होते भी हैं। अथवा जो कुछ भी होता है वह आप ही हैं। रुद्र देव सूर्य के लिये नमस्कार है। मैं आपकी शरणागति मे प्रपन्न हो गया हूँ ॥३७॥ प्रचेता आपके लिये नमस्कार है—मीढुष्टम के लिये अभिवादन है। रुद्र आपको वारम्वार नमस्कार समर्पित है। मैं

आपकी शरण में आ गया हूँ। हिरण्य बाहु और हिरण्यपति आपके लिये नमस्कार है ॥३८॥ अम्बिका के पति और उमा के पति आपको प्रणाम है। नील ग्रीवा वाले को नमस्कार है। पिनाकधारी आपके लिये नमस्कार अर्पित है ॥३६॥ विलोहित-भर्ग—सहस्राक्ष आपको नमस्कार है। तम के अपहरण करने वाले आपको नित्य ही नमन करता हूँ तथा आदित्य आपकी सेवा में प्रणाम है ॥४०॥ हाथ में वज्र रखने वाले—त्र्यम्बक आपको बारम्बार नमस्कार है। विरूपाक्ष आपकी शरण में प्रपन्न होता हूँ। आप परम महान् और परमेश्वर हैं। समस्त देहधारियों के हिरण्मय गृह में गुप्त आत्मा—परज्योति —परामृत ब्रह्म आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४१-४२॥

विश्वं पशुपतिं भीमं नरनारीशरीरिणम्।
नमः सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्ठिने ॥४३
उग्राय सर्वतक्षाय त्वां प्रपद्ये सदैव हि।
एतद्वै सूर्यहृदयं जप्त्वा स्तवमनुत्तमम् ॥४४
प्रातःकालेऽथ मध्याह्ने नमस्कुर्याद्दिवाकरम्।
इदं पुत्राय शिष्याय धार्म्मिकाय द्विजातये ॥४५
प्रदेयं सूर्यहृदयंब्रह्मणा तु प्रदर्शितम्।
सर्वपापप्रशमनं वेदसारसमुद्भवम् ॥
ब्राह्मणानां हितं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥४६
अथागम्यगृहंविप्र समाचम्य यथाविधि।
प्रज्ज्वाल्यवह्निंविधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥४७
ऋत्विक्पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयुर्वा यथाविधि ॥४८
पवित्रपाणि पूतात्माशुक्लाम्बरधरःशुचिः।
अनन्यमनसा नित्यंजुहुयात्संयतेन्द्रियः ॥४९

विश्व—पशुपति—भीम—नर और नारी के शरीर वाले—को प्रणाम है। सूर्य—रुद्र—भास्वान् और परमेष्ठी की सेवा में नमस्कार है ॥४३॥ उग्र—सर्व तक्ष आपको सदा ही प्रपन्न होकर नमन करता हूँ। इस सूर्य

हृदय का जाप करके जो परम उत्तम सूर्य का स्तव है प्रातःकाल मे— मध्याह्न मे दिवाकर भगवान् को नमस्कार करना चाहिए ॥४४॥ इस परमोत्तम स्तव सूर्य हृदय को दीक्षा या तो अपने पुत्र को देवे या शिष्य को और किसी परम धार्मिक को ही द्विजगत को देनी चाहिए ॥४५॥ यह सूर्य हृदय किसी परम योग्य को ही देना चाहिए यह ब्रह्मा के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह स्तव समस्त पापो के प्रशमन करने वाला तथा वेदो के सार से समुत्पन्न हुआ है। यह ब्राह्मणो का बहुत हितकर है और परम पुण्यमय है इसको ऋषियो के संघो ने सेवित किया है ॥४६॥ इसके उपरान्त विप्र को अपने घर में आकर यथाविधि भली-भाँति आचमन करके वह्नि का ज्वालन करना चाहिए और जात वेदा का विधि के साथ हवन करना चाहिए ॥४७॥ ऋत्विज का पुत्र—पत्नी—शिष्य अथवा सहोदर अथवा अध्वर्यु अनुज्ञा यथाविधि प्राप्त करके विशेष रूप से हवन करे ॥४८॥ हाथो को पवित्र करने वाला तथा पवित्री हाथो मे धारण करने वाला—पूत आत्मा से युक्त शुक्ल वस्त्र धारी—शुचि और संयत इन्द्रियो वाला होकर ही अनन्य मन के द्वारा नित्य ही हवन करना चाहिए ॥४९॥

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः।
राक्षसं तद्भवेत्सर्वं नामुत्रेह फलप्रदम् ॥५०
दैवतानि नमस्कुर्यादुपहारान्निवेदयेत्।
दद्यात्पुष्पादिकं तेषां वृद्धांश्चैवाभिवादयेत् ॥५१
गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत्।
वेदाभ्यासं ततः कुर्यात्प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजाः ॥५२
जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत्।
अवेक्ष्यतच्च शास्त्राणि(अवेक्ष्येताच्यशास्त्रेण)धर्मादीनिद्विजोत्तमः ॥
वैदिकांश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वशः।
उपेयादीश्वरं चाथ योगक्षेमप्रसिद्धये ॥५४
साधयेद्विविधानर्थान् कुटुम्बार्थेततोद्विजः।
ततो मध्याह्नसमयेस्नानार्थं मृदमाहरेत् ॥५५

पुष्पाक्षतान् कुशतिलान् गोशकृच्छुद्धमेव वा ।
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च ।।
स्नान समाचरेन्नित्य गर्त्तप्रस्रवणेषु च ।।५६

बिना धर्म के तथा बिना सूत्र के जो भी कुछ कर्म किया जाता है वह सब किया कराया कम के फल को राक्षस ग्रहण कर लिया करते हैं अतएव राक्षस कर्म ही हो जाता है और इस लोक परलोक म कहीं भी कुछ फल प्रद नहीं होता है ।।५०।। फिर देवताओं को नमस्कार करे तथा कुछ उपहार भी उनको समर्पित करना चाहिए। उन देवों को गन्धाक्षत पुष्प आदि देवे तथा फिर जो भी अपने वृद्ध हो उनका अभिवादन करना चाहिए ।।५१।। फिर अपने गुरुदेव की भी उपासना करे और उनका जो भी कुछ हित हो उसका समाचरण करे। हे द्विजगण ! इसके अनन्तर प्रयत्न पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार वेदों का अभ्यास करना चाहिए ।।५२।। स्वय जप करे—शिष्यों को अध्याय न करे-धारण करे और विचार करना चाहिए। हे द्विजोत्तमो ! फिर धर्मादि के शास्त्रों का अवेक्षण करना चाहिए। अर्थात् धर्मशास्त्र आदि अनेक शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए ।।५३।। जो निगम वैदिक हैं उनको और वेदों के अग शास्त्रों को पढ़े और योग क्षेम की सिद्धि के लिये ईश्वर की शरण म प्राप्त होवे ।।५४।। इसके उपरान्त द्विज को कुटुम्ब के लिये विविध अर्थों का साधन करना चाहिए और मध्याह्न के समय मे स्नान के लिये मृत्तिका आहरण करे ।।५५।। पुष्प—अक्षत—कुश—तिल—गोमय शुद्ध—आदि समस्त उपचारों का संग्रह करे और मध्याह्न समय मे नदी—देवखात—तड़ाग और सरोवर तथा गत प्रस्रवण मे नित्य स्नान करना चाहिए ।।५६।।

परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वै कदाचन ।
पञ्चपिण्डान्समुद्धृत्य स्नायाद्वासम्भवे पुनः ।।५७
मृदैकया शिरः क्षाल्य द्वाभ्या नाभेस्तथोपरि ।
अधस्तु तिसृभिः कायः पादौ षड्भिस्तथैव च ।।५८

मृत्तिका च समुद्दिष्टासार्द्रमिलकमात्रिका ।
गोमयस्य प्रमाणन्तुतेनाङ्गलेपयेत्पुनः ॥५९
लेपयित्वा तीरसंस्थं तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः ।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः ॥६०
अभिमन्त्र्य जलंमन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्वारुणैः शुभैः ।
भावपूतस्तदव्यक्तं धारयेद्विष्णुमव्ययम् ॥६१
आपो नारायणोद्भूतास्ता एवास्यायनं पुनः ।
तस्मान्नारायणं देव स्नानकाले स्मरेद् बुधः ॥६२
प्रेक्ष्य सोङ्कारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये ॥६३

जो परकीय निपान हों उनमे कभी भी स्नान नहीं करे। यदि ऐसा सम्भव ही न हो तो पाँच पिण्डों को समुद्धृत कर के ही वहाँ पर स्नान करना चाहिए ॥५७॥ एक बार मिट्टी से शिर का क्षालन करे—नाभि के ऊपरी भाग में दो बार मिट्टी लगाकर क्षालन करे—नाभि के नीचे तीन बार और पादों को छै बार मिट्टी लगाकर धोना चाहिए ॥५८॥ मिट्टी जो आर्द्र होती है वही अमल करने वाली कही गयी है। गोमय का उतना प्रमाण ग्रहण करे जिससे सम्पूर्ण अङ्ग का लेपन हो जावें। लेपन करके तीर पर संस्थित हो तल्लिङ्ग मन्त्रों के ही द्वारा प्रक्षालन कर आचमन करे और विधिवत् समाहित हो कर ही वहाँ पर इसके पश्चात् स्नान करना चाहिए ॥५९-६०॥ उसी लिङ्ग वाले परम शुभ वारुण मन्त्रों के द्वारा जल को अभिमन्त्रित करे। इसके अनन्तर भावना से ही पवित्र होकर उस अव्यय—अव्यक्त भगवान् विष्णु को धारण करे ॥६१॥ ये जल नारायण से ही समुद्भूत हुए है और ये ही इनके निवास करने के भी स्थान हैं। इसी लिये भगवान् नारायण देव का स्नान करने के समय में बुध पुरुष को स्मरण अवश्य ही करना चाहिए ॥६२॥ ओङ्कार के सहित आदित्य देव का प्रेक्षण करके तीन बार जलाशय में निमज्जन करे ॥६३॥

आचान्तः पुनराचामेत् मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥६४

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्व यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥६५
द्रुपदा वा त्रिरभ्यस्येद्व्याहृतिप्रणवान्विताम् ।
सावित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाऽघमर्षणम् ॥६६
तत सम्मार्ज्जनं कुर्यात् (कार्यं) आपो हिष्ठामयो भुव. ।
इदमापः प्रवहतो व्याहृतिभिस्तथैव च ॥६७
तथाभिमन्त्र्यतत्तोयमापोहिष्ठादिमिस्त्रिकैः ।
अन्तर्जलगतोमग्नोजपेत् त्रिरघमर्षणम् ॥६८
द्रुपदा वाथ सावित्री तद्विष्णो. परमम्पदम् ।
आवर्त्तयेच्च प्रणव देव वा सस्मरेद्धरिम् ॥६९
द्रुपदादिव यो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठित. ।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७०

मन्त्र वेत्ता को आचान्त होकर भी पुनः इसी मन्त्र से आचमन करना चाहिए ॥६४॥ मन्त्र यह है जिसका अर्थ है—विश्वतोमुख प्रभु गुहा मे अन्दर चरण भूतो मे किया करते हैं आप ही यज्ञ—वषट्कार—आप—ज्योति—रस और अमृत हैं ॥६५॥ अथवा "द्रुपदिव मुमुचान"—इत्यादि मन्त्र का तीन बार अभ्यास करे जो व्याहृति और प्रणव से समन्वित हो। अथवा विद्वान् को सावित्री का जाप करना चाहिए तथा अघमर्षण करे ॥६६॥ इसके उपरान्त 'आपोहिष्ठा मयो भुवः"—इत्यादि मन्त्रो से सम्मार्जन करना चाहिए। तथा 'इदमापः प्रवहतः" इससे एव व्याहृतियो से मार्जन करे ॥६७॥ उस जल को 'आपोहिष्ठा" इत्यादि त्रिको के अभिमन्त्रित करके जल के अन्तर्गत होकर मग्न होते हुए ही तीन वार अघमर्षण मन्त्र का जाप करना चाहिए ॥६८॥ 'द्रुपदाम्'—'सावित्री'—'तद्विष्णो' परम पदम्' अथवा प्रणव की आवृत्ति करे तथा देव हरि का सस्मरण करना चाहिए ॥६९॥ जो 'द्रुपदादिव' यह मन्त्र यजुर्वेद मे प्रतिष्ठित है उसको जल के अन्दर तीन वार आवृत्ति करके मनुष्य समस्त पापो से प्रमुक्त हो जाया करता है ॥७०॥

अपः पाणौसमादायजप्त्वावैमार्जनेकृते ।
विन्यस्यमूर्ध्नितत्तोयंमुच्यतेसर्वपातकैः ॥७१
यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाघमर्षणम्प्रोक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥७२
अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्द्ध्वं पुष्पाक्षतान्वितम् ।
प्रक्षिप्याऽऽलोकयेद् देवमूर्द्ध्वं यस्तमसः परः ॥७३
उदुत्यं चित्रमित्येते तच्चक्षुरिति मन्त्रतः ।
हंस- शुचिषदन्तेन सावित्र्यासविशेषतः ॥७४
अन्यैश्चवैदिकैर्मन्त्रैः सौरैःपापप्रणाशनैः ।
सावित्रीवैजपेत्पश्चाज्जपयज्ञः स वैस्मृतः ॥७५
विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च ।
शतरुद्रीयं शिरस सौरान्मन्त्रांश्च सर्वतः ॥७६
प्राक्कूलेषु समासीनः कुशेषु प्रागमुखः शुचिः ।
तिष्ठंश्च वीक्षमाणोऽर्कं जप्यं कुर्यात्समाहितः ॥७७

हाथ में जल लेकर जाप करके मार्जन करने पर उस जल को मस्तक पर विन्यस्त करने पर मानव सम्पूर्ण पातकों से मुक्ति पा जाया करता है ॥७१॥ जिस तरह अश्व मेध यज्ञ सब यज्ञों का राजा कहा जाता है और वह सभी प्रकार के पापों का अपमोदन करने वाला होता है उसी भाँति यह अघमर्षण मन्त्र भी कहा गया है जो सभी पातकों को दूर हटाने वाला है ॥७२॥ इसके अनन्तर भगवान् आदित्य देव का ऊपर की ओर पुष्प-अक्षत आदि उपस्थान करना चाहिए तथा पुष्पाक्षतों को आदित्य की ओर ऊपर प्रक्षिप्त करके ऊपर की ओर देवका समालोकन करे जो तम से पर है ॥७३॥ उपस्थान के मन्त्र 'उदुत्यम्'—'चित्रम्'—और 'तच्चक्षुः' इत्यादि होते हैं। 'हंसः शुचि षद्'—इस मन्त्र वाले मन्त्र से और विशेष कर सावित्री मन्त्र से करे ॥७४॥ और भी अन्य वैदिक मन्त्रों के द्वारा तथा पापों के नाशक सौर मन्त्रों के द्वारा उपस्थान करना चाहिए। इसके पीछे सावित्री का जाप करे। यह जप यज्ञ कहा गया है ॥७५॥ विविध पवित्र मन्त्र तथा गुह्य विद्याएँ हैं—शत रुद्रीय—शिरस—और सौर

मन्त्र है उनको प्राक् कूल या समासीन होकर पूर्व की ओर मुख वाला कुशासन पर संस्थित और शुचि स्थित होते हुए सूर्य को देखते हुए परम समाहित होकर जाप को करना चाहिए ॥७७॥

स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः ।
कर्तव्यात्वक्षमालास्यादुत्तरादुत्तमास्मृता ॥७८
जपकाले न भाषेत व्यगानप्रक्षयेद् बुधः ।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवादन्तान्नैवप्रकाशयेत् ॥७९
गुह्यकाराक्षसाःसिद्धाहरन्तिप्रसभं यत ।
एकान्तेपुशुचौदेशेतस्माज्जप्यन्समाचरेत् ॥८०
चण्डालाशौचपतितान् दृष्ट्वाचैवपुनर्जपेत् ।
तैरेव भाषणकृत्वास्नात्वाचैवपुनर्ज्जपेत् ॥८१
आचम्यप्रयतोनित्यजपेदशुचिदर्शने ।
सौरान्मन्त्रान्शक्तितोवैपावमानीस्तुकामतः ॥८२
यदि स्यात् क्लिन्न (छिन्न) वासा वै वारिमध्य गतोऽपि वा ।
अन्यथा तु शुचौ भूम्या दर्भेषु सुसमाहितः ॥८३
प्रदक्षिण समावृत्य नमस्कृत्य ततः क्षितौ ।
आचम्य च यथाशास्त्र भक्त्या(शक्त्या)स्वध्यायमाचरेत्॥८४

जाप की माला स्फटिक से निर्मित हो—इन्द्राक्ष—रुद्राक्ष और पुत्र जीव से समुत्पन्नों की हो । ऐसी ही अक्षमाला का निर्माण करना चाहिए । इनमें जो भी उत्तर में हैं वह पहिली मालाओं से उत्तम मानी गयी है ॥७८॥ जाप करने के समय में भाषण बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए और बुध पुरुष को कोई भी व्यङ्गय वचनों का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए । जप के समय में सिर और ग्रीवा को भी कम्पित न करे तथा दाँतों को न दिखावे ॥७९॥ ऐसा विधि निषिद्ध जाप करने पर उस जप के सम्पूर्ण फल को गुह्यक—राक्षस और सिद्ध लोग बल पूर्वक हरण कर लिया करते हैं । इसीलिये यह जाप का कर्म परम एकान्त पवित्र स्थल में ही समाचरित करना चाहिए ॥८०॥ चण्डाल और अशौच में पतितों को देख पुनः जाप करे । अगर उनके साथ भाषण कर लेवे तो फिर

दूसरी बार स्नान करके पुनः जप का समारम्भ करना चाहिए ॥८१॥ नित्य ही आचमन करके प्रयत हो जप करे। अशुचि के दर्शन करने पर और मन्त्रों को शक्ति से पावमानी मन्त्रों को स्वेच्छा से जाप करना चाहिए ॥८२॥ यदि भीगे हुए वस्त्रों से हो तो वारि के मध्य में ही स्थित होकर जाप करे अन्यथा तो किसी परम शुचि भूमि में दर्भासन पर स्थित होकर ही अति समाहित होकर जप करना चाहिए ॥८३॥ फिर जप के प्रदक्षिणा करे और भूमि मे नमस्कार करे तथा फिर आचमन करके शास्त्र के अनुसार ही भक्ति की भावना से अपनी शक्ति के अनुरूप स्वाध्याय करना चाहिए ॥८४॥

ततःसन्तर्पयेद्देवान्नृषीन्पितृगणांस्तथा।
आदावोङ्कारमुच्चार्यनामान्तेतत्तर्पयामिवः ॥८५
देवान् ब्रह्मऋषींश्च वतर्पयेदक्षतोदकैः।
तिलोदकैः पितृन्भक्त्यास्वसूत्रोक्तविधानतः ॥८६
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिनादक्षिणेन तु।
देवर्षीस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिःपितॄन् ॥
यज्ञोपवीतो देवाना निवीती ऋषितर्पणे ॥८७
प्राचीनावीती पव्येण स्वेन तीर्थेन भावित.।
निष्पीड्य स्नानवस्त्रन्तु समाचम्य च वाग्यत.।
स्वैर्मन्त्रै रच्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैरथाम्बुभिः ॥८८
ब्रह्माण शङ्कर सूर्यं तथैव मधुसूदनम्।
अन्याश्चाभिमतान्देवान् भक्त्याचारोनरोत्तमः ॥८९
प्रदद्याद्वाथपुष्पाणिसूक्तेनपौरुषेण तु।
आपो वादेवताःसर्वास्तेनसम्यक् समर्च्चिता. ॥९०

[illegible] ॥९१

इस सम्पूर्ण कर्म के समाप्त करने पर फिर देव—ऋषि और पितृगणों का तर्पण करना चाहिए। आदि मे ओङ्कार का उच्चारण करके फिर जिसका भी तर्पण करे उसके नाम के अन्त मे "वः तर्पयामि"—यह

बोलना चाहिए अर्थात् मैं आपको तृप्त करता हूँ ॥८५॥ देवगण और ब्रह्म ऋषिगण का तर्पण तो अक्षतों के सहित जल से ही करना चाहिए। तिलों के सहित जल से भक्ति के साथ स्वसूत्र के उक्त विधान से पितृगण का तर्पण करे ॥८६॥ अन्वारब्ध सव्य से दक्षिण पाणि से देवर्षियों का तर्पण करे। धीमान् को उदकाञ्जलियों से पितृगणों का तर्पण करना चाहिए। देवों के तर्पण में यज्ञोपवीती रहे और ऋषिगण के तर्पण में निवीती हो जावे ॥८७॥ अपने तीर्थ से भावित होकर जब पितृगण का तर्पण करे तो उस समय में प्राचीनावीती होकर ही करना चाहिए। स्नान से वस्त्र का निष्पीडन करके—आचमन करे और मौन होकर ही अपने मन्त्रों के द्वारा पुष्प—पत्र और जल से देवों का समर्चन करना चाहिए ॥८८॥ भगवान् शङ्कर—ब्रह्मा—सूर्य—मधुसूदन प्रभु इनका तथा अन्य भी जो अपने अभिमत देव हो उनका अर्चन भक्ति के आचार वाले नरोत्तम को करना चाहिए ॥८९॥ पुरुष सूक्त के द्वारा पुष्पों का समर्पण करे। अथवा जल से ही सर्व देवों को भली-भाँति समर्चित करे ॥९०॥ परम समाहित होकर प्रणव को पहिले लेकर ही देवगण का ध्यान करे। जब नमस्कार करे तो पुष्पों को पृथक्-पृथक् विन्यस्त करना चाहिए ॥९१॥

विष्णोराराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम्।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम् ॥९२
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेनसुसमाहितः।
न ताभ्यांसदृशोमन्त्रोवेदेपूक्तश्चतुर्ष्वपि ॥
तदात्मा तन्मनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ॥९३
अथवा देमीशानं भगवन्तं सनातनम्।
आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम् ॥९४
मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः।
ईशानेनाथवा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहितः ॥९५
पुष्पैःपत्रैरथाद्भिर्वाचन्दनाद्यैर्महेश्वरम्।
उक्त्वा नमः शिवायेतिमन्त्रेणानेन वाजपेत् ॥९६

नमस्कुर्यान्महादेवंतंमृत्युञ्जयमीश्वरम् ।
निवेदयीत स्वात्मानंयोब्राह्मणमितीश्वरम् ॥९७
प्रदक्षिणं द्विजःकुर्यात्पञ्चवर्पाणि वैवुधः ।
ध्यायीतदेवमीशानं व्योममव्यगतशिवम् ॥९८

भगवान् विष्णु के समाराधन से वैदिक कर्म का सम्पादन हुआ करता है इसलिये आदि और अन्त से रहित श्रीहरि का आराधन नित्य ही करना चाहिए ॥९२॥ "तद्विष्णोः" इस मन्त्र से और सूक्त से सुसमाहित होकर करे। इन दोनों मन्त्रो के समान चारो वेदों में भी कोई अन्य मन्त्र नही है। विष्णुमय आत्मा वाला—उसी प्रभु मे मन को लगाने वाला और परम शान्त होकर "तद्विष्णो."—इत्यादि मन्त्र के द्वारा भगवान् की आराधना करनी चाहिए ॥९३॥ अपना सनातन भगवान् ईशान देव महेश्वर महादेव की भक्ति के भाव से पूत होकर आराधना करनी चाहिए ॥९४॥ रुद्र गायत्री मन्त्र से—प्रणव से अथवा ईशान मन्त्र से—रुद्रो से—अथवा त्र्यम्बक मन्त्र से सुसमाहित होकर आराधना करे ॥९५॥ पत्र-पुष्प—जल और चन्दनाक्षत आदि से महेश्वर प्रभु का 'नमः शिवाय'—इस मन्त्र का उच्चारण करके द्वारा समाराधन करे और इसी मन्त्र का जाप भी करना चाहिए ॥९६॥ उन प्रभु मृत्युञ्जय ईश्वर महादेव को नमस्कार करे फिर "ब्रह्माणम्"—इस मन्त्र से ईश्वर की सेवा में अपनी आत्मा को निवेदित करना चाहिए ॥९७॥ बुध पुरुष द्विज को पाँच वर्ष पर्यन्त प्रदक्षिणा करनी चाहिए। व्योम के मध्य म समवस्थित ईशान देव शिव का ध्यान करना चाहिए ॥९८॥

अथावलोकयेदर्कं हंसः शुचिषदित्यृचा ।
कुर्वन् पञ्च महायज्ञान् गृहगत्वासमाहितः ॥९९
देवयज्ञं पितृयज्ञम्भूतयज्ञं तथैव च ।
मानुषं ब्रह्मयज्ञञ्च पञ्च यज्ञान्प्रचक्षते ॥१००
यदिस्यात्तर्पणादर्वाक्ब्रह्मयज्ञःकृतोनहि ।
कृत्वामनुष्ययज्ञं वै ततःस्वाध्यायमाचरेत् ॥१०१

अग्नेःपश्चिमतोदेशे भूतयज्ञान्तएव च ।
कुशपुञ्जे समासीनः कुशपाणिःसमाहितः ॥१०२
शालाग्नौलौकिके वाथ जले भूम्यामथापि वा ।
वैश्वदेवश्च कर्त्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः ॥१०३
यदिस्याल्लौकिके पक्षे ततोऽन्नं तत्रहूयते ।
शालाग्नौ तत्पचेदन्नं विधिरेषसनातनः ॥१०४
देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद्भूतबलिं हरेत् ।
भूतयज्ञ स विज्ञेयोभूतिद सर्वदेहिनाम् ॥१०५

इसके उपरान्त "हंस शुचि षद्"—इस ऋचा से भगवान् सूर्य का अवलोकन करे। इस प्रकार इन पाँच महायज्ञों को करके समाहित होकर घर को गमन करे ॥९९॥ ये पाँच यज्ञ देवयज्ञ—पितृ यज्ञ—भूत यज्ञ—मानुष यज्ञ और ब्रह्म यज्ञ इन नामों से कहे जाते हैं ॥१००॥ यदि तर्पण से पहिले ब्रह्म यज्ञ नहीं किया हुआ हो तो मनुष्य यज्ञ करके इसके पश्चात् ही स्वाध्याय का समाचरण करना चाहिए ॥१०१॥ अग्नि के पश्चिम देश में भूत यज्ञ के अन्त में ही कुशाओं के पुञ्ज पर समासीन होकर हाथ में कुशा ग्रहण करके सुसमाहित होना चाहिए ॥१०२॥ लौकिक अग्निशाला में—जल में अथवा भूमि में वैश्व देव करना चाहिए। यही देव यज्ञ इस नाम से कहा गया है ॥१०३॥ यदि लौकिक पक्ष में हो तो वहाँ पर अन्न का हवन किया जाता है। उस अन्न को शालाग्नि में पाचन करे—यही एक परम सनातन विधि है ॥१०४॥ देवों के लिये जो अन्न का हवन किया जावे उसमें जितना भी शेष रहे उसी से भूत बलि का हरण करना चाहिए। इसी को भूत यज्ञ समझना चाहिए यह सब देहधारियों को भूति के प्रदान करने वाला है ॥१०५॥

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ।
दद्याद् भूमौ बहिश्चान्नम्पक्षिभ्या द्विजसत्तमाः ॥१०६
सायश्चान्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्नं बलिं हरेत् ।
भूतयज्ञस्त्वयं नित्यं सायम्प्रातर्यथाविधि ॥१०७

एकन्तु भोजयेद्विप्रं पितृनुद्दिश्य सन्ततम् ।
नित्यश्राद्धं तदुच्छिष्टं पितृयज्ञो गतिप्रदः ॥१०८
उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ॥१०९
पूजयेदतिथिं नित्यनमस्येदर्च्चयेद्विभुम् ।
मनोवाक्कर्म्मभिः शान्त स्वागतंस्वगृहागतः ॥११०
अन्वारब्धेन सव्येनपाणिना दक्षिणेनतु ।
हन्तकारमथान्नं वाभिक्षां वाशक्तितो द्विजः ॥१११
दद्यादतिथये नित्यम्बुध्येतपरमेश्वरम् ।
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमन्नं तत्स्याच्चतुर्गुणम् ॥११२

हे द्विज श्रेष्ठो ! श्वपचों को—कुत्तों को–पतित आदि को और पक्षियों को भूमि में बाहिर अन्न देना चाहिए ॥१०६॥ सायंकाल में सिद्ध पल्यन्न से बलि का हरण करना चाहिए। यह मूलयज्ञ नित्य ही यथा विधि सायंकाल और प्रातःकाल में करना चाहिए ॥१०७॥ एक विप्र को निरन्तर पितृगण का उद्देश्य करके भोजन कराना चाहिए। तदुच्छिष्ट नित्य श्राद्ध पितृयज्ञ होता है जो सद्गति के प्रदान करने वाला है ॥१०८॥ अथवा समाहित होकर यथाशक्ति कुछ थोड़ा सा अन्न निकाल कर वेदों के तत्वार्थ के ज्ञाता विद्वान् द्विज के लिये उपपादित कर देवे ॥१०९॥ अतिथि का नित्य ही पूजन करें। नमस्कार करे और विभु का अर्चन करे। परम शान्त होकर अपने घर में गये हुए का मन—वाणी—कर्म से स्वागत करना चाहिए ॥११०॥ अनवारब्ध सव्य पाणि दक्षिण से हन्तकार देवे और द्विज की शक्ति से अतिथि के लिये अन्न अथवा भिक्षा देनी चाहिए तथा उस अतिथि को परमेश्वर ही समझना चाहिए। जो ग्रास मात्र होती है उसे भिक्षा कहते हैं तथा अन्न चौगुना होता है ॥१११-११२॥

पुष्कलं हन्तकारन्तुतच्चतुर्गुणमुच्यते ।
गोदोहकालमात्रंवैप्रतीक्ष्योह्यतिथिःस्वयम् ॥११३
अभ्यागतान्यथाशक्तिपूजयेदतिथीन्सदा ।

भिक्षार्वं भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ।
दद्यादन्नं यथाशक्ति त्वर्थिभ्यो लोभवर्जितः ॥११४
सर्वेषामप्यलाभे हि त्वन्नं गोभ्यो निवेदयेत् ।
भुञ्जीत बहुभिः सार्द्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥११५
अकृत्वा तु द्विज. पञ्चमहायज्ञान्द्विजोत्तमाः ।
भुञ्जीत चेत्स मूढात्मा तिर्यग्योनिं स गच्छति ॥११६
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञ. क्रियाक्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि देवतार्भ्यर्चनं तथा ॥११७
योमोहादथवाज्ञानादकृत्वा देवतार्चनम् ।
भुङ्क्ते स याति नरकं सूकरं नात्रसंशयः ॥११८
तस्मात्सर्वंप्रयत्नेन कृत्वा कर्म्माणि वै द्विजाः ।
भुञ्जीत स्वजन. सार्द्धं स याति परमां गतिम् ॥११९

हन्तकार पुष्कल होता है तथा उससे चौगुना होता है। जितने समय में गाय का दोहन होता है उतने ही समय तक अतिथि की स्वयं प्रतीक्षा करनी चाहिए ॥११३॥ जो अभ्यागत अतिथि हो उनकी सदा यथा शक्ति पूजा करनी चाहिए। जो भिक्षु हो उस ब्रह्मचारी भिक्षुक को विधिपूर्वक भिक्षा देनी चाहिए। जो याचक हो उनके लिये यथाशक्ति लोभ से रहित होते हुए अन्न देना चाहिए।११४। यदि इन सभी का लाभ न होवे तो अन्न गौओं के लिये दे देना चाहिए। बहुतसा के साथ मौन होकर अन्नकी बुराई न करते हुए ही भोजन करे॥११५॥ हे द्विजोत्तमवृन्द! द्विज पाँच महा यज्ञों को न करके यदि स्वयं भोजन कर लेता है तो वह मूढ़ आत्मा वाला तिर्यग् योनि मे जाकर जन्म ग्रहण किया करता है॥ ११६ ॥ वेदों का अभ्यास प्रतिदिन करना-शक्ति पूर्वक महायज्ञों का करना और क्रिया की क्षमता तथा देवों का अभ्यर्चन ये शीघ्र ही पापों का नाश कर दिया करते हैं॥११७॥ जो मोह से अथवा अज्ञान से देवों का अर्चन न करके स्वयं भोजन कर लेता है वह सुकर नरक मे जाकर गिरा करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है॥११८॥ हे द्विजगण! इसलिये सभी प्रकार के

पूर्ण प्रयत्नों से कर्म्मों को करके अपने जनों के साथ भोजन करे–ऐसा करने वाला पुरुष परम गति को प्राप्त हुआ करता है ॥११९

१६–भोजनादि प्रकार वर्णन

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ।
आसीनः स्वासने शुद्धे भूम्या पादौ निधाय च ॥१
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियम्प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥२॥
पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्याद् भूमौ पात्रं निधाय च ।
उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः ॥३॥
उपलिप्ते शुचौदेशेपादौप्रक्षाल्यवै करौ ।
आचम्यार्द्राननोऽक्रोधः पञ्चार्द्रोभोजनञ्चरेत् ॥४
महाव्याहृतिभिस्त्वन्नं परिधायोदकेन तु ।
अमृतोपस्तरणमसीत्यापो ऽशानक्रियाञ्चरेत् ॥५
स्वाहाप्रणवसंयुक्ता प्राणायाद्याहुतिं ततः ।
अपानायततोभुक्त्वाव्यानाय तदनन्तरम् ॥६
उदानाय ततःकुर्यात्समानायेति पञ्चमम् ।
विज्ञायतत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनिद्विजः ॥७

श्री व्यास देव ने कहा—पूर्व दिशा की ओर मुख करके अथवा सूर्य की ओर मुख वाला होकर ही अन्न का भोजन करे। अपने आसन पर स्थित होकर जो कि परम शुद्ध हो और भूमि में पैरों को रखकर भोजन करना चाहिए ॥१॥ जो प्राङ्मुख होकर भोजन करता है वह आयुष्य होता है और दक्षिण की ओर मुख करके भोजन करना यशस्य अर्थात् यश के बढ़ाने वाला होता है। प्रतीची (पश्चिम) की ओर मुख करके जो भोजन करता है वह श्री का भोजन करता है और उत्तर की ओर मुख करके भोजन करने वाले ऋत को ही खाता है ॥२॥ पञ्चार्द्र होकर भूमि में पात्र रखकर भोजन करना चाहिए प्रजापति मनु ने इस प्रकार से भोजन

को उपवास के तुल्य बतलाया है ॥३॥ उपलित हुए शुचि देश में अपने दोनों पैर और दोनों हाथों का प्रक्षालन करके आचमन करे और प्राङ्मुख वाला होकर क्रोध से रहित पश्चात् होता हुआ भोजन करना चाहिए। महाव्याहृतियों से उदक से अन्न का परिधान करे ॥४॥ "अमृतो पस्तरण मसि" इससे आपोशान क्रिया करे ॥ ५ ॥ स्वाहा और प्रणव से संयुत प्राणाय—इत्यादि आहुति देवे। इसके पश्चात् 'ओ अपानाय स्वाहा'—यह उच्चारण करके भोजन करे। इसके पश्चात् "ओ व्यानाय स्वाहा" इसे बोल कर ग्रास ग्रहण करे ॥६॥ इसके उपरान्त उदानाय और समानाय बोलते हुए पूर्वोक्त विधि से चौथा और पाँचवा ग्रास ग्रहण करे। द्विज को इनका तत्त्व समझकर ही आत्मा में हवन करना चाहिए ॥७॥

शेषमन्नं यथाकाममुञ्जीत व्यञ्जनैर्युतम् ।
ध्यात्वा तन्मनसादेवानात्मानंवैप्रजापतिम् ॥८
अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पिबेत् ।
आचान्तः पुनराचामेदयगौरिति मन्त्रतः ॥९
द्रुपदा वा त्रिरावृत्त्यं सर्वपापप्रणाशनीम् ।
प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यलभेदुदरंततः ॥१०
आचम्यांगुष्ठमात्रेण पादांगुष्ठेन दक्षिणे ।
निस्रावयेद्धस्तजलमूर्द्धं हस्तः समाहितः ॥११
कृतानुमन्त्रणं कुर्यात्सन्ध्यायामितिमन्त्रतः ।
अथाक्षरेण स्वात्मानं योजयेद् ब्रह्मणेति हि ॥१२
सर्वेषामेवयोगानामात्मयोग स्मृतःपरः ।
योऽनेनविधिनाकुर्यात्सकविर्ब्राह्मणःस्वयम् ॥१३
यज्ञोपवीती भुञ्जीत स्रग्गन्धालङ्कृतः शुचिः ।
सायम्प्रातर्नान्तरा वै सन्ध्यायां तु विशेषतः ॥१४

इस तरह पाँच आहुतियाँ उक्त विधि से ग्रहण करके फिर शेष अन्न को इच्छा पूर्वक व्यञ्जनों युत भोजन करे। तन्मना होकर देवों का,आत्मा का और प्रजापति का ध्यान करके भोजन करना चाहिए। पुनः "अमृता॰

पिधानमसि"– इसे बोल कर ऊपर से जल का पान करना चाहिए। आचान्त होकर भी पुनः "अम गौ"–इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके आचमन करना चाहिए ॥ ८-९ ॥ समस्त पापा के नाश करने वाली "द्रुपदाम्"—इत्यादि ऋचा की तीन आवृत्ति करके फिर 'प्राणाना ग्रन्थिरसि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा उदर का आलभन करना चाहिए ॥१०॥ आचमन करके अगुष्ठमात्र पादाङ्गुष्ठ से दक्षिण भागमे हाथके जलका स्रावणकरना चाहिए। फिर ऊपर को हाथ करके समाहित होवे ॥११॥ "सन्ध्या यान्",इस मन्त्र से कृतानुमन्त्रण करे। इसके अनन्तर 'अक्षरेण' और 'ब्राह्मण", इत्यादि मन्त्रो से अपनी आत्मा का भोजन करना चाहिए ॥ १२ ॥ सब योगो मे जो आत्म योग होता है वह सबसे पर अर्थात् शिरोमणि माना गया है। जो इस विधि से किया करता है वह ब्राह्मण स्वय कवि होता है ॥१३॥ यज्ञोपवीती स्रग् गन्ध से अलंकृत होकर तथा परम शुचि होकर भोजन करना चाहिए। सायकाल और प्रात काल मे कोई भी अन्तर नही है। सन्ध्या मे तो विशेषता होती है ॥१४॥

नाद्यात्सूर्यग्रहात्पूर्वंप्रतिसायशशिग्रहात् ।
ग्रहकालेनचाश्नीयात्स्नात्वाश्नीयाद्विमुक्तये ॥१५

मुक्ते शशिनि चाश्नीयाद्यदि न स्यान्महानिशा।
अमुक्तयोरस्तगयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि ॥१६

नाश्नीयात्प्रेक्षमाणानामप्रदाय च दुर्मति. ।
यज्ञावशिष्टमद्याद्वा न क्रुद्धो नान्यमानस. ॥१७

आत्मार्थं भोजन यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम्।
वृत्त्यर्थं यस्य चाधीत निष्फल तस्य जीवितम् ॥१८

यद्भुक्ते वेष्टितशिरा यच्च भुङ्क्ते उदमुखः।
सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम् ॥१९

नार्द्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णेनार्द्रवस्त्रधृक् ।
न च भिन्नासनगतानयानसस्थितोऽपिवा ॥२०

न भिन्नभाजने चैव न भूम्यानच पाणिपु ।
नोच्छिष्टोपु समादद्यातनमूर्द्धानस्पृशेदपि ॥२१

सूर्य ग्रह से पूर्व प्रातः भोजन न करे और साय काल में शशि ग्रह से पूर्व भोजन नही करना चाहिए । ग्रह काल मे अशन नही करना चाहिए । स्नान करके विमुक्त के लिये अशन करे ॥१५॥ शशि के मुक्त हो जाने पर ही भोजन करे यदि महानिशा का काल उस समय वर्तमान न होवे । अमुक्त होते हुए ही सूर्य और चन्द्र दोनो अस्त हो जावें तो दूसरे दिन उनके शुद्ध स्वरूप का दर्शन करके ही भोजन करना चाहिए ॥१६॥ प्रेक्षमाणा को न देकर दुर्गति को भोजन नही करना चाहिए । अथवा यज्ञावशिष्ट को क्रुद्ध होकर तथा अन्य मानस न होकर खा लेना चाहिए ॥१७॥ जिसका भोजन आत्मा के लिय ही होता है और जिसका मैथुन केवल रति प्राप्त करने के लिये ही है तथा जिसका अध्ययन केवल वृत्ति के लिये ही है उस पुरुष का जीवन ही निष्फल होता है ॥१८॥ जो अपने शिर को वेष्टित करके भोजन किया करता है और जो उत्तर की ओर मुख करके भोजन करता है तथा जूते पहिने हुए जो भोजन करता है उन सबको आसुर भोजन ही समझना चाहिए अर्थात् उसका रस असुरगण ही ग्रहण कर लेते है ॥१९॥ अर्द्ध रात्रि मे—मध्याह्न मे—अजीर्ण मे तथा भीगे हुए वस्त्र धारण करके एव भिन्न आसन पर स्थित होकर और यान मे बैठकर भोजन नही करना चाहिए ॥२०॥ भिन्न पात्र मे—भूमि मे—हाथो मे भोजन न करे । उच्छिष्ट होकर भी भोजन नही करना चाहिए और मूर्द्धा का भी स्पर्श नही करे ॥२१॥

न ब्रह्मकीर्त्तयेच्चापिननि शेषं न भार्यया ।
नान्धकारे न सन्ध्यायां न चदेवालयादिपु ॥२२
नैकवस्त्रस्तु भुञ्जीत न यानशयनस्थितः ।
न पादुकानिर्गतोऽथ न हसन्विलपन्नपि ॥२३
भुक्त्वा वै सुखमास्थाय तदन्नम्परिणा मयेत् ।
इतिहास पुराणाम्या वेदार्थानुपबृंहयेत् ॥२४

ततः सन्ध्यामुपासीत पूर्वोक्तविधिना शुचिः ।
आसीनश्च जपेद्देवी गायत्री पश्चिमाम्प्रति ॥२५
न तिष्ठति तु यः पूर्वानास्ते(पूर्वानापोति)सन्ध्यांतुपश्चिमाम् ।
स शूद्रेण समो लोके सर्वकर्मविवर्जितः ॥२६
हुत्वाऽग्नि विधिवन्मन्त्रैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम् ।
सभृत्यबान्धवजनः स्वपेच्छुष्कपदो निशि ॥२७
नोत्तराभिमुखः स्वप्यात्पश्चिमाभिमुखो न च ।
न चाऽऽकाशे न नग्नो वा नाशुचिर्नासने क्वचित् ॥२८

ब्रह्म का कीर्त्तन नहीं करना चाहिए—निःशेष भी भोजन न करे तथा अपनी भार्या के साथ मे बैठकर भी कभी अशन नहीं करना चाहिए। अन्धकार में—सन्ध्या के समय में और देवालय आदि स्थलो मे भोजन नहीं करे ॥२२॥ एक वस्त्र धारण करके भी कभी भोजन नहीं करे। यान और शयन मे संस्थित होकर भी भोजन नहीं करे। पादुका से निर्गत होकर—हँसते हुए और विलाप करते हुए भी भोजन नहीं करना चाहिए ॥२३॥ भोजन करके सुख पूर्वक समास्थित होवे और उस अन्न का परिणाम करना चाहिए। इतिहास और पुराणो से वेदो के अर्थ को उप-बृंहित करना चाहिए ॥२४॥ इसके उपरान्त पूर्वोक्त विधि से सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए और शुचि होकर करे। प्रतीची दिशा की ओर समासीन होकर गायत्री देवी का जाप करे ।२५। जो पहिली और पिछली सन्ध्याओ की उपासना नहीं करता है वह द्विज लोक मे एक शूद्र के ही समान है और वह सभी कर्मों से विवर्जित होता है ॥२६॥ विधि पूर्वक अग्नि मे हवन करके और मन्त्रों से यज्ञावशिष्ट को खाकर भृत्य और और बान्धव जनो के सहित रात्रि मे शुष्क पद वाला होकर शयन करे। ॥२७॥ न तो उत्तर की तरफ मुख करके सोवे और न पश्चिमाभिमुख होकर शयन करे—न आकाश में—न नग्न—न अशुचि और न कहीं पर भी आसन पर शयन करना चाहिए ॥२८॥

न शीर्णायातु खट्वायाशून्यागारे न चैव हि ।
नानुवशेन पालाशे शयने वा कदाचन ॥२९

इत्येतदग्निलैनोक्तमहन्यहनि वै मया।
ब्राह्मणानाञ्च कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम् ॥३०
नास्तिक्यादथवालस्याद् ब्राह्मणो न करोति यः।
स याति नरकान्घोरान् काकयोनौ च जायते ॥३१
नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाऽऽश्रमविधिं स्वकम्।
तस्मात्कर्म्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः ॥३२

जो खाट मत्वन्त छोटी हो उस पर भी नहीं सोना चाहिए तथा शून्य घर में न सोवे एवं अजुवश से पलाश की शय्या पर भी कभी शयन नहीं करना चाहिए ॥२६॥ यह मैंने दिन प्रतिदिन में पूरा ही ब्राह्मणों का कृत्य बात बतला दिया है जो अपवर्ग के फल का प्रदान करने वाला है ॥३०॥ जो ब्राह्मण नास्तिक्य भाव से अथवा आलस्य से यह नहीं करता है वह ब्राह्मण घोर नरक में जाता है और फिर कौआ की योनि में समुत्पन्न हुआ करता है ॥३१॥ अपनी आश्रम की विधि का त्याग करके अन्य कोई भी विमुक्ति का मार्ग ही नहीं है। इसलिये भगवान् परमेष्ठी की सन्तुष्टि के लिए ब्राह्मण को अपने कर्म अवश्य करने चाहिए ॥३२॥

२०—श्राद्धकल्पवर्णन [१]

अथ श्राद्धममावास्या प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः।
पिण्डान्वाहार्यकम्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१
पिण्डान्वाहार्यकश्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते।
अपराह्णे द्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेण च ॥२
प्रतिपत्प्रभृतिह्यन्यास्तिथयः कृष्णपक्षके।
चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रशस्ता ह्युत्तरोत्तरः ॥३
अमावास्याष्टकास्तिस्रः पौषमासादिषु त्रिषु।
तिस्रस्तास्त्वष्टकाः पुण्या माघी पञ्चदशी तथा ॥४

त्रयोदशीमघायुक्तावर्षासुच विशेषतः ।
शस्यपाकश्राद्धकाला नित्याःप्रोक्तादिनेदिने ॥५

नैमित्तिकंतुकर्त्तव्यग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ।
बान्धवानाविस्तरेणनारकीस्यादतोऽन्यथा ॥६

काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु ।
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते त्वनन्तकम् ॥७

महर्षि व्यास देव ने कहा—इसके बाद अमावस्या तिथि में श्राद्ध पाकर उसे द्विजोत्तमों को करना चाहिए। भक्तिभाव से पिण्डों का आहरण करे जो भुक्ति और मुक्ति दोनों का ही प्रदान करने वाला होता है ॥१॥ पिण्डान्वाहार्यक एक श्राद्ध विशेष है जो राजा के क्षीण होने पर प्रशस्त माना जाता है। यह द्विजातियों का अपराह्न में प्रशस्त आमिष से होता है ॥२॥ प्रतिपदा से लेकर कृष्ण पक्ष में अन्य सभी तिथियाँ उपरोध से प्रशस्त हैं केवल चतुर्दशी तिथि को वर्जित कर देना चाहिए ॥३॥ पौष मासादि तीनों में तीन अमावस्या—अष्टका होती हैं। ये तीनों अष्टका परम पुण्यमय होते हैं तथा माघी पञ्चदशी होती है ॥४॥ मघा से युक्त त्रयोदशी तिथि और विशेष करके वर्षा में ग्रहण की गई है। शस्यपाक श्राद्ध काल नित्य कहे गये हैं ये दिन दिन में अर्थात् हर दिन में होते हैं ॥५॥ जो नैमित्ति होता है वह तो चन्द्र सूर्य के ग्रहण में ही करना चाहिए। बान्धवों में विस्तार से नार की होता है इसलिये इसे *अन्यथा ही करे।* ॥६॥ जो काम्य श्राद्ध होते हैं वे ग्रहण आदि में प्रशस्त हुआ करते हैं। अयन में—विषुव म और व्यतीपात में तो यह अनन्त फल प्रद होते हैं ॥७॥

सक्रान्त्यामक्षय श्राद्ध तथा जन्मदिनेष्वपि ।
नक्षत्रेषुच सर्वेषु कार्यकाले विशेषतः ॥८

स्वर्गञ्चलभतेकृत्वाकृत्तिकासुद्विजोत्तमः ।
अपत्यमथरोहिण्यासौम्येतुब्रह्मवर्च्चसम् ॥९

रौद्राणा कर्मणा सिद्धिमार्द्रायाशौर्यमेव च ।

पुनर्वसौतथा भूमिश्रियं पुष्येतथैवच ।
सर्वान्कामांस्तथा सार्प्ये पित्र्ये सौभाग्यमेव च ॥१०
अर्यम्णे तु धन विन्देत् फाल्गुन्या पापनाशनम् ॥११
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं तथा हस्ते चित्रायाञ्च बहून् सुतान्।
वाणिज्यसिद्धि स्वाती तु विशाखासु सुवर्णकम् ॥१२
मैत्रे बहूनि मित्राणि राज्य शाक्रे तथैवच ।
मूले कृषि लभेज्ज्ञानसिद्धिमाप्येसमुद्रत ॥१३
सर्वान् कामान्वैश्वदेवे श्रैष्ठ्यन्तुश्रवणेपुन ।
धनिष्ठायातथाकामानप्युपेचपरम्बलम् ॥१४

सक्रान्ति मे जो श्राद्ध होता है वह अक्षय होता है। जन्म दिन के नक्षत्र मे और सभी में तथा काम काल मे विशेष रूप से फलप्रद होते हैं ॥८॥ द्विजोत्तम कृत्तिका मे श्राद्ध करके स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है। रोहिणी करके अपत्य लाभ और सौम्य म करके ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति की जाती है ॥९॥ आर्द्रा म रौद्र कर्मो की सिद्धि होती है और शौर्य का भी लाभ होता है। पुनर्वसु मे भूमि और श्री का लाभ प्राप्त हुआ करता है। पुष्य नक्षत्र में किये हुए श्राद्ध का भी फल पुनर्वसु के ही समान होता है ॥१०॥ सार्प्य मे सभी कामनाओं का लाभ होता है और पित्र्य मे सौभाग्य की प्राप्ति हुआ करती है। अर्यम्ण मे धन प्राप्त करता है और फाल्गुनी मे पापो का नाश होता है ॥११॥ हस्त मे करने ज्ञाति मे श्रेष्ठता मिलती है तथा चित्रा नक्षत्र मे श्राद्ध करने से बहुत पुत्रो की प्राप्ति होती है। स्वाती मे वाणिज्य की सिद्धि होती है और विशाखा म स्वर्ण का लाभ होता है ॥१२॥ मैत्र मे बहुत से मित्र होते हैं तथा शाक्र मे राज्य का लाभ होता है। मूल मे कृषि लाभ और आप्य मे समुद्र से ज्ञान की सिद्धि होती है ॥१३॥ सभी कामो की प्राप्ति वैश्वदेव मे होती है और श्रवण मे श्रेष्ठता होती है। धनिष्ठा मे कामों की और अम्बुप मे पर बल की प्राप्ति होती है ॥१४॥

अजकपादकुप्यस्यादाहिर्बुध्न्येगृहशुभम् ।
रेवत्याम्बहवोगावोह्यश्विन्यात्तुरगास्तथा ॥१५

याम्ये तु जीवितन्तु स्याद्यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति ॥१५
आदित्यवारेऽत्वारोग्यंचन्द्रे सौभाग्यमेवच ।
कुजेसर्वत्रविजयसर्वान्कामान्बुधस्यतु ॥१६
विद्यामभीष्टांतु गुरौ धनम्वै भार्गवे पुनः ।
शनैश्चरे लभेदायु:प्रतिपत्सुसुतान्शुभान् ॥१७
कन्यका वै द्वितीयाया तृतीयाया तु विन्दति ।
पशून् क्षुद्राश्चतुर्थ्यां वै पञ्चम्या शोभनान् सुतान् ॥१८
षष्ठ्या द्युतिंकृषिञ्चापिसप्तम्यांञ्चधननरः ।
अष्टम्यामपि वाणिज्यलभतेश्राद्धदःसदा ॥१९
स्यान्नवम्यामेकखुरदशम्याद्विखुर वहु ।
एकादश्यान्तथारूप्यब्रह्मवर्चस्विन सुतान् ॥२०
द्वादश्या जातरूपञ्च रजतकुप्यमेव च ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्याचतुर्दश्यातुक्रुप्रजाः ।
पञ्चदश्या सर्वकामान् प्राप्नोति श्राद्धद. सदा ॥२१

प्रजेक पाद मे कुप्य और दाहिनुंत्न मे शुभगृह—रेवती मे बहुत-सी गौऐं तथा अश्विनी मे तुरग होते हैं। याम्य मे जीवित होता है जो श्राद्ध किया करता है ॥१५॥ अब वारो श्राद्ध करने का फल बताते हुए कहते हैं—रवि के वार मे आरोग्य होता है—चन्द्र वार मे सौभाग्य, भौम मे सर्वत्र विजय और बुध मे सभी कामनाऐं होती हैं ॥१६॥ गुरु मे अभीष्ट विद्या—भृगु वार मे धन—शनैश्चर वार मे आयु का लाभ होता है। अब तिथियो मे फल बताया जाता है—प्रतिपदा मे श्राद्ध देने से शुभ सुतो की प्राप्ति हुआ करती है ॥१७॥ द्वितीय और तृतीया मे कन्यका होती है। चतुर्थी मे क्षुद्र पशुओ का लाभ होता है तथा पञ्चमी मे शुभ सुतो का जन्म होता है ॥१८॥ षष्ठी मे द्युति और कृषि तथा सप्तमी मे मनुष्य को धन मिलता है। अष्टमी मे वाणिज्य का लाभ श्राद्ध देने वाला सदा किया करता है ॥१९॥ नवमी मे एक खुर वाले का लाभ—दशमी मे बहुत दो खुर वाले—एकादशी मे रूप्य और ब्रह्मवर्चस्वी सुतों का लाभ होता है ॥२०॥ द्वादशी मे जातरूप—रजत और कुप्य का लाभ होता है।

त्रयोदशी में श्राद्ध देने से जाति में श्रेष्ठता होती है तथा चतुर्दशी में सुप्रजा हुआ करती है। पञ्चदशी में सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं जो उस दिन श्राद्ध दिन में श्राद्ध दिया करता है ॥२१॥

तस्माच्छ्राद्धं न कर्त्तव्यं चतुर्दश्यां द्विजातिभिः।
शस्त्रेण तु हतानां तु श्राद्धं तत्र प्रकल्पयेत् ॥२२
द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तौ न कालनियमः कृत ।
तस्माद्भोगापवर्गार्थं श्राद्धं कुर्युर्द्विजातयः ॥२३
कर्मारम्भेषु सर्वेषु कुर्यादभ्युदये पुनः।
पुत्रजन्मादिषु श्राद्धं पार्वणं पर्वसु स्मृतम् ॥२४
अहन्यहनि नित्यं स्यात्काम्यं नैमित्तिकं पुनः।
एकोद्दिष्टादि विज्ञेयं द्विधा श्राद्धं तु पार्वणम् ॥२५
एतत्पञ्चविधं श्राद्धं मनुनापरिकीर्तितम्।
यात्रायां षष्ठमाख्यातं तत्प्रयत्नेनपालयेत् ॥२६
शुद्धयेसप्तमं श्राद्धं ब्रह्मणापरिभाषितम्।
दैविकञ्चाष्टमं श्राद्धं यत्कृत्वा मुच्यतेभयात् ॥२७
सन्ध्यारात्रौनकर्त्तव्यं राहोरन्यत्रदर्शनात्।
देशानान्तुविशेषेण भवेत्पुण्यमनन्तकम् ॥२८

इसीलिये द्विजातियों को चतुर्दशी तिथि में कभी भी श्राद्ध नहीं करना चाहिए। जिनका हनन किसी भी शस्त्र के द्वारा हुआ हो उन्हीं का श्राद्ध चतुर्दशी में करना चाहिए ॥२२॥ द्रव्य ब्राह्मण सम्पत्ति में कोई भी काल का नियम नहीं किया गया है। इसीलिये भोग और अपवर्ग के लिये द्विजातियों को श्राद्ध करना चाहिए ॥२३॥ समस्त कर्मों के आरम्भ में और अभ्युदय में श्राद्ध करना चाहिए। पुत्र के जन्म में श्राद्ध करे। यह नान्दी मुख नाम वाला श्राद्ध होता है और जो पार्वण श्राद्ध है वह पर्वों में ही बताया गया है ॥२४॥ दिन प्रतिदिन नित्य ही काम्य और नैमित्तिक श्राद्ध हुआ करते हैं। पार्वण श्राद्ध ऐकोद्दिष्ट आदि भेद से दो प्रकार का होता है ॥२५॥ इस प्रकार से महर्षि मनु ने यह पाँच प्रकार के श्राद्ध बताये हैं। यात्रा से जो श्राद्ध किया जाता वह छठा प्रकार का श्राद्ध

होता है उसका भी प्रयत्न पूर्वक परिपालन करना चाहिए ॥२६॥ शुद्धि के लिये सप्तम प्रकार का श्राद्ध ब्रह्माजी ने भाषित किया है। दैविक आठवाँ श्राद्ध होता है जिसके करने से भय से मुक्ति हो जाया करती है। ॥२७॥ सन्ध्या के समय मे और रात्रि के राहु के अन्यत्र दर्शन होने से श्राद्ध नही करना चाहिए। देशो की विशेषता होने से अनन्त पुण्य हुआ करता है ॥२८॥

गङ्गायामक्षयं श्राद्ध प्रयागेऽमरकण्टके।
गायन्ति पितरोगाथानर्त्तयन्ति मनीषिणः ।२९
एष्टव्या बहवः पुत्रा शीलवन्तो गुणान्विताः।
तेषान्तु समवेताना यद्येकोऽपि गया व्रजेत् ॥३०
गयाप्राप्यानुषङ्गेण यदि श्राद्ध समाचरेत्।
तारिता. पितरस्तेनसयातिपरमागतिम् ॥३१
वाराहपर्वते चैव गयाया वै विशेषतः।
वाराणस्या विशेषेण यत्र देवः स्वयं हर ॥३२
गगाद्वारे प्रभासे तु विल्वके नीलपर्वते।
कुरुक्षेत्रे च कुब्जाम्रे भृगुतुङ्गे महालये ॥३३
केदारे फल्गुतीर्थे च नैमिषारण्य एव च।
सरस्वत्या विशेषेण पुष्करे तु विशेषतः ॥३४
नर्मदाया कुशावर्त्ते श्रीशैले भद्रकर्णके।
वेत्रवत्या विशाखाया गोदावर्यां विशेषत. ॥ ३५

गङ्गा मे जो श्राद्ध किया जाता है वह अक्षय होता है। प्रयाग मे और अमर कण्टक मे किया हुआ श्राद्ध क्षय से रहित ही हुआ करता है। पितृगण गङ्गा मे श्राद्ध की महिमा की गाथा का गान किया करते है और मनीषीगण नृत्य करते है ॥२९॥ बहुत से शीलवान् गुणगण से समन्वित पुत्रो की कामना करनी चाहिए उन समवेत हुए सबमे यदि कोई भी एक गया मे प्राप्त हो जावे ॥३०॥ फिर वहाँ गया मे पहुँचकर आनुषङ्ग से यदि श्राद्ध करे तो समझ लेना चाहिए कि उसने समस्त पितरो का उद्धार कर दिया है और वह स्वय भी परम गति को प्राप्ति किया करता है।

॥३१॥ वाराह पर्वत में विशेष रूप से गया में एवं वाराणसी में भी विशेषता से श्राद्ध का फल होता है। जहाँ पर स्वयं देव हर विराजमान रहा करते हैं ॥३२॥ गङ्गाद्वार—प्रयाग क्षेत्र—बिल्वक—नील पर्वत—कुरुक्षेत्र—कुब्जाम्र—भृगुतुङ्ग—महालय—केदार—फल्गु तीर्थ में—नैमिषारण्य में—विशेष रूप से सरस्वती में और पुष्कर में पुण्य होता है ॥३३ ३४॥ नर्मदा में—कुशावर्त में—श्रीशैल में—भद्र कर्णक में—वेत्रवती—विशाखा और विशेष करके गोदावरी श्राद्ध करने का महान् पुण्य होता है ॥३५॥

एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च।
नदीनाञ्चैव तीरेषु तुष्यन्ति पितरः सदा ॥३६
व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा।
श्यामाकैश्च यवैः काशैर्नीवारैश्च प्रियंगुभिः।
गोधूमैश्च तिलैर्मुद्‌गैर्मासं प्रीणयते पितॄन् ॥३७
आम्रान् पानेरतानिक्षून् मृद्वीकाश्च सदाडिमान्।
विदाश्वांश्च कुरण्डांश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत् ॥३८
लाजान्मधुयुतान् दद्यात्सक्तून् शर्करया सह।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृ गाटककशेरुकान् ॥३६
पिप्पली रुचकञ्चैव तथा चैव मसूरकम्।
कूष्माण्डालाबुवार्त्ताकभूतृण सरसंतथा ॥४०
कुसुम्भपिण्डमूल वैतन्दुलीयकमेवच।
राजमाषास्तथा क्षीरमाहिषाजविवर्ज्जयेत् ॥४१
आढक्य कोविदाराश्चपालक्यामरिचास्तथा।
वर्जयेत्सप्रयत्नेनश्राद्धकालेद्विजोत्तम ॥४२

इस प्रकार से अन्य तीर्थों में तथा पुलिनों में और नदियों के तीरों में सदा ही श्राद्ध करने से पितृगण सन्तुष्ट हुआ करते हैं ॥३६॥ व्रीहि—यव—माष—जल—मूल—फल—श्यामाक—यव काश—नीवार—प्रियगु—गोधूम—तिल—मूग ये सब पितृगण को मास भर पर्यन्त प्रीणित किया करते हैं ॥३७॥ आम्र—पान में-रतों को इक्षु—मृद्वीक—दाडिम—विदाश्व—कुरण्ड इनको श्राद्ध के काल में दिलाना चाहिए ॥३८॥ मधु से युक्त

लाजाम्रो को तथा शर्करा के सहित सतुवा देवें। श्राद्ध में प्रयत्न पूर्वक शृङ्गाटक एवं कशेरुक देवें ॥३९॥ पिप्पली—रुचक—मयूर—कूष्माण्ड—अलाबु—वार्त्तकि—भूतृण सरस देना चाहिए ॥४०॥ कुसुम्भ पिण्डमूल—वैत-दुलीयक—राजमाष और क्षीर श्राद्ध में देवें किन्तु भस और बकरी का क्षीर वर्जित किया गया है ॥४१॥ श्राढकय—कोविदार—पालक्य—मरिच इसको द्विजोत्तम को श्राद्ध के काल में प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए ॥४२॥

२१—श्राद्धकल्पवर्णन [२]

स्नात्वा यथोक्तं सन्तर्प्य पितृंश्चन्द्रक्षये द्विजः ।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात्सौम्यमनाः शुचिः ॥१
पूर्व्वमेव समीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदानानाञ्च स स्मृतः ॥२
ये सोमपा विरजसो धर्म्मज्ञाःशान्तचेतसः ।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः ॥३
पञ्चाग्निरप्यधीयानोयजुर्वेदविदेव च ।
बह्वृचश्चत्रिसौपर्णस्त्रिमधुर्वा च योऽभवत् ॥४
त्रिणाचिकेतच्छन्दोगोज्येष्ठसामग एव च ।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषतः ॥५
अग्निहोत्रपरोविद्वान्न्यायविच्चषडङ्गवित् ।
मन्त्रब्राह्मणविच्चैवयश्चस्याद्धर्म्मपाठकः ॥६
ऋषिव्रती ऋषीकश्च शान्तचेता जितेन्द्रियः ।
ब्रह्मदेयानुसन्तानो गर्भशुद्धः सहस्रदः ॥७

महामहर्षि व्यास देव ने कहा—द्विज को स्नान करके यथोक्त विधि से पितृगण का तर्पण करके चन्द्र क्षय में सौम्य मनन वाला और शुचि होकर पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करना चाहिए ॥१॥ श्राद्धारम्भ के पहिले ही किसी वेदों के पारगामी महान् विद्वान् ब्राह्मण को देख रखना चाहिए;

वही हव्य क यो को और प्रदानों का तीर्थ कहा गया है ॥२॥ जो सोम का पान करने वाला—विगत रजोगुण वाला—धर्म के ज्ञान रखने वाले—शान्त चित्त वाले—व्रतधारी—नियमों में स्थित और ऋतु काल में ही गमन करने वाले हों—ऐसे ब्राह्मण होने चाहिए ॥३॥ पञ्चाग्नि तपने वाले—वेदों का अध्ययन करने वाला—यजुर्वेद का ज्ञाता—बह्वृच—त्रिसौपर्ण—त्रिमधु जो हो वही ब्राह्मण के श्राद्ध में रखना चाहिए ॥४॥ त्रिणाचिकेत छ दाग—ज्येष्ठ सामग—अथर्व शिर का अध्येता और विशेष करके रुद्राध्यायी ब्राह्मण ही श्राद्ध में योग्य होता है ॥५॥ अग्नि होत्र करने में परायण—विद्वान्—न्याय का वक्ता—षट् अङ्गों का ज्ञाता—मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग—इन दोनों का ही ज्ञाता और जो धर्म पाठक हो—ऋषियों के समान व्रतों का धारण करने वाला—ऋषीक—शान्त चित्त वाला—इन्द्रियों को जीत लेने वाला—ब्रह्मदेवानुसन्तान—गर्भशुद्ध—सहस्रद ब्राह्मण ही श्राद्ध कर्म के लिए उपयुक्त होता है ॥६ ७॥

चान्द्रायणव्रतचर सत्यवादी पुराणवित् ।
गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तोज्ञानतत्पर ॥८

विमुक्त सर्वतोधीरोब्रह्मभूतो द्विजोत्तम ।
महादेवार्च्चनरतोवैष्णव पङ्क्तिपावन ॥९

अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा ।
सत्री च दाननिरता विज्ञेय पङ्क्तिपावन ॥१०

(युवान श्रोत्रिया स्वस्था महायज्ञपरायणा ।
सावित्रीजापनिरता ब्राह्मणा पङ्क्तिपावन ॥
कुलीना श्रुतवन्तश्च शीलवन्तस्तपस्विन ।
अग्निचित् स्नातको विप्रो विज्ञेया पङ्क्तिपावना) ।
मातापित्रोर्हित युक्त प्रात स्नायी तथा द्विज ।
अध्यात्मविन्मुनिर्दान्तो विज्ञेय पङ्क्तिपावन ॥११

ज्ञाननिष्ठोमहायोगीवेदान्तार्थ विचिन्तक ।
श्रद्धालु श्राद्धनिरतोब्राह्मण पङ्क्तिपावन ॥१२

वेदविद्यारत. स्नातो ब्रह्मचर्यपरः सदा ।
अथर्वणो मुमुक्षुश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥१३
असमानप्रवरकोह्यसगोत्रस्तथैव च ।
सम्बन्धशून्यो विज्ञेयो ब्राह्मण पंक्तिपावनः ॥१४

चान्द्रायण महाव्रत के चरण करने वाला—सत्यवादी—पुराणों का ज्ञान रखने वाला—गुरु, देव और अग्नि की पूजा में प्रसक्त रहने वाला—ज्ञान में तत्पर ब्राह्मण होना चाहिए ॥८॥ विमुक्त-सभी प्रकार से धीर—ब्रह्मभूत—द्विजों में उत्तम—महादेवजी की अर्चना में रति रखने वाला—वैष्णव—पंक्ति में पावन ब्राह्मण श्राद्ध के उपयुक्त होता है ॥९॥ जो नित्य ही अहिंसा में रति रखने वाला हो और नित्य ही किसी का भी प्रति ग्रह लेने वाला न हो, सत्री तथा दान करने में निरत हो उसे ही पंक्तिपावन समझना चाहिए ॥१०॥ युवा—श्रोत्रिय—स्वस्थ—महायज्ञ में परायण—सावित्री के जाप में निरत रहने वाले ब्राह्मण ही पंक्तिपावन हुआ करते हैं। कुलों के श्रुतवान्—शील वाले—तपस्वी—अग्निचित् स्नातक जो विप्र होते हैं वे ही पंक्तिपावन विप्र हुआ करते हैं। जो अपने माता-पिता के हित-कार्य में निरत रहते हैं—प्रातः काल में ही नित्य स्नान करने वाले हैं—अध्यात्म के वेत्ता—मुनि और दान्त अर्थात् दमनशील जो होते हैं वे ही ब्राह्मण पंक्तिपावन समझने चाहिऐं ॥११॥ जो ज्ञान में निष्ठा रखने वाला—महायोगी-वेदान्तों के अर्थ का विशेष रूप से चिन्तन करने वाला-श्रद्धालु-श्राद्ध करने में निरत ब्राह्मण होता है वही पंक्तिपावन विप्र कहा जाता है ॥१२॥ वेद विद्या में रति रखने वाला-स्नात-ब्रह्मचर्य में सदा परायण-अथर्वण—मुमुक्षु जो ब्राह्मण होता है उसी को पंक्तिपावन कहा जाता है ॥१३॥ असमान प्रवरों वाला—सगोत्रता से रहित-सम्बन्ध से शून्य ही ब्राह्मण पंक्तिपावन समझना चाहिए ॥१४॥

भोजयेद्योगिनं शान्तं तत्त्वज्ञानरतं यतः ।
अभावे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकं तथा ॥१५
तदलाभे गृहस्थं तु मुमुक्षुं सङ्गवर्जितम् ।
सर्वालाभेसाधकं वा गृहस्थमपिभोजयेत् ॥१६

प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञोयस्यादनाति यतिर्हविः ।
फल वेदान्तवित्तस्य सहस्रादतिरिच्यते ॥१७
तस्माद्यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम् ।
भोजयेद्धव्यकव्येषुजलाभादितरान्द्विजान् ॥१८
एष वै प्रथम कल्पः प्रदानेहव्यकव्ययो ।
अनुकल्पस्त्वय ज्ञेय सदा सद्भिरनुष्ठित ॥१९
मातामह मातुलञ्च स्वस्रीय श्वशुर गुरुम् ।
दौहित्र विट्पतिम्बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥२०
न श्राद्धे भोजयेन्मित्र धनै कार्योऽस्य सग्रह ।
पशाची दक्षिणाहा हि नेहाऽमुत्रफलप्रदा ॥२१

जो योगी हो—शान्त स्वभाव से समन्वित हो और तत्त्व ज्ञान मे रति रखने वाला हो उसी को श्राद्ध मे भोजन कराना चाहिए । यदि ऐसा ब्राह्मण न मिले तो अभाव मे नैष्ठिक—दान्त और उपकार करने वाले ब्राह्मण को भोजन करावे ॥१५॥ यदि एसे का भी लाभ न हो तो गृहस्थ मुमुक्षु और सङ्ग से रहित किसी ब्राह्मण को भोजन करावे । सभी के लाभ न होने पर किसी साधना करने वाले गृहस्थ ब्राह्मण को हो भोजन कराना चाहिए ॥१६॥ प्रकृति के गुणो के तत्त्व को जानने वाला यति यदि हवि का अशन करता है तो वेदान्त के वित्त का फल सहस्र से भी अत्यधिक होता है ॥१७॥ इसलिये अपने प्रयत्न के द्वारा ईश्वर के ज्ञान मे तत्पर योगीन्द्र को ही भोजन कराना चाहिए । हव्य कव्यो जलाभावितर द्विजो को हो भोजन करावे ॥१८॥ हव्य कव्य के प्रदान करने मे यह प्रथम कल्प होता है । यह अनुक प सदा सत्पुरुषो के द्वारा अनुष्ठित जानना चाहिए ॥१९॥ मातामह—मातुल—भगिनी का पुत्र—श्वशुर—गुरु—धेवता—विट्पति—बन्धु—ऋत्विक्—याज्य इनको भो भोजन कराना चाहिए ॥२०॥ श्राद्ध मे कभी भी मित्र को भोजन नहो कराना चाहिए । इसका सग्रह धनो के द्वारा ही करना चाहिए । पैशाची दक्षिण दिशा यहाँ पर और परलोक मे भी फल का प्रदान नही किया करती है ॥२१॥

कामं श्राद्धेऽर्च्चयेन्मित्र नाभिरूपमपि त्वरिम् ।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥२२
ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिवशाम्यति ।
तस्मैहव्यंनदातव्यं न हिभस्मनिहूयते ॥२३
यथोपरे बीजमुप्त्वा न वप्तालभतेफलम् ।
तथाऽनृचेहविर्दत्त्वा न दातालभतेफलम् ।।२४
यावतो ग्रसते पिण्डान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलास्त्वयोगुडान् ॥२५
अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमाः ।
यत्रैते भुञ्जते हव्य तद्भवेदासुर द्विजाः ॥२६
यस्यवदश्च वेदी च विच्छिद्येतेत्रिपूरुषम् ।
सवैदुर्ब्राह्मणो नार्हःश्राद्धादिपुकदाचन ॥२७
शूद्रप्रेष्यो भृत्तो राज्ञो वृषलानाञ्च याजकः ।
वधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धवः ॥२८

श्राद्ध मे स्वेच्छा पूर्वकमित्र का अर्चन करे । द्वेष रखने वाले के द्वारा मुक्त हवि मरकर निष्फल ही हुआ करता है ॥२२॥ अनधीयान जो ब्राह्मण होता है वह तृण की अग्नि के समान ही शमित हो जाया करता है । ऐसे अध्ययन हीन ब्राह्मण का हव्य कभी नही देना चाहिए । भस्म मे कभी भी हवन नही किया जाता है ॥२३॥ जिस प्रकार से ऊपर मे (अर्थ उपजाऊ) भूमि मे बीज का वपन करके वह बोने वाला उसका कोई भी फल प्राप्त नहीं किया करता है । ठीक उसी भाँति जो ऋचाओं के ज्ञान से हीन ब्राह्मण है उसवे हवि का दान करके उस दान से फल का लाभ नही प्राप्त किया करता है ॥२४॥ जो मन्त्रो का ज्ञाता नही है ऐसा ब्राह्मण हव्य कव्यो मे जितने ही पिण्डो का ग्रसन किया करता है उतने ही वह मरकर परम स्थूल दीप्त लोहे के गुडो का असन किया करता है अर्थात् लोहे के गोले जो अत्यन्त गर्म होते है उन्हे ग्रस्त करते हैं ॥२५॥ हे द्विजगण ! विद्या और कुल से युक्त होते हुए भी जो हीन चरित्र वाले अधम नर होते है वे जहाँ पर हव्य का भोजन किया करते हैं उसको

आसुर समझना चाहिए अर्थात् उसका फल असुर ग्रहण कर लिया करते हैं ॥२६॥ जिसका वेद और वेदी तीन पुरुषों को विच्छिन्न कर दन हैं वह बहुत ही दुर्ब्राह्मण होता है और ऐसा बुरा ब्राह्मण कभी भी श्राद्ध आदि सत्कर्मों के योग्य नहीं होता है ॥२७॥ शूद्र का प्रेष्य—राजा का भृत और वृषलों का याजक वध तथा बन्ध के द्वारा उपजीविका करने वाला ये छै ब्रह्म बन्धु हुआ करते है ॥२८॥

दत्त्वानुयोगो द्रव्यार्थं पतितान्मनुरब्रवीत् ।
वेदविक्रयिणो ह्येतेश्राद्धादिपुविगर्हिता ॥२९
सुतविक्रयिणो ये तुपरपूर्वासमुद्भवा. ।
असामान्यान्यजन्तेयेपतितास्तेप्रकीर्तिता ॥३०
असस्कृताध्यापका ये भृत्यर्थेऽध्यापयन्ति ये ।
अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्तिता ॥३१
वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्था.पञ्चरात्रविदोजना. ।
कापालिका पाशुपता पापण्डायेचतद्विधाः ॥३२
यस्याश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसा. ।
न तस्य तद्भवेच्छ्राद्ध प्रेत्य चेह फलप्रदम् ॥३३
अनाश्रमी द्विजो यः स्यादाश्रमी वा निरर्थक ।
मिथ्याश्रमी च ते विप्रा विज्ञेया पङ्क्तिदूषकाः ॥३४
दुश्चर्मा कुनखी कुष्ठी श्वित्री च श्यावदन्तक. ।
विद्धप्रजननश्चैव तेन क्लीवोऽथ नास्तिकः ॥३५

महर्षि मनु ने देकर द्रव्य के लिये जो अनुयोग है उनको पतित कहा है। जो वेद का विक्रय किया करते हैं अर्थात् धन ग्रहण करके वेद पढ़ाते हैं ये ब्राह्मण श्राद्ध आदि कर्मों में निन्दित कहे गये हैं ॥२९॥ जो सुत के विक्रय करने वाले हैं और परपूर्वा समुद्भव हैं—जो असामान्यों का यजन किया करते हैं वे सभी पतित कीर्तित किये गये हैं ॥३०॥ जो असस्कृत अध्यापक हैं और केवल भृति के लिये ही अध्यापन कर्म किया करते हैं तथा वेदों का भी अध्ययन केवल धनार्जन के लिये ही किया करते हैं वे ब्राह्मण भी पतित ही कहे गये है ॥३१॥ वृद्ध, श्रावक, निर्ग्रन्थ, पञ्चरात्र

के ज्ञाता, कापालिक, पाशुपत और पाषण्ड करने वाले तथा इसी प्रकार वाले ये जिसके हवि का प्रदान किया करते हैं। ये दुष्ट आत्मा वाले और तामस होते हैं उसका श्राद्ध ही नहीं होता है। मरने के पश्चात् तथा इस लोक से भी वह श्राद्ध फल का प्रदान करने वाला नहीं हुआ करता है। ।।३२-३३।। जो द्विज आश्रम हीन हो अथवा आश्रम में रहते हुए भी निरर्थक हो तथा जो मिथ्या आश्रम का धारण करने वाला हो—ये सभी विप्र पंक्ति को दूषित करने वाले ही समझने चाहिए।।३४।। दुष्ट चर्म वाला, बुरे नखों वाला, कुष्ठ रोग से युक्त, श्वित्री (सफेद कोढ़ वाला), कृष्ण वर्ण के दाँतों वाला, विद्ध प्रजनन, क्लीब और नास्तिक ये सभी ब्राह्मण श्राद्धादि कर्मों के योग्य नहीं होते हैं।।३५।।

मद्यपीवृषलीसक्तो वीरहादिधिपूपतिः ।
अगारदाहीकुण्डाशीसोमविक्रयिणोद्विजाः ।।३६
परिवेत्ता च हिंस्रश्च परिवित्तिर्निराकृतिः ।
पौनर्भव. कुसीदश्च तथा नक्षत्रदर्शक. ।।३७
गीतवादित्रशीलश्चव्याधितःकाणएवच ।
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णातथैवच ।।३८
कन्यादूषीकुण्डगोलौअभिशस्तोऽथदेवलः ।
मित्रध्रुक् पिशुनश्चैवनित्यभार्यानुवर्त्तितः ।।३९
मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च ।
गोत्रस्पृक् भ्रष्टशौचश्च काण्डस्पृष्टस्तथैवच ।।४०
अनपत्य. कूटसाक्षी याचको रङ्गजीवक. ।
समुद्रयायी कृतहा तथा समयभेदक. ।।४१
वेदनिन्दारतश्चैव देवनिन्दापरस्तथा ।
द्विजनिन्दारतश्चैव वर्ज्याः श्राद्धादिकर्मणि ।।४२

मद्य पान करने वाला, वृषली में आसक्त, वीरहा, दिधिषूपति, अगार के दाह करने वाला, कुण्डाशी, सोम का विक्रय करने वाला द्विज, परिवेत्ता, हिंस्र, परिवित्ति, निराकृति, पौनर्भव, कुसीद तथा नक्षत्रों को देखने वाला द्विज श्राद्धादि में वर्जित हुआ करते हैं।।३६-३७।। जो गौवों के

गायन तथा वादित्रों के वादन करने के स्वभाव वाला हो, व्याधि से युक्त, काणा, हीन अङ्ग वाला, अतिरिक्त अङ्ग वाला, अवकीर्ण, अग्रदूपी, कुण्ड, गोलक, अभिशस्त, देवल, मित्र से द्रोह करने वाला, पिशुन और जो नित्य ही अपनी भार्या का अनुवर्ती हो ऐसा द्विज भी श्राद्धादि में वर्जित होता है ॥३८-३९॥ माता-पिता का त्याग तथा गुरु का त्याग करने वाला, स्त्री का त्याग करने वाला, गोत्रस्पृक्, शौच की नष्टता वाला, काण्ड स्पृट, सन्तान से रहित, कूट साक्षी (झूठी गवाही देने वाला), याचना करने वाला, रङ्ग से जीविका करने वाला, समुद्र में यात्रा करने वाला, किये हुए उपकार का हनन करने वाला, समय का भेदक, वेदों की निन्दा में रति रखने वाला, देवों की निन्दा में परायण, द्विजों की निन्दा में तत्पर ये सभी ब्राह्मण श्राद्ध आदि सत्कर्मों में वर्जित होते हैं ॥४०-४२॥

कृतघ्नःपिशुनः क्रूरोनास्तिकोवेदनिन्दकः ।
मित्रध्रुक्कुहकश्चैव विशेषात्पङ्क्तिदूषकः ॥४३
सर्वे पुनरभोज्यान्ना न दानार्हाःस्वकर्मसु ।
ब्रह्महाचाभिशस्ताश्च वर्जनीया प्रयत्नतः ॥४४
शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः सन्ध्योपासनवर्जितः ।
महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः ॥४५
अधीतनाशनश्चैव स्नानदानविवर्जितः ।
तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः ॥४६
बहुनाऽत्रकिमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते ।
निन्दितानाचरन्त्येतेवर्ज्याःश्राद्धेप्रयत्नतः ॥४७

कृतघ्न—पिशुन—क्रूर—नास्तिक—वेदनिन्दक—मित्रों से द्रोह करने वाला—कुहक ये विशेष रूप से पंक्ति दूषक होते हैं ॥४३॥ ये सभी भोजन कराने योग्य नहीं होते हैं और अपने कर्मों में दान के योग्य भी नहीं होते हैं। ब्रह्महा और अभिशस्त भी प्रयत्न पूर्वक वर्जन के योग्य होते हैं ॥४४॥ शूद्र के अन्न रस से पुष्ट अङ्गों वाला तथा सन्ध्योपासन से रहित और महायज्ञ से विहीन ब्राह्मण भी पंक्ति दूषित होता है ॥४५॥ अध्ययन का नाश करने वाला—स्नान तथा दान से रहित—तामस और

राक्षस ब्राह्मण भी पंक्ति दूषक होता है ॥४६॥ अत्यधिक यहाँ पर कहने की क्या आवश्यकता है यही समझ लेना चाहिए कि जो विहित विधियों को नहीं किया करते हैं तथा जो निन्दित एवं निषिद्ध कर्म हैं उनका ही सदा समाचरण किया करते हैं वे सभी श्राद्ध में प्रयत्न पूर्वक वर्जन करने के योग्य होते हैं ॥४७॥

२२—श्राद्धकल्पवर्णन (३)

गोमयेनोदकैर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः ।
सन्निमन्त्र्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः सन्निमन्त्रयेत् ॥१
श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिपूज्य च ।
असम्भवे परेद्युर्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतान् ॥२
तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम् ।
अन्योऽन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः ॥३
तैर्ब्राह्मणैः सहाश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः ।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम् ॥४
आमन्त्रितास्च ते विप्रा श्राद्धकाल उपस्थिते ।
वसेयुर्नियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः ॥५
अक्रोधनोऽत्वरोऽमत्तः सत्यवादी समाहितः ।
भारं मैथुनमध्वानं श्राद्धकृद्वर्जयेद्ध्रुवम् ॥६
आमन्त्रितो ब्राह्मणो वैयोऽन्यस्मै कुरुते क्षणम् ।
स याति नरकं घोरं सूकरत्वं प्रयाति च ॥७

महामहर्षि व्यासदेवजी ने कहा—गोमय से और जल से भूमि का शोधन करके समाहित होकर समस्त द्विजों का भली भाँति निमन्त्रण करके साधुओं के द्वारा संनिमन्त्रित करना चाहिए ॥१॥ यह कहना चाहिए कि कल मेरे यहाँ श्राद्ध होगा। पहिले ही दिन में ब्राह्मणों का अभि-पूजन कर देवे यदि दूसरे दिन में पूजन करना असम्भव हो तो ऐसा करे। ब्राह्मण यथोक्त लक्षणों से युक्त होने चाहिए ॥२॥ उसके पितृगण वे यह

श्रवण करके कि जब श्राद्ध करने का काल उपस्थित हो गया है वे मन से अन्योन्य का ध्यान करके मन के तुल्य वेग वाले नीचे उतर आते हैं ॥३॥ वे ब्राह्मणों के साथ भोजन किया करते हैं और वे पितर अन्तरिक्षगामी होते हैं। वहाँ पर वायु के स्वरूप में ही स्थित होते हैं तथा भोजन करके परागति को प्राप्त हो जाते हैं ॥४॥ जो ब्राह्मण श्राद्ध के काल के उपस्थित होने पर आमन्त्रित होते हैं उन सबको नियत होकर ब्रह्मचर्य में परायण होते हुए ही निवास करना चाहिए ॥५॥ जो श्राद्ध के करने वाला है उसे त्वरा से (जल्दबाजी) रहित बिना क्रोध वाला—अभक्त, सत्यवादी और परम समाहित होना चाहिए तथा श्राद्ध कर्त्ता को भार, मैथुन और मार्ग गमन को भी निश्चित रूप से वर्जित कर देना चाहिए। ॥६॥ जो ब्राह्मण आमन्त्रित हो वह दूसरे के लिए क्षण करता है तो वह घोर नरक में जाता है फिर सूकर की योनि में जन्म लिया करता है ॥७॥

आमन्त्रयित्वा यो मोहादन्यञ्चाऽऽमन्त्रयेद् द्विजः।
स तस्मादधिक पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते ॥८
श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुन योऽधिगच्छति।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनौ विधीयते ॥९
निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वान याति दुर्मतिः।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पापभोजनाः ॥१०
निमन्त्रितस्तुय श्राद्धेकुर्याद्कलहद्विज.।
भवन्ति पितरस्तस्यतन्मासमलभोजनाः ॥११
तस्मान्निमन्त्रितः श्राद्धे नियतात्मा भवेद् द्विज.।
अक्रोधनः शौचपरः कर्त्ता चैव जितेन्द्रियः ॥१२
श्वोभूतेदक्षिणागत्वादिशंदर्भान्समाहित.।
समूलानाहरेद्वारिदक्षिणाग्रान्सुनिमलान् ॥१३
दक्षिणाप्रवणस्निग्ध विभक्त शुभलक्षणम्।
शुचि देश विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत् ॥१४

जो द्विज आमन्त्रण करके मोह से फिर अन्य को आमन्त्रित करे वह उससे भी अधिक पापी है और विष्ठा को कीट बना करता है ॥८॥ श्राद्ध मे निमन्त्रित किया हुआ विप्र यदि मैथुन करता है तो वह ब्रह्महत्या का पाप भागी होता है और फिर किसी तिर्यक् की योनि म जन्म लेता है ॥९॥ जो निमन्त्रित विप्र दुष्ट बुद्धि वाला मार्ग का गमन करता है तो उसके पितर उस मास मे पाप के भोजन करने वाल होते हैं ॥१०॥ जो द्विज श्राद्ध मे निमन्त्रित होकर कलह करता है तो पितृगण उस मास म मल का भोजन करने वाल होत हैं ॥११॥ इसलिये श्राद्ध मे निमन्त्रित विप्र को नियत आत्मा वाला अवश्य ही होना चाहिए। क्रोध से एक दम हीन—शौच मे परम परायण—कर्त्ता और इन्द्रियो को अपने वश मे रखने वाला होना चाहिए।१२। प्रात काल होने पर दक्षिण दिशा मे जाकर समूल दर्भों का आहरण करना चाहिए और दक्षिण मे ही अग्रभाग वाले सुनिर्मल उनको द्वार पर रखे ॥१३॥ दक्षिणा प्रवण—स्निग्ध—विभक्त और शुभ लक्षण वाले शुचि देश को जो विविक्त हो गोवर से लेपन करे ॥१४॥

नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ चैव नाम्बुषु।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितर सदा ॥१५
पारक्येभूमिभागेतु पितृणान्नैवनिर्वपेत्।
स्वामिभिस्तद्विहन्येतमोहाद्यत्क्रियतेनरै ॥१६
अटव्य पर्वता पुण्यास्तीर्थान्यायतनानिच।
सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नह्येतेषुपरिग्रह ॥१७
तिलान्प्रविकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजम्।
असुरोपहृत श्राद्ध तिलै शुध्यत्यजेन तु ॥१८
ततोऽन्नम्बहुसस्कार नैकव्यञ्जनमच्युतम्।
चोष्यपेय समृतञ्चयथाशक्ति प्रकल्पयेत् ॥१९
ततो निवृत्ते मध्याह्नेलुप्तरोमनखान्द्विजान्।
अवगम्य यथामार्गम्प्रयच्छेद्दन्तधावनम् ॥२०
आसध्वमिति सञ्जल्पन्नासीरस्त पृथक पृथक।

तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयञ्च पृथग्विधम् ।
पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदैवत्यपूर्वकम् ॥२१

नदी के तीरो पर—तीर्थों में—अपनी भूमि में—जनीय स्थानों में नहीं—विविक्त (एकान्त) स्थलों में सदा दिये हुए श्राद्ध से पितृगण परम सन्तुष्ट हुआ करते हैं ॥१५॥ पारक्य भूमि भाग में पितृगणों के लिये कभी भी निर्वपन नहीं करना चाहिए । उसके स्वामियों के द्वारा उसका विशेष हनन कर दिया जाया करता है जो कि मोह के वशीभूत होकर मनुष्यों के द्वारा किया जाता है ॥१६॥ अटवियाँ—पर्वत—पुण्य स्थल—तीर्थ और आयतन ये सब स्वामि रहित ही होते हैं इनमें परिग्रह नहीं होता है ॥१७॥ वहाँ पर जहाँ श्राद्ध कर्म किया जावे तिलों को प्रकीर्ण कर देवे और सभी ओर से अज का बन्धन कर देना चाहिए । असुरों के द्वारा उपहत श्राद्ध अज के द्वारा तिलों से शुद्ध होता है ॥१८॥ इसके पश्चात् अन्न को बहुत संस्कारों वाला करके प्रस्तुत करे जिसमें एक ही व्यञ्जन मध्यगामी न हो । चोष्य—पेय और समृद्ध भोजन शक्ति के अनुसार प्रकल्पित करना चाहिए ॥१९॥ इसके उपरान्त मध्याह्न काल के निवृत्त हो जाने पर द्विजों को जिनके रोम और नख लुप्त हो अवगमन करके यथा भाग दन्त धावन देना चाहिए ॥२०॥ आसध्वम्—अर्थात् उपविष्ट होइये—यह कहकर उनको पृथक्-पृथक् आसियत करे । तैल-अभ्यञ्जन—स्नान—स्नानीय पृथक् प्रकार युक्त वैश्व दैवत्य पूर्वक उदुम्बर के पात्रों से समर्पित करना चाहिए ॥२१॥

ततः स्नाननिवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
पाद्यमाचमनीयञ्च सम्प्रयच्छेद्यथाक्रमम् ॥२२
ये चात्र विश्वदेवाना द्विजाः पूर्वं निमन्त्रिताः ।
प्राङ्मुखान्यासनान्येषां त्रिदर्भोपहृतानि च ॥२३
दक्षिणामुखमुक्तानि पितृणामासनानि च ।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु प्रोक्षितानि तिलोदकैः ॥२४
तेषूपवेशयेदेतानासनं संस्पृशन्नपि ।
आसध्वमिति सञ्जल्पन्नासीरंस्ते पृथक् पृथक् ॥२५

द्वौदैवेप्राङ् मुखौ पित्र्येचप्रश्चोदङ् मुखास्तथा ।
एकैक तत्र दैवं तु पितृमातामहेष्वपि ॥२६
सत्क्रिया देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम् ।
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥२७
अपिवाभोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
श्रुतशीलादिसम्पन्नमलक्षणविवर्जितम् ॥२८

इसके उपरान्त स्नान से निवृत्त होने वालों को उनकर कृताञ्जलि होकर यथाक्रम पाद्य और आचमनीय अर्पित करे ॥२२॥ जो यहाँ पर विश्वदेवों के द्विज पहिले निमन्त्रित हों उनके आसन पूर्व की ओर मुख वाले होवे और वे त्रिदर्भों से उपहृत होने चाहिए ॥२३॥ दक्षिण मुख मुक्त पितृगणों के आसन होने चाहिए जो दक्षिणाग्र वाले दर्भों में तिल सहित जल के द्वारा प्रोक्षित होने चाहिए ॥२४॥ उन आसनों पर इनको आसनों का स्पर्श करते उपवेशित करे। उस समय में भी 'आसध्वम्'—ऐसा उच्चारण करके ही उपवेशित करना चाहिए और वे पृथक्-पृथक् उपविष्ट हो जावें ॥२५॥ जो दो दैव के हों उन्हें पूर्व की ओर मुख वाले उपवेशित करे। पितृगण के तीनों को उत्तर की ओर मुख वाले विराजमान करे। उनमें एक-एक दैव है जो पितृ मातामहों में भी होता है। ॥२६॥ इसमें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिए क्योंकि विस्तार सत्क्रिया—देशकाल—शौच—ब्राह्मण सम्पदा इन पाँचों का हनन किया करता है अतएव विशेष विस्तार की कभी भी इच्छा न करे ॥२७॥ अथवा किसी एक ही वेदों का पारगामी ब्राह्मण को भोजन करा देना चाहिए किन्तु वह ब्राह्मण श्रुत—शील आदि सभी सद्गुणगणों से सुसम्पन्न होना चाहिए और जो बुरे लक्षण हैं उन से वर्जित भी होना चाहिए ॥२८॥

उद्धृत्यपात्रेचान्नं तत्सर्वस्मात्प्रकृतात्ततः ।
देवतायतने चासौ निवेद्यान्यत्प्रवर्त्तयेत् ॥२९
प्रास्येदन्न तदग्नौ तु दद्याद्वै ब्रह्मचारिणे ।
तस्मादेकमपिश्रेष्ठं विद्वांसभोजयेद्द्विजम् ॥३०

भिक्षुकोब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः ।
उपविष्टस्तुय-श्राद्धेकामतमपिभोजयेत् ॥३१
अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धम्प्रशस्यते ।
तस्मात्प्रयत्नाच्छ्राद्धे षु पूज्याह्यतिथयो द्विजं. ॥३२
आतिथ्यरहिते श्राद्धे भुञ्जतेये द्विजातयः ।
काकयोनिं व्रजन्त्येते दाता चैवन संशयः ॥३३
हीनाङ्ग पतित कुष्टी.व्रणयुक्तस्तुनास्तिक ।
कुक्कुटः शूकरश्वानौवर्ज्या श्राद्धे षुदूरत. ॥३४
वीभत्सुमशुचि नग्नमत्तं धूर्तं रजस्वलाम् ।
नीलकाषायवसनपाषण्डाश्च विवर्जयेत् ॥३५

उस सब प्रकार से अन्न को पात्र मे उद्धृत करके इसे देवतायतन मे निवेदन करके अन्य को प्रवर्तित कर देना चाहिए ॥२९॥ उस अन्न को अग्नि मे प्राशित कर देवे और ब्रह्मचारी को दे देना चाहिए । इसलिये एक ही किसी परमश्रेष्ठ विद्वान् द्विज को भली भाँति भोजन कराना चाहिए ॥३०॥ कोई भिक्षुक अथवा ब्रह्मचारी भोजन के लिये उपस्थित हो जावे और जो श्राद्ध मे इच्छा पूर्वक उपविष्ट हो जाय तो उसको भी भोजन करा देना चाहिए ॥३१। जिसका अतिथि अशन नहीं किया करता है वह श्राद्ध प्रशस्त नही कहा जाता है । इसलिये द्विजो के द्वारा सभी प्रकार के प्रयत्न अतिथियो को श्राद्ध मे पूजा करनी चाहिए ॥३२॥ आतिथ्य से रहित श्राद्ध मे जो द्विजातिगण स्वयं भोजन किया करते हैं वे सब कौआ की योनि मे प्रपन्न होते हैं और दाता भी वही योनि प्राप्त करता है—इसमे तनिक भी संशय नही है ॥३३॥ हीन अङ्गो वाला—पतित—कोढ़ी—व्रण से युक्त—नास्तिक—मुर्गा—श्वान—शूकर इन सबको श्राद्धो मे दूर से ही वर्जित कर देना चाहिए ॥३४॥ वीभत्सु—अशुचि—नग्न—मत्त—धूर्त—रजस्वला—नीले और काषाय वस्त्र धारण करने वाले—पाषण्डी को भी श्राद्ध मे वर्जित कर देवे ॥३५॥

यत्तत्र क्रियते कर्म पैतृके ब्राह्मणान्प्रति ।
मत्सर्वमेव कर्त्तव्य वैश्वदैवत्यपूर्वकम् ॥३६

यथोपविष्टान् सर्वास्तानलंकुर्याद्विभूषणैः ।
स्रग्दामभिःशिरोवेष्टैर्धूपवासोऽनुलेपनैः ॥३७
ततस्त्वावाहयेद्देवान् ब्राह्मणानामनुज्ञया ।
उदङ्मुखो यथान्याय विश्वेदेवास इत्यृचा ॥३८
द्वे पवित्रे गृहीत्वाऽस्य भाजने क्षालिते पुनः ।
शन्नो देवी जल क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवास्तथा ॥३९
यादिव्याइतिमन्त्रेणहस्तेत्वर्घं विनिक्षिपेत् ।
प्रदद्याद्गन्धमाल्यानिधूपादीनिचशक्तित. ॥४०
जपसव्य तत कृत्वापितृणादक्षिणामुख: ।
आवाहन तत कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचाबुधः ॥४१
आवाह्यतदनुज्ञातोजपेदायान्तुनस्ततः ।
शन्नोदेव्योदकपात्रेतिलोऽसीतितिलास्तथा ॥४२

पैतृक विधान जो भी वहाँ पर श्राद्ध मे कर्म ब्राह्मणों के प्रति किया जावे वह सभी कर्म वैश्वदेवत्य पूर्वक ही करना चाहिए अर्थात् वैश्वदेवत्य पहिले सब करना अत्यावश्यक है ॥३६॥ ठीक विधि से समुपविष्ट हुए उन सब ब्राह्मणों को विभूषण—माला—शिरोवेष्टन—धूप—चन्दनानुलेपन आदि से समलंकृत करना चाहिए । इसके उपरान्त ब्राह्मणों की अनुज्ञा से देवों का आवाहन करे । उत्तर की ओर मुख करके "विश्वेदेवास"—इत्यादि ऋचा के द्वारा आवाहन करना चाहिए ॥३७-३८॥ दो पवित्र ग्रहण करके इसके पात्र मे फिर उन्हें क्षालित करे "शन्नो देवी"—इत्यादि मन्त्र से जल का क्षेप करे और 'यवोऽसि"—इत्यादि मन्त्र से हाथ मे अर्घ का विनिक्षेप करे । फिर गन्ध, माला, धूप आदि का समर्पण अपनी शक्ति के ही अनुसार करना चाहिए ।३९-४०। इसके उपरान्त बुध पुरुष को अपसव्य हो दक्षिण की ओर मुख करके पितृगण का आवाहन 'उशन्तस्त्वा' इत्यादि ऋचा से करना चाहिए ॥४१॥ आवाहन करके फिर 'आयान्तु न.' इसको जपे और "शन्नो देवी" इससे पात्र उदक को "तिलोऽसि"—इत्यादि के द्वारा तिलों का क्षेप करना चाहिए ॥४२॥

क्षिप्त्वा चार्घं यथापूर्वंदत्त्वा हस्तेषु वै पुनः ।
सस्रवांश्च तत सर्वान् पात्रे कुर्यात्समाहित. ॥४३
पितृभ्यः स्थानमेतच्चन्युब्जपात्रनिधापयेत् ।
अग्नौकरिष्यन्नादायपृच्छेदन्नघृतप्लुतम् ।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतवित् ॥४४
यज्ञोपवीतिना होम कर्त्तव्य.कुशपाणिना ।
प्राचीनावीतिनापित्र्यंवैश्वदेवन्तुहोमवित् ॥४५
दक्षिण पातयेज्जानु देवान् परिचरन्सदा ।
पितृणा परिचर्यासु पातयेदितर तथा ॥४६
सोमाय वै पितृमते स्वधानम इति ब्रुवन् ।
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधेतिजुहुयात्ततः ॥४७
अग्न्यभावेतु विप्रस्य प्राणावेवोपपादयेत् ।
महादेवान्तिके वाथगोष्ठे वा सुसमाहित. ॥४८
ततस्तैरभ्यनुज्ञातो गत्वा वै दक्षिणा दिशम् ।
गोमयेनोपलिप्याथ स्थानकुर्यात्ससंकतम् ॥४९

अर्घ्य का क्षेप करके पूव की भाँति ही हाथो म देकर फिर परम समाहित होकर पात्र म सभी सस्त्रावो को करे ॥४३॥ यह पितृगण के लिये स्थान है—युब्ज पात्र को निधापित करे, घृत प्लुत अन्न को लेकर 'अग्नौ करिष्यन्'—इससे पूछे। जब 'कुरुष्व'—अर्थात् करो—इस प्रकार से अनुज्ञात हो जाव उपवीतवित् को हवन करना चाहिए ॥४४॥ कुशा हाथ मे ग्रहण करके ही यज्ञोपवीति को होम करना चाहिए । प्राचीनावीती होकर पित्र्य और होमवित् को वैश्वदेव करना चाहिए ॥४५॥ सदा देवो की परिचर्या करते हुए दक्षिण जानु को नीचे गिरा देवे। पितृगण की परिचर्या मे वाम जानु का पालन करे ॥४६॥ पितृ मत मे सोम के लिये "स्वधा" को बोले । कव्यवाहन अग्नि के लिय स्वधा—यही कहकर हवन करे ॥४७॥ अग्नि के अभाव मे विप्र के पाणि मे ही उपपादन करे अथवा समाहित होकर महादेव के समीप मे अथवा गोष्ठ मे करे ॥४८॥ उन

सबके द्वारा अनुज्ञात होकर दक्षिण में जाकर गोमय से उपलिप्त कर स्थान को सिकता से संयुत करे ॥४९॥

मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणाप्रवणं शुभम् ।
त्रिरुल्लिखेत्तस्य मध्यं दर्भेणैकेन चैव हि ॥५०
ततः संस्तीर्य्य तत्स्थाने दर्भान्वै दक्षिणाग्रगान् ।
त्रीन्पिण्डान्निर्वपेत् तत्र हवि शेषात्समाहितः ॥५१
उप्त्वपिण्डांस्तु तद्धस्तं निमृज्याल्लेपभोजिनाम् ।
तेषु दर्भेष्वथाचम्य त्रिराचम्य शनैरसून् ।
तदन्नं तु नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥५२
उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ।
अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथा न्युप्त्वा समाहितः ॥५३
अथ पिण्डाच्च शिष्टान्नं विधिवद्भोजयेद् द्विजान् ॥
मांसान् पूपांश्च विविधान्श्राद्धकल्पांस्तु शोभनान् ॥५४
(ततोऽन्नमुत्सृजेद्भुक्तवतो विकिरन्भुवि ।
पृष्ट्वा तदन्नमित्येव तृप्तानाचामयेत्ततः ॥५५
आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति ।
स्वधास्त्विति च ते ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥५६

वहाँ पर चतुरस्त्र मण्डल को दक्षिण की ओर प्रवण हो परम शुभ बनावे। उसके मध्य मे तीन बार उल्लेख करे जो कि एक दर्भ से करना चाहिए ॥५०॥ फिर उस स्थान पर दक्षिणाग्र भाग वाले दर्भों का संस्तरण करे। वहाँ पर हवि शेष से तीन पिण्डों का निर्वपन करना चाहिए ॥५१॥ लेप भोजि उप्य पिण्डोंको हस्तमें निमज्जन करे। उन दर्भों मे तीन बार आचमन करके धीरे से रखे फिर उस अन्न को मन्त्र वेत्ता के द्वारा पितृगण को ही नमस्कार करना चाहिए ॥५२॥ फिर धीरे से शेष उदक को पिण्डो के समीप मे ले जावे, न्युप्त करके समाहित हो उन पिण्डों का अवघ्राण करे। इसके उपरान्त पिण्ड से शिष्ट अन्न को लेकर विधान के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। मांस—पूप और विविध श्राद्ध कल्प मे शोभन पदार्थों का भोजन करावे ॥५३-५४॥

मुक्त होने पर उस अन्न को भूमि पर विकीर्ण करते हुए उत्सृष्ट कर देवे। तदन्नम्—उतना पूछकर ही तृप्त हुआ का आचमन कराव ॥५५॥ जब वे ब्राह्मण आचान्त हो जावें तो उनसे प्रार्थना कर कि "अभितोरम्यताम्" अर्थात् सभी ओर रमण करिये। उन ब्राह्मणों को "स्वधास्तु"—यह कहना चाहिए ॥५६॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ।
यथा ब्रू युस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु तद्द्विजैः ॥५७
पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठेषु सुश्रितम् ।
सम्पन्नमित्यभ्युदये देवे सेवितमित्यपि ॥५८
विसृज्य ब्राह्मणान् तान्वै पितृपूर्वन्तु वाग्यत ।
दक्षिणां दिशमाकांक्षन्याचेतेमान्वरान् पितॄन् ॥५६
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा वि (व्य) गमद्बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति ॥६०
पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ।
मध्यमं तु तत पिण्डमद्यात्पत्नी सुतार्थिनी ॥६१
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिशेषेणतोषयेत् ॥
सूपशाकफलानीक्षून् पयोदधिघृतं मधु ॥६२
अन्नचैव यथाकाममविविधं भोज्यपेयकम् ।
यद्यदिष्टं द्विजेन्द्राणां तत्सर्वं विनिवेदयेत् ॥६३

इसके अनन्तर जब वे ब्राह्मण भोजन कर लेवें तो उन भुक्त हुओं की सेवा में शेष अन्न को निवेदित कर देव जैसा भी वे कहें उसके अनुसार ही उन द्विजों से अनुज्ञात होकर करना चाहिए। 'पित्र्ये स्वदितम्'—' गोष्ठेषु सुश्रित सम्पन्नम्" अभ्युदये देवे सेवितम्"—इनको बोलना चाहिए ।५७-५८। उन समस्त ब्राह्मणों को विसर्जित करके पितृगण को भी पहिले वाग्यत होते हुए विसर्जित कर देवे। फिर दक्षिण दिशा की ओर इच्छा करता हुए इन वरों को पितृगण से याचित करे ॥५६॥ आप दाता हैं हमारे वेदा और सन्तति का वर्द्धन करें। हमारी श्रद्धा में कमी न होवे और अत्यधिक देय शक्ति हम में समुत्पन्न हो जावे ॥६०॥ उन पिण्डों को गो-अज

और विप्रों को दे देना चाहिए अथवा अग्नि में अथवा जल में निक्षिप्त कर देवे। जो मध्यम पिण्ड है उसको सुत की प्रार्थना करने वाली पत्नी को खा लेना चाहिए ॥६१॥ फिर हाथों का प्रक्षालन कर आचमन करे और शेष से ज्ञाति का तोषण करे। सूप—शाक—फल—इक्षु—पय—दधि—घृत—मधु और अन्न विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ तथा पेय की इच्छा पूर्वक जो जो भी द्विजेन्द्रों को अभीष्ट हो उन सबको समर्पित करना चाहिए ॥६२-६३॥

धान्यास्तिलाश्च विविधान् शर्करा विविधास्तथा।
उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता।
अन्यत्र फलमूलेभ्यो पानकेभ्यस्तथैव च ॥६४
न भूमौ पातयेज्जानु न कुप्येन्नानृतं वदेत्।
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैवमवधूनयेत्॥६५
क्रोधेनैव च यद्भुक्तं यद्भुक्तं त्वयथाविधि।
यातुधाना विलुम्पन्ति जल्पता चोपपादितम् ॥६६
स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत सन्निधौ च द्विजोत्तमाः।
न च पश्येत काकादीन् पक्षिणः प्रतिलोमगान् ॥
तद्रूपाः पितरस्तत्र समायान्ति बुभुक्षवः ॥६७
न दद्यात्तत्र हस्तेन प्रत्यक्षं लवणं तथा।
न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः ॥६८
काञ्चनेन तु पात्रेण राजतोदुम्बरेण वा।
दत्तमक्षयतां याति खड्गेन च विशेषतः ॥६९
पात्रे तु मृण्मये यो वै श्राद्धे वै भोजयेद्द्विजान्।
स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधसः ॥७०

अपने श्रेय के सम्पादन की इच्छा रखने वाले को धान्य-तिल विविध अन्न और अनेक प्रकार की शर्करा उष्ण अन्न द्विजातियों को देना चाहिए। अन्यत्र फल मूलों से तथा पानकों से ही उसी भाँति करे ॥ ६४ ॥ भूमि में जानु का पातन नहीं करे—कोप न करे—मिथ्या न बोले—पाद से अन्न का स्पर्श न करे और अवधूनन भी नहीं करे। क्रोध पूर्वक जो भी खाया

गया है और यथा विधि से नहीं लाया गया है तथा क्रोध वाला करते हुए जो भी भोजन किया है उसके सम्पूर्ण रस का राक्षस विनाशन कर दिया करते हैं ॥६५-६६॥ हे द्विजोत्तमो ! स्विन्नगात्र वाला होकर सन्निधि में स्थित नहीं होना चाहिए। काक आदि को न देखे जो पक्षी प्रतिलोमग होते हैं। उसी रूप में पितृगण वहाँ पर बुभुक्षित होते हुए समागत हुआ करते हैं ॥६७॥ वहाँ पर हाथ से प्रत्यक्ष लवण न देवे और लोहे के पात्र से भी न देवे तथा अश्रद्धा से नहीं देना चाहिए। श्राद्ध इस नाम से ही श्रद्धा से जो किया जाता है वही श्राद्ध है श्रद्धा का ही पूर्ण महत्त्व है ॥६८॥ सुवर्ण के पात्र से, चाँदी के तथा उदुम्बर के पात्र द्वारा दिया हुआ अक्षयता को प्राप्त होता है खड्ग के द्वारा विशेष रूप से होता है ॥६९॥ मृत्तिका के पात्र में जो श्राद्ध में द्विजों को भोजन कराता है। वह घोर नरक में जाया करता है और जो पुरोधा भोक्ता है वह भी जाता है ॥७०॥

नपङ्क्त्यांविषमदद्यान्नयाचेतनदापयेत् ।
याचिता दापितादाता नरकान्याति भीषणान् ॥७१
भुञ्जीरन्नग्रतः श्रेष्ठ न ब्रूयु प्राकृतान् गुणान् ।
तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥७२
नाग्रासनोपविष्टस्तु भुञ्जीत प्रथमं द्विजः ।
बहूनां पश्यतां सोऽन्यः पङ्क्त्याहरति किल्बिषम् ॥७३
न किञ्चिद्वर्जयेच्छ्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तमः ।
न मांसस्य निषेधेन न चान्यस्यान्नमीक्षयेत् ॥७४
स्वाध्यायाञ्छ्रावयेदेषां धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥७५
इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पांश्च शोभनान् ॥७६
ततोऽन्नमुत्सृजेद्भोक्ता साग्रतोविकिरन्भुवि ।
पृष्ट्वास्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ॥७७

सामने समुपस्थित पदार्थों का भोजन करे जोकि परम श्रेष्ठ परिवेषित किये गये हैं किन्तु उन पदार्थों के प्राकृत गुणों का वर्णन नहीं करना चाहिए। पितृगण तभी तक उन ब्राह्मणों के साथ स्थित रहते हुए भोजन किया करते हैं जब तक भोजन करने वाले ब्राह्मणों के हवि के गुणों का

वर्णन नहीं किया जाता है ॥७१-७२॥ अग्रासन पर स्थित द्विज को पहिले भोजन नहीं करना चाहिए। बहुतों के देखते हुए वह अन्य पंक्ति से किल्विष का आहरण किया करता है ॥७३॥ कुत्र वर्जित श्राद्ध में नियुक्त द्विजोत्तम नहीं है। अन्य का अन्न भी नहीं देखना चाहिए ॥७४॥ इनको स्वाध्यायों का श्रवण करावे और धर्म शास्त्रों का भी श्रवण करना चाहिए। इतिहास—पुराण और परम शोभन श्राद्ध कल्पों का श्रवण कराना चाहिए ॥७५-७६॥ इसके पश्चात् आगे भूमि में विकीर्ण करते हुए भोक्ता को अन्न का समुत्सृजन करना चाहिए। "स्वदितम्"—अच्छी तरह भोजन कर लिया—यह पूछ कर ही तृप्तों को फिर आचमन कराना चाहिए ॥७७॥

आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति ।
स्वधास्त्विति च तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥७८
ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तुतैर्द्विजैः ॥७९
पित्र्ये स्वदित इत्येवावाक्यं गोष्ठेषु सूनितम् ।
सम्पन्नमित्यभ्युदयेदेवे रोचत इत्यपि ॥८०
विसृज्य ब्राह्मणास्तुत्वा पितृपूर्वं तु वाग्यतः ।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्याचेतेमान्वरान्पितॄन् ॥८१
दातारोनोभिवर्द्धतां वेदा सन्ततिरेवच ।
श्रद्धा च नोमाव्यगमद्बहुदेयंचनोस्त्विति ॥८२
पिण्डास्तु गोजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेपि वा ।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्पत्नी सुतार्थिनी ॥८३
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत् ।
ज्ञातिष्वपि चतुर्थेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत्ततः ॥८४

जब सब ब्राह्मण आचान्त होजावें तो उनसे प्रार्थना करे कि आप सब और रमण कीजिए। ब्राह्मणों को "स्वधा अस्तु"—यह उस श्राद्ध दाता से कहना चाहिए ॥७८॥ इसके उपरान्त में भुक्त हुए उनकी सेवा में जो शेष अन्न हो उसको निवेदित कर देना चाहिए। जिस प्रकार वे

भी वे द्विज बोलें उनके द्वारा मनुज्ञात होकर वही करना चाहिए ॥७९॥ 'पित्रा स्वदित' इस वाक्य को 'गाष्ठेपु सूचितमस्तन' इसको और 'अभ्युदये देव रोचत" —इस वाक्य को बाले ॥ ८० ॥ वाग्यत होकर पितृगण के पूर्व स्तवन करके ब्राह्मणो का विसर्जन करे। दक्षिण दिशा की ओर देखते हुए पितृगण स इन वरदानो की याचना करनी चाहिए। दाना आप लोग वेद और मेरी सन्तति का अभिवर्द्धन करें। यह भी वरदान हम प्रदान करें कि हमारी श्रद्धा का कभी व्ययगमन होवे तथा अत्यधिक दान देने की भावना विशेष रूप से समुत्पन्न होवे ॥८१-८२॥ फिर उन पिण्डो को गौ अज और विप्रों को द दवे या अग्नि तथा जल म प्रक्षिप्त कर दवे। जो मध्यम पिण्ड है उसको सुत की इच्छा वाली पत्नी को खा लेना चाहिए। हाथों का प्रक्षालन करके तथा आचमन करके शेष जो हो उससे ज्ञाति के लोगों का भोजन कराना चाहिए। ज्ञाति के लोगों में भी चतुर्थ श्रेणी के अपने भृत्यों को भोजन कराना चाहिए ॥८३-८४॥

पश्चात्स्वयञ्चपत्नीभि शेषमन्नसमाचरेत् ।
नोद्वासयेत्तदुच्छिष्टयावन्नास्तगतोरविः ॥८५
ब्रह्मचारी भवेतानु दम्पतीरजनी तुताम् ।
दत्त्वा श्राद्धतथाभुक्त्वासेवते यस्तुमैथुनम् ॥८६
महारौरवमासाद्य कीटयोनि व्रजेत्पुन. ॥८७
शुचिरक्रोधन शान्त. सत्यवादी समाहित ।
स्वाध्यायञ्च तथाध्वान कर्ता भोक्ता च वर्जयेत् ॥८८
श्राद्ध भुक्त्वापरश्राद्धभुञ्जतेयेद्विजातयः ।
महापातकिभिस्तुल्या यान्तितेनरकान्वहून् ॥८९
एषवोविहित.सम्यक्श्राद्धकल्पःसमासत. ।
अनेनवर्द्धयेन्नित्य ब्राह्मणोव्यसनान्वितः ॥९०
आमश्राद्धा यदाकुर्याद्विधिज्ञ.श्रद्धयान्वितः ।
तेनाग्नौकरणकुर्यात्पिण्डास्तेनैवनिर्वपेत् ॥९१

इसके अनन्तर स्वय और अपनी पत्नियों को साथ भोजन करना चाहिए। उस उच्छिष्ट अन्न को उद्वासित न करे जब तक सूर्य अस्तगत न

होवे ।। ८५ ।। उस रात्रि में स्त्री पुरुष दोनों दम्पति ब्रह्मचारी रहें। श्राद्ध देकर या श्राद्ध खाकर जो मैथुन किया करता है वह महा रौरव नरक में जाकर फिर कीटों की योनि में जन्म लेता है ।।८६-८७।। श्राद्ध कर्त्ता और भोक्ता दोनों को ही परम शुचि—क्रोध रहित—शान्त—सत्यवादी और परम समाहित होना चाहिए। स्वाध्याय तथा मार्ग गमन इन दोनों कार्यों को कर्ता तथा भोक्ता दोनों को ही वर्जित कर देने चाहिए।।८८।। जो एक स्थान पर श्राद्ध में भोजन करके किसी भी लालच आदि कारणों से दूसरे श्राद्ध में द्विजातिगण भोजन किया करते हैं वे महापातकियों के ही समान होते हैं और फिर बहुत से घोरतम नरकों में पड़ा करते हैं। ।।८९।। यह श्राद्ध कल्प संक्षेप से आप सब लोगों को बतला दिया है व्यसनों से समन्वित ब्राह्मण को इसके द्वारा नित्य ही बढ़ना चाहिए।९०। जो विधि का ज्ञाता श्रद्धा से समन्वित होकर आम श्राद्ध करता है उसको आम श्राद्ध करना है उसको अग्नि में करण करना चाहिए और पिंडों को भी उसी के द्वारा निर्वपन करे।।९१।।

योऽनेन विधिनाश्राद्धं कुर्याद्वैशान्तमानस. ।
व्यपेतकल्मषोनित्ययतीनां वर्त्तेयेत्पदम् ।।९२
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद्द्विजोत्तमः ।
आराधितोभवेद्देवस्तेनसम्यक्सनातनः।।९३
अपि मूलै फलैर्वापि प्रकुर्यान्निर्द्धनो द्विजः।
तिलोदकैस्तर्पयित्वा पितृन् स्नात्वा समाहितः।।९४
न जीवत्पितृकोदद्याद्धोमान्तं वा विधीयते ।
येषा वापि पितादद्यात्तेषाञ्चैकेप्रचक्षते ।।९५
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
यो यस्य प्रीयते तस्मै देयं नान्यस्य तेन तु ।।९६
भोजयेद्वापि जीवन्तंयथाकामं तु भक्तितः ।
न जीवन्तमतिक्रम्य ददाति प्रयतःशुचिः ।।९७
द्व्यामुष्यायणिको दद्याद्बीजिक्षेत्रिकयोः समम् ।
अधिकारी भवेत्सोऽय नियोगोत्पादितो यदि ।।९८

जो इस विधि से शान्त मन वाला होकर श्राद्ध किया करता है वह कल्मषों से छूटकर हुआ मनियों के पद को प्राप्त किया करता है ॥९२॥ अतएव सभी प्रयत्नों के साथ द्विजोत्तम को श्राद्ध अवश्य ही करना चाहिए। इसके करने से सनातन प्रभु इस भली-भाँति समाराधित होते हैं ॥९३॥ यदि कोई द्विज निर्धन होता हो उसको मूल और फलों से ही श्राद्ध का कर्म अवश्य ही करना चाहिए। स्नान करके परम समाहित होकर तिलोदक से पितरों का तर्पण करे ॥९४॥ जिसका पिता जीवित हो उसे श्राद्ध नहीं देना चाहिए अथवा होम पर्यन्त ही करे। जिसका पिता श्राद्ध देवे उसका वह एक ही कहा जाता है ॥९५॥ पिता-पितामह और प्रपितामह जिसका जो प्राप्त होकर ग्रहण करता है उसी को देव और को नहीं देना चाहिए ॥९६॥ जीवित है उसको यथान्याय पूर्वक भक्तिभाव से भोजन कराए। प्रयत और शुचि होकर जीवों का क्रम से करके फिर श्राद्ध नहीं देवे ॥९७॥ उत्पादक को बीजी और क्षेत्र दोनों को समान ही देना चाहिए। यदि नियोग के द्वारा उत्पादित हुआ तो वह अधिकारी होता है ॥९८॥

अनियुक्तासुतोयश्चशुक्रतोजायतेत्विह ।
प्रदद्याद्वीजिने पिण्ड क्षेत्रिणेतु ततोऽन्यथा ॥९९
द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्ताभ्या क्षेत्रिणे बीजिने तथा ।
कीर्त्तयेदयचैवास्मिन् बीजिन क्षेत्रिण तत ।
मृताहनि तुकर्त्तव्यमेकोद्दिष्ट विधानतः ॥१००
अशौचेस्वेपरिक्षीणेकाम्यवै कामतः पुनः ।
पूर्वाह्णे चैव कर्त्तव्य श्राद्धमभ्युदयार्थिना ॥१०१
देववत्सवमेव स्यान्नैव कार्या तिलैः क्रियाः ।
दर्भाश्च ऋजवः कार्या युग्मान्वै भोजयेद् द्विजान् ॥१०२
नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्तामिति वाचयत् ।
मातृश्राद्ध तु पूर्व्वं स्यात्पितृणा तदनन्तरम् ॥१०३

अनियुक्त से यहाँ पर जो सुत शुक्र से ही समुत्पन्न होता है उसे बीजी या वपन करने वाले को पिण्ड देना चाहिए फिर क्षेत्री को देवे तथा दूसरा

प्रकार यह है कि दो पिण्डों का निर्वपन करे। एक क्षेत्री को और दूसरा बीजी को देवे ॥६६॥ एक पिण्ड के निर्वपन में बीजी का और दूसरे में क्षेत्री का नाम कीर्तित करना चाहिए। जो दिन मृत होने का हो उसी में एकोद्दिष्ट श्राद्ध विधान के साथ करना चाहिए ॥१००॥ यदि अशौच हो गया हो तो उसके परिक्षीण हो जाने पर ही काम्य कर्म को इच्छा से पुनः पूर्वाह्न में ही श्राद्ध उदयार्थी पुरुष को करना चाहिए ॥१०१॥ यह सब देव के समान ही होता है और तिलों से क्रिया नहीं करनी चाहिए। दर्भों को भी सीधी कर लेवें और दो ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥१०२॥ उस समय में नान्दी मुख पितृगण प्रसन्न हों—ऐसा ही बोलना चाहिए। पहिले मातृ श्राद्ध होता है और इसके अनन्तर पितृगण का श्राद्ध होता है ॥१०३॥

> ततो मातामहानन्तु वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्।
> दैवपूर्वं प्रदाद्यद्वै न कुर्यादप्रदक्षिणम् ॥१०४
> प्राङ्मुखो निर्वपेद्विद्वानुपवीती समाहितः।
> पूर्वं तु मातरः पूज्याभक्त्यावै सगणेश्वराः ॥१०५
> स्थण्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु।
> पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्भूषणैरपि पूजयेत् ॥१०६
> पूजयित्वामातृगण कुर्याच्छ्राद्धत्रयद्विजः।
> अकृत्वा मातृयागन्तु यःश्राद्धन्तुनिवेशयेत्।
> तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसा गच्छन्ति मातरः ॥१०७

इसके उपरान्त मातामहादिक का होता है। ऐसे ये वृद्धि में तीन श्राद्ध बताये गये हैं। दैव पूर्व ही प्रदान करे और अदक्षिण न करे ॥१०४॥ पुरुष को प्राङ्मुख होकर निर्वपन करना चाहिए। उपवीती और समाहित होकर पहिले माताओं का पूजन करना चाहिए और भक्ति से सगणेश्वर पूजने चाहिए ॥१०५॥ स्थण्डिलों में—विचित्रों में—प्रतिमाओं में—द्विजातियों में पुष्प—धूप—नैवेद्य और भूषणों से पूजन करना चाहिए ॥१०६॥ मातृगण का पूजन करके द्विज को तीनों श्राद्ध करने

चाहिए। मानृयोग को न करके जो श्राद्ध को निवेदित करता है उसकी माताएँ क्रोध से समाविष्ट होकर हिंसा को जाया करती हैं ॥१०७॥

२३—अशौचकल्पवर्णन

दशाहम्प्राहुराशौच सपिण्डेषु विधीयते ।
मृतेषुवापिजातेषु ब्राह्मणाना द्विजोत्तमाः ॥१
नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः ।
न कुर्याद्विहित किञ्चित्स्वाध्याय मनसाऽपि च ॥२
शुचीनक्रोधनान् भूम्यान् शालाग्नौ भावयेद् द्विजान् ।
शुष्कान्नेन फलैर्वापि वैतानान् जुहुयात्तथा ॥३
न स्पृशेदुरिमानन्येनच तेभ्य समाहरेत् ।
चतुर्थे पञ्चमे चाह्निसस्पर्शः कथितोबुधैः ॥४
सूतकेतु सपिण्डाना सस्पर्शोनैवदुष्यति ।
सूतक सूतिकाञ्चैव वर्जयित्वानृणाम्पुन ॥५
अधीयानस्तथा वेदान् वेदविच्च पिता भवेत् ।
सस्पृश्या सर्वे एवैते स्नानान्माता दशाहत ॥६
दशाहं निर्गुणे प्रोक्तमाशौच चातिनिर्गुणे ।
एकद्वित्रिगुणैर्युक्तश्चतुस्त्र्येकदिनैः शुचिः ॥७

महामहर्षि श्री व्यास देवजी ने कहा—जो पुरुष सपिण्ड होते हैं उनका अशौच दश दिन का होता है। हे द्विजोत्तमो। ब्राह्मणों का यह अशौच मृत तथा जात दोनो मे ही समान ही हुआ करता है ॥१॥ ऐसी अशौच अवस्था मे नित्य किये जाने वाले कर्म और विशेष रूप से काम्य कर्म कुछ भी विहित कर्म नहीं करे स्वाध्याय तो मन से भी नही करना चाहिए ॥२॥ शुचि अक्रोधन—भूम्य द्विजो को शालाग्नि मे भावित करे शुष्क अन्न से अथवा फलो से वैतानो को हवन करना चाहिए ॥३॥ इनका स्पर्श नही करे और अन्य के द्वारा ही उनके लिये समाहरण करे। बुध पुरुषो ने चौथे पाँचवें दिन मे सस्पर्श कहा है ॥४॥ सूतक मे सपिण्डो

का सम्पर्क दूषित नहीं होता है। सूतक और सूतिका का वर्णन करके ही फिर सूतक हुआ करता है ॥५॥ स्वयं वेदों के अध्ययन करने वाला हो और वेदों का वेत्ता होवे। वे सभी स्नान से स्पर्श करने के योग्य होते हैं माता दश दिन में होती है ॥६॥ निर्गुण में दस दिन का आशौच होता है ऐसा कहा गया है। एक-दा-तीन गुणों से युक्त और चार एक दिन में ही शुचि हो जाता है ॥७॥

दशाह्नादपरं सम्यक्प्रधीयीत जुहोति च।
चतुर्थे तस्य संस्पर्शमनुः प्राहप्रजापतिः ॥८
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च।
यथेष्टाचरणस्येह मरणान्तमशौचकम् ॥९
त्रिरात्र दशरात्र वा ब्राह्मणानामशौचकम्।
प्राक्सम्वत्सरात्त्रिरात्रन्दशरात्रतत:परम्।
ऊनद्विवार्षिके प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते ॥१०
(त्रिरात्रं पशुचिरत्वन्यो यदिह्यत्यन्तनिर्गुणः।
अदन्तजातमरणेपित्रोरेकाहमिष्यते)
जातदन्ते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातां तु निर्गुणौ ॥११
आदन्तजननात्सद्य आचूडादेकरात्रकम्।
त्रिरात्रमौपनयनात्सपिण्डानामशौचकम् ॥१२
जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः।
मातुश्च सूतकं तत्स्यात्पिता स्यात्स्पृश्य एव च ॥१३
सद्यशौचं सपिण्डानाकत्तव्यं सोदरस्य तु।
उर्द्ध्वं दशाहादेकाहं सोदरोयदिनिर्गुण ॥१४

दश दिन के पश्चात् अध्ययन करे और हवन करे। चतुर्थ में उसके सस्पर्श को प्रजापति मनु ने कहा है ॥८॥ क्रिया से हीन का—मूर्ख का—महा रोगी का—यथेष्ट आचरण करने वाले का मरण के अन्त तक अशौच होता है ॥९॥ तीन रात्रि अथवा दश रात्रि का अशौचक ब्राह्मणों का ही हुआ करता है। एक वर्ष से पूर्व का तीन रात्रि का और इसके ऊपर दश रात्रि का अशौच होता है। जो दो वर्ष से भी कम हो उसके प्रेत हो जाने

पर उनके माता पिता को ही यह हुआ करता है ॥१०॥ अन्य तो तीन रात्रि में ही शुचि हो जाता है यदि वह प्रत्यन्त ही निर्गुण होता है। जिनके दाँत न निकल हों उनके मर जाने पर माता पिता को भी एक ही दिन का अशौच इष्ट माना जाता है। जिनके दाँत उत्पन्न हो गये हों उनका अशौच तीन रात्रिक होता है। यदि वे दोनों निर्गुण हों ॥११॥ दाँतों के निकलने से लेकर चूड़ा कर्म तक सद्यः एक रात्रि का ही आशौच होता है। उपनयन संस्कार हो जाने वालों का प्राशौच सपिण्ड पुरुषों को तीन रात्रि का हुआ करता है। जो बालक उत्पन्न होते ही मृत हो जाता है तो उसका सूतक माता पिता को हुआ करता है। किन्तु पिता स्पर्श करने के योग्य होता है ॥१२-१३॥ जो भाई का अशौच सपिण्डों को सदा ही करना चाहिए। यदि सादर निर्गुण हो तो ऊर्ध्व दश दिन एक ही दिन तक का प्राशौच हुआ करता है ॥१४॥

ततोऽदूर्ध्वं दन्तजननात्सपिण्डानामशौचकम् ।
एकरात्रं निर्गुणानां चौलादूर्ध्वंत्रिरात्रकम् ॥१५
अदन्तजातमरणसम्भवेयदि सत्तमाः ।
एकरात्रं सपिण्डानांयदि तेऽत्यन्तनिर्गुणाः ॥१६
व्रतादेशात्सपिण्डानां गर्भस्रावात्स्वपातनः ।
(सर्वेषामेवगुणिनामूर्ध्वन्तु विषमं पुनः ।
अर्वाक् षण्मासतः स्त्रीणां यदि स्याद् गर्भसंस्रवः ।
तदा माससमैस्तासामशौचं दिवसैः स्मृतम् ।
तत ऊर्ध्वन्तु पतने स्त्रीणां द्वादशरात्रिकम् ।
सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च धातुतः ।)
गर्भच्युतादहोरात्रं सपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे ।
यथेष्टाचरणे ज्ञातौत्रिरात्रमितिनिश्चयः ॥१७
यदिस्यात्सूतके सूतिर्मरणे वा मृतिर्भवेत् ।
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहः शेषे त्रिरात्रकम् ॥१८
मरणोत्पत्तियोगेन मरणेन समाप्यते ।
आद्यवृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुद्ध्यति ॥१९

(तथाच पञ्चमीरात्रिमतीत्य परतो भवेत्)।
देशान्तरगत श्रुत्वा सूतक शावमेवच ।
तावदप्रयतो मर्त्यो यावच्छेष समाप्यते ।।२०
अतीते सूतके प्रोक्तं सपिण्डाना त्रिरात्रकम् ।

सद्यः शौचभवेत्तस्यसर्वावस्थसुनवदा ।
स्त्रीणामसस्कृतानाप्रदानात्परतः सदा ।
सपिण्डाना त्रिरात्र स्यात्सस्कारे भर्त्तु रेव हि ।
अहस्त्वदत्तकन्यानामशौच मरण स्मृतम् ।
ऊनद्विवर्षामरणे सद्य शौचमुदाहृतम् ।
आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम्) ।
आप्रदानात्त्रिरात्र स्याद्दशरात्रं तत परम् ।।२१

इससे ऊपर दाँतो के निकलने से सपिण्डो का अशौच एक रात्रि का होता है और निर्गुणो का चूडा कर्म से ऊर्ध्व मे तीन रात्रि का होता है ।।१५।। हे श्रेष्ठगण ! अदन्त और जात मात्र के यदि मरण हो तो सपिण्डो का अशौच एक रात्रि का होता है । यदि वे अत्यन्त ही निर्गुण हों । व्रतादेश से नपिण्डो का गर्भस्राव से स्वपात से सभी गुणियो के ऊपर भुन विपर्न होता है । स्त्रियो का गर्भ स्राव यदि छै मास से पीछे हो तो जितने मास हो उतने ही दिनो का अशौच कहा गया है । उसके ऊपर गर्भ के पात होन पर स्त्रियों का बारह रात्रिका आशौच हुआ करता है । सपिण्डो का शौच गर्भस्राव से सद्य ही हो जाया करता है । अत्यन्त निर्गुण सपिण्ड मे गर्भ क च्युत होने से अहोरात्र का ही आशौच होता है । जो यथेष्ट आचरण वाले ज्ञाति के हो उनका आशौच तीन रात्रि का हुआ करता है—ऐसा निश्चय है । यदि सूतक म हो प्रसव हो जावे या मरण मे मृति हो जाय तो शेष से ही शुद्धि होती है । अह के शेष रहने पर तीन रात्रि का ही सूतक हुआ करता है । मरण और उत्पत्ति का योग हो उससे मरण के द्वारा समाप्त किया जाता है । आद्य आशौच वृद्धि

वाला होता है तब वह पूर्व के द्वारा शुद्ध होता है। उसी भाँति पाँचवीं रात्रि को व्यतीत करके ही पर से होता है। देशान्तर में गया हुआ साथ ही सूतक श्रवण करके ही होता है। तब तक मनुष्य अप्रयत रहता है जब तक शेष समय समाप्त होता है ॥१६-२०॥ सूतक के अतीत होने पर सपिंडों को तीन रात्रि का सूतक हुआ करता है। यदि एक वर्ष से ऊपर का समय व्यतीत हो गया हो और फिर सूचना प्राप्त हो तो मरण में केवल स्नान करने ही से शुद्धि होती है। जो वेदाग्र का ज्ञाता है—अग्नीमान है—अग्निमान् है और वृत्ति कर्षित है उसका शौच सभी अवस्थाओं में सर्वदा तुरन्त ही हो जाया करता है। स्त्रियों का अनुदार होने के कारण से सदा प्रदान से पर होता है। स्वामी के ही संस्कार में सपिण्डों का तीन रात्रि का सूतक होता है। अदत्त कन्याओं का मरण अशौच एक दिन का ही बताया गया है। दो वर्ष से कम के मरण में तुरन्त ही शौच कहा गया है। दाँत जब तक नहीं निकले हुए हों ऐसे सोदर का तुरन्त ही और चूड़ा कर्म संस्कार से तीन रात्रि का सूतक होता है। जब तक प्रदान नहीं किया जावे तब तीन रात्रि का और उसके ऊपर दस रात्रि का आशौच हुआ करता है ॥२१॥

मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम्।
एकादशानाञ्च तथा सूतके चैतदेव हि ॥२२
पक्षिणी योनिसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च।
एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणि ॥२३
प्रेतेराजानसज्योतिरस्यस्याद्विषयेस्थित।
गृहेमृतासुसर्वासु कन्यासुचत्र्यहंपितुः ॥२४
परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च।
त्रिरात्रं स्यात्तथाचार्यस्वभार्यास्वन्यगासु च ॥२५
आचार्यपुत्रे पत्न्याञ्चअहोरात्रमुदाहृतम्।
एकाहं स्यादुपाध्यायेस्वग्रामेश्रोत्रियेऽपिच ॥२६
त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च।
एकाहं चास्ववर्ये स्यादेकरात्रं तदिष्यते ॥२७

त्रिरात्रं श्वश्रूमरणात् श्वशुरेचैतदेव हि ।
सद्यःशौचंसमुद्दिष्टं स्वगोत्रे संस्थितेसति ॥२८

मातामहो के मरण में तीन रात्रि का अशौच होता है। एकादशों के सूतक में भी यही होता है। योनि सम्बन्ध में तथा बान्धवो में पक्षिणी होता है। गुरु और साथी ब्रह्मचारी की मृत्यु पर एक रात्रि का सूतक कहा गया है ॥२१-२२॥ सम्पोति राजा के प्रेत हो जाने पर जिसके देश में स्थिति होवे। अपने ही घर में मरी किसी के मृत हो जाने पर और कन्याओं के मृत होने पर पिता को तीन रात्रि का आशौच हुआ करता है ॥२३-२४॥ परपूर्वा भार्याओं में और कृतक पुत्रों में तीन रात्रि का सूतक होता है। आचार्यों की अन्यत्र भार्याओं में भी तीन रात्रि का सूतक होता है। आचार्य के पुत्र में—पत्नी में अहोरात्र का सूतक कहा गया है। उपाध्याय में—अपने ग्राम में और श्रोत्रिय में भी एक रात्रि का ही सूतक हुआ करता है ॥२५-२६॥ अपने गृह में स्थित हो चाहे वे असपिण्ड ही क्यों न हों उनके भी प्रेत होने पर तीन रात्रि का आशौच होता है। असवर्ण में एक दिन का होता है जो एक रात्रि का ही माना जाता है। सास के मरने पर तीन रात्रि का और श्वसुर के प्रेत हो जाने पर इतना ही आशौच हुआ करता है। अपने गोत्र के संस्थित होने पर तुरन्त ही शौच बताया गया है ॥२७-२८॥

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेनभूमिप. ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति ॥२९
क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य बान्धवाः ।
तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥३०
राजन्यवैश्यावप्येव हीनवर्णासु योनिषु ।
तमेवशौच कुर्वातां विशुद्धयर्थ मसशयम् ॥३१
सर्वे तूत्तरवर्णानामशौच कुर्यु रादृता. ।
तद्वर्णविधिदृष्टेन स्व तु शौच स्वयोनिषु ॥३२
षड्रात्रं तु त्रिरात्रं स्यादेकरात्र क्रमेण तु ।
वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रे ष्वाशौचमेव च ॥३३

अर्द्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुङ्गवाः ।
शूद्रक्षत्रियविप्राणां वैश्यस्याशौचमेव च ॥३४
षड्रात्रं वै दशाहञ्च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः ।
अशौचक्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेणद्विजपुङ्गवाः ॥३५

विप्र दश दिन मे शुद्ध होता है और क्षत्रिय बारह दिन मे शुद्धि प्राप्त किया करता है। वैश्य की शुद्धि पन्द्रह दिन में होती है तथा शूद्र एक मास मे शुद्ध होता है ॥२८॥ क्षत्र-विट और शूद्र दायाद जो विप्र के बान्धव हों उनके आशौच मे विप्र की दश दिन मे शुद्धि हुआ करती है ॥३०॥ क्षत्रिय और वैश्य भी इसी प्रकार से हीन वर्ण वाली योनियों मे विशुद्धि के लिए उस ही शौच का नाश रहित होकर करें ॥३१॥ सभी ब्राह्मण लोग उत्तर वर्णों का अशौच किया करें। उस वर्ण की विधि मे दृष्ट के द्वारा ही अशौच करना चाहिए और अपना शौच अपनी योनियों मे करें ॥३२॥ छः रात्रि का—तीन रात्रि का—एक रात्रि का क्रम से वैश्य—क्षत्रिय और विप्रो का होता है और शूद्रो मे तो अशौच ही रहा करता है ॥३३॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! आधामास—षड्रात्र-त्रिरात्र शूद्र क्षत्रिय विप्रों का होता है और वैश्यों का अशौच ही रहा करता है। रात्र-दशाह विप्रों का वैश्य शूद्रों का होता है और क्षत्रिय में अशौच कहा गया है ॥३४-३५॥

शूद्रविट्क्षत्रियाणान्तु ब्राह्मणस्य तथैव च ।
दशरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलापतिः ॥३६
असपिण्ड द्विज प्रेत विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥३७
यद्यन्नमत्ति तेषान्तु त्रिरात्रेणततः शुचि. ।
अनदस्त्वन्नमह्ना तु नचतस्मिन्गृहे वसेत् ॥३८
सोदकेऽप्य तदेवस्यान्मातुराप्तेषु बन्धुषु ।
दशाहेन शवस्पर्शी सपिण्डश्चैव शुद्ध्यति ॥३९
यदि निर्हरति प्रेत लोभादाक्रान्तमानस. ।
दशाहेन द्विजः शुद्ध्येद्द्वादशाहेनभूमिपः ॥४०

अर्द्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति ।
षड्रात्रं णायवामर्वं निरात्रं णाथवापुनः ।।४१
अनाथञ्चैवनिर्हृत्यब्राह्मणंधनवर्जितम् ।
स्नात्वासम्प्राश्यचघृतं शुध्यन्तिब्राह्मणादय ।। ४२

शूद्र विट् क्षत्रियों की तथा च विप्रों की दशरात्रि में शुद्धि होती है—कमलापति ने यही कहा है ।।३६।। असपिण्ड प्रेतद्विज को विप्र एक बन्धु की भाँति निर्हरण करके—खाकर और साथ ही में रहकर दशरात्रि में शुद्ध होता है ।।३७।। यदि उनका अन्न खाता है तो तीन रात्रि में शुचि होता है । और अन्न को न खाते हुए एक दिन में शुद्धि होती है उसके घर में निवास नहीं करना चाहिए ।।३८।। मोदक में वही होता है माता के आप्त बन्धुओं में जो भी हो । शव के स्पर्श करने वाला पुरुष दश दिन में सपिण्ड शुद्ध हुआ करता है ।। ३९ ।। लोभ से आक्रान्त मन वाला होकर यदि प्रेत का निर्हरण करता है तो दश दिन में द्विज की शुद्धि होती है और क्षत्रिय की बारह दिन में हुआ करती है । वैश्य की आधे मास में तथा शूद्र की एक मास में शुद्धि हुआ करती है । अथवा सभी छै रात्रि में या तीन रात्रि में शुद्ध होते हैं ।।४०-४१।। जो अनाथ हो अथवा धन से रहित ब्राह्मण हो उसका निर्हरण करके स्नान करे और घृत का प्राशन करे तो ब्राह्मण आदि सब शुद्ध होजाया करते हैं ।। ४२ ।।

अपरश्चेत्परं वर्णमपरञ्चापरे यदि ।
अशौचे संस्पृशेत्स्नेहात्तदा शौचेन शुद्ध्यति ।।४३
प्रेतीभूत द्विज विप्रोह्यनुगच्छेत्कामत ।
स्नात्वासचैलस्पृष्ट्वाग्निघृतप्राश्यविशुध्यति ।।४४
एकाहात्क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये स्याच्चद्व्यहेन तु ।
शूद्रे दिनत्रयं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुन. ।।४५
अनस्थिसञ्चिते शूद्रे रौति चेद् ब्राह्मण स्वकैः ।
त्रिरात्रं स्यात्तथाशौचमेकाहं त्वन्यथा स्मृतम् ।।४६
अस्थिसञ्चयनादर्वागेकाहः क्षत्रवैश्यो. ।
अन्यथा चैव सज्योतिर्ब्राह्मणेस्नानमेव तु ।।४७

अनस्थिसञ्चिते विप्रो ब्राह्मणोरौतिचेत्तदा ।
स्नानेनैवभवेच्छुद्धि.सचैलेनात्रसशय: ॥४८
यस्तै. सहाशन कुर्याच्छयनादीनि चैव हि ।
बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुध्यति ॥४६

यदि कोई अवर पर वर्ण का और पर अपर वर्ण के अशौच मे स्नेह के वशीभूत होकर स्पर्श कर लेव तो शौच से शुद्ध होजाया करता है ॥४३॥ प्रेतीभूत द्विज के साथ इच्छा से ही कोई अनुगमन करता है तो वस्त्रो के स्नान करे—अग्नि का स्पर्श करके और घृत का प्राशन करके विशुद्ध होजाता है ॥४४॥ एक दिन मे क्षत्रिय की शुद्धि होती है, वैश्य की दो दिन मे और शूद्र मे तीन दिन कहे गये हैं। पुन. सौ बार प्राणायाम करे ॥४५॥ अनस्थि सञ्चित शूद्र मे यदि ब्राह्मण अपनो के साथ शब्द करता है तो तीन रात्रि तक अशौच रहता है अन्यथा एक ही दिन कहा गया है ॥४६॥ अस्थि सञ्चय करने के पश्चात् क्षत्रिय और वैश्य का एक दिन अशौच रहता है। अन्यथा सव्योनि ब्राह्मण मे स्नान ही शौच है ॥४७॥ अनस्थि सञ्चित मे विप्र शब्द करता है तो उस समय में स्नान से ही जो वस्त्रों के सहित किया गया हो शुद्धि हो जाती है—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥४८॥ जो उन्ही के साथ अशन करे और शयन आदि भी करे तो चाहे वह बान्धव हो या कोई दूसरा हो दश दिन मे ही शुद्ध हुआ करता है ॥४६॥

यस्तेषा सममश्नाति सकृदेवापि कामतः ।
तदाऽशौचे निवृत्तेऽसौ स्नान कृत्वा विशुध्यति ॥५०
यावत दान्नमश्नाति दुर्भिक्षाभिहतोनर ।
तावन्त्यहान्यशौच स्यात्प्रायश्चित्ततत्तश्चरेत्॥५१
दाहाद्यशौच कर्त्तव्य द्विजानामग्निहोत्रिणाम् ।
सपिण्डानाञ्चमरणेमरणादितरेषु च ॥५२
सपिण्डता च पुरुषेसप्तमेविनिवर्त्तते ।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥५३

पिता पितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः ।
लेपभाजस्त्रयो ज्ञेया सापिण्ड्य साप्तपौरुषम् ॥५४
अप्रत्ताना तथा स्त्रीणा सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ।
तासा तु भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देव. पितामह. ॥५५
ये चैकजाता बहवोभिन्नयोनयएव च ।
भिन्नवर्णास्तु सापिण्ड्य भवेत्तेषान्त्रिपूरुषम् ॥५६

जो इच्छा पूर्वक एक बार भी उसके साथ भोजन कर लेता है तो उस समय मे अशौच के निवृत्त हो जाने पर वह स्नान करके ही विशुद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥५०॥ दुर्भिक्षा से अभिहत मनुष्य जब तक उसके अन्न को खाता है उतने ही दिन तक उसको अशौच रहा करता है। इसके पश्चात् उसे प्रायश्चित्त का समाचरण कर लेना चाहिए ॥ ५१ ॥ अग्नि-होत्री द्विजो का दाहादि अशौच करना चाहिए। सपिण्डो के मरण मे मरण से इतरो मे करे ॥ ५२ ॥ पुरुष मे सपिण्डता सात पुरुष तक ही रहा करती है फिर वह निवृत्त होजाती है। समानोदक भाव जन्म नाम के अवेदन मे होता है ॥५३॥ पिता—पितामह और प्रपितामह ये तीनों लेप का भजने वाले जानने चाहिए। सपिण्डता सात पुरुषों तक ही सीमित होती है। अप्रत्त तथा स्त्रियो की सपिण्डता सप्त पौरुष ही होती है। देव पितामह ने यही कहा है कि स्त्रियो की भर्तृ सपिण्डता ही होती है ॥५४-५५॥ जो एक से समुत्पन्न बहुत भिन्न योनि वाले होते हैं उनकी सपिण्डता तो तीन ही पुरुष तक रहा करती है ॥५६॥

कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च ।
दातारो नियमाच्चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ ।
सत्रिणो व्रतिनस्तावत्सद्य शौचमुदाहृतम् ॥५७
राजा चैवाऽभिषिक्तश्च अन्नसत्रिण एव च ।
यज्ञे विवाहकाले च दैवयोगे तथैव च ।
सद्यः शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपप्लवे ॥५८
डिम्बाहवहतामाञ्चसर्पादिमरणेपि च ।
सद्यः शौच समाख्यातं स्वज्ञातिमरणेतथा ॥५९

अग्निमरुत्प्रपाने वीराध्वन्यनाशके ।
गोब्राह्मणार्थे सन्न्यस्ते सद्यःशौचं विधीयते ॥६०
नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
नाशौचं कीर्त्यते सद्भिः पतिते च तथा मृते ॥६१
पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः ।
नाऽश्रुपातो न पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥६२
व्यापादयेत्तथाऽऽत्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः ।
विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम् ॥६३

कारु—शिल्पी—वैद्य—दासी—दास—नियम से दाता—ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मचारी—सत्र करने वाले—व्रतधारी ये सभी तक ही अशौच वाले हैं और इन सबका शौच तुरन्त हो जाया करता है—ऐसा ही बताया गया है ॥५७॥ राजा—अभिषिक्त—अन्न सत्री—यज्ञ में—विवाह के समय में दैव योग से तुरन्त ही शौच कहा गया है तथा दुर्भिक्ष में और किसी उपप्लव में भी तुरन्त शौच होजाता है ॥५८॥ डिम्ब आहव (युद्ध) में हत हुओं का और सर्पादि के द्वारा दशन से मर जाने पर तथा स्वजाति मरण में भी तुरन्त ही शौच बताया गया है ॥५९॥ अग्नि—मरु के प्रपतन में—वीराध्वा में जो अनाशक है—गौ ब्राह्मण के हित कार्य के के सम्पादन में और सन्न्यस्त में भी तुरन्त ही शौच का विधान होता है ॥ ६० ॥ नैष्ठिक ब्रह्मचारी—वानप्रस्थ—वन में ही वास करने वाले—यती—ब्रह्मचारी इनका और पतित के मृत होजाने में सत्पुरुषों ने कोई भी अशौच बताया ही नहीं है ॥६१॥ जो पतित पुरुष होते हैं उनके दाह का कोई भी विधान ही नहीं है न उनकी अन्त्येष्टि होती है और न कोई अस्थियों के सञ्चय का ही विधान शास्त्र में कहा गया है। न उनके लिए अश्रुपात ही करना चाहिए और न पिंडों का ही निर्वपन करे। उनको कोई कहीं पर भी श्राद्ध भी नहीं किया जाता है ॥ ६२ ॥ जो स्वयं ही जान बूझ कर अपने आप को आग लगाकर या विष आदि का पान करके मृत होजावे उसका भी कोई अशौच विहित नहीं है न उनका अग्नि

सत्कार ही होता है और न जलाञ्जलि आदि ही उनको दी जाया करती है ॥६३॥

अथ किञ्चित्प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः ।
तस्याऽशौच विधातव्यं कार्यञ्चैवोदकादिकम् ॥६४
जाते कुमारे तदहः कामकुर्यात्प्रतिग्रहम् ।
हिरण्यधान्यगोवासस्तिलान्नगुडसर्पिषा ॥६५
फलानि पुष्पं शाकञ्च लवणं काष्ठमेव च ।
तक्र दधिघृत तैलमौषधं क्षीरमेव च ॥
आशौचिनां गृहाद्ग्राह्यं शुष्कान्नञ्चैव नित्यशः ॥६६
आहिताग्निर्यथान्याय दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ।
अनाहिताग्निर्गृह्ये ण लौकिकेनेतरो जनः ॥६७
देहाभावात्पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृतिम्पुनः ।
दाह कार्यो यथान्याय सपिण्डैः श्रद्धयान्वितैः ॥६८
सकृत्प्रसिञ्चेदुदक नामगोत्रेण वाग्यतः ।
दशाह बान्धवैः श्राद्धं सर्वैश्चैवसुसंयतैः ॥६९
पिण्ड प्रतिदिनंदद्युः सायमप्राक्तनं यथाविधि ।
प्रेतायच गृहद्वारिचतुर्थे भोजयेद्द्विजान् ॥७०

जो कुछ प्रमाद से अग्नि विषादि के द्वारा मर जाया करता है उसका अशौच करना चाहिए और उदकादिक का कर्म भी करना आवश्यक है ॥६४॥ जिस दिन सत्कुमार समुत्पन्न होवे उस दिन में इच्छा पूर्वक प्रतिग्रह करना चाहिए। सुवर्ण—धान्य—गौ—वस्त्र—तिल—गुड और घृत—फल पुष्प—शाक—लवण—काष्ठ—तक्र—दधि—घृत—तेल—औषध—आदि का दान दिल खोलकर करे। अशौची के गृह से नित्य ही शुष्कान्न का ग्रहण करना चाहिए ॥६५-६६॥ जो आहिताग्नि पुरुष हो उसका दाह तीनों अग्नियों से करना चाहिए। जो अनाहिताग्नि है उसका दाह गृह्य अग्नि के द्वारा ही करे और इतर जन का दाह लौकिक अग्नि के द्वारा ही करे ॥६७॥ यदि शव का देह न प्राप्त हो सके तो पलाशों से उसकी प्रतिकृति करावे अर्थात् पुतला निर्माण करना चाहिए। और

फिर उस प्रतिकृति या (पुतला) का दाह न्यायानुसार सपिंड पुरुषों के द्वारा श्रद्धा से समन्वित होकर ही करना चाहिए ।।६८।। दशदिन तक वान्धव गण सभी सुसयत होते हुए मौन रह कर प्रेत के नाम और गोत्र से एक बार जल का सिंचन करना चाहिए। पिंडो का निर्वपन तो प्रतिदिन सायकाल और प्रातःकाल मे विधि के अनुसार ही करना चाहिए। प्रेत के लिए घर के द्वार पर चतुर्थ मे द्विजो को भोजन कराना चाहिए ।।६९-७०।।

द्वितीयेऽहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म्म सबान्धवैः ।
चतुर्थे वान्धवैः सर्वैरस्थ्नां सञ्चयन भवेत् ।
पूर्वन्प्रियुञ्जयेद्विप्रान् युग्मान्सुश्रद्धया शुचीन् ।।७१
पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि ।
युग्मांश्च भोजयेद्विप्रान्नवश्राद्धं तु तद्द्विजाः ।।७२
एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्यभावतः ।
द्वादशे वाह्नि कर्त्तव्यनवमेऽप्यथवाहनि ।
एक पवित्रमेकोऽर्घः पिण्डपात्रं तथैव च ।।७३
एव मृताह्नि कर्त्तव्य प्रतिमासन्तु वत्सरम् ।
सपिण्डीकरण प्रोक्तं पूर्णेसंवत्सरेपुनः ।।७४
कुर्याच्चत्वारि पात्राणि प्रेतादीना द्विजोत्तमाः ।
प्रेतार्थं पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत्ततः ।।७५
येसमाना इति द्वाभ्यां पिण्डानप्येवमेव हि ।
सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं विधीयते ।।७६
पितृनावाहयेत्तत्रपुन प्रेतंविनिर्द्दिशेत् ।
ये सपिण्डीकृताः प्रेतानतेषास्युःप्रतिक्रियाः ।
यस्तु कुर्यात्पृथक् पिण्ड पितृहा सोऽभिजायते ।।७७

दूसरे दिन मे वान्धवो के सहित क्षुर कर्म (केशो का बनना) करावे। चौथे दिन मे ही समस्त वान्धवो के साथ मिलकर अस्थियो का सचय होता है। पूर्व विप्रो का जो सुश्रद्धा से शुचि हो ऐसे युग्मो का प्रयोग करे ।।७१।। पाँचवें—नवम मे तथा एकादशवें दिन मे युग्म विप्रो को

भोजन करावे। हे द्विजगण! वह नव श्राद्ध होते हैं ॥७२॥ ग्यारहवें दिन करना चाहिए अथवा नवम दिन मे एक पवित्र—एक अर्घ और पिंड पात्र लेवे ॥७३॥ इसी प्रकार से जिस दिन मृत्यु होवे उस दिन मे प्रतिमास मे एक वर्ष पर्यन्त करे। जब पूरा एक वर्ष हो जावे तो सपिंडीकरण कहा गया है ॥७४॥ हे द्विज श्रेष्ठो! प्रेतादिकों के चार पात्र करे। प्रेत के लिये पितृ-पात्रों मे पात्र का प्रासेचन करना चाहिए ॥७५॥ "ये समाना"—इन दो मन्त्रों से पिण्डों को भी इसी प्रकार से करे। सपिंडीकरण श्राद्ध देव पूर्व ही किया जाता है ॥७६॥ वहाँ पर पितृगणों का आवाहन करे और पुन. प्रेत को विनिर्देशित करे। जो प्रेत सपिंडीकृत होते है उनकी फिर कोई भी प्रतिक्रिया नही होती है। जो पिण्ड को पृथक् करे वह पितृ का हनन करने वाला अभिजात होता है ॥७७॥

मृते पितरि वै पुत्र पिण्डानब्दं समावसेत्।
दद्यात्तान्न सोदकुम्भं प्रत्यहप्रेतधर्मत ॥७८
पार्वणेन विधानेन सावत्सरिकमिष्यते।
प्रतिसंवत्सरं कुर्याद्विधिरेप सनातन ॥७९
मातापित्रो सुतं कार्यं पिण्डदानादिकञ्च यत्।
पत्नी कार्यात्सुताभावे पत्न्यभावे तु सोदरः ॥८०
अनेनैव विधानेन जीवः श्राद्धं समाचरेत्।
कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्तः समाहित.॥८१
एपव कथित सम्यग्गृहस्थानांक्रियाविधि.।
स्त्रीणाभर्तृ शुश्रूषाधर्मोनान्यइहोच्यते ॥८२
स्वधर्मतत्परा नित्यमीश्वरार्पितमानसाः।
प्राप्नुवन्ति परं स्थानयदुक्तं वेदवादिभिः ॥८३

पिता के मृत्युगत हो जाने पर पुत्र एक वर्ष तक पिंडो को समाविसित करे। प्रतिदिन धर्म की भावना से अन्न और जल का कुम्भ देवे ॥७८॥ पार्वण श्राद्ध के विधान से सांवत्सरिक किया जाता है। इसे प्रतिवर्ष ही करना चाहिए यही सनातन विधि है ॥७९॥ माता-पिता के लिये सुता को ही पिण्डदान आदि समस्त कर्म-कलाप करना चाहिए

क्योंकि इनके प्रधान अधिकारी पुत्र ही होते हैं। यदि किसी के पुत्र का अभाव ही हो प्रेत की पत्नी को ही पिण्डदानादि करना चाहिए और पत्नी भी न हो तो सोदर (सगे भाई) को करना चाहिए ॥८०॥ इसी विधान से जीवात्मा श्राद्ध का समाचरण करे। दान आदिक सब करके समाहित और परम श्रद्धा से युक्त होकर ही सब कुछ करे ॥८१॥ यह हमको सम्पूर्ण गृहस्थों की क्रिया की विधि भली-भाँति आपको कह दी है। इस संसार में अपने भर्ता की शुश्रूषा से बढ़ा अन्य स्त्रियों का भी दूसरा धर्म नहीं होता है ॥८२॥ जो अपने निज के धर्म में परायण रहा करती हैं और नित्य ही ईश्वर में अर्पित मन वाली होती हैं वेदों के बताने वालों ने यही बतलाया है कि वे स्त्रियाँ परम पद को प्राप्त किया करती हैं ॥८३॥

२४—द्विजों के अग्निहोत्रादि कृत्य वर्णन

अग्निहोत्रन्तु जुहुयात्सायम्प्रातर्यथाविधि ।
दर्शे चैव हि तस्यान्ते नवसस्ये तथैव च ॥१
इष्ट्वा चैव यथान्यायमृत्वन्ते च द्विजोऽध्वरैः ।
पशुना त्वयनस्यान्ते समान्ते सोऽग्निकैर्मखैः ॥२
नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना वाग्निमान्द्विजः ।
न चान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥३
नवेनान्नेन चानिष्ट्वा पशुहव्येन चाग्नयः ।
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगृद्धिनः ॥४
सावित्रान्शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः ।
पितृंश्चैवाष्टकाः सर्वे नित्यमन्वष्टकासु च ॥५
एष धर्मः परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते ।
त्रयाणामिह वर्णानां गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥६
नास्तिक्यादथवालस्याद्योऽग्नीन्नाधातुमिच्छति ।
यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान् बहून् ॥७

महा महर्षि श्री व्यास देव ने कहा—विधि पूर्वक अग्नि होत्र का कर्म प्रातः काल में और सायकाल में करना चाहिये। दर्श में—हिम के अन्त में और नवीन शस्य के समय में करे ॥१॥ न्याय पूर्वक द्विज को यजन करके ऋतु के अन्त में अध्वरों के द्वारा यजन करना चाहिए। अयन की समाप्ति में पशु के द्वारा करे तथा वर्ष के अन्त में उसे अग्नि के मखों के द्वारा यजन करना चाहिए ॥२॥ द्विज यजन न करके तथा नवसस्येष्टि—पशुयज्ञ—और आमिष मख इनको न करके जो दीर्घ आयु के जीवन की इच्छा रखने वाला है उसे नवीन अन्न और मांस नहीं खाना चाहिए ॥३॥ नवीन अन्न से और पशु के हव्य से अग्नियों का यजन न करके नवान्न और आमिष के अशन का लालची अपने प्राणों को ही खाना चाहते हैं ॥४॥ सावित्र होम और शान्ती होमों को पर्वों में नित्य ही करना चाहिये। समस्त अष्ट का और अन्वष्टकाओं में नित्य ही पितृ यज्ञों को करे ॥५॥ यह ही नित्य का परामर्श है। इसके अतिरिक्त जो भी कुछ अन्य होता है वह अधर्म कहा जाता है। ये तीनों वर्णों का और गृहस्थ आश्रम में स्थितों का धर्म होता है ॥६॥ नास्तिक भाव से अर्थात् इसके करने में कुछ भी नहीं होता है अतएव यह सब व्यर्थ है—ऐसी भावना से अथवा आलस्य से जो भी कोई अग्नियों का आधान करना नहीं चाहता है और यज्ञ के द्वारा यजन नहीं किया करता है वह मनुष्य बहुत से नरकों में जाकर नारकीय यातनाओं को सहन किया करता है ॥७॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ।
कुम्भीपाकं वैतरणीमसिपत्रवनं तथा।
अन्यांश्च नरकान् घोरान् सम्प्राप्नोति सुदुर्मतिः।
अन्त्यजानां कुले विप्राः शूद्रयोनौ च जायते॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः।
आधायाऽग्निं विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम्॥८
अग्निहोत्रात्परो धर्मो द्विजानां नेह विद्यते।
तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम्॥९

यस्त्वाध्यायाग्निमाश्च स्यान्न यष्टुं देवमिच्छति ।
स सम्मूढो न सम्भाष्यः किं पुनर्नास्तिको जनः ॥१०
यस्यत्रैवार्षिकम्भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ।
अधिकं वा भवेद्यस्य स सोमं पातुमर्हति ॥११
एष वै सर्वयज्ञानां सोमः प्रथम इष्यते ।
सोमेनाराधयेद्देवं सोमलोकमहेश्वरम् ॥१२
नसोमयागादधिकोमहेशाराधनात्सत ।
नसोमो विद्यतेतस्मात्सोमेनाभ्यर्चयेत्परम् ॥१३
पितामहेनविप्राणामादाविहितःपर ।
धर्मोविमुक्तयेसाक्षाच्छ्रौत स्मार्त्तोद्विधापुनः ।
श्रौतस्त्रेताग्निसम्बन्धात्स्मार्त्तं पूर्वं मयादित ।
श्रेयस्करतमः श्रौतस्तस्माच्छ्रौत समाचरेत् ॥१४

उन महान् घोर नरकों के नाम ये हैं—तामिस्र—अन्ध तामिस्र—महारौरव—रौरव—कुम्भी पाक—वैतरणी–असिपत्र वन—इन नरकों में तथा अन्य भी महान् घोरातिघोर नरकों में वह दुष्ट मति वाला पुरुष सम्प्राप्त हुआ करता है। विप्रगण अन्त्यजों के कुल में तथा शूद्र योनि में जन्म ग्रहण किया करते हैं। इसीलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों को करके विशेष रूप से ब्राह्मण वर्ण वाले व्यक्ति को अग्नि का आधान करके विशुद्ध आत्मा वाले को परमेश्वर का यजन अवश्य ही करना चाहिए ॥८॥ इस लोक में अग्नि होत्र से विशेष अधिक पर धर्म द्विजों का अन्य कोई भी नहीं होता है। इसीलिए अग्नि होत्र के द्वारा ही नित्य परम शाश्वत प्रभु का आराधन करना चाहिए ॥९॥ जो अध्ययन करके और अग्निमान् होकर देव का यजन करने की इच्छा नहीं किया करता है वह बहुत बड़ा मूढ़ है और सम्भाषण करने के भी योग्य नहीं है। ऐसा ही पुरुष तो नास्तिक हुआ करता है और नास्तिक कैसा होता है ॥१०॥ जिसका भृत्य वृत्ति के लिए त्रैवार्षिक भक्त पर्याप्त होता है उसका इससे अधिक होता है तो वह सोम का पान करने के ही योग्य होता है तो वह

सोम का पान करने के ही योग्य होता है ॥११॥ यह सोम ही अन्य समस्त यज्ञों का प्रथम इष्ट होता है। सोम लोक के महेश्वर देव का सोम के द्वारा ही समाराधन करना चाहिए ॥१२॥ महेश के समाराधन करने के लिये सोम से अधिक अन्य कोई भी याग नहीं होता है। सोम वहीं विद्यमान होता है इसीलिये उस परम का सोम के द्वारा ही समाराधन करना चाहिए ॥१३॥ पितामह ने विप्रों को लाकर परम की विहित किया है जो विमुक्ति के लिये साक्षात् श्रौत एवं स्मार्त धर्म होता है। धेताग्न के सम्बन्ध से वह श्रौत होता है और स्मार्त धर्म मैंने पहिले ही बता दिया है। उससे अधिक श्रेय का करने वाला श्रौत ही होता है अतएव श्रौत धर्म का ही समाचरण करना चाहिए ॥१४॥

उभावपि हितौ धर्मौ वेदवेदविनिःसृतौ ।
शिष्टाचारस्तृतीयःस्याच्छ्रुतिस्मृत्योरभावतः ॥१५
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिवृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणाः प्रोक्ताः नित्यमात्मगुणान्विता ॥१६
तेषामभिमतोयःस्याच्चेतसानित्यमेवहि ।
सधर्मःकथितःसद्भिर्नान्येषामितिधारणा ॥१७
पुराणधर्मशास्त्राणि वेदानामुपवृंहणम् ।
एक मादब्रह्मविज्ञान धर्मज्ञान तथैकत ॥१८
धर्म जिज्ञासमानानां तत्प्रमाणतरं स्मृतम् ।
धर्मशास्त्रं पुराणानि ब्रह्मज्ञानेतराश्रयम् ॥१९
नान्यतो जायते धर्मो ब्राह्मी विद्या च वैदिकी ।
तस्माद्धर्मं पुराणञ्च श्रद्धातव्य मनीषिभिः ॥२०

वैसे श्रौत और स्मार्त ये दोनों ही धर्म वेदों से ही विनिःसृत हुए हैं। श्रुति और स्मृति में कहे हुए के अभाव में तीसरा शिष्टाचार होता है ॥१५॥ जिन्होंने परिवृंहण के सहित धर्म से वेदों का अधिगमन किया है वे ही ब्राह्मण शिष्ट कहे गये हैं जो नित्य ही आत्मगुणों से समन्वित हुआ करते हैं ॥१६॥ उन शिष्ट ब्राह्मणों का जो भी अभिमत नित्य ही चित्त से हुआ करता है सत्पुरुषों ने उसको भी एक प्रकार का धर्म ही

बतलाया है और यही शिष्टाचरित धर्म के नाम से श्रौत—स्मार्त से भिन्न हुआ करता है किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य पुरुषों का समाचरित धर्म नहीं हुआ करता है। ऐसी ही धारणा है ॥१७॥ पुराण—धर्म शास्त्र ये ही वेदों के उपबृंहण कहे जाते हैं। एक से ब्रह्म का ज्ञान होता है और एक से धर्म का ज्ञान हुआ करता है ॥१८॥ जो धर्म के प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले पुरुष हैं उनके लिए यही अधिक प्रमाण होता है—ऐसा ही कहा गया है। धर्म शास्त्र और पुराण ब्रह्मज्ञान द्वारा इतर माधम को बतलाया करते हैं ॥१९॥ अन्य किसी से भी धर्म तथा वैदिकी ब्राह्मी विद्या नहीं हुआ करती है। इसीलिए धर्म शास्त्र और पुराणों में मनीषियों को परम श्रद्धा रखनी ही चाहिए ॥२०॥

२५—द्विजों की वृत्ति वर्णन

एष वोऽभिहितः कृत्स्नो गृहस्थाश्रमवासिन ।
द्विजातेः परमो धर्मो वर्त्तनानि निबोधत ॥१
द्विविधस्तुगृहीज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः ।
अध्यापनं याजनञ्च पूर्वस्याहु प्रतिग्रहम् ।
कुसीदकृषिवाणिज्यम्प्रकुर्वन्त. स्वयं कृतम् ॥२
कृषेरभावे वाणिज्य तदभावे कुसीदकम् ।
आपत्कल्पस्त्वयं ज्ञेय पूर्वोक्तोमुख्यइष्यते ॥३
स्वयं वा कर्षणाकुर्याद्वाणिज्य वा कुसीदकम् ।
कष्टा पापीयसी वृत्ति कुसीदं तद्विवर्जयेत् ॥४
क्षात्रवृत्तिम्परांम्प्राहुर्न स्वयकर्षण द्विजै ।
तस्मात्क्षात्रेण वर्त्तेत वर्ततेऽप्यापदिद्विज ॥५
तेन चावाप्यजीवस्तु वैश्यवृत्तिःकृषिव्रजेत् ।
न कथञ्चन कुर्वीतब्राह्मण कर्म कर्षणम् ॥६
लब्धलाभ. पितृन्देवान्ब्राह्मणांश्चापिपूजयेत् ।
तेतृप्तास्तस्यत दोषशमयन्तिनसशय ॥७

महामहिम महर्षि व्यास देव ने कहा—यह हमने सम्पूर्ण गृहस्थाश्रम वालों का धर्म आप लोगों को बतला दिया है जो कि द्विजाति का परम धर्म होता है अब वर्त्तमान को भी समझ लो ॥१॥ यह गृही भी दो प्रकार का होता है—एक साधक गृही है और दूसरा असाधक गृही होता है। अध्यापन—याजन और प्रतिग्रह पहिले का ही अर्थात् साधक गृही का ही बताया गया है। कुसीद—कृषि—वाणिज्य को स्वयं ही करने वाले होते हैं ॥२॥ कृषि के अभाव में वाणिज्य और वाणिज्य के भी अभाव में कुसीदक वृत्ति करे। किन्तु यह आपत्ति के समय में किये जाने वाला कल्प है—ऐसा ही समझ लेना चाहिए जो पूर्व में कहा गया है वही मुख्य अभीष्ट है ॥३॥ स्वयं ही कर्षण करे—वाणिज्य अथवा कुसीदक करे। पापीयसी वृद्धि बड़ी ही कष्ट कर होती है अतएव कुसीद को विवर्जित कर देना चाहिए ॥४॥ क्षात्र वृत्ति को परा कहते हैं। द्विजों को स्वयं कर्षण नहीं करना चाहिए। इसीलिये क्षात्र वृत्ति से वर्त्तन करना चाहिए। अनापत्तिकाल में द्विज को वर्त्तना चाहिए ॥५॥ उसके द्वारा अवाप्य जीवन होते हुए वैश्य वृत्ति कृषि को करे। किन्तु किसी भी प्रकार से ब्राह्मण को कर्षण का कर्म (खेत की जुताई) नहीं करना चाहिए। लाभ प्राप्त करने वाले को पितृगण–देवगण और ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिए। वे जब तृप्त हो जाते हैं परम सन्तुष्ट होकर उस कर्म के उग्र दोष का वे अवश्य ही शमन कर दिया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६-७॥

देवेभ्यश्चपितृभ्यश्चदद्याद्भागन्तुविंशकम् ।
त्रिंशद्भागब्राह्मणानां कृषिं कुर्वन्न दुष्यति ॥८
वाणिज्येद्विगुणंदद्यात् कुसीदीत्रिगुणंपुनः ।
कृषिपालान्नदोषेणयुज्यते नात्रसंशयः ॥९

॥१०

असाधकस्तु यः प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः ।
शिलोञ्छे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभिः ॥११

अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवा यदि ।
अयाचितं स्यादमृतं मृतम्भैक्षन्तु याचितम् ॥१२
कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव च ।
त्र्यहिकोवापिचभवेदश्वस्तनिक एव च ॥१३
चतुर्णामपि वै तेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ।
श्रेयान्पर परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तम ॥१४

देवो और पितृगणो के लिये बीसवाँ भाग देवे । तीस भाग ब्राह्मणो को देवे तो कृषिकर्म करते हुए भी कोई दोष नहीं होता है ॥ ८ ॥ वाणिज्य मे दुगुना देवे और कुसीदजीवी को तिगुना देना चाहिए । कृषि-पाल के अन्न दोष से युक्त होता है—इस मे संशय नहीं है ॥९॥ अथवा स्तधूक गृहस्थ को शिलोञ्छ का आदान करना चाहिए । अन्य शिल्प आदि की बहुत-सी विद्याऐ हैं जो वृत्ति के हेतु होती हैं ॥ १० ॥ जो असाधक है और गृहस्थाश्रम मे संस्थित होता है—ऐसा कहा गया है उसकी शिलोञ्छ ये ही वृत्तियाँ परम ऋषियो ने बताई है ॥ ११ ॥ अमृत वृत्ति से जीवन यापन करे अथवा मृत से करे । जो अयाचित होता है वही अमृत होता है और जो भैक्ष्य याचना के द्वारा प्राप्त किया जावे वही मृत कहलाता है ॥ १२ ॥ कुशूल धान्यक होवे या कुम्भीधान्यक हो अथवा त्र्यहिक (तीन दिन का) होवे तथा अश्वस्तनिक ही हो—इन चारों प्रकार के गृहमेधी द्विजो के अन्नो मे जो पर से पर हो उसी को श्रेयस्कर समझना चाहिए और धर्म से लोक जित्तम होता है ॥१३-१४॥

षट्कर्मको भवेत्तेषां त्रिभिरन्य प्रवर्तते ।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥१५
वर्तयंस्तु शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायण ।
इष्टिः पार्वायणान्ता या केवला निर्वपेत्सदा ॥१६
नलोकवृत्तावर्तेतवार्त्तान्ते वृत्तिहेतवे ।
अजिह्मामशठांशुद्धांजीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥१७
याचित्वा चार्थसद्भ्योऽन्न पितृन्देवांस्तु तोषयेत् ।
याचयेद्वा शुचीन्दान्तान्तेन तृप्येत् स्वयं ततः ॥१८

यस्तु द्रव्यार्ज्जनं कृत्वा गृहस्थस्तोपयेन्न तु ।
देवान्पितृंस्तु विधिना शुना योनिं व्रजत्यधः ॥१९
धर्मश्चार्थश्चकामश्चश्रेयामोक्षश्चतुष्टयम् ।
धर्माद्विरुद्धःकाम स्याद्ब्राह्मणानातुनेतरः ॥२०
योऽर्थो धर्माय नाऽऽत्मार्थं सोऽर्थो नार्थस्तथेतरः ।
तस्मादर्थं समासाद्य दद्याद्वै जुहुयाद् द्विजः ॥२१

उनमे से तीनों से ही पट्कर्म करने वाला होना चाहिए । अन्य दो से ही प्रवृत्त होता है । एक चौथा तो ब्रह्म सत्र से ही जीवित रहा करता है ॥ १५ ॥ शिलोञ्छों से अपना वर्त्तन करते हुए अग्निहोत्र कर्म मे परायण होता है । जो पार्वायणान्त इष्टि हैं उन्हे ही केवल सदा निर्वपन करे ॥ १६ ॥ वृत्ति के हेतु के लिये वार्त्तान्त से लोक वृत्त को नहीं वर्त्तन करे । ब्राह्मण को अजिह्म—अशठ—शुद्धजीविका ही से जीवन यापन करना चाहिए ॥ १७ ॥ जिनके पास सतअर्थ हो उनसे अन्न की याचना करके पितृगण और देववृन्द का तोषण करे । अथवा शुचि तथा दान्त पुरुषों से याचना करे और उनसे ही स्वयं भी तृप्त होना चाहिए ॥ १८ ॥ जो गृहस्थ द्रव्य का अर्चन करके भी देवो को और पितृगणों को सन्तुष्ट नहीं किया करता है तथा विधि से श्राद्धादि नहीं करता है वह नीचे की कुत्ते की योनि को प्राप्त किया करता है ॥ १९ ॥ धर्म—अर्थ—काम और चौथा मोक्ष ये चारो ही श्रेय हैं । ब्राह्मणा का धर्म से विरुद्ध काम होता है, इतर नहीं होता ॥ २० ॥ जो अर्थ धर्म के ही लिये है आत्मा के लिये नहीं है वही अर्थ है इतर उस प्रकार का अर्थ ही नहीं है । इस लिये अर्थ को प्राप्त करके द्विज को होम करना चाहिए और दान देना चाहिए ॥ २१ ॥

२६—दानधर्मवर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् ।
ब्रह्मणाभिहितपूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम् ॥१

अर्थान [illegible] ।
दानमित्य [illegible] २
यद्ददाति विशिष्टेभ्यः श्रद्धया युतः ।
तद्विचित्रमहम्मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ॥३
नित्यनैमित्तिककाम्यत्रिविधदानमुच्यते ।
चतुर्थं विमलम्प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥४
अहन्यहनियत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे ।
अनुद्दिश्यफलन्तस्माद्ब्राह्मणायतुनित्यकम् ॥५
यत्तापापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषाकरे ।
नैमित्ति दानन्तदुद्दिष्टं सद्भिरनुष्ठितम् ॥६
आपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते ।
दानतत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥७

महामहिम श्री व्यासजी ने कहा—इसके उपरान्त अब मैं दान के धर्मों के विषय में वर्णन करता हूं । जिसके पहिले ब्रह्मवादी ऋषियों को ब्रह्माजी ने कहा था ॥१॥ अर्थों का समुचित पात्र अर्थात् योग्य अधिकार मनुष्य में श्रद्धा पूर्वक जो प्रतिपादन करता है उसी को दान इस नाम से अभिनिर्दिष्ट किया गया है मुक्ति (सांसारिक सभी उत्तमोत्तम पदार्थों का उपभोग) और मुक्ति अर्थात् निरन्तर जीवन—मरण के बन्धन से छुटकारा पाजाना—इन दोनों ही के फल को वह दिया हुआ दान प्रदान किया करता है ॥ २ ॥ जो दान विशेषता से सम्पन्न शिष्टों को श्रद्धा से युक्त होकर दिया जाता है—मैं ऐसा मानता हूँ कि वह तो एक परम अद्भुत ही दान होता है शेष किसी की रक्षा करता है ॥ ३ ॥ यह दान भी नित्य—नैमित्तिक—काम्य तीन प्रकार का हुआ करता है । इसका एक चौथा भेद भी है जो "विमल" कहा गया है । यह सभी उत्तम से भी उत्तम दानों में से एक है ॥ ४ ॥ दिन प्रति दिन उपकार न करने वाले ब्राह्मण के लिये उससे किसी फल का उद्देश्य न करके जो कुछ भी दिया जाता है वही नित्य दान कहलाता है । जो पापों की उपशान्ति करने के लिये जो विद्वान् पुरुषों को दान दिया करता है उस दान

नैमित्तिक दान अहिष्ट किया गया है उसका सत्पुरुषों ने अनुष्ठान किया है ॥५-६॥ सन्तान—विजय—ऐश्वर्य और स्वर्ग की प्राप्ति के लिये जो कुछ भी दिया जाता है उसी दान को काम्य कहा गया है जिसका प्रति धर्म के चिन्तन करने वाले ऋषिगण ने किया है ॥ ७ ॥

यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते ।
चेतसाधर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥८
दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तितः ।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥९
कुटुम्बभक्तवसनं द्देय यदतिरिच्यते ।
अन्यथा दीयते यद्धि न तद्दानं फलप्रदम् ॥१०
श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने ।
व्रतस्थाय दरिद्राय यद्देयं भक्तिपूर्वकम् ॥११
यस्तुदद्यान्महीम्भक्त्याब्राह्मणायाहिताग्नये ।
सयातिपरमस्थानयत्रगत्वानशोचति ॥१२
इक्षुभिः सन्ततांभूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।
ददाति वेदविदुषे यः स भूयानजायते ॥१३
गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमिसम्प्रयच्छति ।
ब्राह्मणायदरिद्रायसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४

ईश्वर के प्रसन्नता के लिये जिसको ब्रह्म के ज्ञाता जनों में दिया जाता है और धर्म से युक्त चित्त से ही वह दान किया जाया करता है उसी को अर्थ इस नाम से परम शिव दान बताया गया है ॥८॥ उचित पात्र को प्राप्त करके शक्ति के अनुसार धन के धर्म का निषेवन करना चाहिए । ऐसा ही पात्र उत्पन्न होगा जो सभी को तार दिया करता है ॥९॥ कुटुम्ब को भोजन—वस्त्र से देने के पश्चात् जो भी कुछ अतिरिक्त होता है उसी का दान भी करना चाहिए । जो अन्यथा दिया जाता है वह दान फल तो प्रदान करने वाला नहीं होता है ॥ १० ॥ श्रोत्रिय—कुलीन—विनीत—तपस्वी—व्रत में स्थित और दरिद्र के लिये उस दान को भक्ति की भावना से देना चाहिए ॥ ११ ॥ जो कोई भक्ति पूर्वक

किसी आहित अग्नि वाले ब्राह्मण को भूमि का दान करता है वह भूमि का दान दाता पुरुष उस परम स्थान को अन्त मे प्राप्त होता है कि जहाँ पर पहुच कर किसी भी प्रकार शोक चिन्ता ही नही रहा करती है ॥१२॥ ईख से मतन और यव तथा गहूं से शोभा सम्पन्न भूमि को जो कोई किसी वेदो के विद्वान् ब्राह्मण का दान मे देता है वह फिर दूसरा जन्म ग्रहण नही किया करता है ॥ १३ ॥ गौ का चर्म जितनी दूरी मे बिछाकर फैलता है उतनी भूमि भी यदि दान मे प्रदान कोई करता है और वह भी किसी अत्यन्त गरीब धन हीन दरिद्र ब्राह्मण को दी जावे तो वह दाता समस्त पापो से छूट जाया करता है ॥ १४ ॥

भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन ।
अन्नदानंतेनतत्तुल्यं विद्यादानंततोऽधिकम् ॥१५
यो ब्राह्मणाय शुचये धर्मशीलाय शीलिने ।
ददाति विद्या विधिनाब्रह्मलोकेमहीयते ॥१६
दद्यादहरहस्त्वन्नं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्राह्मणस्थानमाप्नुयात् ॥१७
गृहस्थायाऽन्नदानेन फलम्प्राप्नोति मानवः ।
आगमे चास्य दातव्यं दत्वाऽऽप्नोति परां गतिम् ॥१८
वैशाख्यां पौर्णमास्यातु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा ।
उपोष्य विधिना शान्ताञ्छुचीन् प्रयतमानसः ॥१९
पूजयित्वातिलैः कृष्णैर्मधुनाचविशेषत ।
गन्धादिभिःसमभ्यर्च्यवाचयेद्वास्वयंवदेत् ॥२०
प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्तते ।
यावज्जीव कृतम्पाप तत्क्षणादेव नश्यति ॥२१

इस ससार मे भूमि के दान की बहुत बडी महिमा है इस दान से पर अर्थात् बडा दान लोक मे कोई भी नही है । अन्न दान भी बहुत बडा दान है किन्तु उसके दान से भी यह बडा दान है । विद्या का दान इससे भी अधिक होता है ॥ १५ ॥ जो किसी पवित्र—धर्मशील और शील सम्पन्न ब्राह्मण को विद्या का दान देता है वह ब्रह्म लोक मे प्रतिष्ठित

हुआ करता है ॥१६॥ श्रद्धा से प्रतिदिन ब्रह्मचारी को अन्न देना चाहिए। अन्नदाता सभी पापों से छूट कर ब्राह्मण स्थान को प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ मनुष्य गृहस्थाश्रमी को अन्न के दान से फल की प्राप्ति किया करता है। आगम में इसके दान का पुण्य लिखा है कि अवश्य अन्न का दान करना ही चाहिए और इसको देकर परागति को प्राप्त किया करता है ॥ १८ ॥ वैशाखी पूर्णमासी को पाँच या सात ब्राह्मणों को उपवास कराकर जो परम शान्त स्वभाव वाले और शुचि हो प्रयत मन वाला होकर कृष्ण तिलों से और विशेष रूप से मधु के द्वारा पूजन करके तथा गन्धाक्षत आदि के द्वारा भली भाँति अर्चन करके वाचन करावे या स्वयं ही बोले—'धर्मराज प्रसन्न होवें' अथवा मनमें वर्तमान होता है। जीवन भर में जितना भी पाप किया है वह उसी समय में क्षण मात्र में नष्ट हो जाया करता है ॥ १९-२१ ॥

कृष्णाजिने तिलान्दत्त्वा हिरण्यमधुसर्पिषी।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥२२
कृतान्नमुदकुम्भञ्च वैशाख्याञ्च विशेषतः।
निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ॥२३
सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा।
तर्पयेदुदपात्राणि ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥२४
(माघमासे तु विप्रस्तु द्वादश्यां समुपोषितः।)
शुक्लाम्बरधरः कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम्।
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु विप्रेभ्यः सुसमाहितः।
जन्मप्रभृति यत्पापं सर्वं तरति वै द्विजः ॥२५
अमावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने।
यत्किञ्चिद्देवदेवेशं दद्याद्वोद्दिश्य शङ्करम् ॥२६
प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२७
यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम्।
आराधयेद् द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः ॥२८

कृष्ण मृग चर्म में तिलों को देकर सुवर्ण—मधु और घृत जो कोई ब्राह्मण के लिये दान करता है वह सभी दुष्कृतों से तर जाया करता है ॥२२॥ कृताम्र-जल का कलश वैशाखी पूर्णिमा में विशेष रूप से धर्मराज के लिये निर्देश करके विप्रों को दान देता है वह भय से मुक्त होजाता है ॥२३॥ सुवर्ण तिल युक्तों के द्वारा सात या पाँच ब्राह्मणों को जल के पात्र से जो तृप्त किया करता है वह ब्रह्म हत्या के पाप को भी दूर कर दिया करता है ॥ २४ ॥ माघ मास में द्वादशी तिथि में समुपोषित विप्र शुक्ल वस्त्रों के धारण करने वाला तिलों से अग्नि को हुत करके सुसमा हित होकर विप्र ब्राह्मणों को दान करे। वह द्विज जन्म से लेकर जो भी कुछ पाप हो उस सब से मुक्त होजाया करता है ॥ २५ ॥ अमावस्या तिथि को प्राप्त करके किसी परम तपस्वी ब्राह्मण के लिये देवों के भी देव भगवान् शङ्कर का उद्देश्य करके जो कुछ भी दान किया करता है और यह कहकर कि सनातन ईश्वर सोम महादेव प्रसन्न होवें तो सात जन्मों के किये हुए भी पाप उसी क्षण में तुरन्त ही नष्ट होजाया करते हैं ।२६-२७। जो कोई कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि में स्नान करके पिनाक धारी देव की आराधना करता है और वह भी द्विज मुख्य में करे तो उसका संसार में पुनर्जन्म नहीं होता है ॥ २८ ॥

कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये ।
स्नात्वाऽभ्यर्च्य यथान्याय पादप्रक्षालनादिभिः ॥२९

प्रीयतामेमहादेवोदद्याद्द्रव्यस्वकीयकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तःप्राप्नोतिपरमांगतिम् ॥३०

द्विजैः कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषतः ।
अमावास्यां तु वै भक्तैः पूजनीयस्त्रिलोचनः ॥३१

एकादश्यां निराहारोद्वादश्यांपुरुषोत्तमम् ।
अर्चयेद्ब्राह्मणमुखेस गच्छेत्परमम्पदम् ॥३२

एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद्द्वादशीशुक्लपक्षके ।
तस्यामाराधयेद्देवम्प्रयत्नेन जनार्दनम् ॥३३

यत्किञ्चिद्देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ ।
दीयते विष्णवे वापि तदनन्तफलप्रदम् ॥३४
यो हि या देवतामिच्छेत्समाराधयितुन्नरः ।
ब्राह्मणान् पूजयेद्विद्वान् स तस्यास्तोषहेतुतः ॥३५

कृष्ण पक्ष की अष्टमी मे विशेष रूप से धार्मिक द्विजाति के लिये स्नान करके यथा न्याय पादों के प्रक्षालन आदि के द्वारा अभ्यर्चन करके यह कहते हुए महादेव मुझ पर प्रसन्न होवें अपना द्रव्य दान करे तो वह सभी प्रकार के पापों से विनिर्मुक्त होकर परम गति को प्राप्त किया करता है ॥ २९-३० ॥ भक्त द्विजो को कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी मे—विशेष रूप से कृष्णाष्टमी मे और अमावस्या मे भगवान् त्रिलोचन की पूजा अवश्य ही करनी चाहिए ॥ ३१ ॥ एकादशी तिथि मे निराहार व्रत करके द्वादशी तिथि मे ब्राह्मण मुख मे भगवान् पुरुषोत्तम का समर्चन करे तो वह परम पद को चला जाया करता है ॥३२॥ शुक्ल पक्ष मे द्वादशी तिथि वैष्णवी होती है । उस मे प्रयत्न पूर्वक जनार्दन देव का समाराधन करना चाहिए जो कुछ भी किसी शुचि ब्राह्मण को ईशान देव का उद्देश्य करके अथवा विष्णु के लिये दान किया जाता है उसका अनन्त फल हुआ करता है ॥३३-३४॥ जो कोई जिस देवता की भी आराधना करना चाहता है तो उसका कर्तव्य है कि उस देवता के तोष करने के लिये विद्वान पुरुष को सर्व प्रथम ब्राह्मणो का पूजन करना चाहिए ॥३५॥

द्विजाना वपुरास्थाय नित्य तिष्ठन्ति देवताः ।
पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित् ॥३६
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्तत्फलमभीप्सुभिः ।
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः ॥३७
विभूतिकाम. सततं पूजयेद्वैपुरन्दरम् ।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुकः ॥३८
आरोग्यकामोऽथर विधेनुकामोहुताशनम् ।
कर्मणासिद्धिकामस्तुपूजयेद्व विनायकम् ॥३९

भोगकामस्तुशशिनबलकामःसमीरणम् ।
मुमुक्षु सर्वसंसारात्प्रयत्नेनार्च्चयेद्धरिम् ॥४०
यस्तु योगतथामोक्षमिन्छेत्तज्ज्ञानमेश्वरम् ।
सोऽर्चयेद्वै विरूपाक्षप्रयत्नेन महेश्वरम् ॥४१
यो वाञ्छतिमहायोगाञ्ज्ञानानिच महेश्वरम् ।
ते पूजयन्तिभूतेशकेशवञ्चापिभोगिन. ॥४२

द्विजो के शरीर मे देवगण समास्थित होकर नित्य ही स्थिर रहा करते हैं। ब्राह्मणो का लाभ न हो तो वहो पर प्रतिमा आदि मे भी देवो का पूजन किया जाता है ॥३६॥ इसलिए उस देवार्चन के फल की इच्छा रखने वालो को सब प्रकार के प्रयत्न से द्विजो मे ही नित्य विशेष रूप से देवो का पूजन करना चाहिए ॥३७॥ जो कोई पुरुष वैभव की कामना रखता हो उसे निरन्तर पुरन्दर का पूजन करना चाहिए। जो ब्रह्म कामुक ब्रह्म वर्चस के प्राप्त करने की कामना रखता है उसे ब्रह्माजी का आराधन करना उचित है ॥३८॥ जो अपने आरोग्य को स्थिर और सार्वदिक रखना चाहता है उसको भुवनभास्कर सूर्य देव का अर्चन करना चाहिए। धेनु की कामना वाले को अग्नि देव का आराधन करना चाहिए। जो अपने किए गये कर्मों की सिद्धि की कामना रखता है उसे भगवान् विनायक का पूजन करना चाहिए ॥३६॥ भोगो की कामना वाले को शशि—बल की कामना वाले को वायु—तथा इस संसार से सभी प्रकार से छुटकारा पाने की इच्छा वाले को प्रयत्न पूर्वक भगवान् श्रीहरि का ही समर्चन करना चाहिए ॥४०॥ जो योग तथा मोक्ष और उसका ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसे प्रयत्न के साथ विरुपाक्ष महेश्वर का ही अर्चन करना उचित है ॥४१॥ जो महायोगो को तथा ज्ञानो की प्राप्ति की इच्छा करता है उसको महेश्वर प्रभु का पूजन उचित होता है जो भूतेश हैं और भोगी लोग केशव प्रभु का पूजन किया करते हैं ॥४२॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यन्नद. ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टा दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥४३

भूमिदःसर्वमाप्नोतिदीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्र्याणिवेश्मानिरूप्यदोरूप्यमुत्तमम् ॥४४
वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुहः श्रिय पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥४५
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यद शाश्वतसौख्यब्रह्मदोब्रह्मसात्म्यताम् ॥४६
धान्यान्यपियथाशक्तिविप्रेषुप्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्यस्वर्गं समश्नुते ॥४७
गवां वा सम्प्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
इन्धनाना प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः ॥४८
फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविधानि च ।
प्रदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदा युक्तः स्वयम्भवेद् ॥४९

जब वारिद होता है अर्थात् जल का दान करता है तृप्ति को प्राप्ति करता है तो वह अक्षय सुख और अन्न को देने वाला होता है। तिलो का प्रदान करने वाला अभीष्ट प्रजा पाता है। दीप का दाता उत्तम चक्षु प्राप्त किया करता है ॥४३॥ भूमि का दाता सभी कुछ की प्राप्ति किया करता है। सुवर्ण का दाता दीर्घ आयु की प्राप्ति करता है। गृह का दान करने वाला उत्तम घरों की प्राप्ति किया करता है। रूप्य (चाँदी या रुपया) का दाता उत्तम रूप्य का लाभ किया करता है ॥४४॥ वस्त्रों का दाता पुरुष चन्द्र का सालोक्य पाता है और अश्व का दान करने वाला पुरुष अश्वि की सलोकता की प्राप्ति किया करता है। अनडुह (वृषभ) का दान करने वाला पुरुष परम पुष्टश्री की प्राप्ति करता है और गौ का दाता विष्टप (स्वर्ग) की प्राप्ति करता है ॥४५॥ यान और शय्या का दान करने वाला भार्या को पाता है और अभय का दान करने वाला पुरुष ऐश्वर्य का लाभ किया करता है। जो धान्य का दान करता है उसे शाश्वत सुख मिलता है तथा ब्रह्मज्ञान का दाता ब्रह्म की ही सात्म्यता का लाभ पाता है ॥४६॥ इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार धान्यों का दान

विप्रो को अवश्य ही प्रतिपादित करना ही चाहिए। जो वेदो के विद्वान् हो और विशेषता से सुसम्पन्न हो उन्ही विप्रो को दान देने से मनुष्य मर कर फिर स्वर्ग के वास को प्राप्त करता है ॥४७॥ गौओ के भली-भाँति दान देने से मनुष्य सभी पापो से मुक्त हो जाया करता है। ईधनो के दान से मनुष्य दीप्त अग्नि वाला हो जाता है ॥४८॥ फल-मूल शाक-विविध भाँति के भोज्य पदार्थ ब्राह्मणो को दान मे देने चाहिए—इसका फल यह होता है कि मनुष्य स्वय आनन्द से युक्त हुआ करता है ॥४६॥

औषध स्नेहमाहार रोगिणे रोगशान्तये।
ददानो रोगरहित सुखी दीर्घायुरेव च ॥५०
असिपत्रवन मार्ग क्षुरधारासमन्वितम्।
तीव्रतापञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदो नर ॥५१
यद्यदिष्टतम लोके यच्चापि दयित गृहे।
तत्तद्गुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥५२
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययो.।
सक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तम्भवति चाक्षयम् ॥५३
प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च।
दत्त्वाचाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च ॥५४
दानधर्मात्परोधर्मोभूतानानेह विद्यते।
तस्माद्विप्रायदातव्यश्रोत्रियाय द्विजातिभि ॥५५
स्वर्गायुर्भूतिकामेनतथापापोपशान्तये।
मुमुक्षुणाच दातव्यब्राह्मणेभ्यस्तथान्वहम् ॥५६

औषध—स्नेह (घृतादि) और आहार रोगी पुरुष को उसके रोग की शान्ति के लिये दान करने वाला पुरुष स्वय रोग से रहित—सुखी और दीर्घ आयु वाला होता है ॥५०॥ छाता और जूतो का प्रदान करने वाला पुरुष क्षुर के समान महा कठिन एव कष्ट प्रद असिपत्र वन नामक नरक के मार्ग को तथा तीव्रतम ताप को तर जाया करता है ॥५१॥ जो-जो भी इस लोक मे इष्टतम हो और जो भी गृह मे परम प्रिय पदार्थ हो उसके अक्षय होने की इच्छा से वही-वही किसी गुणशाली पुरुष को

दान में देने ही चाहिए ॥५२॥ अयन में—विषुव में और चन्द्र सूर्य के ग्रहण की वेला म तथा सक्रान्ति आदि कालो म जो भी कुछ दान किया जाता है वह अक्षय होता है ॥५३॥ प्रयाग आदि तीर्थों में तथा पुण्यमय आयतनो मे पवित्र नदी और पुण्य पूर्ण वनो म जो भी कुछ दान किया जाता है वही क्षय से रहित हो जाया करता है ॥५४॥ इस ससार मे दान के धर्म का बडा अधिक महत्त्व है और इससे बडा कोई भी अन्य धर्म नही है। इसीलिये द्विजातियो के द्वारा श्रोत्रिय विप्र को दान अवश्य ही देना चाहिए ॥५५॥ स्वर्ग—आयु —वैभव के प्राप्त करने की कामना वाले तथा पापो की उपशान्ति के लिये मुमुक्षुओ को प्रतिदिन ही ब्राह्मणो को दान अवश्य ही करना चाहिए ॥५६॥

दीयमानन्तु या मोहाद्गोविप्राग्निसुरेषु च ।
निवारयतिपापात्मातिर्यग्योनिव्रजेत्तु स. ॥५७
यस्तु द्रव्यार्ज्जनं कृत्वा नार्च्चयेद् ब्राह्मणान् सुरान् ।
सर्वस्वमपहृत्यैनं राष्ट्राद्विप्रतिवासयेत् ॥५८
यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्य न प्रयच्छति ।
म्रियमाणेषुसत्त्वेषु ब्राह्मण' स तु गर्हित ॥५९
तस्मान्नप्रतिगृह्णीयान्नवै देयञ्चतस्यहि ।
अङ्कयित्वास्वकाद्राष्ट्रात्त राजाविप्रवासयेत् ॥६०
यस्तु सद्भ्यो ददातीह न द्रव्यधर्मसाधनम् ।
सपूर्वाभ्यधिकःपापीनरकेपच्यतेनरः ॥६१
स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः ।
सत्यसयमसयुक्तास्तेभ्यो दद्याद् द्विजोत्तम. ॥६२
सुभुक्तमपिविद्वासधार्मिकम्भोजयेद् द्विजम् ।
न तु मूर्खमवृत्तस्थदशरात्रमुपोषितम् ॥६३

जो कोई गौ—विप्र—अग्नि और सुरो को दीयमान दान का मोह के वश मे होकर निवारण किया करता है वह पापात्मा तिर्यक् योनि मे जाया करता है ॥५७॥ जो पुरुष धन की खूब खासी आमदनी करके भी ब्राह्मणो और देवो का समर्चन नही किया करता है वह सर्वस्व का

अपहरण करा कर राष्ट्र से विप्रति वासित हुआ करता है ।।५८।। जो दुर्भिक्ष के समय में भी अन्न आदि का दान नहीं किया करता है और जब जीव म्रियमाण होते हैं तो वह ब्राह्मण अत्यन्त गर्हित हो जाता है ।।५६।। इस प्रकार के ब्राह्मण से प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिए और उसको कुछ दान भी नहीं देना चाहिए। राजा का कर्तव्य है कि उसे पकड़कर अपने देश से बाहिर निकाल देवें ।।६०।। जो पुरुष यहाँ पर सत्पुरुषों को दान नहीं दिया करता है उसका द्रव्य धर्म का साधन नहीं होता है वह पहिले से भी अत्यधिक पापी है और वह मनुष्य नरक में जाकर अनेक यातनाओं को सहन किया करता है ।।६१।। जो विप्र स्वाध्याय वाले हैं तथा विद्या से सम्पन्न हैं और इन्द्रियों को जीतने वाले हैं तथा सत्य और संयम से समन्वित हैं, वे द्विजश्रेष्ठ। ऐसे ही ब्राह्मणों को सर्वदा दान देना चाहिए ।।६२।। भली भाँति मुक्त भी हो किन्तु विद्वान् और धार्मिक हो तो उसी ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए अर्थात् विद्वान् और धार्मिक चाहे भूखा भी न हो तो भी भोजन उसको ही कराना कल्याण कर होता है और जो मूर्ख तथा असत् चरित्र वाला हो वह चाहे दश दिन का भूखा भी क्यों न हो उसे कभी भी दान का धान्य नहीं देना चाहिए क्योंकि मूर्ख और चरित्र हीन को देने से पुण्य तो होता ही नहीं प्रत्युत पाप ही हुआ करता है ।।६३।।

सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति ।
स तेन कर्मणापापी दहत्यासप्तमकुलम् ।।६४
यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम् ।
तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सन्निधिम् ।।६५
योऽर्चितम्प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेववा ।
तावुभौगच्छतः स्वर्गं नरकन्तु विपर्यये ।।६६
न वार्यपि प्रयच्छेतनास्तिकेहैतुकेऽपि च ।
पाषण्डेषुच सर्वेषुनाऽवेदविदि धर्मवित् ।।६७
अपूपञ्च हिरण्यञ्च गामश्वं पृथिवीतिलान् ।
अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मी भवति काष्ठवत् ।।६८

द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत्प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः ।
अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात्कथञ्चन ॥६९
वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेत् नेहेतधनविस्तरम् ।
धनलोभेप्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेवहीयते ॥७०

समीप में सस्थित श्रोत्रिय विप्र को अतिक्रान्त करके जो दूर स्थित अन्य को दान दिया करता है वह उस कर्म से पापी होता है और सात कुलों तक को दग्ध कर दिया करता है ॥६४॥ यदि कोई भी विप्र स्वयं शील और विद्या आदि के द्वारा अत्यधिक हो तो सन्निधि में स्थित रहने वाले का भी अतिक्रमण करके प्रयत्न पूर्वक उस अधिक योग्य को ही दान देना चाहिए ॥६५॥ जो सम्मर्चित पुरुष से प्रतिग्रह लेता है और समर्चित पुरुष को ही दान देता है वे दोनों ही स्वर्ग को गमन किया करते हैं और इनके विपरीत करने वाले नरक में जाकर पड़ा करते हैं ॥६६॥ जो धर्म का वेत्ता पुरुष है उसको नास्तिक और हैतुक का जल भी नहीं देना चाहिए। जो भी पापण्ड करने वाले तथा वेदों के ज्ञाता न हों उन सब को ही कुछ भी दान नहीं देना चाहिए ॥६७॥ अपूप-सुवर्ण—गौ-अश्व—पृथिवी—तिल—इनको अविद्वान् प्रतिग्रह के रूप में ग्रहण करके एक काष्ठ की भाँति ही भस्मीभूत हो जाता करता है ॥६८॥ द्विजोत्तम को प्रशस्त द्विजातियों के लिये धन की इच्छा करनी चाहिए। जाति मात्रों से भी ग्रहण करे किन्तु शूद्र से किसी प्रकार से भी ग्रहण नहीं करे ॥६९॥ वृत्ति के सङ्कोच की इच्छा करे और धन के विस्तार की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए। धन के लोभ में प्रसक्त होने वाला द्विज ब्राह्मणत्व से ही प्रव हीन हो जाया करता है ॥७०॥

वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः ।
न तां गतिमवाप्नोति सङ्कोचाद्यामवाप्नुयात् ॥७१
प्रतिग्रहरुचिर्न स्यात्यात्रार्थन्तु धनं हरेत् ।
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥७२
यस्तुस्याद्याचकोनित्यंनसस्वर्गस्यभाजनम् ।
उद्वेजयतिभूतानियथाचोरस्तथैवसः ॥७३

गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन् अर्चिष्यन्देवतातिथीन्।
सर्वत. प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥७४
एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः।
वर्त्तमानः संयतात्मायातितत्परमम्पदम् ॥७५
पुत्रेनिधायवासर्वंगत्वाऽरण्यन्तु तत्त्ववित्।
एकाकीविचरेन्नित्यमुदासीनःसमाहितः ॥७६
एष वः कथितो धर्मो गृहस्थाना द्विजोत्तमाः।
ज्ञात्वा तु तिष्ठेन्नियतं तथाऽनुष्ठापयेद् द्विजान् ॥७७
इति देवमनादिमेकमीशं गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम्।
समतीत्य स सर्वभूतयोनिं प्रकृतिं वै स परम याति जन्म ॥७८

समस्त वेदों का अध्ययन करके और सभी यज्ञों का यजन करके उस गति को द्विज प्राप्त नहीं होता है जिसको सङ्कोच से प्राप्त कर लिया करता है। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण को कम से कम आवश्यकतानुसार ही धन एवं परिग्रह का विस्तार करने में ही धर्म का सम्पादन होता है ॥७१॥ ब्राह्मण को कभी भी प्रतिग्रह लेने की अभिरुचि नहीं रखनी चाहिए। केवल अपने जीवन की यात्रा का निर्वाह करने के लिये ही धन का अर्जन या प्राप्ति करना चाहिए। स्थिति के अर्थ से अधिक ग्रहण करने वाला ब्राह्मण अधोगति को ही प्राप्त हुआ करता है ॥७२॥ जो नित्य ही याचना करने का अभ्यासी होता है वह स्वर्ग का पात्र तो कदापि हो ही नहीं सकता है। ऐसा याचना वृत्ति वाला ब्राह्मण सर्वदा जीवों को उद्वेग ही करता रहा करता है जिस तरह चोर होता है वैसा ही वह भी होता है ॥७३॥ गुरु और भृत्यों की उज्जिहीर्षा करते हुए तथा देवता और अतिथियों का अर्चन करते हुए सभी ओर से प्रतिग्रह ग्रहण करे तो भी स्वयं तृप्त न होवे ॥७४॥ इस प्रकार से युक्तात्मा गृहस्थ देवगण और अतिथियों का पूजन करने वाला वर्त्तमान होते हुए संयत आत्मा वाला परम पद को प्राप्त किया करता है ॥७५॥ तत्त्वों के वेत्ता का कर्त्तव्य है कि अपने पुत्र को समस्त कार्य भार सुपुर्द करके अरण्य में चला जावे और वहाँ पर अकेला ही परम उदासीन होकर तथा

समाहित होकर नित्य ही विचरण करना चाहिए ॥७६॥ हे द्विजोत्तमगण ! यह गृहस्थों का परमोत्तम धर्म का हमने वर्णन कर दिया है। इसको जान कर नियत रूप से समवस्थित होवे और द्विजों से इसका अनुष्ठान भी कराना चाहिए ॥७७॥ इस विधि से ही अनादि एक देव को निरन्तर गृह धर्म के द्वारा समर्चित करना चाहिए। ऐसा करने वाला वह ब्राह्मण समस्त भूत योनिओं का समतिक्रमण करके प्रकृति को प्राप्त होता है और फिर वह दूसरा जन्म कभी भी ग्रहण नहीं किया करता है ॥७८॥

२७—वानप्रस्थाश्रमधर्मवर्णन

एवं गृहाश्रमेस्थित्वाद्वितीयम्भागमायुषः ।
वानप्रस्थाश्रमगच्छेत्सदारः साग्निरेववा ॥१
निक्षिप्यभार्य्यांपुत्रेषु गच्छेद्वनमथापिवा ।
दृष्ट्वा परस्यचापत्य जर्ज्जरीकृतविग्रहः ॥२
शुक्लपक्षस्यपूर्वाह्णे प्रशस्तेचोत्तरायणे ।
गत्वारण्यं नियमवास्तपः कुर्यात्समाहितः ॥३
फलमूलानिपूतानि नित्यमाहारमाहरेत् ।
यताहारोभवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवता ॥४
पूजयित्वातिथीन्नित्य स्नात्वा चाभ्यर्चयेत्सुरान् ।
गृहादादाय चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः ॥५
जटा वै विभृयान्नित्य नखरोमाणि नोत्सृजेत् ।
स्वाध्याय सर्वदा कुर्यान्नियच्छेद्वाचमन्यत ॥६
अग्निहोत्रञ्चजुहुयात्पञ्चयज्ञान्समाचरेत् ।
मुन्यन्नैर्विविधैर्वन्यैः शाकमूलफलेन च ॥७

महामहिम श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास महर्षि ने कहा—इस उपर्युक्त प्रकार से गार्हस्थ्य आश्रम में स्थित रहकर आयु के दूसरे भाग में वानप्रस्थाश्रम में गमन करना चाहिए। अथवा अपनी दारा और अग्नि के साथ ही वानप्रस्थ में प्रवेश करे ॥१॥ अथवा अपनी भार्या को पुत्रों के सुपुर्द कर वन में गमन करना चाहिए और जब अपने पुत्र के भी सन्तान

उत्पन्न हो जावे तो उसे देखकर ही अजरी भूत अपने शरीर के होने पर मास के शुक्ल पक्ष मे पूर्वाह्न के समय म तथा परम प्रशस्त उत्तरायण सूर्य के होने पर वन मे जाकर नियमों के ग्रहण करने वाला होवे और परम समाहित होकर वहाँ पर तपश्चर्या करनी चाहिए ।।२ ३।। परम पवित्र फलों और मूलो को नित्य ही अपने आहार के लिय समाहरण करना चाहिए । उससे सवन आहार वाला ह व तथा देवता और पितृगण का पूजन करना चाहिए ।।४।। नित्य ही अतिथियों का पूजन करके स्नान करके सुरो का प्रवन करना चाहिए । गृह से जाकर समाहित होते हुए आठ ग्रास का प्रशन करना चाहिए ।।५।। नित्य जटाओं को धारण करे तथा नख और रोमो का उत्कृतन नही करे । सवदा स्वाध्याय करे और वाणी का प्रन्थ मे नि मय स्प से देव ।।६।। अग्नि होत्र का हवन करे और पाँच महायज्ञो का सम्पादन करना चाहिए । य पञ्च यज्ञ मुन्यन्न अनेक वन्य अन्न-शाक-मूल और फल से ही करे ।।७।।

चीरवासाभवेन्नित्य स्नात्तिषवणशुचि ।
सवभूतानुकम्पीस्यात्प्रतिग्रहविवर्जित ।।८
स दर्शपौर्णमासेन यजेतनियतद्विज ।
ऋक्षेष्वाग्रयणेचैवचातुर्मास्यानि चाहरेत् ।।९
उत्तरायणञ्चक्रमशो दक्षस्यायनमेव च ।
वासन्तं शारदैर्मेध्यमुन्यन्न स्वयमाहृतं ।।१०
पुरोडाशाश्चरूञ्चैव द्विविध निवपेत्पृथक् ।
देवताभ्यश्चतद्धुत्वावन्य मेध्यतर हवि ।।११
शेष समुपभुञ्जीत लवणञ्च स्वयकृतम् ।
वज्जयेन्मधुमासानि भौमानि कवकानिच ।।१२
भूस्तृण शिशुकञ्चैव श्लेष्मातकफलानि च ।
नफालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपिवेनचित् ।।१३
न ग्रामजातान्यार्त्तोऽपिपुष्पाणिचफलानि च ।
श्रावणेनैवविधिनावह्निपरिचरेत्सदा ।।१४

नित्य ही चीरों के वसन धारण करे। तीनों वार स्नान और सन्ध्योपासन करे तथा शुचि रहे। समस्त प्राणियों पर अनुकम्पा की भावना बनाये रक्खे और सभी प्रकार के प्रतिग्रह से वर्जित रहना चाहिए ॥८॥ उस द्विज को दर्श और पौर्ण मास याग के द्वारा यजन करना चाहिए। नक्षत्रों में और आग्रयण में चातुर्मास्य व्रत की आहुत करे ॥९॥ क्रम से उत्तरायण और दक्षिणायन—वासन्त और शारद पवित्र मुन्यन्नों के द्वारा जो स्वय ही समाहृत किये गये हों पुरोडाश और चरु दो प्रकार के पृथक् निर्वपन करे। उस मेध्यतर वन्य हवि का देवों के लिये हवन करे ॥१०-११॥ उस हवन से जो शेष रहे उसे स्वय प्रदान करे और लवण भी स्वय कृत ही ग्रहण करे। मधु और मास तथा भूमि में समुत्पन्न कवच आदि को वर्जित रक्खे ॥१२॥ भूस्तृण—शिग्रुक—श्लेष्मातक फल—फालकृष्ट तथा किसी के द्वारा उत्सृष्ट—इनका कभी भी अशन नहीं करना चाहिए ॥१३॥ चाहे आर्त्तावस्था में ही क्यों न हो ग्राम में उत्पन्न पुष्प और फलों को अशन न करे। श्रावण में विधि से सदा वह्नि का परिचरण नहीं करे ॥१४॥

नद्रुह्येत्सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयोभवेत् ।
ननक्तंञ्चं वमश्नीयाद्रात्रौध्यानपरोभवेत् ॥१५
जितेन्द्रियोजितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः ।
ब्रह्मचारीभवेन्नित्यनपत्नीमपिसंश्रयेत् ॥१६
यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुन कामतश्चरेत् ।
तद्व्रत तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥१७
तत्र यो जायते गर्भो न सस्पृश्यो भवेद् द्विज ।
न च वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि ॥१८
अधःशयीत नियतं सावित्रीजपतत्परः ।
शरण्यः सर्वभूताना सम्विभागरमः सदा ॥१९
परिवादमृषावादनिद्रालस्यविवर्जयेत् ।
एकाग्निरनिकेत स्यात्प्रोक्षिताभूमिमाश्रयेत् ॥२०

मृगैः सह चरेद्वा यस्तैः सहैव च सविशेत् ।
शिलाया वा शर्कराया शयीत सुसमाहितः ॥२१

समस्त प्राणियों से कभी भी द्रोह नहीं करना चाहिए। सदा निर्द्वन्द्व और निर्भय होकर रहना चाहिए। रात्रि में कभी भी अशन न करे तथा रात्रि की वेला में ध्यान में तत्पर होकर ही रहना चाहिए ॥१५॥ इन्द्रियों को जीतने वाला—क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला और तत्त्वज्ञान का विशेष चिन्तन करने वाला ब्रह्मचर्य धारी नित्य रहना चाहिए। अपनी पत्नी का सथय ग्रहण न करे ॥१६॥ जो वन में जाकर भी पत्नी के साथ स्वच्छया मैथुन करता है उसका वह वानप्रस्थाश्रम का लुप्त हो जाता है और वह द्विज प्रायश्चित का अधिकारी बन जाया करता है ॥१७॥ वहाँ वन में जो गर्भ समुत्पन्न होता है वह द्विज सस्पर्श के योग्य नहीं होता है। इसका वेद में भी कोई अधिकार नहीं होता है और उसका जो भी वंश होगा उसमें भी यही होता है ॥१८॥ नित्य ही भूमि में शयन करे और सावित्री के जाप करने में परायण रहना चाहिए। समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाला तथा सम्विभाग में रति रखने वाला रहे ॥१९॥ परीवाद्—मिथ्यावाद—निद्रा और आलस्य का परिवर्जन कर देवे। एकाग्नि और बिना निकेत वाला होवे तथा सर्वदा प्रेक्षित भूमि का आश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥२०॥ वन में मृगों के साथ ही चरण करे तथा उनके साथ ही सवशन भी करना चाहिए। अथवा शिला पर या धूलि में ही शयन समाहित होकर करना चाहिए ॥२१॥

सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्मासमसञ्चयकोऽपि वा ।
षण्मासनिचयो वा स्यात् समानिचय एव च ॥२२
त्यजेदाश्वयुजे मासि सम्पन्नं पूर्वचिन्तितम् ।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥२३
दन्तोलूखलिको वा स्यात्कापोतीं वृत्तिमाश्रयेत् ।
अश्मकुट्टो भवेद्वाऽपि कालपक्वभुगेव च ॥२४
नक्तं चान्नं समश्नीयाद् दिवा चाहृत्य शक्तितः ।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वा चाष्टमकालिकः ॥२५

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्त्तयेत् ।
पक्षे पक्षे समश्नीयाद् द्विजाग्रयान् कथितान् सकृत् ॥२६
पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्त्तयेत्सदा ।
स्वाभाविकैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥२७
भूमौ वा परिवर्त्तेततिष्ठेद्वाप्रपदैर्दिनम् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेन्न क्वचिद्धैर्यमुत्सृजेत् ॥२८

तुरन्त प्रक्षालक होवे अथवा साम सञ्चयक होवे अथवा षण्मास निश्चय वाला होवे तथा समानिचय वाला होवे ॥२२॥ आश्वयुज मास में समस्त पूर्व चिन्तित का त्याग कर देना चाहिए। जीर्ण वसन और शाक मूल फल सब का त्याग कर देना चाहिए ॥२३॥ दन्त रूपी उलूखल से युक्त होवे तथा कपोती की वृत्ति का समाचरण करे। अश्मकुट्ट होवे और काल में पके हुए फलों का उपभोग करने वाला रहे ॥२४॥ रात्रि की वेला में अन्न का अशन नहीं करे। दिन में शक्ति से समाहरण करके ही अशन करना चाहिए। चौथे काल का ही अथवा आठवें काल का होवे। चान्द्रायण व्रत के ही विधान से शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष में वर्त्तन करना चाहिए। पक्ष-पक्ष में अशन करे वह भी एक बार श्रेष्ठ द्विजों को कथित करके ही करना चाहिए ॥२५-२६॥ पुष्प मूल और फलों के द्वारा ही केवल सदा वर्तन करना चाहिए। वैखानस मत में स्थित रहने वालों को फलादि भी जो स्वयं क्षीण हों अथवा स्वाभाविक हों उनसे ही अपना वर्त्तन करना चाहिए ॥२७॥ भूमि में ही परिवर्त्तन करे अथवा दिन में प्रपदों से स्थित रहे। स्थान और आसन से विहार न करे और किसी समय में भी धैर्य का उत्सर्ग नहीं करना चाहिए ॥२८॥

ग्रीष्मेपञ्चतपास्तद्वद्वर्षास्वभ्रावकाशकः ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्तेक्रमशो वर्द्धयस्तपः ॥२९
उपस्पृश्य त्रिषवणं पितृदेवांश्च तर्पयेत् ।
एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन्वा पिबेत्तदा ॥३०

पञ्चाग्निधूमपो वा स्यादुष्मपः सोमपोऽथवा ।
पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च गोमयम् ॥३१
शीर्णपर्णाशिनो वा स्यात्कृच्छैर्वा वर्त्तयेत्सदा ।
योनाभ्यासरतश्चैव रुद्राध्यायी भवेत्सदा ॥३२
अथर्वशिरसोऽध्येता वेदान्ताभ्यासतत्परः।
यमान् सेवेतसततंनियमाश्चाप्यतन्द्रित. ॥३३
कृष्णाजिनं सोत्तरीयं शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।
अथ चाग्नीन् समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्परः ॥३४
अनग्निरनिकेत. स्यान्मुनिर्मोक्षपरो भवेत् ।
तापसेष्वेव विप्रेपयात्रिकभैक्ष्यमाहरेत् ॥३५

ग्रीष्म ऋतु में पचाग्नि तपने की तपस्या करे तथा वर्षा ऋतु में अभ्रों में ही अवकाश ग्रहण करके रहे तथा हेमन्त ऋतु में गीले वस्त्रधारी होकर रहे । इस तरह क्रम से अपने तपस्या का सदा वर्धन करे ॥२६॥ तीनों कालों मे उपस्पर्शन करके पितृगण और देवों का तर्पण करना चाहिए । एक ही पैर से स्थित रहे अथवा उस समय मे मरीचियों का पान करना चाहिए ॥३०॥ पञ्चाग्नि को धूम्र का पान करने वाला रहे—उष्मप अथवा सोमप रहे । शुक्ल पक्ष मे पय का पान करे तथा कृष्ण पक्ष मे गोमय का पान करना चाहिए ॥३१॥ शीर्ण होकर गिरे हुए पत्तों का अशन करने वाला होवे अथवा सदा कृच्छ्र व्रतों से ही वर्त्तन करना चाहिए । योग के अभ्यास मे रति रखने वाला तथा रुद्राध्यायी सदा होना चाहिए ॥३२॥ अथर्व वेद के शिर का अध्ययन करे तथा वेदान्त शास्त्र के अभ्यास मे परायण रहना चाहिए । जितने भी शास्त्रोक्त यम हैं उनका निरन्तर सेवन करना चाहिए तथा तन्द्रा रहित होकर नियमों का भी पूर्ण परिपालन करना चाहिए ॥३३॥ कृष्ण मृगचर्म को ही अपना उत्तरीय वस्त्र बनावे तथा शुक्ल यज्ञोपवीत को धारण करने वाला होवे । इसके *अनन्तर अग्नियों का समारोपण कर अपनी आत्मा में ही* ध्यान में तत्पर रहना चाहिए ॥३४॥ अग्नि से रहित और निकेत से

हीन होवे तथा मुनिभक्षि पर रहना चाहिए। तापस विप्रों से ही यात्रिक भिक्षा का समाहरण करना चाहिए ॥३५॥

गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु।
ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वनेवसन् ३६
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिनाशकलेन वा।
विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत् ॥३७
विद्याविशेषान् सावित्रीं रुद्राध्यायं तथैव च।
महाप्रस्थानिकंवासौ कुर्यादनशनन्तु वा।
अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थित ३८
ये न सम्यगिममाश्रम शिव संश्रयन्त्यशिवपुञ्जनाशनम्।
ते विशन्ति परमेश्वर पद यान्ति यत्र गतमस्य संस्थिते ॥३९

अन्य गृह मेधियों में तथा वन में वास करने वाले द्विजों में—ग्राम से समाहृत करके वन में वास करते हुए केवल आठ ही ग्रासों का अशन करना चाहिए ॥३६॥ पुट के द्वारा प्रतिग्रहण कर अथवा पाणि से शकल के द्वारा ग्रहण करना चाहिए। अपनी आत्मा की संसिद्धि के लिये अनेक उपनिषदों का जाप करे ॥३७॥ विद्या विशेषों को—सावित्री को तथा रुद्राध्याय को आत्म सिद्धि के लिये जपना चाहिए। इसको महा प्रस्थानिक अथवा अनशन करना चाहिए। अग्नि में प्रवेश अथवा अन्य ब्रह्मार्पण विधि में स्थित होता हुआ करे ॥३८॥ जो इस परम शिव आश्रम का भली-भाँति संश्रय किया करते हैं वे अशिव पुञ्ज का नाश कर दिया करते हैं। ऐसे लोग फिर ईश्वरीय परमपद में ही प्रवेश किया करते हैं जहाँ पर संस्थिति का गमन होता है ॥३९॥

---

२८ यतिधर्मवर्णन

एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषोभागं सन्न्यासेन नयेत्क्रमात् ॥१
अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत्।
योगाभ्यासरत. शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ॥२

यदा मनसि सञ्जातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु ।
तदा सन्यासमिच्छन्ति पतितः स्याद्विपर्यये ॥३
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा पुनः ।
दान्तः पक्वकषायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत् ॥४
ज्ञानसन्न्यासिनः केचिद्वेदसन्न्यासिनः परे ।
कर्मसन्न्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीर्त्तिताः ॥५
यः सर्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः ।
प्रोच्यते ज्ञानसन्न्यासी स्वात्मन्येव व्यवस्थितः ॥६
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
प्रोच्यते वेदसन्न्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः ॥७

महामहर्षि व्यास देव ने कहा—इस प्रकार से आयु के तीसरे भाग को वनाश्रम में स्थित रह कर फिर आयु के चतुर्थ भाग को सन्यास के द्वारा क्रम से वहन करना चाहिए ॥१॥ द्विज को चाहिए कि अग्नियों को आत्मा में ही सस्थापित करके प्रव्रजन कर जाना चाहिए अर्थात् सन्यासी हो जावे । सन्यास—आश्रम को ग्रहण कर सदा योग के अभ्यास में निरत—परम शान्त और ब्रह्मविद्या में तत्पर हो जाना चाहिए ॥२॥ जिस समय में प्राणी के मन में सभी वस्तुओं में तृष्णा का एकदम अभाव हो जावे तभी सन्यास को ग्रहण करने की इच्छा किया करते हैं । इसके विपर्यय से पतित हो जाया करता है ॥३॥ प्राजापत्य इष्टि को निरूपित करके अथवा आग्नेयी को करके परम दान्त और परिपक्व कषायो वाले इसको ब्रह्माश्रम का उपाश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥४॥ कुछ तो ज्ञान से ही सन्यासी होते हैं—कुछ वेद सन्यासी हुआ करते हैं—अन्य कर्म सन्यासी हैं—इस प्रकार से त्रिविध प्रकार के सन्यासी होते हैं । जिनको कीर्तित भी किया गया है ॥५॥ जो सभी के सङ्ग से निर्मुक्त होकर निर्द्वन्द्व और निर्भय रहता है और अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित रहा करता है उसे ही ज्ञान सन्यासी कहा जाता है ॥६॥ जो बिल्कुल निर्द्वन्द्व और परिग्रह रहित होकर नित्य वेदों का ही अभ्यास किया करता है वह मुमुक्षु

(मुक्ति की इच्छा रखने वाला) और इन्द्रियों को विजित करने वाला वेद सन्यासी कहा जाया करता है ॥७॥

यस्त्वग्नीनात्मसात्कृत्वाब्रह्मार्पणपरो द्विजः ।
सज्ञयःकर्मसन्न्यासीमहायज्ञपरायणः ॥८
त्रयाणामपि चैतेषां ज्ञानीत्वभ्यधिकोमतः ।
नतस्यविद्यतेकार्यंनलिङ्गंवाविपश्चितः ॥६
निर्ममो निर्भयः शान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
जीर्णकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ॥१०
ब्रह्मचारी मितग्रासी ग्रामात्त्वन्नंसमाहरेत् ।
अध्यात्ममतिरासीतनिरपेक्षोनिरामिषः ॥११
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ।
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ॥१२
कालमेव प्रतिक्षेत निदेशम्भृतको यथा ।
नाध्येतव्यं न वक्तव्य श्रोतव्य न कदाचन ॥१३
एवं ज्ञात्वापरोयोगीब्रह्मभूयायकल्पते ।
एकवासाथवा विद्वान्कौपीनाच्छादनस्तथा ॥१४

जो द्विज अग्नियों को आत्मसात् करके ब्रह्मार्पण में ही परायण हो उस महायज्ञ में ही तत्पर रहने वाले को कर्म—सन्यासी ही समझना चाहिए ॥८॥ ये तीन प्रकार के संन्यासियों के जो भेद बतलाये गये हैं इनमें ज्ञान सन्यासी ही सबसे अधिक माना गया है। उस विद्वान् का कोई भी कार्य विद्यमान नहीं होता है और न कोई लिङ्ग ही हुआ करता है ॥६॥ वह ममता से एक दम रहित—भय से शून्य—निर्द्वन्द्व और कुछ भी परिग्रह न रखने वाला—जीर्ण वस्त्र को एक कोपीन को धारण करने वाला होता है अथवा कभी ध्यान में तत्पर होकर नग्न भी हो जाता है ॥१०॥ ब्रह्मचर्य धारण करने वाला—बहुत ही कम ग्रास ग्रहण करने वाला ग्राम से अन्न का समाहरण करे और बिल्कुल निरपेक्ष और निरामिष होकर आत्मा में ही मति रखने वाला होना चाहिए ॥११॥ आत्मा की ही सहायता से इस लोक में सुख का चाहने वाला विचरण करे न तो

वह मरण का अभिनन्दन करे और न उसे जीवन का ही कोई अभिनन्दन करना चाहिए ॥१२॥ निदेश के भृतक की भाँति ही केवल काल की ही उसे प्रतीक्षा करनी चाहिए। न तो कुछ भी अध्ययन करे और बोले तथा कदाचित् भी कुछ श्रवण भी नहीं करना चाहिए ॥१३॥ इस प्रकार से ही जानकर ही पर योगी ब्रह्म भूत अर्थात् ब्रह्म के ही स्वरूप वाला कल्पित हुआ करता है। उस विद्वान् को केवल एक ही वस्त्र का धारण करने वाला या कौपीन के समाच्छादन करने वाला होना चाहिए ॥१४॥

मुण्डीशिखीवाथभवेत्त्रिदण्डीनिष्परिग्रहः ।
काषायवासाःसततंध्यानयोगपरायणः ॥१५
ग्रामान्तेवृक्षमूले वा वसेद्देवालयेऽपिवा ।
समः शत्रौचमित्रेचतथामानापमानयोः ॥१६
भैक्ष्येण वर्त्तयन्नित्यन्नैकान्नादी भवेत्क्वचित् ।
यस्तु मोहेन वान्यस्मादेकान्नादी भवेद्यतिः ॥१७
न तस्यनिष्कृतिःकाचिद्धर्मशास्त्रेषुकथ्यते ।
रागद्वेषविमुक्तात्मासमलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥१८
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनीस्यात्सर्वनिस्पृहः ।
दृष्टिपूतन्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलंपिबेत् ।
शास्त्रपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत् ॥१९
नैकत्र निवसेद्देशेवर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः ।
स्नानशौचरतोनित्यंकमण्डलुकरःशुचिः ॥२०
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं वनवासरतो भवेत् ।
मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥२१

केशों को एक दम मुण्डन कराकर रहने वाला अथवा शिखाधारी परिग्रह से पूर्णतया रहित त्रिदण्डी को होना चाहिए। उसे निरन्तर काषाय रंग के वस्त्रों का धारण करने वाला और ध्यान योग में परायण रहना चाहिए ॥ १५ ॥ किसी वृक्ष के मूल में अथवा किसी देवालय में उसे निवास करना चाहिए। शत्रु और मित्रों में समान भाव रखने वाला तथा मान और अपमान को भी समान ही समझने वाला होना चाहिए

॥ १६ ॥ नित्य ही भिक्षा करके उसे अपना वर्तन करना चाहिए। एक ही अन्न का प्राशन करने वाला कभी नहीं होना चाहिए। यदि मोह से या किसी अन्य कारण से यति एक ही अन्न का प्राशन करके रहने वाले होवे तो उसका शास्त्र में कहीं पर भी कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है धर्म शास्त्रों में अन्य पापों का प्रायश्चित्त होता है किन्तु यह ऐसा महा पाप है इसकी धर्मशास्त्र में कोई भी निष्कृति ही नहीं बतलाई है। सर्वदा दृष्टि से आगे भली भाँति देखकर ही कदम रखना चाहिए और सदा वस्त्र से छान कर जल का पान करे यति को राग द्वेष से बिल्कुल विमुक्त आत्मा वाला और मिट्टी के ढेले तथा सुवर्ण के टुकड़े को एक समान ही समझना चाहिए। सभी प्राणियों की हिंसा से निवृत्त होवे—मौन धारण करे और सभी प्रकार की स्पृहा से रहित रहना चाहिए। सर्वदा शास्त्र से पवित्र हुई वाणी को बोले और मन से पवित्र जिस को समझले उसी कर्म को करना चाहिए ॥ १७-१९ ॥ वर्षा ऋतु के सिवाय भिक्षुक को किसी भी एक ही स्थान में निवास नहीं करना चाहिए। उसे नित्य ही स्नान के द्वारा शौच करने में रति वाला—शुचि तथा एक कमण्डलु हाथ में धारण करने वाला रहना चाहिए ॥ २० ॥ नित्य ही ब्रह्मचर्य में रत और वन में निवास करने में ही रति रखने वाला होना चाहिए। मोक्ष दिलाने वाले शास्त्रों में निरत—ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर ही रहना चाहिए ॥ २१ ॥

दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः।
आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षमवाप्नुयात् ॥२२
अभ्यसेत्सततं वेदं प्रणवाख्यं सनातनम्।
स्नात्वाचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु ॥२३
यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः।
धौतकाषायवसनो भस्मच्छन्नतनूरुहः ॥२४
अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव वा।
आध्यात्मिकञ्च सततं वेदान्ताभिहितञ्च यत् ॥२५

पुत्रेषु चाथ निवसन् ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः ।
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम् ॥२६
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तपः परम् ।
क्षमा दया च सन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः ॥२७
वेदान्तज्ञाननिष्ठो वा पञ्चयज्ञान् समाहितः ।
ज्ञानध्यानसमायुक्तो भिक्षार्थं नैव तेन हि ॥२८

एक सन्यासी को दम्भ और अहङ्कार से नित्य ही दूर रहना चाहिए तथा किसी की निन्दा और पिशुनिता से भी रहित रहना उचित है। जो यति आत्मा के ज्ञान रूपी गुण से युक्त होता है वही मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ॥ २२ ॥ निरन्तर ही सन्यासी को प्रणव नाम वाले सनातन वेद का अभ्यास करते रहना चाहिए। स्नान करके—आचमन करके विधि पूर्वक परम शुचि होकर देवालय आदि मे अभ्यास करना चाहिए ॥ २३ ॥ यज्ञोपवीत धारी—शान्त आत्मा वाला—हाथ मे कुशा रखने वाला—अति समाहित—धुला हुआ काषाय वस्त्र धारण करने वाला—भस्म से समाच्छन्न तनूरहों वाला अधियज्ञ ब्रह्म का जाप करे—आधिदैविक और आध्यात्मिक तथा जो भी वेदान्त मे कहा गया है उसका निरन्तर जाप करता रहना चाहिए ॥ २४-२५ ॥ अपने पुत्रो के साथ भी उन्हीं मे निवास करने वाले यति—मुनि और ब्रह्मचारी को नित्य ही वदों का ही अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार से रहने वाला ही यति परम गति की प्राप्ति किया करता है ॥ २६ ॥ अहिंसा—सत्य-ब्रह्मचर्य-परम तपश्चर्या—क्षमा—दया और सन्तोष ये व्रत यति के विशेष रूप से हुआ करते हैं ॥ २७ ॥ वेदान्त मे निर्दिष्ट ज्ञान मे निष्ठा रखने वाला तथा पूज्य यज्ञो को परम समाहित होकर करने वाला—ज्ञान और ध्यान से समायुक्त रहे और भिक्षा के लिये उसे नहीं करने चाहिए ॥ २८ ॥

होममन्त्राञ्जपेन्नित्यं काले काले समाहितः ।
स्वाध्यायञ्चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत् ॥२९
ततो ध्यायीत तं देवमेकान्ते परमेश्वरम् ।
एकान्ते वर्जयेन्नित्यं कामक्रोधपरिग्रहम् ॥३०

एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान् ।
कमण्डलुकरो विद्वान् त्रिदण्डी याति तत्परम् ॥३१

नित्य ही होम के मन्त्रों का जाप करे और समय समय पर समाहित होकर ही प्रतिदिन स्वाध्याय भी करना चाहिए। दोनो सन्ध्याओं के समय मे नियत रूप से सावित्री का जाप करना चाहिए ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् परम शान्त नितान्त एकान्त स्थान मे उस देव परमात्मा का बैठकर ध्यान करना चाहिए। एकान्त मे स्थित होकर नित्य ही काम—क्रोध और परिग्रह को वर्जित कर देना चाहिए ॥ ३० ॥ एक वस्त्र धारी अथवा दो वस्त्रो को धारण करने वाला—शिखाधारी और यज्ञो पवीत धारण करने वाला तथा एक कमण्डलु कर मे रखने वाला त्रिदण्डी स्वामी उस पर का प्राप्त किया करता है ॥ ३१ ॥

२९—यतिधर्मवर्णन (२)

एव स्वाश्रमनिष्ठानायतीनानियतात्मनाम् ।
भैक्ष्येण वर्त्तनप्रोक्त फलमूलैरथापिवा ॥१
एककाल चरेद्भैक्ष न प्रसज्येत विस्तरे ।
भैक्ष्यप्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥२
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षमलाभे तु पुनश्चरेत् ।
प्रक्षाल्य पात्रे भुञ्जीत अद्भिः प्रक्षालयेत्पुन ॥३
अथवाऽन्यदुपादायपात्रे भुञ्जीतनित्यश ।
भुक्त्वाततत्सम्मृजेत्पात्र यात्रामात्रमलोलुपः ॥४
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवर्जने ।
वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षानित्य यतिश्चरेत् ॥५
गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालम्भिक्षुरधोमुख. ।
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमश्नीयाद्वाग्यत शुचिः ॥६
प्रक्षाल्य पाणीपादौ च समाचम्य यथाविधि ।
आदित्ये दर्शयित्वाऽन्न भुञ्जीत प्राङ्मुखः शुचिः ॥

महर्षि व्यासजी ने कहा—इस तरह से अपने आश्रम में नित्य नियत आत्मा वाले यतियों का भिक्षा के द्वारा ही तथा फलों और मूलों से वर्त्तन बतलाया गया है ॥ १ ॥ केवल एक ही समय में यति को भिक्षा करनी चाहिए और इसके अधिक विस्तार करने में कभी प्रसक्त नहीं होना चाहिए। जो यति दूर तक भिक्षाटन करने में प्रसक्त होता है वह विषयों में भी सज्जित हो जाया करता है ॥ २ ॥ केवल सात ही घरों में भिक्षाटन करे। यदि वहाँ पर लाभ न हो तो पुनः समाचरण करे। पात्र में प्रक्षालन करके ही अशन करे और फिर भी जल से प्रक्षालन कर देना चाहिए ॥ ३ ॥ अथवा कोई अन्य का उपादान करके ही नित्य भोजन करना चाहिए। भोजन करके ही उस पात्र का सम्मार्जन कर देवे। यात्रा मात्र में अलोलुप रहना चाहिए ॥ ४ ॥ जो घर धूम से रहित हो—जिसमें मुसल की ध्वनि न आरही हो—जिस घर में आग के अङ्गार न होवें और जिसमें लोग खा न चुके हों—शराव सम्पात के होने पर यति को नित्य ही भिक्षा का समाचरण करना चाहिए ॥ ५ ॥ भिक्षु को जब भिक्षा ग्रहण करने को जावे तो उसके द्वार पर नीचे की ओर मुख करके जितनी देर में एक गौ का दोहन हो उतने ही समय तक ठहरना चाहिए। भिक्षा—यह कहकर एक बार चुप हो जावे। वाग्यत और शुचि होकर ही उसे अशन करना चाहिए ॥ ६ ॥ हाथ—पैरों को धोकर यथाविधि भली भाँति आचमन करके पूर्व की ओर मुख करके शुचि होते हुए सूर्य को दिखा कर ही भोजन करना चाहिए ॥ ७ ॥

हुत्वाप्राणाहुती. पञ्च ग्रासानष्टौ समाहित ।
आचम्यदेवब्रह्माणं ध्यायीतपरमेश्वरम् ॥८
अलाबुं दारुपात्रञ्च मृण्मयं वैणवंततः ।
चत्वार्येतानि पात्राणि मनुराह प्रजापतिः ॥९
प्राग्रात्रे पररात्रे च मध्यरात्रे तथैव च ।
सन्ध्यास्वग्निविशेषेणचिन्तयेन्नित्यमीश्वरम् ॥१०
कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसम्भवम् ।
आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसः स्थितम् ॥११

सर्वस्याधारभूतानामानन्दं ज्योतिरव्ययम् ।
प्रधानपुरुषातीतमाकाशकुहरं शिवम् ॥१२
तदन्तःसर्वभावानामीश्वरब्रह्मरूपिणम् ।
ध्यायेदनादिमध्यान्तमानन्दादिगुणालयम् ॥१३
महान्तं पुरुषं ब्रह्म ब्रह्माणं सत्यमव्ययम्
तरुणादित्यसङ्काशं महेशं विश्वरूपिणम् ॥१४
ओङ्कारेणाथ चात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि ।
आकाशे देवमीशानं ध्यायीताऽऽकाशमध्यगम् ॥१५

पाँच प्राणों को आहूति देकर फिर परम समाहित होकर आठ ग्रास ग्रहण करे। फिर आचमन करके देव ब्रह्मा परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए ॥ ८ ॥ प्रजापति महर्षि मनु महाराज ने यति के लिये चार ही पात्रों को बतलाया है—अलाबु का पात्र हो या काष्ठ का पात्र—मृण्मय पात्र अथवा वैण्णव पात्र होना चाहिए ॥ ९ ॥ प्राग् रात्र में और पर रात्र में तथा मध्य रात्र में—दोनों सन्ध्याओं में अग्नि विशेष के द्वारा ही नित्य ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए ॥ १० ॥ हृदय कमल में विश्व नाम धारी और विश्व सम्भव को करके समस्त भूतों से पर तम से भी परे स्थित आत्मा का चिन्तन करना चाहिए ॥ ११ ॥ सबके आधार भूतों का आनन्द—अव्यय—ज्योति—प्रधान पुरुष से भी परे—आकाश कुहर—शिव—अन्तर्गत समस्त भावों का ईश्वर—ब्रह्मरूपी—अनादि मध्यान्त—आनन्द आदि गुणों का आलय का ध्यान करना चाहिए ॥ १२-१३ ॥ महान् पुरुष—ब्रह्म—ब्रह्मा—सत्य—अव्यय—तरुण सूर्य के सदृश—विश्वरूपी महेश का ध्यान करे। ओङ्कार के द्वारा आत्मा को परमात्मा में संस्थापित करे। आकाश के मध्य में गमन करने वाले ईशान देव का आकाश में ध्यान करे ॥ १४-१५ ॥

कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम् ।
पुराणं पुरुषं शुभ्रं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात् ॥१६
यद्वा गुहायां प्रकृतं जगत्सम्मोहनालये ।
विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारणम् ॥१७

जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते ।
आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मंयत्पश्यन्तिमुमुक्षवः ॥१८
तन्मध्ये निहित ब्रह्म केवलंज्ञानलक्षणम् ।
अनन्तसत्यमीशानंविचिन्त्यासीतसंयतः ॥१९
गुह्याद्गुह्यतम ज्ञानं यतीनामेतदीरितम् ।
योऽनुतिष्ठेन्महेशेन सोऽश्नुतेयोगमैश्वरम् ॥२०
तस्माद्ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ।
ज्ञान समाश्रयेद् ब्राह्मं येन मुच्येत बन्धनात् ॥२१

समस्त भूतों का कारण सब भावों के आनन्द का एक समाश्रय पुरुष पुराण पुरुष का ध्यान करते हुए बन्धन से मुक्त हो जाया करता है ।१६। पद्म गुहा मे सम्मोहनालय मे प्रकृत जगत् का विचिन्तन करके जो परम व्योम और समस्त भूतों का एक ही कारण है और सब भूतों का जीवन है जहाँ पर यह लोक प्रलीन हो जाता है । ब्रह्म का परम सूक्ष्म आनन्द है जिस को मुमुक्षु लोग ही देखा करते है ॥ १७-१८ ॥ उसके मध्य में निहित ब्रह्म केवल ज्ञान के ही लक्षण वाला है । उस अनन्त सत्य ईशान का विचिन्तन करके संयत होकर स्थित रहे ॥ १६ ॥ यह गोपनीय से भी अत्याधिक गुह्य यतियों का ज्ञान बता दिया गया है । जो महेश के साथ अनुष्ठान करता है वह ईश्वरीय योग का प्रदान किया करता है ॥ २० ॥ इसलिये ध्यान मे रत होकर नित्य ही आत्म—विद्या मे परायण होना चाहिए । तथा ब्रह्म ज्ञान को समाश्रय करे जिससे बन्धन से मुक्त हो जावे ॥ २१ ॥

गत्वा पृथक् स्वमात्मानमर्वस्मादेवकेवलम् ।
आनन्दमजरज्ञानध्यायीतचपुनःपरम् ॥२२
यस्माद्भवन्तिभूतानियद्गत्वानेहजायते ।
स तस्मादीश्वरोदेवःपरस्माद्योऽधितिष्ठति ॥२३
यदन्तरे तद्गगनं शाश्वत शिवमुच्यते ।
यदाहुस्तत्परो यः स्यात्स देवस्तु महेश्वरः ॥२४

व्रतानियानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥२५

उपेत्य तु स्त्रियं कामात्प्रायश्चित्तं समाहितः ।
प्राणायामसमायुक्तः कुर्यात्सान्तपनं शुचिः ॥२६
ततश्चरेत नियमात्कृच्छ्रं संयतमानसः ।
पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥२७

न नर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः ।
तथापि च न कर्त्तव्य प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ॥२८

सबसे ही केवल अपनी आत्मा को पृथक् जानकर आनन्द—अजर—पर ब्रह्म का पुनः ध्यान करना चाहिए ॥ २२ ॥ जिससे भूतगण समुत्पन्न होते हैं और जहाँ पर पहुँच कर फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है। इसीलिये वह देव ईश्वर है जो उस पर से अधिष्ठित होता है जिस के अन्तर में वह गगन शाश्वत और शिव कहा जाता है जिसको तत्पद कहते हैं और जो देव महेश्वर हैं ॥ २३-२४ ॥ भिक्षुओं के जो व्रत हैं तथा उपव्रत हैं। इनमें एक एक के भी अतिक्रमण करने में उनका प्रायश्चित्त किया जाता है ॥ २५ ॥ कृच्छ्रव्रत से संयत मन वाला यदि काम से स्त्री के पास जाता है तो उसे प्राणायाम से समायुक्त होकर परम शुचि हो सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् संयत मानस वाला होकर नियम से कृच्छ्र व्रत का समाचरण करना चाहिए। फिर आश्रम में आकर भिक्षु को अतन्द्रित होकर चरण करना चाहिए ॥ २७ ॥ मनीषीगण नर्म से युक्त भी अनृत का प्रयोग अनुचित नहीं होता है तो भी इसका प्रयोग नहीं किया करते हैं तो भी इसे नहीं करना चाहिए। यह एक बड़ा ही दारुण प्रसङ्ग है ॥ २८ ॥

एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा ।
कर्त्तव्यं यतिना धर्मलिप्सुना परमन्थमम् ॥२९

परेणाऽपि न कार्यन्ते न कार्यं स्तैन्यमन्यतः ।
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः ॥३०

हिसाचैषा परा दिष्टा या चात्मज्ञाननाशिका ।
यदेतद्द्रविण नामप्राणाह्येतेवहिश्चराः ॥३१
स तस्य हरति प्राणान्योयस्य हरतेधनम् ।
एवकृत्वा सुदुष्टात्माभिन्नवृत्तोव्रताहतः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥३२
विधिना शास्त्रदृष्टेन सम्वत्सरमिति श्रुतिः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥३३
अकस्मादेव हिंसा तु यदि भिक्षु. समाचरेत् ।
कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रं तु चान्द्रायणमथापि वा ॥३४
स्कन्नमिन्द्रियर्वल्यात् स्त्रिय दृष्ट्वा यतिर्यदि ।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥३५

एक रात्रि का उपवास और सौ प्राणायाम धर्म के इच्छुक यति को *अव्यय वर करना चाहिए ॥ २९ ॥ गत के द्वारा भी नहीं किये जाते हैं* और अन्य से स्तेन्य भी नही करना चाहिए । स्तेय कर्म से अधिक कोई अधर्म नही होता है ऐसा स्मृतिकार का वचन है ॥ ३० ॥ इस हिंसा को भी परा कहा गया है जो कि आत्म ज्ञान के नाश करने वाली होती है । जो यह धन है जिसका नाम तो द्रविण है किन्तु ये वाहिर चरण करने वाले प्राण ही होते हैं ॥ ३१ ॥ जो जिसके धन का हरण करता है वह उसके प्राणों का ही हरण किया करता है इस प्रकार से वह दुष्ट आत्मा वाला भिन्न वृत्त वाला और वृत्त से आहत हो जाता है । फिर निर्वेद को प्राप्त होकर उसे चान्द्रायण व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥ ३२ ॥ शास्त्रों में जो निर्दिष्ट की गयी है उसी विधि से करे और वह सम्वत्सर का विधान है ऐसा श्रुति वचन है । फिर जब निर्वेद को सम्पन्न होजावे तो भिक्षु को तन्द्रा से रहित होकर चरण करना चाहिए ॥३३॥ अचानक ही यदि कोई भिक्षु हिंसा का समाचरण करे तो उसे अपनी शुद्धि के लिये तथा पाप से मुक्ति प्राप्त करने के वास्ते कृच्छ्राति कृच्छ्र व्रत तथा चान्द्रायण महाव्रत करना चाहिए ॥ ३४ ॥ यदि यति किसी स्त्री को देखकर

इन्द्रियों की दुर्बलता से स्कन्द हो जाता है तो उसे सोलह प्राणायाम धारण करने चाहिए ॥ ३५ ॥

दिवास्कन्ने त्रिरात्रं स्यात्प्राणायामशतं तथा ।
एकान्ते मधुमांसे च नवश्राद्धेतथैव च ।
प्रत्यक्षलवणे प्रोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ॥३६
ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यतेसर्वपातकम् ।
तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वातद्ध्यानपरमोभवेत् ॥३७
यद्ब्रह्मपरमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम् ।
योऽन्तरापरमं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः ॥३८
एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः ।
तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम् ॥३९
यस्मान्महीयसो देवः स्वधाम्निज्ञानसंस्थिते ।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः ॥४०
नान्यं देवं महादेवाद्व्यतिरिक्तंप्रपश्यति ।
तमेवात्मानमात्मेतिय:सयातिपरम्पदम् ॥४१
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् ।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः ॥४२

दिन मे यदि स्कन्द हो जावे तो तीन रात्रि का उपवास करे तथा सौ बार प्राणायाम करना चाहिए । एकान्त मे—मधुमास मे तथा नवश्राद्ध मे और प्रत्यक्ष लवण मे प्राजापत्य व्रत को ही विशोधन न बताया गया है ॥३६॥ जो ध्यान मे निष्ठ होता है उसके सभी पातक सर्वदा नष्ट हो जाया करते है । इसलिये महेश्वर का ज्ञान प्राप्त करके उसी के ध्यान मे परम हो जाना चाहिए ॥३७॥ जो परम ब्रह्म—ज्योति—प्रतिष्ठाक्षर—अव्यय है । जो अन्तरा मे परम ब्रह्म है उसे ही महेश्वर जानना चाहिए ॥३८॥ यह देव महादेव केवल परम शिव है । वह ही अक्षर—अद्वैत और वही परम आदित्यान्तर है ॥३९॥ जिस महीयान् से देव स्वधाम्नि ज्ञान मे संस्थित आत्म योग नाम वाले तत्त्व मे फिर महादेव कहा गया है ॥४०॥ महादेव से अन्य अतिरिक्त किसी देव को नहीं देखता है उसी

मात्मा को आत्मा ऐसा ज ' मानता है वह परम पद को प्राप्त होता है ॥४१॥ जो अपनी आत्मा को परमेश्वर से विभिन्न मानते हैं वे उस देव को कभी नहीं देखा करते हैं और उनका सभी परिश्रम वृथा ही हुआ है ॥४२॥

एक ब्रह्म पर ब्रह्म ज्ञेय तत्तत्त्वमव्ययम् ।
स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय बाध्यते ॥४३
तस्माद्यजेत नियत यति. सयतमानसः ।
ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः ॥४४
एष वः कथितोविप्रा यतीनामाश्रमः शुभः ।
पितामहेन विभुनामुनीना पूर्वमीरितम् ॥४५
नाऽत्र शिष्यस्त्य योगिम्यो दद्यादिदमनुत्तमम् ।
ज्ञान स्वयम्भुना प्रोक्त यतिधर्माश्रय शिवम् ॥४६
इति यतिनियमानामेतदुक्त विधान ।
पशुपतिपरितोषे यद्भवेदक्हेतुः ।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः ।
प्रणिहितमनसा ये नित्यमेवाचरन्ति ॥४७

एक ही ब्रह्म को परम ब्रह्म तत्त्व और अव्यय समझना चाहिए । यह देव महादेव हैं—यह ज्ञान प्राप्त करके फिर बाध्यमान नहीं हुआ करता है ॥४३॥ इसी लिये संयत मन वाले यति नियत होकर यजन करना चाहिए । जो ज्ञान योग म रति रखने वाला परम शान्त स्वभाव वाला और महादेव की उपरावना में ही परायण रहता है । हे विप्रगण ! यह यतियों का परम शुभ आश्रम का वर्णन आपको कह कर सुना दिया है । विभु पितामह ने पहिले मुनियों को यही कहा था ॥४४-४५॥ यहाँ पर शिष्य को नही प्रत्युत इस अत्युत्तम को योगियों को देना चाहिए । यह ज्ञान यतियों के धर्म का आश्रय करने वाला परमशिव है और इसको स्वयम्भू ने कहा था ॥४६॥ यह यतियों के नियमों का विधान कह दिया गया है जो यह भगवान् पशुपति के परितोष करने मे एक ही हेतु है । जो प्रणिहित मन स इसका नित्य ही समाचरण किया करते हैं उनका

फिर इस ससार म जन्म ही नही होता है अथवा उनका विनाश भी नही हुआ करता है ॥४७॥

३०—प्रायश्चित्तविधिवर्णन

अत पर प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिंशुभम् ।
हिताय सर्वविप्राणा दोपाणामपनुत्तये ॥१
अकृत्वा विहित कम्म कृत्वा निन्दितमेव च
दोपमाप्नोति पुरुप प्रायचित्त विशोधनम् ॥२
प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राह्मण क्वचित् ।
यद्व्रूयुर्ब्राह्मणा शान्ताः विद्वासस्तत्समाचरत ॥३
वेदार्थवित्तम. शान्ता धर्म्मकामोऽग्निमान्द्विज ।
स एव स्यात्परो धर्म्मो यमेकोऽपि व्यवस्यति ॥४
अनाहिताग्नयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगा ।
यद्व्रूयुधर्मकामास्ते तज्ज्ञेय धर्मसाधनम् ॥५
अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदा ।
वेदाध्ययनसम्पन्ना सप्तैते परिकीर्त्तिता ॥६
मीमासाज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजा ।
एकविंशतिविख्याता प्रायश्चित्त वदन्ति वै ॥७

महामहिम महर्षि श्री व्यास देव ने कहा—अब इसके आगे हम प्रायश्चित्त की शुभ विधि का वर्णन करते है इसका वर्णन सभी विप्रो के हित के लिये ही होगा और दापो की अपनुत्ति के लिये भी होगा ॥१॥ जो शास्त्र के द्वारा वेदो से विहित कम बतलाया गया है उसे न करके तथा परम निन्दित एव शास्त्र—निपद्ध कर्म को करके जो दोप को मनुष्य प्राप्त किया करता है उसके विशोधन को ही प्रायश्चित्त कहते हैं ॥२॥ ब्राह्मण को किसी भी समय मे दोपो के अपनोदन के लिये बताये हुए प्रायश्चित्त को न करके स्थित नही रहना चाहिए। जो भी शान्त और विद्वान ब्राह्मण प्रायश्चित्त बतलावे उस का समाचरण अवश्य ही करना

चाहिए ॥३॥ वेदार्थ के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ—शान्त-धर्म की ही कामना रखने वाला और अग्निमान द्विज वही होता है जिसका एक भी परमधर्म होता है ॥४॥ अनाहित अग्नि वाले विप्र तीन वेदार्थों के पारगामी धर्म्म के कामों को जो भी जैसा भी कहें उसी को धर्म्म का परम साधन समझना चाहिए। ऊहापोह में अतीव विशारद और अनेक शास्त्रों के ज्ञाता एवं वेदों के अध्ययन से सुसम्पन्न—ये सात ही परिकीर्तित किये गये हैं। मीमांसा के ज्ञान के तत्त्व को जानने वाले—वेदान्त में परम कुशल द्विज इक्कीस विख्यात हैं जो प्रायश्चित को बतलाया करते हैं ॥५-७॥

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च।
महापातकिनस्त्वेते यश्चैतैः सह सम्विशेत् ॥८
सम्वत्सरन्तु पतितैः संसर्गंकुरुते तु यः।
यानशय्यासनैर्नित्य जानन्वै पतितोभवेत् ॥९
याजनं योनिसम्बन्ध तथैवाध्यापनं द्विजः।
सद्यः कृत्वा पतत्येव सह भोजनमेव च ॥१०
अविज्ञायाथ यो मोहात्कुर्यादध्यापन द्विजः।
सम्वत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च ॥११
ब्रह्महाद्वादशाब्दानिकुटिंकृत्वावनेवसेत्।
भैक्षमात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वाशवशिरोध्वंजम् ॥१२
ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्ज्जयेत्।
विनिन्दन् स्वयमात्मान ब्राह्मण तञ्च संस्मरन् ॥१३
असङ्कल्पितयोग्यानि सप्तागाराणिसम्विशेत्।
विधूमेशनकैर्नित्यव्यङ्गारेभुक्तवर्ज्जने ॥१४

ब्राह्मण का हनन करने वाला—मद्यपान करने वाला—स्तेन (चोरी करने वाला)—गुरु तल्प गामी—ये महापातकी हुआ करते हैं और जो इन के साथ में बैठता उठता है वह भी महापातकी होता है ॥८॥ जो पुरुष एक वर्ष तक पतितों के साथ संसर्ग किया करता है और नित्य ही यान—शय्या और आसन पर स्थित जान बूझ कर रहा करता है वह भी पतित ही हो जाया करता है ॥९॥ याजन—योनि का सम्बन्ध—अध्ययन

से कर्म द्विज करके तुरन्त ही पतित होजाया करता है और सह भोजन से भी पतित होजाता है ॥१०॥ न जान करके जो कोई द्विज मोह से अध्ययन कम किया करता है वह एक वर्ष में पतित होजाता है। एक साथ अध्ययन से भी पतित हो जाता है ॥११॥ ब्राह्मण को हनन करने वाले पुरुष को बारह वर्ष पर्यन्त कुटी बनाकर वन मे वास करना चाहिए। शव के शिर को ऊपर करके आत्मा की विशुद्धि के भिक्षा करनी चाहिए ॥१२॥ उसे समस्त ब्राह्मणों के अवसथों—और देवो के आगारो को वर्जित कर देना चाहिए। अपनी आत्मा को स्वयं ही विनिन्दित करते हुए और उस ब्राह्मण का स्मरण भी करते रहना चाहिए। जिसका हवन किया है ॥१३॥ असङ्कल्पित योग्य सात आगारों मे ही सविष्ट होवे। विगत धूम वाले—विगत अङ्गार वाले और मुक्तवर्जन घरों में ही धीरे से प्रवेश करना चाहिए ॥१४॥

एककालञ्चरेद्भैक्षं दोषं विख्यापयन्नृणाम्।
वन्यमूलफलैर्वापि वर्त्तयेद्वै समाश्रितः ॥१५
कपालपाणिः खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायणः।
पर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥१६
अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम्।
कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित् ॥१७
कुर्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेववा।
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलवा प्रविशेत्स्वयम् ॥१८
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा मृतस्य तु ॥१९
दीर्घामयाविनं विप्रं कृत्वानामयमेव वा।
दत्त्वा चान्नं सुविदुषे ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥२०
अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वै शुध्यते द्विजः।
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदाय च ॥२१

एक ही समय मे भिक्षा का समाचरण करे और सभी मनुष्यों को अपने द्वारा किये हुए दोष को विशेष रूप से स्थापित करते हुए ही रहना चाहिए

या वन मे समुत्पन्न फलो और मूलो के द्वारा ही समाश्रित रहकर वर्त्तन करे ।१५। हाथ मे कपाल का ग्रहण करते हुए तथा खट्वा के अङ्ग वाला और ब्रह्मचर्य्य व्रत में परायण रहकर बारह वर्ष व्यतीत करे जब बारह वर्ष पूरे हो जावें तभी वह की हुई ब्रह्म हत्या से विमुक्त हो जाता है ॥१६॥ बिना ही इच्छा के जब ऐसा पाप बन जावे तो उसी मे यह इस तरह का उपर्युक्त प्रायश्चित्त परम शुभ होता है । यदि स्वयं इच्छा करके ही ब्रह्म हत्या जैसा पाप किया जावे तो मरण करके ही उस पाप से शुद्धि होती है अन्य किसी भी प्रायश्चित से शुद्धि हो ही नहीं सकती है ॥१७॥ मरण स्वयं करने के कई साधन बताये गये हैं—स्वय अनदान कर देवे-अथवा भृगु से पतन करे या जलती हुई अग्नि मे प्रवेश करके मृत्यु को प्राप्त होवे तथा जल मे स्वयं प्रवेश करे ।।१८।। अथवा मृत होने के बिना ब्रह्महत्या के पाप का अपनोदन करने के लिये ब्राह्मणो की सुरक्षा एव गौओ के हित के लिये अपने प्राणो का स्वय बलिदान करके उन्हें त्याग देना चाहिए ।।१९।। अथवा दीर्घायानी विप्र को अनामय करके और किसी अच्छे विद्वान को अन्न दान करके ब्रह्महत्या को दूर करे । इससे भी ब्रह्महत्या का निवारण होता है ।।२०।। अश्वमेधा व भृथक मे स्नान करके भी द्विज शुद्ध हो जाता है । अथवा अपना सर्वस्व किसी वेदो के वेत्ता ब्राह्मण को प्रदान कर देने से भी ब्रह्महत्या से विमुक्ति होजाया करती है ।।२१।।

सरस्वत्यास्त्वरुणया सङ्गमे लोकविश्रुते ।
शुध्येत्त्रिषवणस्नानात्त्रिरात्रोपोषितो द्विज ॥२२
गत्वा रामेश्वर पुण्यस्नात्वाचैवमहोदधौ ।
ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो दृष्ट्वा रुद्रविमोचयेत् ॥२३
कपालमोचनं नाम तीर्थं देवस्य शूलिनः ।
स्नात्वाभ्यर्च्य पितॄन् देवान् ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥२४
यत्र देवाधिदेवेन भैरवेणामितौजसा ।
कपाल स्थापितं पूर्वं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥२५
समभ्यर्च्य महादेवत्र भैरवरूपिणम् ।
तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वामुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२६

सरस्वती और अरुणा नदियों के लोक में परम प्रसिद्ध सङ्गम में त्रिषवण स्नान करके तीन रात्रि तक उपोषित होने वाला द्विज भी शुद्ध हो जाया करता है ॥२२॥ रामेश्वर तीर्थ में जाकर परम पुण्यमय महोदधि में वहाँ पर स्नान करके ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक भगवान् रुद्र का दर्शन करके भी ब्रह्महत्या के पाप को दूर करे ॥२३॥ भगवान् शूली का कपाल मोचन नाम वाले तीर्थ में स्नान करके पितृगण और देवों का अभ्यर्चन करके ब्रह्महत्या के दोष का दूर कर देता है ॥२४॥ कपाल मोचन वह तीर्थ है जहाँ पर अमित ओज वाले देवाधिदेव भैरव में परमेष्ठी ब्रह्मा का कपाल पहिले स्थापित किया था। वहाँ पर भैरव रूपी महादेव का अभ्यर्चन कर पितृगण तर्पण करे और स्नान करे तो ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाया करता है ॥२५-२६॥

३१—ब्रह्माकपालस्थापनवर्णन

कथं देवेन रुद्रेण शङ्करेणातितेजसा ।
कपाल ब्रह्मण पूर्वं स्थापित देहजम्भुवि ॥१
शृणुध्वमृषय.पुण्याकथा पापप्रणाशिनीम् ।
माहात्म्य देवदेवस्यमहादेवस्यधीमतः ॥२
पुरा पितामह देव मेरुशृङ्गे महर्षय. ।
प्रोचुः प्रणम्य लोकादिकिमेकं तत्त्वमव्ययम् ॥३
समायया महेशस्य मोहितो लोकसम्भवः ।
अविज्ञायपरम्भावस्वात्मानप्राहधर्षिणम् ॥४
अहधाता जगद्योनिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः ।
अनादि मत्पर ब्रह्म मामभ्यर्च्यविमुच्यते ॥५
अह हि सर्वदेवाना प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ।
न विद्यते चाभ्यधिकोमत्तो लोकेषु कश्चन ॥६
तस्यैवंमन्यमानस्यजज्ञे नारायणांशजः ।
प्रोवाचप्रहसन्वाक्य रोषितोऽथत्रिलोचनः ॥७

ऋषि वृन्द ने कहा—हे भगवन् ! अब आप हम लोगो को यही बतलाइये कि अत्यन्त तेजस्वी भगवान् शङ्कर रुद्र देव ने पहिले इस नृ-मण्डल में देह मे समुत्पन्न ब्रह्माजी के कपाल को किस प्रकार से और किस कारण से स्थापित किया था ? ॥१॥ महर्षि सूतजी ने कहा—हे ऋषिगण ! पापों के प्रणाश करने वाली इस परम पुण्यमयी कथा का आप लोग अब श्रवण करें। इस कथा मे देवों के भी देव परम धीमान् महादेव का पूर्ण माहात्म्य भरा हुआ है ॥२॥ पहिले एक बार मेरु पर्वत के शिखर पर महर्षियों ने पितामह देव को प्रणाम करके यही उनसे पूछा था कि इस लोक का आदि एक अव्यय तत्त्व क्या है ॥३॥ वह लोको को सम्भूत करने वाले ब्रह्माजी महेश की माया से मोहित हो गये थे और परम भाव को न जान कर अपने आपको ही सर्वश्रेष्ठ बतला दिया था ॥४॥ उन्होने कहा था कि मैं ही धाता—इस जगत् की योनि अर्थात् पूर्ण जगत् को समुत्पन्न करने वाला स्वयम्भू एक ही ईश्वर हूँ। मैं ही अनादि ब्रह्म हूँ मेरे मे ही परायण होकर मेरा अभ्यर्चन करके प्राणी विमुक्त हो जाया करता है ॥५॥ मैं ही समस्त देवो का प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक हूँ। मुझसे अधिक और ऊँचा लोको मे कोई भी नहीं है ॥६॥ उन ब्रह्माजी को इस तरह से अपने आपको मानने वाले होने पर नारायण के अंश से जन्म ग्रहण करने वाले त्रिलोचन ने जन्म लिया था। और यह देव परम क्रोधित होकर हँसते हुए यह वाक्य बोले थे ॥७॥

किं कारणमिदं ब्रह्मन्वर्त्तते तव साम्प्रतम् ।
अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतत्त्वयि विद्यते ॥८

अहंकर्त्तादिलोकानायज्ञे नरायण।त्प्रभोः ।
न मामृतेऽस्यजगतो जीवनंसर्वथाक्वचित् ॥९

अहमेव पर ज्योतिरहमेव परा गतिः ।
मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम् ॥१०

एव विवदतोर्मोहात्परस्परजयैषिणोः ।
आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि ॥११

अन्वीक्ष्यदेव ब्रह्मार्णयज्ञात्मानञ्चर्संस्थितम् ।
प्रोचुः सविग्नहृदया याथात्म्यंपरमेष्ठिनः ॥१२
यस्यान्त स्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्त्तते ।
यदाहुस्तत्परं तत्व स देवः स्यान्महेश्वरः ॥१३
यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते ।
यमाहुरीश्वर देव स देव.स्यात्पिनाकधृक् ॥१४

हे ब्रह्मन् ! इस समय मे क्या कारण हो गया है कि आपके अन्दर ऐसी भावना समुत्पन्न हो गई हैं। आप ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय मे अज्ञान से युक्त हो रहे हैं अन्यथा ऐसा भाव आप मे तो कभी भी नही विद्यमान था ॥८॥ प्रभु नारायण से इन लोको के बल मे इनका कर्त्ता आदि तो मैं ही हूं। मेरे बिना इस जगत् का जीवन सर्वथा कहीं पर भी नही है ॥९॥ मैं ही पर ज्योति हूं और मैं ही परागति हूं। मेरे द्वारा प्रेरित होकर ही आपने यह समस्त भुवन मण्डल की रचना की है ॥१०॥ इस प्रकार से मोह वश उन दोनों मे बड़ा भारी विवाद बढ़ गया था और दोनो ही एक दूसरे पर अपना विजय स्थापित करने की इच्छा वाले होगये थे। जहाँ पर ये दोनो बड़े देव इस प्रकार का परस्पर मे विवाद कर रहे थे वहीं पर चारो वेद आ गये थे ॥११॥ देव ब्रह्माजी को जो यज्ञो की आत्मा वहाँ पर सस्थित थे देखकर उन वेदो ने सविग्न हृदय वाले होकर परमेष्ठी का जो याथात्म्य अर्थात् ठीक स्वरूप था उसको बतलाया था ॥१२॥ ऋग्वेद ने कहा—जिसके अन्तर में स्थित समस्त भूत हैं और जिससे सभी कुछ प्रवृत्त हुआ करता है। जिसको परात्पर तत्त्व कहा जाता है वह देव महेश्वर ही हैं ॥१३॥ यजुर्वेद ने कहा—जो समस्त यज्ञो के द्वारा तथा योग के द्वारा समर्चित किया जाता है और जिसको देव को ईश्वर कहा जाता है वह देव पिनाक को धारण करने वाले शिव ही हैं ॥१४॥

येनेदम्भ्राम्यते विश्वं यदाकाशान्तरं शिवम् ।
योगिभिर्वेद्यते तत्त्वमहादेवःसशङ्करः ॥१५

यम्प्रपश्यन्ति देवेशं यजन्ते यतयः परम् ।
महेश पुरुष रुद्रं स देवो भवगान् भव. ॥१६
एव सभगवान्ब्रह्मावेदानामीरितशुभम् ।
श्रुत्वाविहस्यविश्वात्मातश्चाहविमोहित. ॥१७
कथ तत्परम ब्रह्मसर्वसङ्गविवर्जितम् ।
रमतेभार्ययासार्द्धं प्रमथंश्चातिगर्वितैः ॥१८
इतीरितेऽथभगवान्प्रणवात्मसनातनः ।
अमूर्त्तो मूर्त्तिमान्भूत्वावच प्राहपितामहम् ॥१९
न ह्येप भगवानीश स्वात्मनोव्यतिरिक्तया ।
कदाचिद्रमतेरुद्रस्तादृशो हि महेश्वर· ॥२०
अय स भगवानीशः स्वयज्योतिः सनातनः ।
स्वानन्दभूता कथिता देवी आगन्तुका शिवा ॥२१

जिसके द्वारा यह विश्व भ्रमित होता है और आकाश के अन्तर में स्थित है। वह तत्त्व योगियों के द्वाराही जाना जाता है वह महादेव शङ्कर ही है ॥१५॥ अथर्ववेद ने कहा-यति लोग जिस देव को देखा करते हैं और जिस पर का यतिगण यजन किया करते हैं वह पुरुष महेश—रुद्रदेव भगवान् भव ही हैं ॥१६॥ इस प्रकार से वेदो के शुभ कथन को भगवान् ब्रह्मा ने श्रवण करके हँस गये थे और फिर विश्वात्मा विमोहित होकर बोले ॥१७॥ यदि वह ही परम ब्रह्म है तो वह सबके सङ्ग से विवर्जित होकर केवल अपनी भार्या के साथ ही क्यो रमण किया करता है और उसके साथ मे अत्यन्त गर्वित प्रथम गण भी रहा करते हैं ॥१८॥ इस तरह से कहने पर वह प्रणवात्मा सनातन भगवान् अमूर्त्त होते हुए भी मूर्तिमान् उस समय मे हो गये थे और उन्होंने पितामह से यह वचन कहा था ॥१९॥ प्रणव ने कहा—यह भगवान् ईश किसी समय मे भी अपनी आत्मा से व्यतिरिक्त के साथ रमण नही किया करते हैं। उसी प्रकार के महेश्वर प्रभु हैं। यह भगवान् ईश स्वय ज्योति और सनातन है ॥२०॥ शिवा देवी तो अपने ही आनन्द के स्वरूप वाली आगन्तुका देवी है ॥२१॥

इत्येवमुक्तेऽपितदायज्ञमूर्त्तेरजस्य च ।
नाज्ञानमगमन्नाशमीश्वरस्यैवमायया ॥२२
तदन्तरे महाज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावनः ।
प्रादर्शदद्भुतं दिव्यम्पूरयन् गगनान्तरम् ॥२३
तन्मध्यसंस्थितञ्ज्योतिर्मण्डलतेजसोज्वलम् ।
व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः ! ॥२४
स दृष्ट्वा वदनं दिव्यमूर्ध्नि लोकपितामहः ।
तेजस मण्डलं घोरमलोकयदनिन्दितम् ॥२५
प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मण.पञ्चमं शिरः ।
क्षणादपश्यत्समहान् पुरुषोनीललोहितः ॥२६
त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान् ।
तं प्राहभगवान् ब्रह्मा शङ्करंनीललोहितम् ॥२७
जानाय पूर्वं भवतो ललाटाद्द्यशंकरम् ।
प्रादुर्भूतंमहेशानं मामत.शरणंव्रज ॥२८

उस समय में यज्ञ मूर्ति अज को इस प्रकार से कहने पर भी ईश्वर की ही माया से वह अज्ञान नाश को प्राप्त नहीं हुआ था ॥२२॥ उसी बीच में विश्वभावन विरञ्चि ने एक महा ज्योति को देखा था जो परम अद्भुत और दिव्य गगन के अन्तर को पूरित करने वाली थी ॥२३॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके मध्य में संस्थित ज्योति मण्डल तेज से परम उज्ज्वल था—व्योम के मध्य में रहने वाला अति दिव्य ही प्रादुर्भूत हुआ था। ॥२४॥ दिव्य मूर्धा में उन लोक पितामह ने तैजस मण्डल—परम घोर और अनिन्दित वदन को देखा था ॥२५॥ उस समय में ब्रह्माजी का पाँचवाँ शिर अत्यन्त कोप से प्रज्वलित हो गया था। क्षण भर में ही उन नील लोहित महान् पुरुष ने उसे देखा था ॥२६॥ त्रिशूल से पिङ्गल नागों के यज्ञोपवीत से युक्त देव भगवान् ब्रह्मा उन नील लोहित शङ्कर से बोले—॥२७॥ पहिले ज्ञान के लिये आपके ललाट से प्रादुर्भूत आज महेशान मेरी शरण में गमन करो ॥२८॥

श्रुत्वा सगर्ववचनं पद्मयोनेरथेश्वरः ।
प्राहिणोत्पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम् ।।२९
स कृत्वा सुमहद्युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः ।
प्रचकर्त्तास्य वदनं विरिञ्चस्याथपञ्चमम् ।।३०
निकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना ।
ममार चेशो योगेन जीवितं प्राप विश्वधृक् ।।३१
अथान्वपश्यदीशानं मण्डलान्तरसंस्थितम् ।
समासीनं महादेव्याऽमहादेवं सनातनम् ।।३२
भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशञ्जटाजूटविराजितम् ।।३३
शार्दूलचर्मवसनं दिव्यमालासमन्वितम् ।
त्रिशूलपाणिं दुष्प्रेक्ष्यं योगिनं भूतिभूषणम् ।।३४
यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम् ।
तमादिमेकं ब्रह्माणं महादेवं ददर्श ह ।।३५

इसके अनन्तर गर्व से युक्त पद्म योनि के इस वचन को ईश्वर ने श्रवण करके लोक के दाह करने वाले काल भैरव पुरुष को प्रेरित किया था ।।२९।। उस काल भैरव पुरुष ने ब्रह्मा के साथ सुमहान् युद्ध किया था और उसने ब्रह्मा के पाँचवें शिर को पाँचवे मुख को काट डाला था ।।३०।। देव शम्भु के द्वारा कटे हुए वदन वाला ब्रह्मा मर चुके थे फिर विश्व धृक् ईश ने योग के द्वारा जीवित प्राप्त किया था ।।३१।। इसके अनन्तर मण्डल के अन्तर में संस्थित समासीन महादेवी के साथ सनातन ईशान महादेव को देखा था ।।३२।। वह देव भुजङ्ग राज का विलय धारण करने वाले थे और चन्द्रकला के अवयव के भूषण से विभूषित थे । करोड़ों सूर्यों के सदृश तेज से युक्त तथा जासूसों से युक्त उनका परम सुन्दर स्वरूप था । वे महादेव शार्दूल के चर्म का वसन धारण किये हुए थे तथा दिव्य मालाओं से समन्वित थे । भस्म से विभूषित परम दुष्प्रेक्ष्य योगिराज त्रिशूल पाणि थे । जिनके बीच में योग में निष्ठ हृदीश्वर को

देख रहे थे। ऐसे उन आदि एक ब्रह्मा महादेव का दर्शन उस समय में किया था ॥३३-३५॥

यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसञ्ज्ञिता।
सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल ॥३६
यस्याशेषजगद्बीजविलयं याति मोहनम्।
सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते ॥३७
येऽथ नाचारनिरतास्तद्भक्ताश्चैव केवलम्।
विमोचयतिलोकात्मानायकोदृश्यतेकिल ॥३८
यस्यब्रह्मादयोदेवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः।
अर्चयन्तिसदालिङ्गं स शिवः खलु दृश्यते ॥३९
यस्याशेषजगत्सूर्विज्ञानतनुरीश्वरः।
न मुञ्चति सदा पार्श्वं शङ्करोऽसौ च दृश्यते ॥४०
विद्यासहायो भगवान्यस्यासौ मण्डलान्तरम्।
हिरण्यगर्भपुत्रोऽसौईश्वरोदृश्यतेपरः ॥४१
पुष्पं वा यदि पत्रं यत्पादयुगलेमलम्।
दत्वातरति संसारंरुद्रोऽसौदृश्यतेकिल ॥४२

जिसकी वह परमा शक्ति देवी आकाश की सज्ञा वाली है वह अनन्त ऐश्वर्य से योगात्मा महेश दिखलाई देते हैं ॥३६॥ जिसका सम्पूर्ण जगत् का बीज मोहन में विलय को प्राप्त होता है वह रुद्र देव एक बार ही प्रणाम मात्र से निश्चय ही दिखलाई दिया करते हैं ॥३७॥ जो आचार में तो निरत नहीं होते हैं और केवल उनके ही भक्त होते हैं उनको अपने भक्तों को वह विमुक्त कर दिया करते हैं वही लोकात्मा नायक दिखलाई दे रहे हैं ॥३८॥ जिसके लिङ्ग को ब्रह्मा आदिक देवगण—ब्रह्मवादी ऋषि वृन्द सदा ही पूजा करते हैं वह शिव दिखलाई दे रहे हैं ॥३९॥ जिसकी यह सम्पूर्ण जगत् सन्तति है जो विज्ञान के तनु वाला और ईश्वर है और जो सदा ही पार्श्व का त्याग नहीं किया करता है वही यह भगवान् शङ्कर दिखलाई दे रहे हैं ॥४०॥ जिसके मण्डलान्तर में विद्या की सहायता वाला यह भगवान् है वही,

हिरण्यगर्भ का पुत्र पर ईश्वर दिखलाई दे रहे हैं ॥४१॥ पुष्प यदि वा पत्र अथवा केवल जल ही उनके युगल चरणों में समर्पित करके मनुष्य इस संसार को तर जाया करता है वही यह भगवान् रुद्र दिखलाई दे रहे हैं ॥४२॥

तत्सन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः ।
कालं किल नियोगात्मा कालः कालो हि दृश्यते ॥४३
जीवनसर्वलोकानास्त्रिलोकस्यैवभूषणम् ।
सोमःसदृश्यतेदेव.सोमोयस्य विभूषणम् ॥४४
देव्या सहसदासाक्षाद्यस्य योगस्वभावतः ।
गीयते परमामुक्तिमहादेवः स दृश्यते ॥४५
योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखोऽनिशम् ।
योग ध्यायन्ति देव्यासौ स योगी दृश्यते किल ॥४६
सोऽनुप्रेक्ष्य महादेव महादेव्या सनातनम् ।
वरासनेसमासीनमवापपरमास्मृतिम् ॥४७
लब्ध्वा माहेश्वरी दिव्यासंस्मृतिंभगवानजः ।
तोषयामासवरदंसोमंसोमार्द्धभूषणम् ॥४८

उसके सन्निधान में सनातन सकल को देता है। काल निश्चय ही नियोग करने के स्वरूप वाला है यह काल ही काल दिखलाई दे रहा है ॥४३॥ यह सब लोकों का जीवन और त्रिलोकी का ही भूषण है। यह देव सोम दिखलाई देता है जिसका विभूषण सोम होता है ॥४४॥ सदा देवी के साथ साक्षात् जिसको योग के स्वभाव से परमा मुक्ति गाई जाती है वही महादेव दिखलाई दे रहे हैं ॥४५॥ योग के तत्व के ज्ञाता योगीजन निरन्तर वियोग के अभिमुख हैं—और योग का ध्यान किया करते हैं देवी के साथ यह योगी दिखलाई दे रहे हैं ॥४६॥ वह महा देवी के साथ सनातन महादेव को देखकर जो वरासन पर समासीन थे परम स्मृति को प्राप्त हुए थे ॥४७॥ भगवान् अज ने माहेश्वरी परम दिव्य स्मृति को प्राप्त करके सोम के अर्धभाग के भूषण वाले वरदाता सोम को तुष्ट किया था ॥४८॥

नमोदेवाय महते महादेव्यै नमो नमः ।
नमः शिवाय शान्ताय शिवायै सततं नमः ॥४९
ओं नमो ब्रह्मणे तुभ्यंविद्यायै ते नमो नमः ।
महेशाय नमस्तुभ्यमूलप्रकृतये नमः ५०
नमो विज्ञानदेहाय चिन्तायै ते नमोनमः ।
नमोऽस्तुकालकालायईश्वरायै नमो नमः ॥५१
नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्राण्यै ते नमोनमः ।
नमोनमस्तेकालायमायायैते नमोनमः ।५२
नियन्त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकायै नमोनमः ।
नमोऽस्तुतेप्रकृतये नमोनारायणाय च ॥५३
योगदाय नमस्तुभ्यं योगिनां गुरवे नमः ।
नमः संसारवासाय संसारोत्पत्तये नमः ॥५४
नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्त्तये ।
नमःकार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नमः ॥५५
ओंकारमूर्त्त तुभ्यंतदन्तःसंस्थिताय च ।
नमस्ते व्योमसंस्थायव्योमशक्त्यैनमोनमः ॥५६

ब्रह्माजी ने कहा—महान् देव के के लिये नमस्कार है । महादेवी के लिये बारम्बार नमस्कार है । परम शान्त शिव की सेवा में तथा शिवा के लिये निरन्तर नमस्कार है ॥४६॥ ओम स्वरूप ब्रह्म आपके लिये प्रणाम है । विद्यास्व रूपिणी आपकी सन्निधि में बारम्बार नमस्कार है । महेश आपके लिये तथा मूल प्रकृति के लिये नमस्कार है ॥५०॥ विज्ञान के देह वाले के लिये तथा चिन्ता रूपिणी के लिये बारम्बार नमस्कार है । काल के भी काल के लिये प्रणाम है तथा ईश्वरी देवी के लिये नमस्कार है ॥५१॥ रुद्र और रुद्राणी की सेवा में बारम्बार प्रणाम समर्पित है । काल स्वरूप आपको तथा मायारूपिणी देवी के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥५२॥ समस्त कार्यों के नियन्त्रण करने वाले प्रभु तथा क्षोभिका देवी की सेवा में नमस्कार है । प्रकृति आपको तथा नारायण प्रभु को मेरा प्रणाम अर्पित है ॥५३॥ योग के प्रदान करने वाले आपको प्रणाम है । योगियों के

गुरु के लिये प्रणाम है। संसार में वास करने वाले तथा इस संसार को समुत्पन्न करने वाले आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित है ॥५४॥ नित्य ही आनन्द स्वरूप—विभु और आनन्द की मूर्ति—कार्य से विहीन तथा विश्व की प्रकृति आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित है। ओङ्कार की मूर्ति वाले तथा उसके ही अन्दर में समवस्थित—व्योम में संस्थिति करने वाले एवं व्योम की शक्ति आपके लिये वारम्बार प्रणाम समर्पित है ॥५५-५६॥

इति सोमाष्टकेनेशं प्रणिपत्य पितामहः।
पपात दण्डवद्भूमौ गृणन्वै शतरुद्रियम् ॥५७
अथ देवो महादेवः प्रणतार्तिहरो हरः।
प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्यां प्रीतोऽस्मि तव साम्प्रतम् ॥५८
दत्वास्मै परमं योगमैश्वर्यमतुलं महत्।
प्रोवाचाग्रस्थितं रुद्रं नीललोहितमीश्वरम् ॥५९
एषब्रह्मास्यजगतःसम्पूज्यःप्रथमः स्थितः।
आत्मनारक्षणीयस्ते गुरुर्ज्येष्ठःपितातव ॥६०
अयम्पुराणःपुरुषो न हन्तव्यस्त्वयाऽनघ।
स योगैश्वर्यमाहात्म्यान्मामेवशरणंगतः ॥६१
अयञ्चयज्ञोगर्वोऽसौसगर्वोभवताऽनघ।
शासितव्योविरिञ्चस्त्यधारणीयशिरस्त्वया ॥६२
ब्रह्महत्यापनोदार्थं व्रतं लोके प्रदर्शयन्।
चरस्व सततं भिक्षां संस्थापयसुरद्विजान् ॥६३

इस प्रकार से पितामह ने इस सोमाष्टक स्तोत्र के द्वारा ईश को प्रणिपात करके शत रुद्रिय को जपते हुए भूमि में वह पितामह दण्ड की भाँति गिर गये थे ॥५७॥ इसके अनन्तर महादेव देव जो प्रणत अपने भक्तों की आर्ति के हरण करने वाले हर हैं उन्होंने अपने हाथों से ब्रह्मा को उठा कर कहा—हे ब्रह्मन्! मैं अब तुम पर परम प्रसन्न हो गया हूँ ॥५८॥ इनको परमयोग और अतुल तथा महद् ऐश्वर्य प्रदान करके सामने स्थित नील लोहित ईश्वर रुद्र से बोले ॥५९॥ यह ब्रह्मा है जो इस जगत् का पूज्य और प्रथम स्थित है। यह गुरु में ज्येष्ठ पितामह

आपके द्वारा रक्षा करने के योग्य है ॥६०॥ हे अनघ ! इस-पुराण पुरुष का हनन आपके द्वारा कभी नहीं होना चाहिए। वह योगेश्वर्य के माहात्म्य से मेरे ही शरण में गया हुआ है ॥६१॥ हे अनघ ! यह यज्ञ है और गर्व है और आपके ही द्वारा सगर्व है। इसको शासित करना चाहिए। विरञ्चि का शिर आपको धारण करना चाहिए ॥६२॥ ब्रह्महत्या के अपने दान करने के लिये व्रत को लोक मे प्रदर्शित करते हुए आप निरन्तर भिक्षा का समाचरण करे और सुर तथा द्विजों की संस्थापना करें ॥६३॥

इत्येतदुक्त्वा वचनं भगवान् परमेश्वरम् ।
स्थानं स्वाविकं दिव्यं ययौ तत्परमम्पदम् ॥६४
ततः स भगवानीशः कपर्द्दी नीललोहितः ।
ग्राहयामास वदनं ब्रह्मणः कालभैरवम् ॥६५
चरत्व पापनाशार्थं व्रतलोके हितावहम् ।
कपालहस्तोभगवान् भिक्षागृह्वातुपर्वतः ॥६६
उक्त्वैव प्राहिणोत्कन्या ब्रह्महत्येति विश्रताम् ।
दष्ट्रकरालवदना ज्वालामालाविभूषणाम् ॥६७
यावद्वाराणसी दिव्यापुरीमेषगमिष्यति ।
तावद्विभीषणाकाराह्यनुगच्छत्रिशूलिनम् ॥६८
एवमाभाष्यकालाग्निप्राहलोकमहेश्वरम् ।
अटस्वलोकानखिलान्भैक्षार्थमिन्नियोगतः ॥६९
यदा द्रक्ष्यसि देवेश नारायणमनामयम् ।
तदासौ वक्ष्यतिस्पष्टमुपाय पापशोधनम् ॥७०

भगवान् ने परमेश्वर से यह वचन कह कर फिर वे अपने स्वाभाविक दिव्य स्थान परम पद को चले गये थे ॥६४॥ इसके उपरान्त भगवान् ईश नील लोहित कपर्द्दी ने ब्रह्मा के वदन को काल भैरव को ग्रहण करा दिया था। और यह कहा था कि अब आप पापों के नाश करने के लिये लोक में हित का आवह व्रत का समाचरण करो। कपाल हाथ मे धारण करके भगवान् सभी ओर से भिक्षा ग्रहण करें ॥६५-६६॥ इस प्रकार से

कहकर ब्रह्महत्या—इस नाम से प्रसिद्ध कन्या को प्रेषित किया था। उसका स्वरूप बड़ी भीषण दाढ़ों से कराल मुख वाला था और वह ज्वालाओं के भूषण वाली थी ॥६७॥ जब तक यह रुद्र देव वाराणसी दिव्यपुरी में जायेंगे तब तक अतीव भीषण आकार वाली यह त्रिशूली के पीछे-पीछे ही गमन कर रही थी ॥६८॥ इस प्रकार से कह कर कालाग्नि लोक महेश्वर से कहा—समस्त लोकों का अट न करो और मेरे नियोग से भिक्षा करने वाले रहो ॥६९॥ जिस समय में अनामय देवेश्वर नारायण का दर्शन करोगे तभी यह स्पष्ट रूप से पाप के शायन का उपाय कहा जायगा ॥७०॥

स देवदेवनावाक्यमाकर्ण्य भगवान् हरः ।
कपालपाणिर्विश्वात्मा चचारभुवनत्रयम् ॥७१
आस्थाय विकृतं वेषदीप्यमानं स्वतेजसा ।
श्रीमत्पवित्रं रुचिरं लोचनत्रयसंयुतम् ॥७२
सहस्रसूर्य्यप्रतिमं सिद्धैः प्रथमपुङ्गवैः ।
भाति कालाग्निनयनो महादेवः समावृतः ॥७३
पीत्वा तदमृतं दिव्यमानन्दम्परमेष्ठिनः ।
लीलाविलासबहुलोलोकानागच्छतीश्वरः ॥७४
तं दृष्ट्वा कालवदनं शंकरं कालभैरवम् ।
रूपलावण्यसम्पन्नं नारीकुलमगादनु ॥७५
गायन्ति गीतंविविधंनृत्यन्ति पुरतः प्रभोः ।
सस्मितं पेक्ष्यवदनञ्चक्रुर्भ्रूभङ्गमेव च ॥७६
स देवदानवादीनां देशानभ्येत्य शूलधृक् ।
जगाम विष्णोर्भुवनं यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तमः ॥७७

वह भगवान् हर भी देवता के वाक्य का श्रवण करके हाथ में एक कपाल ग्रहण करके तीनों भुवनों में विचरण करने लगे थे ॥७१॥ अपने तेज से परम दीप्यमान विकृत वेष में समवस्थित होकर जो कि श्री से सम्पन्न—पवित्र—रुचिर और तीन लोचनों से संयुत था। सहस्रों सूर्यों के सदृश उनका स्वरूप था। वह कालाग्नि नयन वाले महादेव श्रेष्ठतम प्रमथ

गए और सिद्धों से समावृत होकर अतीव शोभित हो रहे थे ॥७२-७३॥ परमेष्ठी प्रभु के दिव्य आनन्दामृत का पान करके लीलाओं के बहुत से विलासों से समान्वित ईश्वर लोकों में आ गये थे ॥७४॥ काल वदन काल भैरव तथा रूप और लावण्य से सम्पन्न भगवान् शङ्कर का दर्शन करके नारीगण का समुदाय उनके पीछे चला जाया करता था ॥७५॥ नारियाँ विविध प्रकार के गीतों को गाती हुई आया करती थी और प्रभु के आगे वे नृत्य भी किया करती थी। स्मित से युक्त मुख को देख करके भ्रूओं का भृङ्ग भी वे किया करती थी ॥७६॥ उस प्रकार से वह प्रभु देवों और दानवों के देशों में जाकर शूलधृक् भगवान् विष्णु के भुवन में गये थे जहाँ पर साक्षात् प्रभु पुरुषोत्तम विराजमान रहा करते थे ॥७७॥

सम्प्राप्य दिव्यभवन शंकरो लोकशंकरः ।
सहैव भूतप्रवरैः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥७८
अविज्ञाय पर भाव दिव्य तत्पामेश्वरम् ।
न्यवारयत्त्रिशूलाकं द्वारपालो महाबलः ॥७९
शखचक्रगदापाणिः पीतवासामहाभुजः ।
विष्वक्सेनइतिख्यातोविष्णोरंशसमुद्भव ॥८०
(अथ त शकरगण युयुधेविष्णुसम्भवः ।
भीषणो भैरवादेशात्कालवेगइतिस्मृतः) ॥८१
विजित्य त कालवेग क्रोधसरक्तलोचनः ।
दुद्रावाभिमुख रुद्र चिक्षेप चासुदर्शनम् ॥८२
अथ देवो महादेवस्त्रिपुरारिस्त्रिशूलभृत् ।
तमापतन्त सावज्ञमालोकयदमित्रजित् ॥८३
तदन्तरे महद्भूत युगान्तदहनोपमम् ।
शूलेनोरसिनिर्भिद्य पातयामास त भुवि ॥
स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वम्परमं बलम् ।
तत्याज जीवित दृष्ट्वा मृत्यु व्याधियता इव ॥८४

लोक का कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर सब अपने प्रमुख भूत प्रवरों के साथ ही प्रवेश करने लगे थे ॥७८॥ उस पारमेश्वर दिव्य पर-

भाव को समझ कर महाबल द्वारपाल ने त्रिशूल के चिह्नधारी शिव को अन्दर प्रवेश करने से रोक दिया था ॥७६॥ शंख—चक्र—गदा हाथों में ये सब आयुधों के धारण करने वाले—पीताम्बर धारी महान् भुजाओं से युक्त विष्णु के अंश से समुद्भव वाले विष्वक्सेन—इस नाम से विख्यात थे ॥८०॥ इसके अनन्तर विष्णु सम्भूत विष्वक्सेन ने उस शंकर के गण से युद्ध किया था। भैरव के समादेश से भीषण काल वेग—ऐसा कहा गया था ॥८१॥ क्रोध से सकषायनो वाले ने उस काल वेग विजित कर दिया था। फिर रुद्र के सम्मुख गमन किया था और सुदर्शन अस्त्र को प्रक्षिप्त किया था ॥८२॥ इसके उपरान्त त्रिपुरासुर के हनन करने वाले त्रिशूल धारी देव महादेव ने जो सभी शत्रुओं को जीत लेने वाले हैं अपनी ओर अवज्ञा पूर्वक आते हुए उसको देखा था ॥८३॥ उस बीच में उन दोनों का युग के अन्त में अग्नि के समान ही बड़ा भारी युद्ध हुआ था। शूल से वक्ष स्थल में निर्भेदन करके उसको भूमि में गिरा दिया था। वह भी शूल से अत्यन्त अभिहत होकर अपने परम बल का त्याग करके व्याधि से आहत मृत्यु की भाँति जीवित को उसने त्याग दिया था ॥८४॥

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्द्धं प्रथमपुङ्गवैः ।
विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम् ॥८५
वीक्ष्य जगतो हेतुमीश्वरं भगवान्हरिः ।
शिरोललाटात्सम्भिद्य रक्तधारामपातयत् ॥८६
गृहाणभिक्षां भगवन् ! मदीयाममितद्युते ! ।
न विद्यतेऽन्या ह्युचिता तव त्रिपुरमर्द्दन ! ॥८७
न सम्पूर्णं कपालं तद्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु सा च धारा प्रवाहिता ॥८८
अथाब्रवीत्कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः ।
संस्तूय विविधैर्भावैर्बहुमानपुरःसरम् ॥८९
किमर्थमेतद्वदनं ब्रह्मणो भवता धृतम् ।
प्रोवाच वृत्तमखिलं देवदेवो महेश्वरः ॥९०

समाहूय हृषीकेशोब्रह्महत्यामथाच्युतः ।
प्रार्थयामास भगवान्विमुञ्चेतित्रिशूलिदम् ॥९१

इस प्रकार से विष्णु के पुरुष को निहत करके प्रमथ श्रेष्ठों के साथ ही कलेवर का समादान करके अन्तर गृह में भगवान् शङ्कर ने प्रवेश किया था ॥८५॥ भगवान् श्री हरि ने इस जगत् के हेतु उन ईश्वर को देख कर ललाट से शिर का सम्भेदन करके रक्त की धारा को पातित कर दिया था ॥८६॥ हे अमित द्युति से सम्पन्न ! मेरी भिक्षा को ग्रहण कीजिए । हे त्रिपुर के मर्दन करने वाले ! इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी आपके लायक समुचित भिक्षा नहीं है ॥८७॥ वह परमेष्ठी ब्रह्मा का कपाल दिव्य एक सहस्र वर्ष पर्यन्त भी सम्पूर्ण नहीं हुआ था और वह रक्त की धारा तो निरन्तर प्रवाहित होती रही थी ॥८८॥ इसके उपरान्त प्रभु नारायण श्रीहरि ने काल रुद्र से अनेक भावों के द्वारा उनका बहुमान पूर्वक स्तवन करके कहा था ॥८९॥ हे भगवन् ! यह ब्रह्मा का मुख किस लिये किस प्रयोजन की पूर्ति करने के निमित्त धारण किया था । तब इस विष्णु देव के प्रश्न करने पर देवों के देव महेश्वर ने सभी घटित घटना का हाल सुना दिया था ॥९०॥ इसके उपरान्त अच्युत हृषीकेश भगवान् ने ब्रह्महत्या को अपने निकट में बुलाकर यह प्रार्थना की थी कि अब तू त्रिशूली प्रभु को छोड दे ॥९१॥

न तत्याजाऽथ सा पार्श्वं व्याहृताऽपि मुरारिणा ।
चिरं ध्यात्वा जगद्योनिं शङ्करं प्राह सर्ववित् ॥९२
व्रजस्वदिव्यां भगवन्पुरीवाराणसीं शुभाम् ।
यत्राखिलजगद्दोषात्क्षिप्रन्नाशयतीश्वरः ॥९३
ततः सर्वाणिभूतानितीर्थान्यायतनानिच ।
जगामलीलयादेवोलोकानांहितकाम्यया ॥९४
संस्तूयमानः प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः ।
नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः ॥९५
तमभ्यधावद्भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
समास्थाय परं रूपं नृत्यदर्शनलालसः ॥९६

निरीक्षमाणो गोविन्द वृषेन्द्राङ्कितशासन ।
सस्मयोनन्तयोगात्मा नृत्यतिस्म पुन. पुन ॥९७

भगवान् मुरारि के द्वारा भली भाँति प्रार्थना करने पर भी उस ब्रह्म-हत्या ने उनके पार्श्व का त्याग नही किया था। फिर चिरकाल पर्यन्त ध्यान करके सर्व वेत्ता प्रभु ने जगत् की योनि भगवान् शङ्कर से कहा था ॥६२॥ हे भगवन् ! अब आप परम शुभ एव दिव्य वाराणसी पुरी मे चले जाइये जहाँ पर समस्त जगत् के दोषो को शीघ्र ही ईश्वर नष्ट कर दिया करते हैं ॥६३॥ इसके पश्चात् सभी भूत मात्र तीर्थ और आयतन लीला से ही वह देव भी लोको की हित कामना से वहाँ पर चले गये थे। ॥६४॥ प्रमथ गणो के द्वारा सस्तूयमान होते हुए जो कि महान् योग वाले भगवान् शिव के इधर-उधर थे। वह महान् योगी भी हाथ मे कलेवर को ग्रहण किये हुए नृत्यमान हो रहे थे ॥६५॥ हरि प्रभु नारायण भी उनके ही पीछे पीछे दौड लगाकर चल दिये थे उन्होने अपना पर स्वरूप धारण कर लिया था और उनके हृदय म भी भगवान् शङ्कर के उस आनन्द पूर्ण नृत्य के देखने की लालसा उत्पन्न हो गई थी ॥६६॥ वृषेन्द्र से अङ्कित शासन वाले भगवान् शिव स्वय साक्षात् गोविन्द को वहाँ पर देखकर उन अनन्त योगात्मा को बडा विस्मय हुआ था और वे फिर बारम्बार अपना नृत्य करने लगे थे ॥६७॥

अनु चानुचरो रुद्रं स हरिर्द्धर्मवाहन ।
भेजे महादेवपुरी वाराणसीति विश्रुताम् ॥९८
प्रविष्टमात्रे विश्वेशे ब्रह्महत्या कपर्दिनि ।
हाहेत्युक्त्वा सनादवं पाताल प्रापदुःखिता ॥९९
प्रविश्यपरम स्थान कपाल ब्रह्मणो हर ।
गणानामग्रतो देवः स्थापयामास शङ्कर ॥१००
स्थापयित्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम् ।
उक्त्वा सजीवमस्त्विति विष्णवेऽसौ घृणानिधिः ॥१०१
ये स्मरन्ति ममाजस्रं कापाल वेषमुत्तमम् ।
तेषाविनश्यतिक्षिप्रमिहामुत्रचपातकम् ॥१०२

आगम्य तीर्थप्रवरे स्नानंकृत्वा विधानतः ।
तर्पयित्वा पितृन्देवान्मुच्यतेब्रह्महत्यया ।।१०३

इसके पश्चात् धर्म के वहन करने वाले उन भगवान् हरि ने अनुचर होकर ही रुद्रदेव की सेवा की थी वाराणसी—इस नाम से प्रसिद्ध उस महादेव की पुरी का ही समाश्रय ग्रहण किया था ।।९८।। भगवान् विश्वेश्वर के वाराणसी पुरी मे प्रविष्ट होते ही कपर्दि प्रभु मे जो ब्रह्महत्या संलग्न हो रही थी वह 'हा हा'—ऐसा कहकर बडी ध्वनि के करने के साथ ही परम दुःखिता होती हुई पाताल लोक मे चली गई थी ।।९९।। भगवान् हर ने वाराणसी मे प्रवेश करके परम स्नान करके देव शङ्कर ने उन सभी गणो के सामने उस ब्रह्मा के कपाल को सस्थापित कर दिया था ।।१००।। महादेव ने कपाल को वहाँ स्थापित करके उस कलेवर को 'यह सजीव हो जावे'—ऐसा कहकर कृपा के निधि ने भगवान् विष्णु को दे दिया था ।।१०१।। जो लोग निरन्तर ही मेरे इस कापाल उत्तम वेष का स्मरण करते है उनका ऐहलौकिक और पारलौकिक सम्पूर्ण पातक शीघ्र ही नष्ट हो जाया करता है ।।१०२।। इस तीर्थों मे परमश्रेष्ठ वाराणसी पुरी मे आगमन करके और विधि पूर्वक यहाँ पर स्नान करके तथा पितृगण और देवो का तर्पण करके मनुष्य ब्रह्महत्या के दोष से विमुक्त हो जाया करता है ।।१०३।।

अशाश्वतञ्जगज्ज्ञात्वा ब्रजध्व परमाम्पुरीम् ।
देहान्तेतत्परं ज्ञान ददाति परमम्पदम् ।।१०४
इतीदमुक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्य जनार्दनम् ।
सहैवप्रमथेशानैः क्षणादन्तरधीयत ।।१०५
स लब्ध्वा भगवान्कृष्णो विष्वक्सेनं त्रिशूलिनः ।
स्व देशमगमत्तूष्णी गृहीत्वा परमं वुध. ।।१०६
एतद्वः कथितं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
कपालमोचनतीर्थं स्थाणोः प्रियकरंशुभम् ।।१०७
यइम पठतेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः ।
मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्चप्रमुच्यते ।।१०८

अतएव इस जगत् को निरन्तर न बने रहने वाला जान कर उसी परमश्रेष्ठ पुरी में गमन करना चाहिए। यह पुरी देह के अन्त में परमश्रेष्ठ ज्ञान और परम पद को प्रदान किया करती है। यहाँ श्रेष्ठ ज्ञान और परमोत्कृष्ट पद इन दोनों की प्राप्ति होती है ॥१०४॥ इस प्रकार से इतना कहकर भगवान् शङ्कर ने जनार्दन प्रभु का सानन्द समालिङ्गन करके फिर प्रभ केशानों के साथ ही एक ही क्षण में वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे। ॥१०५॥ वह भगवान् कृष्ण भी त्रिशूली से विश्वक्सेन का ग्रहण करके बुध अपने परम स्वदेश को चुपचाप चले गये थे ॥१०६॥ हमने यह सम्पूर्ण चरित्र जो कि परम पुण्यमय है प्राय सब लोगों के समक्ष में कह कर सुना दिया है। यह चरित्र बड़े से बड़े महा पातक का नाश करने वाला है। यही भगवान् स्थाणु देव का परम प्रिय करने वाला तथा अत्यन्त शुभ कपाल मोचन तीर्थ है ॥१०७॥ जो इस अध्याय को ब्राह्मणों के समीप में ही पाठ किया करता है वह मानस—वाचिक और कायिक समस्त प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाता है ॥१०८॥

३२—प्रायश्चित्तप्रकरणवर्णन

सुरापस्तु सुरातप्तामग्निवर्णाम्पिवेत्तदा।
निर्दग्धकायः स तयामुच्यते च द्विजोत्तमः ॥१
गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा।
पयो घृत जल वाय मुच्यते पातकात्ततः ॥२
जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वानारायणं हरिम्।
ब्रह्महत्याव्रतञ्चाथ चरेत्पापप्रशान्तये ॥३
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्माम्भवाननुशास्त्विति ॥४
गृहीत्वामुसलं राजासकृद्धन्यात्तुतंस्वयम्।
वधेतुशुद्धयतेस्तेनो ब्राह्मणस्तपसाथवा ॥५

स्कन्धेनादायमुसलंलगुडंवापिखादिरम् ।
शक्तिञ्चादायतीक्ष्णाग्रामायसदण्डमेववा ॥६
राजातेनचगन्तव्यो मुक्तकेशेनधावता ।
आचक्षाणेनतत्पापमेतत्कर्म्मास्मिशाधिमाम् ॥७

महामहिम महर्षि श्री व्यासदेव ने कहा—जो सुरा पीने वाला जो होता है उसे उस समय में तप्त अग्नि के वर्ण के समान सुरा का पान करना चाहिए—यही इसका प्रायश्चित्त है जब वह निर्दग्ध काया वाला होता है तो वह द्विजोत्तम उस मदिरा के पाप से मुक्त हो जाता है ॥१॥ अथवा अग्नि के वर्ण के समान एकदम गर्म गोमूत्र या गौ के गोबर का रस—पय—घृत अथवा जल पीवे तो भी इस पातक से मुक्ति हो जाया करती है किन्तु ये सभी अत्यन्त उष्ण होने चाहिए ॥२॥ जल से आर्द्र वसन वाला प्रयत होकर हरि श्री भगवान् नारायण का ध्यान करके पाप की प्रशान्ति के लिये ब्रह्महत्या के व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥३॥ जो विप्र सुवर्ण की चोरी करने वाला हो उसे स्वयं राजा के समीप में उपस्थित होकर अपने किये हुए कर्म को स्थापित करते हुए राजा से प्रार्थना करे कि आप मुझे मेरे किये हुए पाप कर्म का अनुशासन करें ॥४॥ राजा को भी मुसल हाथ में लेकर स्वयं उसको कई बार हनन करे । वध करने पर तो स्तेन ब्राह्मण शुद्ध होता है अथवा तप से शुद्ध हो जाता है ॥५॥ कन्धे पर मुसल अथवा खदिर का लगुड या तीक्ष्ण अग्रभाग वाली शक्ति को अथवा लोहे के दण्ड को लेकर राजा को उसे चलाना चाहिए । उस समय उसके केश खुले हुए होने चाहिए और दौड़ा लगाकर चले । वह अपने किये हुए पाप को भी मुँह से कहता हुआ दौड़े कि मैं ऐसे कर्म के करने वाला हूँ मुझे दण्डाज्ञा प्रदान कीजिए ॥६-७॥

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याऽऽप्नोति किल्विषम् ॥८
तपसापनोत्तुमिच्छंस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद् ब्रह्महणो व्रतम् ॥९

स्नात्वाश्वमेधावृथेपूतःस्यादथवाद्विजः ।
प्रदद्याद्वाथविप्रेभ्य.स्वात्मतुल्यहिरण्यकम् ॥१०
चरेद्वा वत्सर कृच्छ् ं ब्रह्मचर्यपरायणः ।
ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापम्यापनुत्तये ॥११
अधः शयीत नियतोमुच्यते गुरुतल्पगः ।
कृच्छ् ं वाब्दञ्चरेद्विप्रश्चीरवासा समाहितः ॥१२
अश्वमेधावभृथके स्नात्वावाशुद्धघतेद्विज. ।
कालेऽष्टमेवा भुञ्जानोब्रह्मचारीसदाव्रती ॥१३
स्थानाशनाभ्या विहर स्त्रिरह्नोऽभ्युपयत्नतः ।
अध.शायी त्रिभिर्वर्षैस्तद्व्यपोहति पातकम् ॥१४

शासन से अथवा विमोक्ष से चोर चोरी के पाप से विमुक्त हो जाया करता है। यदि किसी भी चोर का कुछ भी शासन न करे तो फिर वह राजा भी स्तेन के पाप का भागी हो जाया करता है ॥८॥ सुवर्ण की चोरी के पाप को यदि कोई तपश्चर्या के द्वारा ही अपनोदन करने की इच्छा रखता हो तो उस द्विज को चीरो के वस्त्र धारण कर वन मे ब्रह्महत्या के अपनोदन वाले व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥९॥ अथवा द्विज अश्वमेधा व भृत मे स्नान करके पूत हो जाता है अथवा विप्रो के लिये अपनी आत्मा के तुल्य सुवर्ण का दान देना चाहिए ॥१०॥ अथवा ब्रह्मचर्य व्रत मे परायण होकर एक वर्ष पर्यन्य कृच्छ व्रत का समाचरण करे। स्वर्ण के हरण करने वाले ब्राह्मण को उसके होने वाले पाप के अपनोदन के लिये ऐसा ही विधान करना आवश्यक है ॥११॥ गुरु की शय्या पर गमन करने वाले को नियत रूप से अधोभाग मे ही शयन करना चाहिए तो वह मुक्त हो जाता है। अथवा विप्र को चीरो के वसन वाला होकर एक वर्ष तक परम समाहित होते हुए कृच्छ व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥१२॥ अथवा द्विज अश्वमेध यज्ञ के अववृथक मे स्नान करके शुद्ध हो जाया करता है। अथवा आठवें काल मे भोजन करता हुआ ब्रह्मचारी एव सदा व्रत वाला रहे ॥१३॥ तीन दिन तक अभ्युप यत्न से स्थान और आसन से विहार करता हुआ तीन वर्ष पर्यन्त अधो-

भाग में शयन करने वाला पुरुष उस पातक का व्यपोहन करा दिया करता है ॥१४॥

चान्द्रायणानि वा कुर्यात्पञ्च चत्वारि वा पुनः ।
पतितैः सम्प्रयुक्तात्मा अथ वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥१५
पतितेन तु संसर्गं यो येन कुरुते द्विज ।
स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत् ॥१६
तप्तकृच्छ्रञ्चरेद्वाथ सम्वत्सरमतन्द्रित. ।
षाण्मासिके तु संसर्गे प्रायश्चित्तार्थमाचरेत् ॥१७
एभिर्व्रतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम् ।
पुण्यतीर्थाभिगमनात्पृथिव्या वाथ निष्कृति. ॥१८
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमम् ।
कृत्वातैश्चापि संसर्गं ब्राह्मण कामचारत ॥१९
कुर्यादनशनं विप्रः पुनस्तीर्थे समाहित. ।
ज्वलन्तम्वा विशेदग्निं ध्यात्वा देवं कपर्दिनम् ॥२०
न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिर्द्धर्म्मवादिभि ।
तस्मात्पुण्येषु तीर्थेषु दहन्वापि स्वदेहकम् ॥२१

अथवा पातक से मुक्त होने के पाँच या चार चान्द्रायण व्रत करे। जो पतितो के साथ सम्पर्क द्वारा सम्प्रयुक्त आत्मा वाला है अब उसकी निष्कृति के विषय मे बतलाया जाता है कि वह किस विधान के करने से शुद्धि प्राप्त करता है ॥१५॥ जो द्विज जिस पतित के साथ संसर्ग रखता है उस पाप के अपनोदन कर शुद्ध होने के लिये उसी क व्रत का समाचरण करना चाहिए क्योकि वह उसी प्रकार के पाप का भागी हो जाया करता है ॥१६। तन्द्रा से रहित होकर उस द्विज को तप्तकृच्छ्र व्रत का समाचरण करना चाहिए। वह व्रत भी पूरे एक वर्ष तक करे। यदि वह पातत के साथ संसर्ग केवल छँ मास तक ही रहा हो तो उसका प्रायश्चित्त भी आधा ही करना चाहिए ॥१७॥ इन्ही व्रतो के द्वारा महा पातको के करने वाले भी मले का व्यपोहन कर दिया करते है। अथवा पृथिवी मे जो परम पुण्य तीर्थ हैं उनमें अभिगमन करने से भी ऐसे पातको की

निष्कृति हुआ करती है ॥१८॥ ब्रह्महत्या—सुरा का पान—स्तेय (चोरी) और गुरु की पत्नी के साथ गमन करना—इन महापातकों को करके या या ऐसे पातकियों के साथ स्वेच्छा से संसर्ग करके ब्राह्मण पहिले तो विप्र को अनशन करना चाहिए। फिर तीर्थ में समाहित होकर जावे। अथवा भगवान् देव कपर्दी का ध्यान करके जलती हुई अग्नि में प्रवेश करे ॥१९-२०॥ धर्म्म के तत्त्व को बताने वाले मुनिगण ने इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन महा पातकियों की शुद्धि होने के लिये निष्कृति नहीं देखा है। इसलिये पुण्य तीर्थों में अपने देह को दग्ध करते हुए भी अपनी शुद्धि अवश्य ही करनी चाहिए ॥२१॥

३३—प्रायश्चित्तकथन

उदक्या गमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति।
चाण्डालीगमने चैव तप्तकृच्छ्रत्रयं विदुः ॥१
शुद्धिःसान्तपनेनस्यान्नान्यथानिष्कृतिः स्मृताः।
मातृगोत्रामारुह्यसमानप्रवरांतथा ॥२
चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मासमाहितः।
ब्राह्मणोब्राह्मणीगत्वा कृच्छ्रमेकसमाचरेत् ॥३
कन्यकां दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम्।
अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ॥४
रेतःसिक्त्वाजलेचैवकृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत्।
वार्द्धिकीगमने विप्रस्त्रिरात्रेणविशुद्धयति ॥५
वेश्यायांमैथुनं कृत्वाप्राजापत्यंचरेद्द्विजः।
पतिताञ्च स्त्रियं गत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयति।
पुल्कसीगमने चैव कृच्छ्रञ्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥६
नटींशैलूषकीञ्चैवरजकींवेणुजीविनीम्।
गत्वाचान्द्रायणंकुर्यात्तथा चर्मोपजीविनीम् ॥७

महर्षि प्रवर व्यासजी ने कहा—जो उदक्या अर्थात् रजस्वला स्त्री हो उसके साथ गमन करने पर विप्र तीन रात्रि में विशुद्ध होता है। चाण्डाली

के साथ गमन करने पर तो तीन तप्त कृच्छ्र व्रत करने चाहिए ॥१॥ अथवा सान्तपन व्रत करे तो भी शुद्धि होजाती है। इनके अतिरिक्त अन्यथा अन्य किसी भी साधन के द्वारा निष्कृति नहीं बतलायी गई है। माता के गोत्र वाली स्त्री तथा समान प्रवर वाली स्त्री पर समारोहण करके चन्द्रायण महाव्रत से ही शुद्धि होती है जो कि परम प्रयत आत्मा वाला अतीव समाहित होकर करे। ब्राह्मण यदि किसी भी ब्राह्मणी का ही अभिगमन करे तो उसे फिर पाप के अपमोदन करने के लिये एक ही कृच्छ्र व्रत का समाचरण पर्याप्त होता है ॥२-३॥ यदि किसी कन्या का शील भङ्ग करके दूषित करे तो उसको भी चान्द्रायण महाव्रत का ही समाचरण करना चाहिए। कोई पुरुष अमानुषी—उदकी—और अयोनि में तथा जल में अपने वीर्य का सेचन करता है तो उसे शुद्धि के लिये कृच्छ्र सान्तपन व्रत का समाचरण करना चाहिए वार्द्ध की स्त्री के गमन में विप्र तीन रात्रि में विशुद्ध होजाया करता है ॥४-५॥ गौ में मैथुन का आसेवन करके चान्द्रायण व्रत को ही करना चाहिए। वेश्या में मैथुन करके द्विज को शुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत का समाचरण करना चाहिए। पतिता स्त्री का गमन कर तीन कृच्छ्रों से विशुद्ध हुआ करता है। पुल्कसी के गमन में कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥६॥ नदी—शैलूषकी—रज की—वेणु जीवनी तथा वमोपजीवनी इनका गमन करके चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥७॥

ब्रह्मचारी स्त्रियगच्छेत्कथञ्चित्कामसोहित.।
सप्तागारञ्चरेद्भैक्षं वसित्वा गर्दभाजिनम् ॥८

उपस्पृशेत्त्रिषवणं स्वपापम्परिकीर्त्तयन्।
सम्वत्सरेणचैकेन तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥९

ब्रह्महत्याव्रतञ्चापि षण्मासान्विचरन्यमी।
मुच्यते ह्यवकीर्णीतुब्राह्मणानुमतेस्थितः ॥१०

सप्तरात्रमकृत्वा तु भैक्षचर्याग्निपूजनम्।
रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥११

ओङ्कारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभि सदा ।
सम्वत्सरन्तु भुञ्जानो नक्तम्भिक्षाशनः शुचिः ॥१२
सावित्रीञ्चजपेन्नित्यसत्वराःक्रोधवर्ज्जितः ।
नदीतीरेषुतीर्थेषु तस्मात्पापाद्विमुच्यते ॥१३
हत्वातुक्षत्रियविप्र कुर्याद्ब्रह्महणोव्रतम् ।
अकामतोवं षण्मासान्दद्यात्पञ्चशतगवाम् ॥१४

यदि कोई भी ब्रह्मचर्य्य व्रत के धारण करने वाला द्विज कामदेव से मोहित होकर किसी भी तरह किसी स्त्री का गमन कर लेवे तो उसकी विशुद्धि का विधान यही है कि उसे गर्दभ के चर्म का वसन बनाकर सात घरों में भिक्षा का समाचरण करना चाहिए ॥८॥ त्रिषवण मे अर्थात् तीनों वेलाओं मे स्नान कर उप स्पर्शन करे और विहित पाप का स्पष्टसन के समक्ष मे उसे कीर्त्तन करना चाहिए। इस प्रकार से निरन्तर एक वर्ष पर्य्यन्त करे तो उस पाप से उसकी मुक्ति होती है ॥६॥ यमी को ब्रह्म हत्या के मोचन के लिये जो व्रत का विधान है उसे भी छंमास तक करने से ब्राह्मणो के अनुमन मे स्थित होकर रहने वाला अवकीर्णी मुक्त हो जाया करता है ॥१०॥ सात रात्रि तक भैक्ष चर्य्या और अग्नि देव का पूजन करके भी वीर्य्य का समुत्सर्ग करने पर द्विज को प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥११॥ ओंकार पूर्वक महाव्याहृतियो से सदा एक सम्वत्सर तक रात्रि मे शुचि होकर भिक्षा द्वारा अशन करते हुए सावित्री देवी का नित्य जाप करे तथा सत्वर और क्रोध से वर्जित रहे और नदी के तटो पर तीर्थो मे समवस्थित होकर करे तो इस पाप से छुटकारा प्राप्त कर लेता है ॥१२-१३॥ विप्र यदि किसी क्षत्रिय का हनन कर डाले तो उसे भी ब्रह्म हत्या के अपनोदन का ही व्रत करना चाहिए और यदि बिना ही इच्छा के ऐसा बन पडे तो छंमास तक पाँचसौ गौओ का दान करना चाहिए। तब मुक्ति होती है ॥१४॥

अब्दञ्चरेद्धयानयुतो वनवासीसमाहित ।
प्राजापत्यसान्तपतन तप्तकृच्छ्रन्तुवास्वयम् ॥१५

प्रमादात्कामतोवैश्यं कुर्यात्सम्वत्सरत्नयम् ।
गोसहस्रन्तुपादन्तुप्रदद्याद्ब्रह्मणोव्रतम् ।।१६
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा ।
सम्वत्सरं व्रत कुर्याच्छूद्रं हत्वा प्रमादतः ।।१७
गोसहस्रार्धपादञ्च दद्यात्तत्पापशान्तये ।
अष्टौवर्षाणिवात्रीणिकुर्याद् ब्रह्महणोव्रतम् ।।१८
हत्वा तु क्षत्रियं वैश्य शूद्रञ्चैव यथाक्रमम् ।।१९
निहत्यब्राह्मणीविप्रस्त्वष्टवर्षं व्रतञ्चरेत् ।
राजन्यावर्षट्कन्तु वैश्या सम्वत्सरत्नयम् ।।२०
वत्सरेण विशुद्धयेत शूद्री हत्वा द्विजोत्तमः ।
वैश्या हत्वा द्विजातिस्तु किञ्चिद्दद्याद् द्विजातये ।।२१

ध्यान से युत होकर एक वर्ष पर्यन्त वन में निवास करने वाला परम समाहित होकर प्राजापत्य व्रत—सान्तपन व्रत अथवा तप्त कृच्छ्र व्रत ही करे ।।१५।। प्रमाद के वश में आकर अथवा कामना पूर्वक किसी वैश्य का हनन कर डाले तो तीन सम्वत्सर पर्यन्त करना चाहिए । ब्राह्मण की हत्या के अपनोदन का व्रत करे और एक सहस्र गौओं का तथा इसका चतुर्थ भाग का दान करना चाहिए ।।१६।। अथवा कृच्छ्र—अतिकृच्छ्र व्रतों को या चान्द्रायण व्रत को करे । एक सम्वत्सर पर्यन्त व्रतों का समाचरण शूद्र का हनन करके भी करना चाहिए यदि प्रमाद से ही यह किया गया हो ।।१७।। और एक सहस्र—तथा अर्द्ध भाग या चतुर्थ भाग गौओं का दान पाप की प्रशान्ति के लिये करे । आठ वर्ष या तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या पनोदन व्रत को करे ।।१८।। क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र का हनन करके यथा क्रम ही करना चाहिए ।।१९।। विप्र यदि किसी ब्राह्मणी की हत्या कर डाले तो आठ वर्ष तक उसे व्रत करना चाहिए । क्षत्रिय स्त्री के वध पर छः वर्ष और वैश्य स्त्री के हनन में तीन वर्ष तक करना चाहिए ।।२०।। यदि विप्र किसी शूद्र स्त्री का वध कर डाले तो उसे विशुद्धि के लिये एक वर्ष पर्यन्त व्रत का समाचरण करना चाहिए ।

द्विजाति यदि वैश्या का हनन कर देवे तो उसे द्विजाति के लिये कुछ दान करना चाहिए ॥२१॥

अन्त्यजानाम्वधे चैव कुर्याच्चान्द्रायणंव्रतम् ।
पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानजः ॥२२
मण्डूकं नकुलंकाकविडालं खरमूषकौ ।
श्वान हत्वाद्विजः कुर्यात्षोडशांशंमहाव्रतम् ॥२३
पयः पिबेत्त्रिरात्रन्तुश्वान हत्वाह्यतन्द्रित. ।
मार्जार वाथनकुल योजनञ्चाध्वनोव्रजेत् ॥२४
कृच्छ्र द्वादशरात्रन्तुकुर्यादश्ववधेद्विजः ।
अर्च्चाकार्ष्णायसीदद्यात्सर्पंहत्वाद्विजोत्तमः ॥२५
पलालभारक षण्ढे सीसकञ्चैकमाषकम् ।
घृतकुम्भ वराहे तु तिलद्रोणन्तु तित्तिरे ॥२६
शुक द्विहायनवत्स क्रौञ्चहत्या त्रिहायनम् ।
हत्वा हस वलाकाञ्चवकं वर्हिणमेवच ॥२७
वानर श्येनभासञ्च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम् ।
क्रव्यादास्तु मृगान्हत्वा धेनु दद्यात्पयस्विनीम् ॥२८

अन्त्यजो के वध मे भी चान्द्रायण व्रत करके ही विशुद्धि का विधान है। भगवान् अज ने यह भी कहा है कि पराक व्रत से भी शुद्धि होजाती है ॥२२॥ मण्डूक—नकुल—काक—विडाल—खर और मूषक तथा श्वान इनकी हत्या करके द्विज को पाप से विशुद्ध होने के लिये महाव्रत का सोलहवाँ भाग अवश्य ही करना उचित है ॥२३॥ किसी श्वान की हत्या कर के तीन रात्रि तक अतन्द्रित होकर पय का पान करे। मार्जार अथवा नकुल का वध करके मार्ग में एक योजन तक गमन करे ॥२४॥ द्विज को अश्व के वध मे बारह रात्रि तक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। द्विजोत्तम को सर्प का हनन करके कार्ष्णायसी अर्चा देनी चाहिए ॥२५॥ षण्ढ के वध मे एक पलालभारक और एक माषक शीशा दान करे। वराह मे घृत पूर्ण कुम्भ और तीतर के वध मे एक द्रोण तिलो का दान करना चाहिए ॥२६॥ शुक के वत्स को मारने पर दोहायन—क्रौञ्च के

वध मे तीन हायन-हंस-बलाका—वक—बर्हो—वानर—श्येन—भास के वध मे ब्राह्मण को गौ का स्पर्श कराय। क्रव्याद मृगो का हनन करके पयस्विनी धेनु का दान करना चाहिए ॥२७-२८॥

अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वातुकृष्णलम् ।
किञ्चिद्देयन्तु विप्रायदद्यदस्थिमतावधे ॥२९
अनस्थ्नाञ्चैव हिंसायांप्राणायामेनशुध्यति ।
फलदानांतुवृक्षाणां छेदनेजप्यमृक्शतम् ॥३०
गुल्मवल्लीलतानांतु पुष्पितानाञ्चवीरुधाम् ।
अण्डजानाञ्चसर्वेषां स्वेदजानाञ्चसर्वश ॥३१
फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम् ।
हस्तिनाञ्च वधे दृष्टं तप्तकृच्छ्र विशोधनम् ॥३२
चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादत ।
मतिपूर्व्ववधे चास्या प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३३

अक्रव्याद् वत्सतरी, कृष्णल उष्ट्र का हनन करके ब्राह्मण को अस्थि-मानों के वध म कुछ दान अवश्य ही करना चाहिए ॥२९॥ जिनके अस्थियाँ नहीं होती है ऐसे प्राणियो के वध म तो केवल प्राणायाम करने से ही द्विज की पाप से शुद्धि होजाया करती है। जो फलो के प्रदान करने वाले वृक्ष हैं उनके काटने पर सौ ऋचाओं का जप करना चाहिए ॥३०॥ गुल्म, वल्ली, लता और पुष्पो वाली वीरुधो के छेदन करने मे तथा सभी अण्डज प्राणियो के एव स्वेदज जीवो के वध म तथा फल एव पुष्पो के उद्भव करने वाला के छेदन म घृत का प्राश करलेना ही विशोधन होता है। हाथियों के वध म तो तप्त कृच्छ्र ही विशोधन देखा गया है ॥३१-३२॥ प्रमाद से गौ का वध हो जाने पर चान्द्रायण महाव्रत या पराक व्रत करे। जान बूझ कर बुद्धि पूर्वक गौ के वध करने पर तो कोई भी पाप से शुद्धि पाने का प्रायश्चित्त ही नहीं है। निष्कर्ष यही है कि ज्ञान पूर्वक गोवध एक अत्यन्त ही महान पाप होता है जिससे छुटकारा ही नहीं है ॥३३॥

३४—प्रायश्चित्तवर्णन

मनुष्याणान्तुहरणङ्कृत्वास्त्रीणांगृहस्य च ।
वापीकूपजलानाञ्चशुद्धयेच्चान्द्रायणेनतु ॥१
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥२
धान्यान्नधनचौर्यंतु कृत्वा कामाद् द्विजोत्तम ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुध्यति ॥३
भक्ष्यभोज्योपहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥४
तृणकाष्ठद्रुमाणाञ्च शुष्कान्नस्यगुडस्यच ।
चैलचर्मामिषाणाञ्चत्रिरात्रंस्यादभोजनम् ॥५
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्यरजतस्य च ।
अयस्कान्तोपलानाञ्चद्वादशाहकणाशनम् ॥६
कार्पासस्यैव हरणे द्विशफैकशफस्यच ।
पुष्पगन्धौषधीनाञ्च पिबेच्चैव त्र्यहं पयः ॥७

महा महिम महर्षि व्यास देव ने कहा—मनुष्यों के तथा स्त्रियों के ने और गृह के हरण को करके तथा वापी कूप और जलों का हरण करके चान्द्रायण महा व्रत के करने पर ही शुद्धि होती है ॥१॥ अल्पसार वाले द्रव्यों का अन्य घर से चोरी करके उसका निर्यात करने पर अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये कृच्छ्र सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥२॥ द्विजोत्तम को धान्यान्न—धन की चोरी कामना पूर्वक करके और अपने जातीय घर से ही करने पर अर्द्धकृच्छ्र व्रत से ही शुद्धि होजाया करती है ॥३॥ भक्ष्य भोज्य—यान—शय्या—आसन—पुष्प—मूल और फलों के अपहरण करने के पाप से विशुद्धि के लिये तो केवल पञ्चगव्य का पान करना ही पर्याप्त होता है ॥४॥ तृण—काष्ठ—द्रुम—शुष्क अन्न गुड—चैल—चर्म—आमिष इनके अपहरण करने पर तीन रात्रि तक भोजन न करना ही विशोधन होता है अर्थात् यही इनका प्रायश्चित्त है

॥५॥ मणि, मोती, प्रवाल, ताम्र, चाँदी, अय (लोहा), कान्तोपल, इनके अपहरण करने पर बारह दिन तक कणों का ही अशन करे ॥६॥ कपास तथा द्विशफ और एक शफ वाले पशु, पुष्प, गन्ध, और औषधि, इनके अपहर में तीन रात्रि तक केवल पय का ही पान करना चाहिए यही इनके अपहरण के पाप की विशुद्धि का प्रायश्चित्त होता है ॥७॥

वराहं कुक्कुटं वाथ तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥८
क्रव्यादानाञ्च मांसानि पुरीषं मूत्रमेव वा ॥९
गोगोमायुकपीनाञ्च तदेव व्रतमाचरेत् ।
शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च ॥१०
उपोष्यद्वादशाहञ्चकूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् ।
नकुलोलूकमार्जाराञ्जग्ध्वासान्तपनञ्चरेत् ॥११
श्वापदोष्ट्रखराञ्जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ।
प्रकुर्याच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैवतु ॥१२
बकञ्चैव बलाकाञ्च हंसं कारण्डवास्तथा ।
चक्रवा कपलं जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम् ॥१३
कपोतटिट्टिभाश्चैव शुकं सारसमेवच ।
उलूकं जालपादञ्च जग्ध्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत् ॥१४

वराह-कुक्कुट का आमिष खाकर मनुष्य तप्त कृच्छ्र व्रत के करने से शुद्ध होता है। क्रव्यादों के मांस, पुरीष, मूत्र तथा गो, गोमायु और कपियों के माँस के खाने पर भी उसी व्रत का समाचरण करना चाहिए। शिशु मार-चाष तथा मत्स्य माँस का अशन करके बारह दिन तक उपवास करे और इसके अनन्तर कूष्माण्ड और घृत से हवन करना चाहिए। न्योला, उल्लू, बिडाल, इनका भक्षण करके सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥८-११॥ श्वापद् खर, उष्ट्र इनको खाकर तप्त कृच्छ्र व्रत करने पर ही विशुद्धि होती है। पूर्व के द्वारा विधि से ही संस्कार करना चाहिए ॥१२॥ बक, बलाका, हंस, कारण्डव, चक्रवाक इनके मांस को खाकर बारह दिन तक भोजन का ही त्याग कर देना चाहिए, यही इनका विशुद्धि का प्रायश्चित्त है। कपोत, टिट्टिभ, शुक, सारस, उलूक, जलपाद का माँस

खाकर भी यही व्रत करना चाहिए ।।१३-१४।। (ये समस्त विधान वर्तमान समय से बहुत प्राचीन समय के हैं जब भीषण अकालों के अवसर पर मनुष्य प्राण रक्षा के लिये अखाद्य वस्तुओं को खा जाते थे। अथवा भूल या किसी के धोखा देने से ऐसा कृत्य होने पर इस तरह के प्रायश्चित बतलाये जाते थे।)

शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च ।
जग्ध्वा चैव कटाहारमेतदेव व्रतञ्चरेत् ।।१५
कोकिलञ्चैवमत्स्यादान्मण्डूकं भुजगं तथा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेनशुद्ध्यति ।।१६
जलेचराश्चजलजान्प्रणुदानथ विष्किरान् ।
रक्तपादास्तथाजग्ध्वासप्ताहञ्चैतदाचरेत् ।।१७
शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थञ्च तथाकृतम् ।
भुक्त्वा मासञ्चरेदेतत्तत्पापस्यापनुत्तये ।।१८
वृन्ताकं भूस्तृणं शिग्रुं कुटकञ्चटकं यथा ।
प्राजापत्यञ्चरेज्जग्ध्वा खड्गं कुम्भीकमेव च ।।१९
पलाण्डुं लशुनञ्चैवभुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ।
नालिकां तण्डुलीयञ्च प्राजापत्येनशुध्यति ।।२०
अश्मान्तकं तथा पोतं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात्कुसुम्भस्य च भक्षणे ।।२१

शिशुमार, चाष, मत्स्य मांस को खाकर कटाहार ही व्रत का समाचरण करना चाहिए ।।१५।। कोयल, मत्स्याद, मण्डूक और सर्प का भक्षण करके एक मास पर्यन्त गोमूत्र और यावक का आहार कर तभी शुद्धि होती है ।।१६।। जलेचर, जलज, प्रणुद, विष्किर रक्तपाद इनको खाकर एक सप्ताहक इसका ही समाचरण करना चाहिए ।।१७।। कुत्ता का मांस, शुष्क मांस को अपनी आत्मा के लिये उपयोग में लावे तथा खाकर इस पाप की अपनुत्ति के लिये भी यही समाचरण करना चाहिए ।।१८।। वृन्ताक, भूस्तृण, शिग्रु, कुटक, चटक को भक्षण करके तथा खड्ग और कुम्भीनक का भक्षण करके प्राजापत्य व्रत का समाचरण करे ।।१९।।

पलाण्डु (प्याज) और लशुन (लहसन) का भक्षण करके भी चान्द्रायण व्रत शुद्धि के लिये करना चाहिए। नालिका और तण्डुलीय का भक्षण करके प्राजापत्यव्रत के करने पर ही शुद्धि होती है ।।२०।। अश्मान्तक तथा पीत को खाकर तप्तकृच्छ्र से शुद्ध हुआ करता है कुसुम के भक्षण करने पर प्राजापत्य व्रत से ही शुद्धि होती है ।।२१।।

अलावुं किंशुकञ्चैव भुक्त्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत् ।
एतेषाञ्चविकाराणिपीत्वा मोहेनवापुनः ।।२२
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुध्यति ।
उदुम्बरञ्च कामेन तप्तकृच्छ्रे शुध्यति ।
भुक्त्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा ।।२३
चान्द्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मण सुसमाहितः ।
यस्याग्नौहूयतेनित्यमन्नस्याग्र नदीयते ।।२४
चान्द्रायणञ्चरेत्सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः ।
अभोज्यान्नन्तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम् ।।२५
अन्तावसायिनाञ्चैव तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।
चण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणञ्चरेत् ।।२६
बुद्धिपूर्वन्तु कृच्छ्राब्द पुनः संस्कारमेव च ।
असुरामद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम् ।।२७
अभोज्यान्नन्तुभक्त्वाच प्राजापत्येन शुध्यति ।
विण्मूत्रप्राशनकृत्वारेतसश्चैतदाचरेत् ।।२८

अलावु—किंशुक को खाकर यही व्रत करना चाहिए मोह से इनके विकारों का पान करके गोमूत्र तथा यावक का आहार करे तो सात रात्रि में शुद्ध हो जाया करता है। यदि इच्छा पूर्वक उदुम्बर (गूलर) का भक्षण करे तो तप्तकृच्छ्र व्रत के करने पर ही शुद्धि हुआ करती है ।।२२-२३।। किसी के नवीन श्राद्ध में—मृतक में—सूतक में भोजन कर लेने पर चान्द्रायण व्रत से ही ब्राह्मण को सुसमाहित होने पर ही शुद्धि होती है। जिसको अग्नि में नित्य ही हवन किया जाता है उस अन्न का अग्रभाग यदि नहीं दिया जाता है तो द्विज को उसके अन्न के प्राशन में भली-भाँति

जल—मूत्र-पुरीष आदि के द्वारा दूषित पदार्थों का यदि प्राशन करे तो इस पाप के विशोधन करने वाला सान्तपन व्रत ही हुआ करता है ॥२६॥ चाण्डाल के कुए मे या पात्र मे यदि ज्ञान पूर्वक जल का पान कर लेवे तो ब्राह्मण को उस पाप के विशोधन करने के लिये सान्तपन कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥३७॥ कोई द्विजोत्तम चाण्डाल के द्वारा सस्पर्श किया हुआ जल का पान कर लेवे तो उसे तीन रात्रि का प्रमुख व्रत करके पञ्च गव्य का पान करना चाहिए—इसी से उसकी शुद्धि हो जाया करती है ॥३८॥ किसी महापात की के द्वारा सस्पर्श किये हुए पदार्थ को खाकर तथा ऐसे ही जल से स्नान करके यदि कोई द्विज अशुद्ध हो जाता है उसे बुद्धि पूर्वक या मोह वश ऐसा करने पर तप्त कृच्छ्र व्रत का समाचरण पाप के अपमोदन करने के लिये करना चाहिए ॥३९॥ किसी भी महापातक को—चाण्डाल अथवा रजस्वला स्त्री का स्पर्श कर लेने पर फिर प्रमाद से भोजन कर लेवे तो वह तीन रात्रि मे विशुद्ध हुआ करता है ॥४०॥ स्नान के योग्य यदि भोजन कर लेवे तो एक अहो-रात्र मे विशुद्ध हुआ करता है। यदि जान बूझ कर ही ऐसा करे तो भगवान् अज ने कहा है कि वह कृच्छ्र व्रत करके ही विशुद्ध हुआ करता है ॥४१॥ पर्युषित आदि पदार्थों का प्राशन करके तथा गवादि के द्वारा प्रतिदूषित पदार्थों को खाकर के द्विज को उपवास करना चाहिए अथवा पाप से शुद्धि प्राप्त करने के लिये उसे कृच्छ्र व्रत का चौथा भाग का समाचरण करना चाहिए ॥४२॥

सम्वत्सरान्ते कृच्छ्रन्तु चरेद्विप्रः पुनः पुनः।
अज्ञानभुक्तशुद्ध्यर्थज्ञातस्यतुविशेषतः ॥४३
व्रात्यानां याजनं कृत्वापरेषामन्त्यकर्मच।
अभिचारमहीनञ्चत्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥४४
ब्राह्मणादिहतानातु कृत्वादाहादिकं द्विजः।
गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येनशुध्यति ॥४५
तैलाभ्यक्तोऽथवान्तोवा कुर्यान्मूत्रपुरीषके।
अहोरात्रेण शुद्ध्येत श्मश्रुकर्मणिमैथुने ॥४६

एकाहेन विहायाग्निपरिहाप्य द्विजोत्तम ।
त्रिरात्रेणविशुद्ध्येतत्रिरात्रात्षडहःपरम् ॥४७

दशाह द्वादशाह वा परिहाप्य प्रमादतः ।
कृच्छ्रञ्चान्द्रायणंकुर्यात्तत्पापस्योपशान्तये ॥४८

पतितादद्रव्यमादाय तदुत्सर्गेणशुध्यति ।
चरेच्चविधिनाकृच्छ्रमित्याह भगवान्मनुः ॥४९

एक सम्वत्सर के अन्त में तो उसे वारम्वार कृच्छ् व्रत का समाचरण करना उचित है। जो अज्ञान से भोजन कर लेवे उसकी शुद्धि तभी होती है और जान बूझकर बुद्धि पूर्वक यदि भोजन कर लेवे तो उस विप्र को विशेष रूप से व्रतादि का समाचरण करना चाहिए तभी विशुद्धि हुआ करती है ॥४३॥ जो व्रात्य होगये हैं उनका याजन तथा परो का अन्त्य कर्म करके एव अभिचार और अहीन कर्म का सम्पादन करके तीन वार कृच्छ् व्रत करे तभी पाप से विशुद्धता प्राप्त हुआ करती है ॥४४॥ ब्राह्मणादि हतो का द्विज यदि दाह आदि कर्म करे तो उसे पापापनोदन के लिये गोमूत्र और यावक का आहार करना चाहिए तथा प्राजापत्य व्रत भी करे तभी विशुद्ध होता है ॥४५॥ तैल से मम्यक् अथवा अन्त यदि मूल एवं पुरीष का उत्सर्ग करे तो स्मश्रु कर्म और मैथुन मे एक अहोरात्र मे शुद्ध हुआ करता है ॥४६॥ द्विजोत्तम एक दिन अग्नि—समर्चा का त्याग करके या परिहापन करा कर तीन रात्रि मे विशुद्ध होता है अथवा तीन रात्रि से भी पर छै दिन मे शुद्धि प्राप्त हुआ करती है ॥४७॥ प्रमाद से परिहापन करके दश दिन या बारह दिन मे कृच्छ् चान्द्रायण व्रत करे तभी उस किये हुए पाप की शान्ति हुआ करती है ॥४८॥ किसी भी पतित पुरुष से द्रव्य ग्रहण करके उसके उत्सर्ग करने पर ही शुद्धि होती है। अथवा विधि पूर्वक कृच्छ् व्रत का समाचरण करे यही श्रीभगवान् अज ने प्रतिपादन किया है ॥४९॥

अनाशकान्निवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा ।
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च ॥५०

पुनश्चजातकर्मादिसंस्कारैं संस्कृताद्विजाः ।
शुद्ध्येयुस्तद्व्रतं सम्यक्चरेयुर्धर्मदर्शिनः॥ ५१
अनुपासितसन्ध्यस्तु तदहर्यावके भवेत् ।
अनश्नन् संयतमना रात्रौ चेद्रात्रिमेव हि ॥५२
अकृत्वा समिदाधानशुचि स्नात्वासमाहितः ।
गायत्र्यष्टसहस्रस्यजप्यकुर्याद्विशुद्धये ॥५३
उपवासी चरेन्सन्ध्या गृहस्था हि प्रमादतः ।
स्नात्वा विशुद्ध्यते सद्यः परिश्रान्तश्च संयत ॥५४
वेदोदितानिनित्यानिकर्माणिच्चविलोप्यतु ।
स्नातकोव्रतलोपतुकृत्वाचोपवसेद्दिनम् ॥५५
सम्वत्सरञ्चरेत्कृच्छ्रमन्योत्सदी द्विजोत्तमः ।
चान्द्रायणञ्चरेद् व्रात्यो गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥५६

अनाशक से निवृत्त तथा प्रव्रज्या के लिये अवसित पुरुषों को तीन कृच्छ्र व्रत अथवा तीन महाचान्द्रायण व्रत करने चाहिए ॥५०॥ इसके पश्चात् पुन जात कर्म आदि संस्कार कराकर सुसंस्कृत हुए ही द्विज विशुद्धि को प्राप्त हुआ करते हैं। धर्म के दर्शियों को वह व्रत बहुत ही भली भाँति सम्पन्न करने चाहिए ॥५१॥ जिसने सन्ध्या की उपासना जिसदिन भी नहीं की हो उस द्विज को यावक के आहार करके ही रहना चाहिए। कुछ भी अशन न करके परम संयत मन वाला रात्रि में यदि रात्रि को ही अशन किया करे ॥५२॥ समिधा का आधान न करके स्नान अति समाहित होकर विशुद्धि के लिये आठ सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए ॥५३॥ यदि कोई गृहस्थाश्रमी प्रमाद से उपवास वाला होकर सन्ध्या का समाचरण करे तो स्नान करके तुरन्त ही शुद्ध होजाया करता है और परिश्रान्त संयत होना चाहिए ॥५४॥ वेदों में विहित कर्मों को जो कि नित्य कर्म बताये गये हैं उनका विलोपन करके स्नातक यदि व्रतों का लोप न करे तो उसको एक दिन उपवास करना चाहिए ॥५५॥ अन्य को उत्सादन करने वाले द्विज को एक सम्वत्सर पर्यन्त कृच्छ्र व्रत

का समाचरण करना चाहिए व्रात्य पुरुष को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए गौओं के दान से भी उसकी विशुद्धि होजाया करती है ॥५६॥

नास्तिक्य यदिकुर्वीतप्राजापत्यञ्चरेद्द्विजः ।
देवद्रोहगुरुद्रोह तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥५७
उष्ट्रयान समारुह्य खरयानञ्च कामतः ।
त्रिरात्रेण विशुद्ध्येच्चनग्नोवा प्रविशेज्जलम् ॥५८
षष्ठान्नकालतमास संहिताजपएव च ।
होमाश्चशाकलानित्यंअपाङ्क्तानांविशोधनम् ॥५९
नील रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणोवस्त्रमेवहि ।
अहोरात्रोषित स्नात पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥६०
वेदधर्मपुराणानाचण्डालस्यतुभाषणे ।
चान्द्रायणेनशुद्धि स्यान्नह्यन्यातस्यनिष्कृतिः ॥६१
उद्बन्धनादिनिहतसंस्पृश्यब्राह्मणक्वचित् ।
चान्द्रायणेनशुद्धि स्यात्प्राजापत्येनवापुनः ॥६२
उच्छिष्टो यद्यनाचान्तश्चाण्डालादीन्स्पृशेद् द्विज. ।
प्रमादाद्वै जपेत्स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥६३

यदि कोई भी द्विज नास्तिकता की भावना करे तो उसे प्राजापत्य व्रत का समाचरण पाप शुद्धि के लिये करना चाहिए। देवगण से द्रोह और गुरु वर्ग से द्रोह करने पर तप्त कृच्छ्र व्रत के करने पर ही विशुद्धि हुआ करती है ॥५७॥ उष्ट्रों का यान और खरो के यान मे स्वेच्छा से समारोहण करके तीन रात्रि मे विशुद्ध होता है अथवा नग्न होकर जल मे प्रवेश करना चाहिए ॥५८॥ षष्ठान्न कालतामास और संहिता का जप, नित्य शाकल होम अपङ्क्त के विशोधन करने वाला है ॥५९॥ ब्राह्मण नीले वर्ण के तथा रक्त वर्ण वाले वस्त्र को पहिन कर एक अहोरात्र तक उपवास करके स्नान करे तो फिर वह पञ्चगव्य से शुद्ध हो जाया करता है ॥६०॥ वेद और धर्म शास्त्र तथा पुराणो का चाण्डाल के समक्ष मे भाषण करने पर चान्द्रायण व्रत से ही शुद्धि होती है इसके अतिरिक्त अन्य इस पाप की कोई धर्म शास्त्र मे निष्कृति नहीं बताई गई है ॥६१॥

उल्लंघन आदि से निहत ब्राह्मण का संस्पर्श करके चान्द्रायण व्रत से अथवा प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है ॥६२॥ उच्छिष्ट होते हुए आचान्त न होकर यदि द्विज चाण्डाल आदि का प्रमाद से स्पर्श करे तो स्नान करके आठ सहस्र गायत्री का जाप करना चाहिए। इस विधान से शुद्धि हुआ करती है ॥६३॥

द्रुपदाना शत वापिब्रह्मचारोसमाहित ।
त्रिरात्रोपोषित मम्यक्पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥६४
चाण्डालपतितादीस्तु कामाद्य सस्पृशेद् द्विजः ।
उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्य विशुद्धये ॥६५
चाण्डालसूतकिशवास्तथा नारी रजस्वलाम् ।
. ..   .   ,   ॥६६

तत स्नात्वाथआचम्यजपकुर्यात्समाहितः ॥६७
तत्स्पृष्टस्पर्शिनस्पृष्ट्वाबुद्धिपूर्वं द्विजोत्तम. ।
स्नात्वाचामेद्विशद्ध्यर्थं प्राहदेव.पितामहः ॥६८
भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्ससपृशेद्यदि ।
कृत्वा शौच तत स्नायादुपोष्य जुहुयाद् व्रतम् ॥६९
चाण्डालन्तु शव स्पृष्ट्वा कृच्छ्र कुर्याद्विशुद्धयति ।
स्पृष्ट्वाऽभ्यक्तस्त्वसस्पृश्य अहोरात्रेण शुद्धयति ॥७०

अथवा "द्रुपदा नाम" इस मन्त्र का समाहित होकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुए एक सौ जाप करे। तीन रात्रि उपवास करके भली-भाँति पञ्चगव्य के सेवन से विशुद्ध हो जाता है ॥६४॥ जो द्विज स्वेच्छा से ही चाण्डाल तथा पतितों को संस्पर्श करके उच्छिष्ट होवे तो उसे विशुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥६५॥ चाण्डाल—सूतकी और शव का एवं रजस्वला नारी का स्पर्श करके तथा उनसे स्पर्श करने वाले पतितों का संस्पर्श करके पाप से विशुद्धि प्राप्त करने के लिये स्नान करना चाहिए ॥६६॥ चाण्डाल—सूत की और शव से संस्पर्श होने वाले व्यक्ति से यदि संस्पर्श करे तो स्नान करके आचमन करे और फिर परम समा-

हित होकर जाप करना चाहिए ॥६७॥ इनसे स्पृष्ट के स्पर्श करने वाले से स्पर्श करके जो कि जान बूझ कर ही किया जावे तो द्विज को विशुद्धि के लिये स्नान करके आचमन करना चाहिए—ऐसा ही प्रपितामह देव ने कहा है ॥६८॥ यदि किसी समय में भोजन करते हुए ब्राह्मण का संस्पर्श कर लेवे तो शौच करके फिर स्नान करना चाहिए और उपवास करके अग्नि में आहुतियाँ देनी चाहिए यही व्रत है ॥६९॥ किसी चाण्डाल के शव का स्पर्श करके कृच्छ्र व्रत को विशुद्धि के लिये करना चाहिए। प्रमत्त होकर असस्पृश्य का यदि स्पर्श करके एक अहोरात्र में विशुद्ध होता है ॥७०॥

सुरां स्पृष्ट्वा द्विजः कुर्यात्प्राणायामत्रयंशुचिः ।
पलाण्डुं लशुनञ्चैवघृतं प्राश्यततःशुचिः ॥७१
ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यहं सायम्पयःपिबेत् ।
नाभेरूर्द्ध्वन्तुदष्टस्य तदेव द्विगुणंभवेत् ॥७२
स्यादेतत्त्रिगुणं बाह्वोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम् ।
स्नात्वा जपेद्वा सावित्री श्वभिर्दष्टो द्विजोत्तमः ॥७३
अनिर्वर्त्यमहायज्ञान्यो भुङ्क्तेतुद्विजोत्तमः ॥
अनातुरःसतिधनेकृच्छ्रार्द्धेनसशुद्ध्यति ॥७४
आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि।
ऋतौ न गच्छेद्भार्यां वा सोऽपिकृच्छ्रार्द्धमाचरेत् ॥७५
विनाद्भिरप्सुनाप्यार्त्तः शरीरं सन्निवेश्यच ।
सचैलोजलमाप्लुत्यगामालम्यविशुध्यति ॥७६
बुद्धिपूर्वन्त्वभ्युदिते जपेदन्तर्जले द्विजः ।
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु त्र्यहं चोपवसेद्द्विजः ॥७७

द्विज को सुरा का स्पर्श करके शुचि होकर तीन बार प्राणायाम करना चाहिए। पलाण्डु और लहसन का स्पर्श करके घृत का प्राशन करने से शुचि होता है ॥७१॥ कुत्ते के द्वारा काटा हुआ ब्राह्मण को तीन दिन तक सायकाल में पय पीना चाहिए। नाभि से ऊपर के भाग में यदि

दशन करे तो वही द्विगुण करना चाहिए। यदि बाहुओं में दशन करे तो तिगुना और मस्तक मे काटे तो चौगुना करना चाहिए। कुत्तों के द्वारा काटे हुए द्विज को स्नान करके सावित्री देवी का जाप करना चाहिए ॥७२-७३॥ जो द्विजोत्तम महायज्ञों को न करके भोजन किया करता है। धन होते हुए जो अनातुर होता है वह आधा कृच्छ् व्रत करने से विशुद्ध होता है ॥७४॥ जो द्विज माहिताग्नि हो और पर्व पर उपस्थान न करे तथा ऋतु काल के उपस्थित होने पर अपनी भार्या का अभिगमन न करे उसको भी पाप होता है और उसकी विशुद्धि के लिये उसे कृच्छ् व्रत का आधा भाग करना चाहिए ॥७५॥ जल के बिना जल में आर्त न होकर ही शरीर को सनिवेशित करके वस्त्रों के सहित जल में समाप्लुत होकर गौ का आलभन करने वाला विशुद्ध होता है ॥७६॥ बुद्धि पूर्वक करने पर तो द्विज को अभ्युदित अन्तर जल में जाप करना चाहिए। आठ सहस्र गायत्री का जप तीन दिन करे और द्विज को उपवास भी करना चाहिए ॥७७॥

अनुगम्येच्छया शूद्रं प्रेतीभूत द्विजोत्तम. ।
गायत्र्यष्टसहस्रञ्चजपकुर्यान्नदीषु च ॥७८
कृत्वातुशपथ विप्रोविप्रस्यावधिसयुतम् ।
स चैवयावकान्नेनकुर्याच्चान्द्रायणव्रतम् ॥७९
पङ्क्तौ विषमदान तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ।
छाया श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद् घृतम् ॥८०
ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाऽग्निञ्चन्द्रमेव वा ।
मानुषञ्चास्थि सस्पृश्य स्नान कृत्वा विशुद्ध्यति ॥८१
कृत्वा तु मिथ्याध्ययनञ्चरेद्भैक्षन्तु वत्सरम् ।
कृतघ्नो ब्राह्मणगृहेपञ्चसवत्सरव्रती ॥८२
हुंकारब्राह्मणस्योक्त्वात्वङ्कारञ्चगरीयसः ।
स्नात्वानाश्नन्नहःशेषप्रणिपत्यप्रसादयेत् ॥८३
ताडयित्वातृणेनापिकण्ठ बद्ध्वावाथससा ।
विवादेचापिनिर्जित्यप्रणिपत्यप्रसादयेत् ॥८४

जो द्विजोत्तम प्रेतीभूत शूद्र का अपनी इच्छा से ही अनुगमन करे उसे शुद्धता सम्पादन करने के लिए नदी मे आठ सहस्र सावित्री देवी का जाप करना चाहिए ॥७८॥ विप्र विप्र की अवधि से सयुत शपथ करके उसे यावकान्न के द्वारा चान्द्रायण महाव्रत करना चाहिए ॥७९॥ जो कोई एक ही पंक्ति में स्थितो को विषम दान करे उसे भी उस पाप से शुद्ध होने के लिये कृच्छ्र व्रत ही करना चाहिए। श्वपाक की छाया समारोहण करके स्नान करे और फिर घृत का प्राशन भी करना चाहिए ॥८०॥ अशुचि होकर आदित्य देव का दर्शन करे—अग्नि का तथा चन्द्रदेव को देख कर मानुष की अस्थि सस्पर्श करके स्नान करने पर ही विशुद्धि हो जाती है ॥८१॥ मिथ्या अध्ययन करके एक वर्ष पर्यन्त भैक्ष करे। जो किये हुए उपकार का हनन करने वाला कृतघ्न द्विज है उसे ब्राह्मण के घर मे पाँच वर्ष तक व्रतधारी होकर रहना चाहिए ॥८२॥ ब्राह्मण को हुङ्कार कह कर तथा गुरु को अङ्कार कह कर स्नान करे और अशन न करते हुए दिन के शेष मे प्रणिपात करके प्रसन्न करे ॥८३॥ एक तृण से भी ताडन करके वस्त्र से कण्ठ को बाँधकर विवाद मे भी विजित होकर प्रणिपात करके प्रसन्न कर लेना चाहिए ॥८४॥

अवगूर्य (ह्य) चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥८५
गुरोराक्रोशमनृतं कुर्यात्कृत्वा विशोधनम् ।
एकरात्रं निराहार तत्पापस्यापनुत्तये ॥८६
देवर्षीणामभिमुखं ष्ठीवनाक्रोशने कृते ।
उल्मुकेन दलेज्जिह्वा दातव्यञ्च हिरण्यकम् ॥८७
देवोद्यानेषु य. कुर्यान्मूत्रोच्चारं सकृद् द्विजः ।
छिन्द्याच्छिश्न विशुद्ध्यर्थं श्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥८८
देवतायतने मूत्रं कृत्वा मोहाद् द्विजोत्तमः ।
शिश्नस्योत्कर्त्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् ॥८९
देवतानामृषीणाञ्च देवानाञ्चैवकुत्सनम् ।
कृत्वासम्यक्प्रकुर्वीतप्राजापत्यंद्विजोत्तमः ॥९०

तंस्तु सम्भाषणं कृत्वा स्नात्वा देवं समर्चयेत् ।
दृष्ट्वा वीक्षेत भास्वन्तं स्मृत्वा विश्वेश्वरं स्मरेत् ।।९१

विप्र को अवगूर्ण करके भी महापाप होता है अतएव इसके विशोधन के लिये कृच्छ्र व्रत करे । यदि हाथापाई कर विप्र को गिरा दिया जावे तो विशुद्धि के लिये अतिकृच्छ्र व्रत करे । यदि विप्र के अङ्ग से रक्तपात का उत्पादन कर देवे तो विशोधनार्थ कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ।।८५।। गुरुदेव का आक्रोश और अनृत करके तो उसका पाप विशोधन एव अपनोदन के लिये एक रात्रि तक निराहार ही रह कर बिताना चाहिए ।।८६।। देवर्षियो के सम्मुख मे ष्ठीवन (थूकना) या उनका आक्रोशन करके उल्मुक के द्वारा जिह्वा को दग्ध करे और सुवर्ण का दान करना चाहिए ।।८७।। देवो के उद्याना मे जो कोई भी द्विज एक बार भी मूत्रोच्चार कर देवे तो उस पाप के अपनोदन करने के लिये अपने शिश्न को छिन्न कर डाले और चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।।८८।। यदि मोहवश किसी भी देवता के आयतन मे कोई भी द्विजोत्तम मूत्र का उत्सर्ग करे देवे तो उस पाप की विशुद्धि तभी होती है जब वह उस अपनी मूत्रेन्द्रिय को काट देवे और फिर चान्द्रायण व्रत का समाचरण करे ।।८९।। देवो का—ऋषियो का कुत्सन (निन्दा) करके द्विजश्रेष्ठ को भली-भाँति प्राजापत्य व्रत करके पाप का शोधन करना चाहिए ।।९०।। उनके साथ सम्भाषण करके स्नान करे और देव का समर्चन करना चाहिए । देख कर भगवान् भास्वान् का स्मरण करके विश्वेश्वर प्रभु का स्मरण करे ।।९१।।

य. सर्वभूताधिपतिविश्वेशान विनिन्दति ।
न तस्यनिष्कृति शक्यकर्त्तु वर्षशतैरपि ।।९२
चान्द्रायण चरेत्पूर्वंकृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रकम् ।
प्रपन्न.शरणदेवं तस्मात्पापाद्विमुच्यते ।।९३
सर्वस्वदानविधित्सर्वपापविशोधनम् ।
चान्द्रायणञ्चविधिनाकृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रकम् ।।९४

पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापविशोधनम् ।
अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेद् भवम् ॥९५
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९६
कृष्णाष्टम्यां महादेवं तथाकृष्णचतुर्दशीम् ।
सम्पूज्य ब्राह्मण मुखे सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥९७
त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम् ।
दृष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः ॥९८

जो कोई भी समस्त भूतों से अधिपति भगवान् विश्वेशान की विशेष निन्दा करे तो उसके पाप की निष्कृति शक्ति से सैंकडो वर्षों मे भी नही होती है ॥९२॥ पहिले तो उसको चान्द्रायण व्रत का समाचरण करना चाहिए फिर कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए इनके पश्चात् उस पाप से विमुक्त होने के लिये उस को उन्ही देव की शरणागति मे प्रपन्न हो जाना चाहिए तभी पाप से विमुक्त होता है ॥९३॥ अपने पास जो कुछ भी हो उस सभी सर्वस्व का दान कर देवे और उस दान को भी पूर्ण विधि के साथ ही करे। इस तरह करने से सभी तरह के पापो का विशोधन हो जाता है। तथा विधान के साथ महाचान्द्रायण—कृच्छ्र और प्रतिकृच्छ्र व्रतो को करे ॥९४॥ किसी परम पुण्यमय क्षेत्र में गमन करना भी समस्त प्रकार के पापो का विशोधन करने वाला होता है। अमावस्या तिथि को प्राप्त करके जो कोई भगवान् भव (महादेव) का समाराधन किया करता है और फिर ब्राह्मणों का पूजन करे तो समस्त प्रकार के पापो से प्रमुक्त हो जाया करता है। शिवाराधन और विप्र पूजन पापो के अपनोदन का एक प्रमुख साधन माना गया है ॥९५-९६॥ कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि मे तथा मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि मे ब्राह्मण मुख मे भली-भाँति पूजन करके मनुष्य सभी पापो से छुटकारा पा जाया करता है ॥९७॥ त्रयोदशी तिथि मे रात्रि की वेला मे उपहारो के सहित भगवान् त्रिलोचन देवेश्वर का दर्शन करके प्रथम प्रहर मे उनका समाराधन करे तो सभी प्रकार के पापो से मुक्त हो जाया करता है ॥९८॥

डपोषितश्चतुर्दश्या कृष्णपक्षे समाहितः ।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥९९
वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च ।
प्रत्येकं तिलसंयुक्तान्दद्यात्सप्तोदकाञ्जलीन् ॥१००
स्नात्वा दद्याच्च पूर्वाह्णे मुच्यते सर्वपातकैः ।
ब्रह्मचर्यमधः शय्या उपावासो द्विजार्च्चनम् ॥१०१
व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्त सयतमानसः ।
अमावास्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहम् ॥१०२
ब्राह्मणांस्त्रीन्समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः ।
षष्ठयामुपोषितोदेवशुक्लपक्षेसमाहितः ॥१०३
सप्तम्यामर्च्चयेद्भानु मुच्यते सर्वपातकैं ।
भरण्याञ्चचतुर्थ्याञ्च शनैश्चरदिने यमम् ॥१०४
पूजयेत्सप्तजन्मोत्थैर्मुच्यते पातकैर्नरः ।
एकादश्यां निराहार समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥१०५

मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि के दिन उपवास करने वाला और परम समाहित रहने वाला मनुष्य यमराज—धर्मराज—मृत्यु—अन्तक—वैवस्वत—काल और सब के प्राणों के हरण करने वाले के लिये इन्हीं उक्त नामों का समुच्चारण करके तिलों से समन्वित सात जलाञ्जलि देवे अर्थात् प्रत्येक नाम से ७—७ अञ्जलियों को देवे और दिन के पूर्वाह्न में स्नान करके देवे तो मनुष्य सभी प्रकार के पापों तथा पातकों से मुक्ति पा जाया करता है ॥९९-१००॥ ब्रह्मचर्य व्रत का परि-पालन—भूमि में शयन—उपवास और द्विजों का भली-भाँति अर्चन इन सभी व्रतों में करना चाहिए तथा परम शान्त रहे और संयत मन वाला भी रहना चाहिए ॥१०१-१०२॥ अमावस्या तिथि में पितामह ब्रह्माजी का समुद्देश करके तीन ब्राह्मणों का भली-भाँति अर्चन करे तो सभी पापों से छुटकारा हो जाया करता है। षष्ठीतिथि में उपवास करने वाला शुक्ल-पक्ष में समाहित होकर देव की समाराधना करे ॥१०३॥ सप्तमी तिथि

में भगवान् भुवनभास्कर का अर्चन किया करे तो सभी पातकों से मुक्ति पा जाता है। भरणी नक्षत्र और चतुर्थी तिथि में शनिवार के दिन में यम का पूजन करना चाहिए। ऐसा करने से सात जन्मों के भी समुचित पापों से मनुष्य मुक्त हो जाता है। एकादशी तिथि में निराहार व्रत करके भगवान् जनार्दन का पूजन करना चाहिए ॥१०४-१०५॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते ।
तपोजपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम् ॥१०६
ग्रहणादिषु कालेषुमहापातकशोधनम् ।
य. सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः ॥१०७
नियमेन त्यजेत्प्राणान्मुच्यते सर्वपातकैः ।
ब्रह्मघ्नंवाकृतघ्नं वा महापातकदूषितम् ॥१०८
भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टासह पावकम् ।
एतदेव परस्त्रीणाम्प्रायश्चित्त विदुर्बुधा. ॥१०९
पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणे रता ।
न तस्या विद्यतेपापमिहलोके परत्र च ॥११०
(सर्वपापविनिर्मुक्ता नास्ति कार्या विचारणा ।
पातिव्रत्यसमायुक्ता भर्तृशुश्रूषणोत्सुका ।
न यास्नुपातकतस्यामिहलोके परत्रच) ॥१११
पतिव्रता धर्मरता भद्राण्येव लभेत्सदा ।
नास्या.पराभवकर्तुं शक्नोतीहजन क्वचित् ॥११२

भगवान् का मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि में अर्चन करने से सभी पापों से छुटकारा हो जाया करता है। तपश्चर्या—मन्त्र जाप—तीर्थ-सेवा—देवों तथा ब्राह्मणों का पूजन ये सभी परम धार्मिक कृत्य ग्रहण आदि कालों में यदि किये जावें तो महान् से भी महान् पातकों के शोधन करने वाले होते हैं ॥१०६॥ जो कोई मनुष्य सभी प्रकार के पापों से युक्त भी हो और पुण्य तीर्थों में जाकर अपने प्राणों का परित्याग करे सभी पातकों से उस तीर्थ के माहात्म्य से छूट जाया करता है। चाहे ब्राह्मण की हत्या करने वाला हो या कृतघ्न हो तथा महान् पातकों से

भी दूषित हो ऐसे भी अपने स्वामी को उसके साथ ही पावक में प्रविष्ट होने वाली पतिव्रता नारी उसका उद्धार कर दिया करती है। बुधगण ने स्त्रियों का यही परमश्रेष्ठ प्रायश्चित्त बतलाया है ॥१०७ १०९॥ जो न भी केवल अपने पति की सेवा—सुख और आनन्द के सम्पादन का व्रत धारण करने वाली पतिव्रता है और सदा सर्वदा पति की शुश्रूषा में ही रत रहा करती है उस स्त्री को इस लोक और परलोक में कोई भी पाप होता ही नहीं है ॥११०॥ ऐसी पतिव्रता नारी तो सभी पापों से सदा ही विमुक्त रहा करती है—इस विषय में कुछ भी विचारणा की आवश्यकता ही नहीं है। पातिव्रत्य व्रत से समन्वित और अपने स्वामी की ही सेवा में उत्सुक रहने वाली नारी का कोई भी पातक इस लोक और परलोक में होता ही नहीं है ॥१११॥ पतिव्रता धर्म में रत रहने वाली नारी सदा भद्र ही फल प्राप्त किया करती है। ऐसी नारी का कहीं पर भी कोई जन पराभव कर ही नहीं सकता है ॥११२॥

यथा रामस्य सुभगासीतात्रैलोक्यविश्रुता ।
पत्नीदाशरथेर्देवीजिग्येराक्षसेश्वरम् ॥११३

रामस्य भार्या सुभगा रावणोराक्षसेश्वरः ।
सीताविशालनयनाचकमे कालनोदितः ॥११४

गृहीत्वा माययावेष चरन्ती विजनेवने ।
समाहर्तुं मतिं चक्रे तापसःकिलकामिनीम् ॥११५

विज्ञायसा चतद्भावंस्मृत्वादाशरथिम्पतिम् ।
जगामशरणंवह्निमावसथ्यंशुचिस्मिता ॥११६

उपतस्थेमहायोगंसर्वलोकविदाहकम् ।
कृताञ्जलीरामपत्नीसाक्षात्पतिमिवाच्युतम् ॥११७

नमस्यामि महायोगं कृशानुं गह्वरम्परम् ।
दाहकं सर्वभूतानामीशानं कालरूपिणम् ॥११८

प्रपद्ये पावकं देवं शाश्वतं विश्वरूपिणम् ।
योगिनं कृत्तिवसनं भूतेशं परमम्पदम् ॥११९

जिस प्रकार से दाशरथि भगवान् श्रीराम की पत्नी सुभगा सीता जो त्रैलोक्य में प्रसिद्ध हैं उन देवी ने राक्षसों के महान् बलशाली राजा रावण को भी जीत लिया था—यह उनके पूर्ण पातिव्रत का महान् प्रभाव था ॥११३॥ श्रीराम की परम सुभगा भार्या विशाल नयनों वाली सीता को काल से प्रेरित होकर ही राक्षसों के स्वामी रावण ने हरण किया था ॥११४॥ उस रावण ने माया से एक यति का वेष ग्रहण करके ही उस विजन वन में भ्रमण करने वाली देवी के समाहरण की बुद्धि की थी और एक तापस बनकर उस कामिनी का उसने अपहरण करना चाहा था ॥११५॥ उस महादेवी ने उस दुष्ट राक्षस के दूषित भाव को समझ कर उसी समय में अपने स्वामी श्री राघवेन्द्र प्रभु का स्मरण किया था और फिर वह शुचि स्मित वाली देवी आवसथ्य वह्नि की शरण में प्राप्त होगई थी ॥११६॥ उस सर्व लोकों के विदाहक महायोग का श्रीराम की पत्नी ने हाथ जोड़कर साक्षात् अपने पति अच्युत की ही भाँति उपस्थान किया था—॥११७॥ वह उपस्थान इस प्रकार से है जिसको जानकी ने किया था—परम गह्वर—दाहक-समस्त भूत तथा ईशा का काल रूपी महायोग कृशानु देव को मैं नमस्कार करती हूँ ॥११८॥ क्षाम्बर—विश्व के रूप वाले—योगी—कृत्ति के वसन को धारण करने वाले—परमपद भूतेश पावक देव की शरण में मैं प्रपन्न हूँ ॥११९॥

आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदि स्थितम् ।
तम्प्रपद्ये जगन्मूर्त्तिं प्रथमं सर्वतेजसाम् ।
महायोगीश्वरं वह्निमादित्यम्परमेष्ठिनम् ॥१२०
प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाग्रासं त्रिशूलिनम् ।
कालाग्निं योगिनामीशं भोगमोक्षफलप्रदम् ॥
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भूर्भुवःस्वः स्वरूपिणम् ।
हिरण्मये गृहे गुप्तं महान्तममितौजसम् ॥१२१
वैश्वानरम्प्रपद्येऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।
हव्यकव्यवहं देवं प्रपद्ये वह्निमीश्वरम् ॥१२२

प्रपद्य तत्परतत्त्ववरेण्यमवितुः शिवम् ।
स्वर्गमग्निपरं ज्योति स्वाक्षयहव्यवाहनम् ॥१२३
इति वह्न्यष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी ।
ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा ॥१२४
अथावसथ्याद्भगवान्हव्यवाहो महेश्वरः ।
आविरासीत्सुदीप्तात्मा तेजसा निर्दहन्निव ॥१२५
सृष्ट्वा मायामयीं सीता स रावणवधेच्छया ।
सीतामादाय रामेष्टा पावकोऽन्तरधीयत ॥१२६

समस्त भूतों के हृदय मे समवस्थित—दीर्घ वपुधारी आत्मा—जगत् की मूर्ति और सभी तेजस्वियो मे प्रमुख उस देव की शरण में मैं प्रपन्न हूँ, कि परमेष्ठी—महायोगीश्वर—आदित्य वह्नि देव है ॥१२०॥ मैं महा-ग्रास—कालाग्नि—योगियो के ईश—विभूती—भोग और मोक्ष दोनो ही प्रकार के फलो को प्रदान करने वाले भगवान् रुद्रदेव की शरणागति मे प्रपन्न हूँ। आप विरूपाक्ष—भूर्भुव स्व के रूप वाले—हिरण्मय गृह मे गुप्त—महान् और अमित ओज से सम्पन्न की शरणागति मे मैं प्रपन्न हूँ ॥१२१॥ जानकी देवी ने प्रार्थना की थी कि मैं भगवान् वैश्वानर देव की शरण मे प्रपन्न हूँ जो सभी भूतो मे समवस्थित रहा करते है। हव्य और कव्य दोनो के वहन करने वाले ईश्वर वह्नि देव की शरण म मैं प्रपन्न हूँ ॥१२२॥ मैं उस परम तत्त्व—सविता वरेण्य शिव—स्वर्ग—पर—अग्नि—ज्योति—स्वाक्षय और हव्य वाहन की शरणागति मे समुपस्थित हूँ ॥१२३॥ इस प्रकार से इस वह्निदेव के अष्टक का जाप परम यशस्विनी श्रीराम की पत्नी जानकी ने किया था और उन्मीलित नेत्रा वाली वह देवी मन मे श्रीराम का ध्यान करती हुई स्थित हो गई थीं।१२४। इसके अनन्तर उस आवसथ्य से भगवान् महेश्वर हव्य वाहन देव साक्षात् उसी समय मे प्रकट हो गये थे जो परम दीप्त स्वरूप वाले थे और अपने तेज से सबको दग्ध ही कर रहे थे ॥१२५। उस अग्नि देव ने एक माया से परिपूर्ण बिल्कुल वैसी ही छवि वाली सीता की रचना करके जो कि उस राक्षस राजा रावण के वध की इच्छा से ही रची गयी थी वहाँ पर स्थित करदी थी

और श्रीराम की परमाभीष्ट सीता को ग्रहण करके वह अग्निदेव उसी क्षण में वहाँ पर अन्तर्हित हो गये थे ॥१२६॥

.... ॥१२७
कृत्वातु रावणवधं रामोलक्ष्मणसंयुतः ।
समादायाभवत्सीता शंकाकुलितमानसः ॥१२८
सा प्रत्ययायभूतानां सीतामायामयीपुनः ।
विवेशपावकंक्षिप्रंददाहज्वलनोऽपिताम् ॥१२९
दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुष्णदीधितिः ।
रामायादर्शयत्सीतां पावकोऽभूत्सुरप्रियः ॥१३०
प्रगृह्यभर्त्तुश्चरणौ कराभ्यां सा सुमध्यमा ।
चकारप्रणतिंभूमौरामायजनकात्मजा ॥१३१
दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः ।
प्रणम्य वह्निं शिरसा तोषयामास राघव. ॥१३२
उवाच वह्निं भगवान् किमेषा वरवर्णिनी ।
दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता ॥१३३

उस प्रकार की विरचित जानकी का ही रावण ने जो राक्षसों का राजा था अपहरण किया था और वह उसको लेकर सागर के मध्य में स्थित अपनी पुरी लङ्का में ले गया था ॥१२७॥ इस सीता के अपहरण करने का फल यही हुआ कि लक्ष्मण के सहित वानरी सेना लेकर श्रीराम ने युद्ध में उस दुष्ट रावण का वध कर दिया था और जब जगज्जननी जानकी को लङ्का से वापिस लाया गया था तो श्रीराम शङ्का से समाकुलित मन वाले हो गये थे किन्तु उस देवी ने समस्त समुपस्थित जीवों के प्रत्यय कराने के लिये अग्नि परीक्षा दी थी और उस माया मयी सीता ने बिना किसी सङ्कोच के अग्नि में प्रवेश कर दिया था तथा अग्निदेव ने भी उसको तुरन्त ही जला दिया था ॥१२८-१२९॥ फिर भगवान् उष्ण दीधिति अग्निदेव ने उस माया से पूर्ण सीता को दग्ध करके श्री राघवेन्द्र प्रभु को वह असली सीता को लेकर समर्पित किया था और पावक तभी

वे समस्त सुरों में परम प्रिय हो गये थे ॥१३०॥ अग्निदेव के द्वारा वन-
पित वास्तविक सीता ने जिनका मध्यम भाग बहुत ही सुन्दर था अपने
दोनों कर कमलों से स्वामी श्रीराम के चरणों को पकड़ कर स्पर्श किया
था। जनक की आत्मजा ने श्रीराम को भूमि पर मस्तक रखकर प्रणाम
किया था ॥१३१॥ अपनी प्रिया जानकी को देखकर श्रीराम परम प्रसन्न
मन वाले हो गये थे और विस्मय से उनके लोचन समाकुल होगये।
श्री राघवेन्द्र ने शिर से अग्निदेव को प्रणाम करके सन्तुष्ट किया था
॥१३२॥ भगवान् श्रीराम ने अग्निदेव से कहा—आपने पहिले तो इस
वर वर्णिनी का दाह कर दिया और अब फिर इसको मैंने अपने ही अपने
ही समीप में समुपस्थित हुई देखा है यह क्या कारण है जिससे ऐसा
हुआ है ॥१३३॥

तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः।
यथावृत्तं दाशरथिं भूतानामेव सन्निधौ ॥१३४
इयं सा परमा साध्वी पार्वतीव प्रिया तव।
आराध्य लब्ध्वा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा ॥१३५
भर्त्तुः शुश्रूषणोपेतासुशीलेयं पतिव्रता।
भवानीपार्श्वे गुप्ता माया रावणकामिता ॥१३६
या नीता राक्षसेशेन सीता भगवती हृता।
मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधेच्छया ॥१३७
तदर्थं भवता दुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः।
मायोपसहृता चैव हतो लोकविनाशनः ॥१३८
गृहाण चैनां विमलां जानकीवचनान्मम।
पश्यनारायणंदेवं स्वात्मानंप्रभवाव्ययम् ॥१३९
इत्युक्त्वा भगवाश्चण्डो विश्वार्चिविश्वतोमुखः।
मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत ॥१४०

उस समय में लोकों के दाहक प्रभु हव्य वाहन अग्निदेव ने श्रीराम से
कहा था जबकि भगवान् दाशरथि यथावृत्त समस्त भूतों की सन्निधि में
ही समुपस्थित थे ॥१३४॥ अग्नि ने कहा—यही परम साध्वी आपकी

प्रिया जानकी शिव की प्रिया पार्वती की भाँति है। जिस प्रकार से आपकी अत्यन्त वल्लभा इसने देवी की तपश्चर्या करके आपको पार्वती की भाँति ही प्राप्त किया है ॥१३५॥ यह भर्त्ता की शुश्रूषा से समुपेत परम सुशीला और पूर्ण पतिव्रता देवी हैं जिस तरह भवानी ईश्वर मे गुप्त हैं वैसे ही यह भी हैं। रावण ने जिसको कामना करके हरण किया था वह तो मायामयी जानकी थी ॥१३६॥ राक्षसेश्वर ने जिस जानकी का हरण करके प्राप्त किया था वह तो भगवती सीता मैंने ही माया से पूर्ण निर्मित कर दी थी क्योंकि रावण की इच्छा उसे हरण कर लेजाने की थी।१३७। यही कारण तो ऐसा बन गया था कि उस जानकी को प्राप्त करने के लिये ही आपने राक्षसेश्वर रावण से युद्ध किया था और वह लोकों के विनाश करने वाला मारा भी गया था। मैंने उस माया को उपसहृत कर लिया है ॥१३८॥ यह इस समय में परम विमल देवी जानकी है। मेरे वचन से इसको आप ग्रहण कीजिए। यह परम विमल है। अपनी आत्मा प्रभावमय देव नारायण का दर्शन करो। इतना कहकर विश्वार्चिविश्व तोमुख भगवान् चण्ड अग्निदेव राघवेन्द्र के द्वारा सम्मानित हुए तथा समस्त भूतों के साथ वहीं पर अन्तर्हित होगये थे ॥१३९-१४०॥

एतत्पतिव्रतानार्वैमाहात्म्यकथितंमया।
स्त्रीणासर्वाघशमनम्प्रायश्चित्तमिदस्मृतम् ॥१४१
अशेषपापसयुक्तः पुरुषोऽपि सुसयुतः।
स्वदेहपुण्यतीर्थेपुत्यक्त्वामुच्यतेकिल्विषात् ॥१४२
पृथिव्या सर्वतीर्थेपुस्नात्वापुण्येपु वा द्विजः।
मुच्यत्तेपातकैःसर्वःसञ्चितैरपिपूरुषः ॥१४३
इत्येषमानवो धर्मो युष्माककथितोमयाः।
महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगश्च शाश्वतः ॥१४४
योगेन विधिनायुक्तो ज्ञानयोग समाचरेत्।
स पश्यति महादेवं नान्यःकल्पशतैरपि ॥१४५
स्थापयेद्यः परं धर्मं ज्ञानंतत्पारमेश्वरम्।
न तस्मादधिकोलोके स योगीपरमोमतः ॥१४६

य.संस्थापयितुं शक्तोन कुर्यान्मोहितोजनः ।
सयोगयुक्तोऽपिमुनिर्नात्यर्थं भगवत्प्रिय. ॥१४७

मैने पतिव्रता नारियो का यह माहात्म्य कह दिया है। यह ही स्त्रियो के समस्त अघो का शमन करने वाला प्रायश्चित्त कहा गया है ॥१४१॥ अशेष पापो से संयुक्त पुरुष भी सुसयत होकर अपने देह का त्याग पुण्य तीर्थों मे करके किल्विष से मुक्त होजाया करता है ॥१४२॥ पृथ्वी मंडल मे समस्त पुन्य तीर्थों मे द्विज स्नान करके पुरुष सज्जित हुए भी सब पातको से छुटकारा पाजाया करता है ॥१४३॥ महर्षि व्यासजी ने कहा—यही मानव धर्म है जो मैंने वर्णन करके आपको सुना दिया है। महेश के समाराधन के लिये ज्ञान योग शाश्वत होता है ॥१४४॥ विधिपूर्वक योग के द्वारा युक्त होकर ज्ञान योग का समाचरण करना चाहिए। ऐसा ही साधक महादेव के दर्शन प्राप्त किया करता है इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी सौ कल्पो मे भी दर्शन नही किया करता है ॥१४५॥ जो कोई भी पुरुष पारमेश्वर परधर्म तथा ज्ञान की स्थापना करता है। उससे अधिक इस लोक म अन्य कोई भी योगी तथा परम नही है ॥१४६॥ जो सस्थापना करने की योग्यता तो रखता है मगर मोहित होकर सस्थापना किया नही करता है वह चाहे पुरुष योग से मुक्त भी हो तो भी अत्यन्त भगवान् का प्रिय नही होता है ॥१४७॥

तस्मात्सदैव दातव्य ब्राह्मणेषु विशेषतः ।
धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै ॥१४८
यः पठेद्भवतानित्य सम्वाद मम चैव हि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमागतिम् ॥१४८
श्राद्धे वा दैविके कार्ये ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ ।
पठेत नित्य सुमना. श्रोतव्यञ्च द्विजातिभि. ॥१५०
योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद्वा द्विजान् शुचीन् ।
स दोपकञ्चुकं त्यक्त्वा याति देव महेश्वरम् ॥१५१
एतावदुक्त्वाभगवान्व्याससत्यवतीसुत ।
समाश्वास्यमुनीन्सूतं जगामचयथागतम् ॥१५२

इसलिये सर्वदा ही ब्राह्मणों का दान देना चाहिए। और विशेष करके जो धर्म से युक्त—शान्त स्वभाव वाले और श्रद्धा से समुत हो उन्हीं विप्रों को देना चाहिए ॥१४८॥ जो कोई पुरुष आपका और मेरा यह सम्वाद नित्य ही पढ़ा करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त किया करता है ॥१४६॥ श्राद्ध में—दैविक कार्य में और ब्राह्मणों की सन्निधि में सुन्दर मन वाला इस सम्वाद को नित्य ही पढ़ता है तथा द्विजातियों के द्वारा सुनना भी चाहिए ॥१५०॥ जो इस के अर्थ का विचार करके युक्त आत्मा वाला परम शुचि द्विजों को इसका श्रवण कराया करता है वह इस दोष के कञ्चुक का त्याग करके महेश्वर देव को प्राप्त किया करता है ॥१५१॥ सत्यवती देवी के सुत भगवान् वेदव्यासजी ने ऋषियों से कहकर उनका समाश्वास न किया था था और सूतजी को आश्वासन प्रदान करके वे जैसे ही आये थे वापिस चले गये थे ॥१५२॥

३५—गयाआदिनानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णन

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन्विश्रुतानि महान्त्यपि ।
तानि त्वं कथयाऽस्माकं रोमहर्षण! साम्प्रतम् ॥१
शृणुध्वकथयिष्येऽहतीर्थानिविविधानिच ।
कथितानिपुराणेषुमुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥२
यत्रस्नानञ्जपोहोमः श्राद्धदानादिकंकृतम् ।
एकैकशो मुनिश्रेष्ठाः पुनात्यासप्तमकुलम् ॥३
पञ्चयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रयागम्प्रथितं तीर्थं यस्यमाहात्म्यमीरितम् ॥४
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कुरूणा देववन्दितम् ।
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं सर्वपापविशोधनम् ॥५
तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भमात्सर्यवर्जितः ।
ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम् ॥६

पर गुह्यगयातीर्थं पितृणाञ्चातिदुर्लभम् ।
कृत्वापिण्डप्रदानन्तु न भूयोजायतेनर ॥७

ऋषियो न कहा—हे रोमहर्षणजी ! इस लोक म जो तीर्थ महान और परम प्रसिद्ध हैं उन सबका वर्णन आप हमारे सामने कीजिए। हमारी अब उनके श्रवण करने की इच्छा है ॥११॥ श्री रोमहर्षणजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! आप श्रवण कीजिए। मैं आपके समक्ष मे अब अनेक तीर्थों क विषय म वर्णन करूगा जिनको ब्रह्मवादी मुनियो ने पुराणो मे बताया है ॥२॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! व एसे महा महिमामय तीर्थ हैं जहाँ पर स्नान—जप—होम—श्राद्ध और दानादिक शास्त्रोक्त सत्कर्म किय हुए एक-एक भी सात कुल तक को पावन कर दिया करता है ॥३॥ परमेष्ठी श्री ब्रह्माजी का प्रथित प्रयाग तीर्थ पाँच योजन के विस्तार वाला है जिसका कि माहात्म्य कहा गया है ॥४॥ और तीर्थ प्रवह है जो कुरुओ का है और देवो के द्वारा व द्यमान है यह ऋषियो के आश्रम से सेवित है तथा सभी प्रकार के पापो का विशोधन करने वाला है ॥५॥ उस तीर्थ मे स्नान करके विशुद्ध आत्मा वाला तथा दम्भ और मत्सरता जैसे दुर्गुणो से वर्जित पुरुष वहाँ पर जो कुछ भी यथा शक्ति दान किया करता है वह अपने दोनो कुलो को पवित्र कर दिया करता है ॥६॥ गया तीर्थ तो परम गोपनीय तीर्थ है जो पितृगणो को अत्यन्त ही दुर्लभ होता है। वहाँ पर पितृगण के लिये पिण्डो को प्रदान करने वाला पुरुष फिर इस ससार मे जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥७॥

सकृद्गयाभिगमनकृत्वापिण्डददातिय ।
तारिता पितरस्तेन यास्यन्तिपरमा गतिम् ॥८
तत्र लोकहितार्थाय रुद्रेण परमात्मना ।
शिलातले पद न्यस्त तत्र पितृन्प्रसादयेत् ॥९
गयाभिगमनकर्तुं य शक्तोनाधिगच्छति ।
शोचन्तिपितरस्त वैवृथा तस्यपरिश्रम ॥१०
गायन्ति पितरो गाथा. कीर्त्तयन्ति महर्षय ।
गया यास्यति य कश्चित्सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥११

यदि स्यात्पातकोपेतः स्वधर्मपरिवर्जितः ।
गया यास्यति यः कश्चित् सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥१२
एष्टव्याबहव.पुत्राःशीलवन्तोगुणान्विताः ।
तेषान्तुसमवेतानायद्येकोऽपिगयान्नजेत् ॥१३
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनब्राह्मणस्तुविशेषतः ।
प्रदद्याद्विधिवत्पिण्डान्गत्वासमाहितः ॥१४

एक बार गया मे गमन करके जो पिण्डो का निर्वपन किया करता है समझ लेना चाहिए कि उसने अपने समस्त पितरों का तार दिया है जो सब परमगति को प्राप्त हो जांयगे ॥८॥ वहाँ पर लोको के हित की सम्पादन करने के लिये परमात्मा रुद्र देव ने शिला के तल पर पद न्यस्त किया है। वहाँ पर ही पितृगण को प्रसन्न करना चाहिए ॥६॥ जो कोई शक्तिशाली होते हुए भी गया का अभिगमन नहीं किया करता है उसके पितृगण उसके विषय मे चिन्ता किया करते हैं कि उसका परिश्रम वृथा है ॥१०॥ पितृगण गया का गायन किया करते हैं और महर्षिगण कीर्त्तन किया करते हैं कि जो कोई भी हमारे वंश मे ऐसा होगा कि गया तीर्थ मे जायगा वही हमको तार देगा ॥११॥ यदि कोई पातक से उपेत हुआ और अपने धर्म से परिवर्जित हुआ तो गया जायगा और हम सबका उद्धार कर देगा ॥१२॥ अतएव बहुत से पुत्रों के समुत्पन्न होने की ही इच्छा करनी चाहिए जो पुत्र गुण गणो से समन्वित और शील वाले होवें। उन समस्त समवेत हुओ मे यदि कोई भी एक किसी समय में गया तीर्थ में गमन करे लेवें ॥१३॥ इसीलिये सभी प्रकार के प्रयत्न से विशेष रूप से ब्राह्मण को तो गया तीर्थ मे जाकर विधि-विधान के साथ पिण्डों का निर्वपन समाहित होकर अवश्य ही करना चाहिए ॥१४॥

धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयाया पिण्डदायिनः ।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्याऽऽप्नुयुः परम् ॥१५
अन्यच्चतीर्थप्रवरं सिद्धावासमुदाहृतम् ।
प्रभासमिति विख्यातंयत्रास्तेभगवान्भवः ॥१६

तत्र स्नान ततं श्राद्ध ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।
कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्राह्मणोऽप्युत्तमम् ॥१७
तीर्थन्त्र्यम्बक नाम सवदेवनमस्कृतम् ।
पूजयित्वा तत्र रुद्र ज्योतिष्टोमफललभेत् ॥१८
सुवर्णाक्ष महादेव समभ्यर्च्य कपर्दिनम् ।
ब्राह्मणान्पूजयित्वाच गाणपत्यलभेतम ॥१९
सोमेश्वर तीर्थवर रुद्रस्य परमेष्ठिन ।
सवव्याधिहर पुण्य रुद्रसालोक्यकारणम् ॥२०
तीर्थानापरम तीर्थ विजयनामशोभनम् ।
तत्र लिङ्ग महेशस्य विजयनामविश्रुतम् ॥२१

वे पुरुष परम धन्य अर्थात् महान् भाग्यशाली हैं जो गया तीर्थ में जाकर पिण्डा को देने वाले होते हैं वे ऊपर और आगे होने वाले ७ ७ कुलो को दोनो ही ओर मे तार कर स्वय भी परम पद की प्राप्ति किया करते हैं ॥१५॥ और अन्य भी तीर्थ प्रवर हैं वह तो सिद्ध पुरुषों का ही आवास बताया गया है। वह प्रभास—इस शुभ नाम से ससार मे विख्यात है जहाँ पर भगवान् भव विराजमान रहा करते हैं ॥१६॥ वहाँ पर स्नान और इसके अनन्तर श्राद्ध तथा ब्राह्मणों का अभ्यर्चन करके मनुष्य ब्रह्मा के अक्षय तथा उत्तम लोक की प्राप्ति निश्चित रूप से किया करता है ॥१७॥ एक परम श्रेष्ठ त्र्यम्बक नाम वाला तीर्थ है जिस तीर्थ को सभी देव गण नमस्कार किया करते हैं। उस तीर्थ में विराजमान श्री रुद्र देव का पूजन करके ज्योतिष्टोम नाम वाले यज्ञ करने का फल मनुष्य को मिला करता है ॥१८॥ वहाँ पर सुवर्णाक्ष कपर्दी महादेव का समर्चन करके और वहाँ पर स्थित ब्राह्मणों का अभ्यर्चन करके वह मनुष्य गाणपत्य लोक को प्राप्त किया करता है ॥१९॥ एक परमेष्ठी रुद्रदेव का सोमेश्वर नाम वाला तीर्थ प्रवर है। यह तीर्थ समस्त व्याधियो के हरण करने वाला—परम पुण्य मय और रुद्रदेव के साक्षात् दर्शन प्रदान कराने का कारण होता है ॥२०॥ समस्त तीर्थों में परम श्रेष्ठतम तीर्थ विजय नाम

वाला अतीव शोभन तीर्थ है वहाँ पर भगवान् महेश्वर का विजय नाम वाला ही परम विख्यात लिङ्ग संस्थापित है ॥२१॥

षण्मासनियताहारो ब्रह्मचारी समाहितः ।
उषित्वा तत्र विप्रेन्द्रा यास्यन्ति परमम्पदम् ॥२२
अन्यच्च तीर्थप्रवरं पूर्वदेशेषु शोभनम् ।
एकान्तं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम् ॥२३
दत्वाऽत्र शिवभक्तानां किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम् ।
सार्वभौमो भवेद्राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ॥२४
महानदीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम् ।
ग्रहणेतदुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥२५
अन्याचविरजानामनदीत्रैलोक्यविश्रुता ।
तस्या स्नात्वा नरोविप्रोब्रह्मलोकेमहीयते ॥२६
तीर्थं नारायणस्यान्यनाम्ना तु पुरुषोत्तमम् ।
तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपुरुषः ॥२७
पूजयित्वा परं विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तम. ।
ब्राह्मणान्पूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥२८

छै मास पर्यन्त नियत आहार कहने वाला ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण परिपालन करने वाला ब्रह्मचारी अत्यन्त समाहित होकर निवास करे तो हे विप्रेन्द्र गण ! वह निश्चित रूप से परम पद के पाने का लाभ किया करता है ॥२२॥ और दूसरा परम श्रेष्ठ तीर्थ पूर्व देशों में अतीव शोभन है जो देवों के भी देव के गाणपत्य लोक का एकान्त पद प्रदान कराने वाला होता है ॥२३॥ यहाँ पर शिव के परम भक्त ब्राह्मणों को कुछ थोड़ी-सी भूमि का दान जो दिया करता है वह निश्चित रूप से होने वाले जन्म से एक सार्वभौम चक्रवर्त्ती राजा हुआ करता है यह भोग प्राप्ति का परम श्रेष्ठ लाभ होता है और यदि कोई मुक्ति का इच्छुक मुमुक्षु हो तो वह मोक्ष का लाभ लिया करता है। तात्पर्य यही है कि यह तीर्थ भोगोपभोग और मोक्ष दोनों के प्रदान कराने वाला है ॥२४॥ महानदी का जल परम पुण्यमय एवं सभी तरह के पापों का विनाश कर देने वाला है।

ग्रहण की पवित्र वेला मे उस जल मे उपस्पर्शन करके सभी पातको से मनुष्य सदा के लिये छुटकारा पा जाया करता है ॥२५॥ इसके अतिरिक्त एक अन्य विरजा नाम धारिणी नदी है जो त्रैलोक्य मे परम प्रसिद्ध है। उसमे मनुष्य स्नान करके वह विप्र ब्रह्मलोक प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥२६॥ एक भगवान् नारायण का अन्य तीर्थ है जिसका नाम पुरुषोत्तम तीर्थ कहा जाता है। वहाँ पर साक्षात् प्रभु श्रीमान् परम पुरुष नारायण विराजमान रहा करते है ॥२७॥ वहाँ पर परम विष्णु का पूजन करके द्विजोत्तम को स्नान भी पहिले ही करना चाहिए तथा वहाँ पर स्थिति करते ब्राह्मणो का पूजन करे तो वह व्यक्ति सीधा ही विष्णु लोक की प्राप्ति किया करता है ॥२८॥

तीर्थानाम्परमं तीर्थं गोकर्णनाम विश्रुतम् ।
सर्वपापहरं शम्भोर्निवासः परमेष्ठिनः ॥२९
दृष्ट्वा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णम्परमुत्तमम् ।
ईप्सितांल्लभते कामान्रुद्रस्यदयितोभवेत् ॥३०
उत्तरञ्चापिगोकर्णं लिङ्गं देवस्य शूलिनः ।
महादेवञ्चार्चयित्वाशिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥३१
तत्र देवो महादेव.स्थाणुरित्यभिविश्रुतः ।
त दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणान्मुच्यतेनरः ॥३२
अन्यत्कुब्जाश्रमम्पुण्य स्थान विष्णोर्महात्मनः ।
सम्पूज्य पुरुष विष्णु श्वेतद्वीपे महीयते ॥३३
यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिणा ।
कृत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्यतु विसर्जितः ॥३४
समन्ताद्योजनं क्षेत्रं सिद्धर्षिगणसेवितम् ।
पुण्यमायतनं विष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः ॥३५

अन्य सभी तीर्थों मे एक परम श्रेष्ठ गोकर्ण तीर्थ है जो ससार मे अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। वह परमेष्ठी भगवान् शम्भु का निवास स्थल है और उसका बडा ही प्रभाव यह है कि यह सभी पापो का हरण करने वाला है ॥२९॥ वहाँ पर देव के परमोत्तम गोकर्ण लिङ्ग का दर्शन करके

मनुष्य अपने सभी अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति कर लेता है तथा वह रुद्र देव का अतीव प्रिय भक्त भी हो जाया करता है ।।३०।। लिङ्ग देव भगवान् शूली के उत्तर गोकर्ण के महादेव का अभ्यर्चन करके मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त किया करता है ।।३१।। वहाँ पर देव महादेव ही है जो स्थाणु इस नाम से अभिविश्रुत है। उन प्रभु का दर्शन करके मनुष्य उसी क्षण में सभी पापों से युक्त हो जाया करता है ।।३२।। इसके अतिरिक्त एक अन्य परम पुण्यमय कुब्जाश्रम है जो महान् आत्मा वाले भगवान् विष्णु का स्थान है। वहाँ पर महापुरुष भगवान् श्रीविष्णु का पूजन करके मनुष्य श्वेत द्वीप में महिमान्वित होकर समवस्थित हुआ करता है—ऐसा इस तीर्थ का महान् प्रभाव है ।।३३।। जहाँ पर देव श्रीनारायण ने त्रिपुरारि रुद्र के साथ प्रजापति दक्ष के यज्ञ का मथन करके उसे विसर्जित किया था ।।३४।। उसके चारों ओर एक योजन का क्षेत्र ऐसा है जो बड़े-बड़े सिद्ध और ऋषिगणों के द्वारा सेवित है। यह भगवान् विष्णु का परम पुण्यमय आयतन है और वहाँ पर साक्षात् पुरुषोत्तम प्रभु विराजमान रहते हैं ।।३५।।

अन्यत्कोकामुखे विष्णोस्तीर्थमद्भुतकर्मणः।
मुक्तोऽत्रपातकैर्मर्त्यो विष्णुसारूप्यताप्नुयात् ।।३६
शालिग्रामं महातीर्थं विष्णोःप्रीतिविवर्द्धनम्।
प्राणास्तत्र नरस्त्यक्त्वा हृषीकेशम्प्रपश्यति ।।३७
अश्वतीर्थमिति ख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम्।
आस्ते हयशिरा नित्यं तत्र नारायणःस्वयम्। ३८
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम्।
तत्रास्ति पुण्यदं तीर्थं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।३९
पुष्करं सर्वपापघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम्।
मनसासंस्मरेद्यस्तु पुष्करम्वैद्विजोत्तम. ४०
पूयते पातकैः सर्वैः शक्रेण सह मोदते।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।।४१

उपासते सिद्धसङ्घा ब्रह्माणमब्जसम्भवम् ।
तत्र स्नात्वा व्रजेच्छुद्धो ब्रह्माणं परमोक्षणम् ॥४२

एक अन्य कोका मुख मे अद्भुत कर्मों वाले भगवान् विष्णु का तीर्थ-स्थल है । इस तीर्थ पर जो भी मानव प्राप्त हो जाता है वह पातकों से मुक्त होकर विष्णु की ही स्वरूपता को प्राप्त कर लिया करता है ॥३६॥ एक शालिग्राम—इस परम शुभ नाम वाला महान् तीर्थ है जो भगवान् विष्णु की प्रीति का वर्धन करने वाला तीर्थ है । यदि इस परम पवित्र स्थल पर मनुष्य अपने प्राणों का परित्याग करता है तो वह साक्षात् भगवान् हृषीकेश के दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य—लाभ किया करता है ॥३७॥ एक अश्वतीर्थ—इस नाम से प्रसिद्ध होने वाला महान् तीर्थ है । यह सिद्ध गणों का आवास स्थल है और अतीव शोभा से सुसम्पन्न है । वहाँ पर हय के समान शिर वाले भगवान् नारायण स्वयं नित्य ही विराजमान रहा करते है ॥३८॥ एक तीर्थ त्रैलोक्य नाम से विख्यात है । यह भी परम शोभन सिद्ध पुरुषों के निवास करके स्थित रहने का स्थल है । वहाँ पर एक पुण्य प्रदान करने वाला परमेष्ठी ब्रह्माजी का का तीर्थ है ॥३६॥ पुष्कर तीर्थ समस्त पापों के हनन करने वाला तथा मृत होने वालों को ब्रह्मलोक का प्रदान कराने वाला तीर्थ है । जो कोई भी द्विजो में श्रेष्ठ मन से भी पुष्कर तीर्थ का सस्मरण कर लेता है वह सभी प्रकार के पातकों से छुटकारा पाकर पवित्र हो जाया करता है और फिर इन्द्र देव के साथ मे निवास प्राप्त कर अमन्दानन्द का अनुभव प्राप्त किया करता है । वहाँ पर गन्धर्वों के साथ सभी देवगण तथा यक्ष-उरग और राक्षस सभी सिद्धों के सघ पद्म से समुत्पन्न पितामह ब्रह्माजी की उपासना किया करते है । वहाँ पर सविधि स्नान करके मनुष्य एक दम विशुद्ध हो जाता है और अन्त मे परमेष्ठी ब्रह्माजी का सन्निधान प्राप्त किया करता है ॥४०-४२॥

पूजयित्वा द्विजवरं ब्रह्माणं सम्प्रपश्यति ।
तत्राभिगम्य देवेशं पुरुहूतमनिन्दितम् ॥४३

तद्रूपो जायते मर्त्यःसर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
सप्तसारस्वतं तीर्थं ब्रह्माद्यैः सेवितं परम् ॥४४
पूजयित्वा यत्र रुद्रमश्वमेधफलं भवेत् ।
यत्र मङ्कणको रुद्रं प्रपन्नं परमेश्वरम् ॥४५
आराधयामास शिवं तपसागोवृषध्वजम् ।
प्रजज्वालाथ तपसा मुनिर्मङ्कणकस्तदा ॥४६
ननर्त हर्षवेगेन ज्ञात्वा रुद्र समागतम् ।
तं प्राह भगवान्रुद्रः किमर्थं नर्त्तितन्त्वया ॥४७
दृष्ट्वापिदेवीमशानं नृत्यतिस्म पुनः पुनः ।
सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशःनगर्वंगर्वशान्तये ॥४८
स्वकंदेहविदार्यास्मै भस्मराशिमदर्शयत् ।
पश्येम मच्छरीरोत्थं भस्मराशिद्विजोत्तम ॥४९
माहात्म्यमेतत्तपसस्त्वादृशोऽन्योऽपि विद्यते ।
यत्सगर्वं हि भवता नर्त्तितं मुनिपुंगव ! ॥५०

वहाँ पर द्विजों में परम श्रेष्ठ ब्रह्माजी का पूजन करके उनका साक्षात् दर्शन प्राप्त किया करता है वहाँ पर परम अनिन्दित देवश पुरहूत (इन्द्र) को प्राप्त कर मनुष्य उसी के समान रूप वाला हो जाया करता है और वह फिर अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है। वहाँ सप्त सारस्वत भी एक तीर्थ है जो ब्रह्मा आदि देवगणों के द्वारा परम सेवित है ॥ ४३-४४ ॥ जहाँ पर रुद्र देव का पूजन करके अश्वमेध यज्ञ के करने से प्राप्त होने वाले फल का लाभ अनायास ही हो जाया करता है। जहाँ पर मङ्कणक ने परमेश्वर भगवान् रुद्र की शरणागति में प्रसन्नता प्राप्त की थी ॥४५॥ उस मङ्कणक ने अपनी उग्र तपश्चर्या से गो वृषध्वज प्रभु शिव की समाराधना की थी। उस वेला में मङ्कणक मुनि तप से प्रज्वलित हो गये थे ॥४६॥ भगवान् रुद्र को साक्षात् समागत हुए देख कर वह मुनि हर्षातिरेक के महान् वेग से नृत्य करने लग गये थे। भगवान् रुद्र देव ने उसके समीप में समागत होकर उस मङ्कणक से कहा था—आपने यह नृत्य इस समय में किस प्रयोजन से किया

था ? ।।४७।। उस मुनि ने ईशान देव का अपने ही समक्ष में समुपस्थित साक्षात् दर्शन करके भी बारम्बार नृत्य ही करने वाले वह बने रहे थे। फिर भगवान् ईश गर्व के सहित गर्व की शान्ति के लिये ही अपने देह को विदीर्ण करके उन्होंने इस मङ्कण मुनि को एक भस्म की राशि का दर्शन कराया था और कहा था—हे द्विजोत्तम ! मेरे शरीर से उठी हुई इस भस्म की राशि को तुम देखो ।।४८-४६।। यह इस तपश्चर्या का माहात्म्य ही है और तुम्हारे समान ही अन्य भी विद्यमान हैं। हे मुनिपुङ्गव ! आपको अपनी की हुई इस तपस्या का गर्व हो रहा है कि आप बारम्बार इस तरह से निरन्तर नृत्य ही करते चले जा रहे हैं ।।५०।।

न युक्तं तापसस्यैतत्त्वत्तोऽप्यभ्यधिको ह्यहम् ।
इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रोऽखिलविश्वदृक् ।।५१
आख्याय परमं भावं ननर्त्त जगतो हरः ।
सहस्रशीर्षाभूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात् ।।५२
दंष्ट्राकरालवदनो ज्वालामालीभयङ्करः ।
सोऽन्वपश्यदथेशस्यपार्श्वेतस्य त्रिशूलिनः ।।५३
विशाललोचनामेकादेवींचारुविलासिनीम् ।
सूर्यायुतसमाकाराप्रसन्नवदनांशिवाम् ।।५४
सस्मितप्रेक्षविश्वेश तिष्ठन्तममितद्युतिम् ।
दृष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयो वेपमानोमुनीश्वर ।।५५
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायञ्जपन्वशी ।
प्रसन्नो भगवानीशस्त्र्यम्बकोभक्तवत्सल ।।५६

भगवान् रुद्रदेव ने मङ्कण मुनि से कहा था कि एक तापस को ऐसा नृत्य में ही विह्वल हो जाना उचित नहीं जान पड़ता है। तुम से भी अत्यधिक तो मैं ही नृत्य करने वाला हूँ। अखिल विश्व के द्रष्टा उन रुद्रदेव ने उस मुनिश्रेष्ठ से उसी समय में कहा था ।।५१।। भगवान् हर ने अपने परम भाव को जगत् को कहकर उनने भी ताण्डव नृत्य करना आरम्भ कर दिया था। उस समय में भगवान् शिव का स्वरूप सहस्र शिरों वाला

सहस्र ही नेत्र और सहस्र चरणों वाले हो गया था ॥५२॥ दष्ट्राओं से उनका मुख बहुत ही कराल था तथा ज्वालाओं की माला वाला और महान् भयङ्कर स्वरूप था। ऐसा त्रिशूली ईश के समीप में स्थित होकर उस मुनि ने स्वरूप देखा था ॥५३॥ वहीं पर उन्हीं के समीप में परम विशाल लोचनों वाली—चारुविलासिनी देवी का भी दर्शन किया था जो दश सहस्र सूर्यों के समान तेजाकार वाली थी तथा प्रसन्न मुख से युक्त जगदम्बा साक्षात् शिवा थी ॥५४॥ विश्वेश प्रभु को स्मित के साथ अमित द्युति वाले और सामने स्थित देखकर वह मुनीश्वर सत्रस्त हृदय वाले होकर कम्पायमान हो रहे थे ॥५५॥ वही मुनीश्वर ने रुद्राध्याय का जाप करते हुए शिर से भगवान् रुद्र को प्रणाम किया था। उस समय में भगवान् ईश त्र्यम्बक परम प्रसन्न हो गये थे क्योंकि प्रभु रुद्रदेव तो सदा अपने भक्तों के परम वत्सल हैं ॥५६॥

पूर्ववेष स जग्राह देवी चान्तर्हिताभवत् ।
आलिङ्ग्य भक्तम्प्रणतं देवदेवःस्वयंशिवः ॥५७
न भेतव्यं त्वया वत्स ! प्राहकिन्तेददाम्यहम् ।
प्रणम्यमूर्ध्नागिरिशंहरं त्रिपुरसूदनम् ॥५८
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः ।
नमोऽस्तुतेमहादेवमहेश्वरनमोऽस्तु ते ॥५९
किमेतद्भगवद्रूपंसुघोरं विश्वतोमुखम् ।
का च सा भगवत्पार्श्वेराजमानाव्यवस्थिता ॥६०
अन्तर्हिते च सहसा सर्वमिच्छामिवेदितुम् ।
इत्युक्ते व्याजहारेशस्तदामङ्कणकंहरः ॥६१
महेशः स्वात्मनो योगं देवीञ्च त्रिपुरानलः ।
अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः ॥६२
दाहकः सर्वपापानां कालः कालकरोहरः ।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचेतनात्मकम् ॥६३

भगवान् शिव ने पुनः अपना वही पूर्व वाला वेष ग्रहण कर लिया था और वह देवी जो उनके ही समीप में संस्थित थी अन्तर्हित हो गयी

थीं। फिर तो देवों के देव भगवान् शिव ने स्वय ही अपने चरणों में प्रणत होने वाले भक्त का समालिङ्गन किया था ॥५७॥ भगवान् शिव ने उस मङ्कण मुनि से कहा—हे वत्स। अब तुमको किसी भी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए। अब तुम मुझसे कहो—मैं तुमको क्या प्रदान करूँ। ऐसा शिव प्रभु के द्वारा कहे जाने पर मुनि ने मूर्द्धा से गिरिश हर को जो कि त्रिपुर असुर के सूदन करने वाले थे प्रणाम करके उस समय में परमहर्षित होकर पूछने की इच्छा वाले मुनि ने विज्ञापित किया था। हे महादेव। हे महेश्वर। आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम समर्पित हो ॥५८-५९॥ मुनि ने प्रार्थना करके प्रभु से पूछा था—हे भगवन् ! आपका यह परम घोर विश्वतोमुख रूप क्या था और आपके पार्श्व भाग में विराजमान होकर व्यवस्थित देवी कौन थी ? ॥६०॥ यह तो सहसा ही अन्तर्हित हो गई है मैं यह सभी जानने की इच्छा कर रहा हूँ। ऐसा पूछने पर हर ईश ने उसी समय म मङ्कण मुनि से कहा था ॥६१॥ अपनी आत्मा के योग को महेश—त्रिपुरानन देवी को—सहस्र नयनों वाला-सर्व की आत्मा और सर्वतोमुख मे—समस्त पाशों का दाहक काल और काल करने वाले हर यह सम्पूर्ण चेतन और अचेतन स्वरूप वाला जगत् मेरे ही प्रेरित किया जाता है ॥६२-६३॥

सोऽन्तर्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः।
तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥६४

प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनी. सनातनी।
स एष मायया विश्वं व्यामोहयति विश्वकृत् ॥६५

नारायण.परोऽव्यक्तोमायारूपइति श्रुतिः।
एवमेतज्जगत्सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम् ॥६६

योजयामि प्रकृत्याहं पुरुषं पञ्चविंशकम्।
तथा वै सङ्गतोदेवः कूटस्थःसर्वगोऽमलः ॥६७

सृजत्यशेषमेवेदं स्वमूर्त्तेः प्रकृतेरजः।
स देवो भगवान्ब्रह्मा विश्वरूपः पितामहः ॥६८

तवैतत्कथितंसम्यक्सष्ट्त्वंपरमात्मनः ।
एकोऽहंभगवान्कालोह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः ॥६९
समास्थायपरम्भावं प्रोक्तोरुद्रोमनीषिभिः ।
ममैवसा पराशक्तिर्देवीविद्येति विश्रुता ॥७०

वह अन्तर में यमन करने वाला पुरुष पुरुषोत्तम भी मैं ही हूँ। यह यह त्रिगुणी (सत—रज—तम) के स्वरूप वाली प्रकृति मेरी ही माया है और यह सर्वोपरि विराजमाना माया है ॥६४॥ यही मुनियों के द्वारा इस जगत् के उद्भव करने वाली योनि सनातनी शक्ति कही जाया करती है। वह ही विश्व की रचना करने वाला प्रभु अपनी इस परमा माया के द्वारा इस सम्पूर्ण विश्व को मोहित किया करते हैं ॥६५॥ वह नारायण पर अव्यक्त और माया के रूप वाला है—ऐसा श्रुति का वचन है। इसी प्रकार से मैं इस सम्पूर्ण जगत् को सर्वदा स्थापित किया करता हूँ ॥६६॥ इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति के सहयोग से ही मैं पुरुष को पच्चीस प्रकार वाला योजित किया करता हूँ। तथा कूटस्थ—सबम गमन करने वाला—अमल देव सङ्गत होता है ॥६७॥ वही अज अपनी ही मूर्ति प्रकृति से इस सम्पूर्ण विश्व का सृजन किया करता है । वह देव भगवान् ब्रह्मा विश्व रूप और पितामह है ॥६८॥ मैंने परमात्मा का सृजन करने का यह समस्त विज्ञान तुमको बतला दिया है। मैं एक ही भगवान् काल हूँ जो कि आदि से रहित और सबका अन्त करने वाला एवं विभु हूँ ॥६९॥ जब मैं परम भाव म समास्थित होता हूँ जो मनीषियों के द्वारा मुझे ही रुद्र कहा गया है। वह देवी विद्या—इस नाम से लोक में प्रसिद्ध है वह भी मेरी ही एक परा शक्ति है ॥७०॥

दृष्टो हि भवतानून विद्यादेह स्वय ततः ।
एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वरः ॥७१
विष्णुर्ब्रह्माचभगवान्रुद्रः कालइतिश्रुतिः ।
त्रयमेतदनाद्यन्तब्रह्मण्येव व्यवस्थितम् ॥७२
तदात्मक तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः ।
आत्मानन्दपर तत्त्वं चिन्मात्र परमम्पदम् ॥७३

आकाश निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यन्न विद्यते ।
एव विज्ञाय भवना भक्तियोगाश्रयेण तु ॥७४
सम्पूज्योवन्दनीयोऽहं ततस्तपश्यसीश्वरम् ।
एतावदुक्त्वा भगवाञ्जगामादर्शनंहर. ॥७५
तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनि ।
एतत्पविनमतुलं तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम् ।
ससेव्य ब्राह्मणो विद्वान्मुच्यते सर्वपातकैः ॥७६

तुमने तो स्वय ही उस विद्या देवी का देह देख लिया है । इस प्रकार से ये तत्त्व ही प्रधान—पुरुष और ईश्वर हैं ॥७१॥ विष्णु—ब्रह्मा और भगवान् रुद्र हैं तथा काल है—यही श्रुति का वचन है । यह तीनो ही आदि और अन्त से रहित है तथा ब्रह्म मे ही व्यवस्थित है ॥७२॥ उस स्वरूप वाला—वह अव्यक्त और वह अक्षर है । आत्मानन्द पर तत्त्व ज्ञान मात्र परम पद है ॥७३॥ आकाश ही निष्कल ब्रह्म है उससे अन्य कुछ भी नही है । इसी प्रकार से भक्तियोग के आश्रय के द्वारा आपको विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥७४॥ ऐसा जानकर ही मैं भली भाँति पूजन करने के योग्य हूँ तथा वन्दना करने के भी लायक होता हूँ । इसके पश्चात् ही तुम ईश्वर को देखते हो । इस प्रकार से इतना सब कहकर भगवान् हर अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥७५॥ वही पर भक्ति के योग से मुनि ने रुद्रदेव की आराधना करते हुए रहते थे । यह परम पवित्र अतुल तीर्थ ब्रह्मर्षियो के द्वारा सेवित है । इसका विद्वान् ब्राह्मण सेवन करके ही समस्त पातको से मुक्त हो जाया करता है ॥७६॥

३९—रुद्रकोटि-कालञ्जरतीर्थवर्णन

अन्यत्पवित्रंविपुलं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
रुद्रकोटिरितिख्यातं रुद्रस्यपरमेष्ठिनः ॥१
पुरा पुण्यतमे काले देवदर्शनतत्परा ।
कोटिब्रह्मर्षयो दान्तास्त देशमगमन्परम् ॥२

अहं द्रक्ष्यामि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम् ।
अन्योऽन्य भक्तियुक्तानां विवादोऽभून्महान् किल ॥३
तेषां भक्ति तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरुः ।
कोटिरूपोऽभवद्रुद्रो रुद्रकोटिस्ततोऽभवत् ॥४
ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम् ।
अपश्यन् पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन् ॥५
अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम् ।
दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन् ॥६
अथान्तरिक्षेविमलम्पश्यन्तिस्मममहत्तरम् ।
ज्योतिस्तत्रैवतेसर्वेऽभिलषन्तःपरम्पदम् ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—एक अन्य बहुत अधिक पवित्र और त्रिलोकी में प्रसिद्ध तीर्थ रुद्र कोटि इस नाम से विख्यात है जो कि परमेष्ठी रुद्र का है ॥१॥ पहिले किसी पुण्यतम काल में देवों के दर्शन में परायण करोड़ों ब्रह्मर्षिगण परम शान्त होते हुए उस पर देश को गये थे ॥२॥ उन सबमें पहिले मैं भगवान् पिनाकी गिरिश के दर्शन करूँगा—इस प्रकार से भक्ति से युक्त उन ब्रह्मर्षियों में परस्पर में महान् विवाद उठ खड़ा हुआ था ॥३॥ योगियों के गुरुदेव भगवान् गिरिश ने उनकी भक्ति की भावना को देखकर वे स्वयं रुद्रदेव करोड़ों की संख्या में हो गये थे जिससे सभी पहिले दर्शन प्राप्त कर लेवें। तभी से इस तीर्थ का नाम रुद्र कोटि पड़ गया था ॥४॥ उन सभी ने गिरि गुहाशय महादेव हर का दर्शन किया था उन पार्वती के नाथ का दर्शन करके सब हृष्ट-पुष्ट बुद्धि वाले हो गये थे ॥५॥ उनमें से सबने यही कहा था कि सबने पूर्व अनाद्यन्त महादेव ईश्वर का मैंने दर्शन किया था—इस तरह से भक्ति भाव से वे सभी भगवान् रुद्र में न्यस्त बुद्धि वाले हो गये थे ॥६॥ इसके अनन्तर अन्तरिक्ष में महत्तर विमल देव का दर्शन करते थे। उन सबने वहाँ पर ही परम पद की अभिलाषा रखते हुए उस ज्योति का दर्शन किया था ॥७॥

यतःस देवोऽध्युषितस्तीर्थं पुण्यतमं शुभम्ः ।
दृष्ट्वा रुद्रान्समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयुः ॥८

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्नामधुवनं शुभम् ।
तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्द्धासनलभेत् ॥६

अथान्या पद्मनगरी देशः पुण्यतमः शुभः ।
तत्रगत्वापितृन्पुज्यकुलाना तारयेच्छतम् ॥१०

कालञ्जरं महातीर्थं रुद्रलोके महेश्वरः ।
कालञ्जर भजन्देव तत्र भक्तप्रियो हरः ॥११

श्वेतो नाम शिवेभक्तो राजर्षिप्रवर.पुरा ।
तदाशीस्तन्नमस्कारै.पूजयामास शूलिनम् ॥१२

सस्थाप्य विधिनारुद्र भक्तियोगपुरःसरः ।
जजाप रुद्रमनिश तत्र सन्न्यस्तमानसः ॥१३

सितकार्ष्णाजिन दीप्तं शूलमादायभीषणम् ।
नेतुमभ्यागतोदेशस राजा यत्रतिष्ठति ॥१४

क्योकि वही देव वहाँ पर अभ्युषित हैं इसीलिये वह परम पुण्यतम शुभ तीर्थ होगया है । वहाँ पर रुद्र देवो का दर्शन करके उनका अभ्यर्चन किया और सबने भगवान् रुद्र का सामीप्य प्राप्त किया था ॥८॥ एक और परम श्रेष्ठ तीर्थ है जो नाम से मधुवन है और शुभ है । उस तीर्थ मे जाकर जो नियमो का पालन करने वाला रहता है वह इन्द्रदेव के अर्द्धासन का लाभ प्राप्त किया करता है ॥६॥ इस के उपरान्त एक पद्म नगरी देश है जो परम पुण्यतम तथा शुभ है । वहाँ जाकर अपने पितृगणो को पूज कर मनुष्य सौकुलो को तार दिया करता है ॥१०॥ कालञ्जर भी महातीर्थ है । रुद्र लोक मे महादेव कालञ्जर देव का भजन करते हुए वहाँ पर भक्तो के प्रिय हर होगये थ ॥११॥ पहिले प्राचीन समय मे श्वेत नाम धारी एक राजर्षियो मे बहुत ही श्रेष्ठ शिव का भक्त था । उसके आशीर्वाद और उनके लिये किये हुए नमस्कारो से भगवान् शूली का पूजन किया करता था ॥१२॥ भक्तियोग पुरस्सर होकर विधि के साथ भगवान् रुद्र की सस्थापना करके निरन्तर शिव मे ही मन को भलीभाँति लगाकर निरन्तर रुद्र का जप किया करता था ॥१३॥ सित कार्ष्णाजिन

तथा भीषण दीप्त शूल लेकर लेने की उस देश मे गया था जहाँ पर राजा स्थित रहता था ॥१४॥

वीक्ष्य राजा स्थितः शूलहस्तं समागतम् ।
कालकालकरं घोरं भीषणं चण्डदीपितम् ॥१५
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वाऽसौ लिङ्गमुत्तमम् ।
ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम् ॥१६
जपन्तमाह राजानं नमन्तं मनसा भवम् ।
एह्येहीति पुरः स्थित्वाकृतान्तः प्रहसन्निव ॥१७
तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः ।
एकमीशार्च्चनरतं विहायान्यान्निषूदय ॥१८
इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद्भीतमानसम् ।
रुद्रार्च्चनरतो वान्यो मद्वशे को न तिष्ठति ॥१९
एवमुक्त्वास राजानं कालो लोकप्रकालनः ।
बबन्ध पाशैं राजापि जजापशतरुद्रियम् ॥२०
अथान्तरिक्षे विपुलं दीप्यमानं तेजोराशिं भूतभर्तुः पुराणम्
ज्वालामालासंवृतं व्याप्यविश्वप्रादुर्भूतसंस्थितं सददर्श ॥२१

बैठे हुए राजा ने हाथ मे शूल लेने वाले समागत काल का भी कालकर—भीषण—घोर—चण्डदीपित को देखकर इसने दोनो हाथो से इस उत्तम लिङ्ग का स्पर्श करके रुद्र देव को नमस्कार किया था तथा शतरुद्रिय का जाप किया था ॥१५-१६॥ जाप करते हुए तथा मन से भगवान् भव को नमन करते हुए राजा से कहा था आओ—आओ—यह सामने स्थित होकर कृतान्त ने हँसते हुए यह कहा था ॥१७॥ रुद्र मे परायण और भय से समाविष्ट राजा ने उससे कहा—केवल एक भगवान ईश के अर्चन मे रत को छोड कर अन्यो का निषूदन कर डालो ॥१८॥ इस प्रकार से कहने वाले भय से डरे हुए उससे भगवान् ने कहा—जो रुद्र के अर्चन में रत हो व अन्य हो मेरे वश मे कौन नहीं रहा करता है ॥१९॥ इतना कहकर लोक का प्रकालन उस काल ने राजा को पाशों से बाँध लिया था और राजा भी शतरुद्रिय का जाप करता ही रहा था

॥२०॥ इसके उपरान्त अन्तरिक्ष मे बहुत अधिक—देदीप्यमान—तेज की राशि—भूतों के भर्त्ता का पुराना ज्वाला की मालाम्रो से सवृत—विश्व को व्याप्त करके प्रादुर्भूति सस्थित देखा था ॥२१॥

तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम् ।
तेजोरूपंपश्यति स्मातिहृष्टो मेने चात्मानमप्यागच्छतीति ॥२२
आगच्छन्तं नाऽतिदूरेति दृष्ट्वा कालो रुद्र देवदेव्या महेशम् ।
व्यपेतभीरखिलेशैकनाथ राजर्षिस्तन्नेतुमभ्याजगाम ॥२३
आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्म्मा देवो रुद्रो भूतभर्त्ता पुराणः ।
एवं भक्तं सत्वरं मा स्मरन्त देहीतीम कालरूप ममेति ॥२४
श्रुत्वावाक्यंगोपनेरुद्रभाव कालात्मासौमन्यमानःस्वभावम् ।
बद्ध्वा भक्त पुनरेवाथपाशैरुद्रोरौद्रचाभिदुद्राववेगात् ॥२५
प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेश सोऽन्वीक्ष्यान्नेविश्वमायाविधिज्ञः ।
सावज्ञ वै वामपादेन काल त्वेतस्यैन पश्यतो व्याजघान ॥२६
ममार सोऽभिभीषणो महेशपादघातितः ।
विराजते सहोमया महेश्वर पिनाकधृक् ॥२७
निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम् ।
ननाम वै तमव्ययं स राजपुङ्गवस्तदा ॥२८

उसके मध्य मे इसने देवी के साथ सुवर्ण के समान वर्ण वाले तथा चन्द्रमा की लेखा से समुज्जवल अङ्ग वाले तथा तेज के स्वरूप से समन्वित स्वरूप से देखा था । अत्यन्त प्रसन्न होते हुए आत्मा को आते हुए देखा—ऐसा ही मान लिया था ॥२२॥ काल ने अत्यन्त समीप मे ही आने वाले देव देवी के साथ भगवान् महेश को देखकर जो कि समस्त लोको के एक ही नाथ हैं भय से रहित राजर्षि उनको प्राप्त करने को आगे चला गया था ॥२३॥ उग्र कर्मों वाले भूतो के स्वामी—परम पुराण—भगवान रुद्र देव ने इसको देखकर इस प्रकार से भक्ति के करने और शीघ्र ही मेरे स्मरण करने वाले इस काल रूप को मुझे दो—इस गोपति के वाक्य का श्रवण कर रुद्र के भक्त को पुनः भी पाशो से बाँध कर रुद्र रौद्र की ओर

बड़े हो वेग से दौड़े ॥२४-२५॥ इस के अनन्तर ईश ने सैनी के राजा की पुत्री को देखकर और आते हुए उसे देखकर अन्त में माया की विधि के ज्ञाता ने अवज्ञा पूर्वक इसके देखते हुए उस काल को वाम पाद से ही मार दिया था ॥२६॥ अत्यन्त भीषण वह महेश के पाद के घात से मर गया था और पिनाक के धारण करने वाले महेश्वर उमा देवी के साथ में ही विराजमान हो रहे थे ॥२७॥ उस वेला मे उस परम प्रहृष्ट मन वाले उस श्रेष्ठ राजा ने ईश्वर देव—अव्यय हर का दर्शन किया था और उनको प्रणाम किया था ॥२८॥

नमोभवाय हेतवे हराय विश्वशम्भवे ।
नमः शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिने ॥२९
नमो नमो नमो नमोमहाविभूतये नमः ।
विभागहीनरूपिणे नमो नराधिपाय ते ॥३०
नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपन्नदुःखशासन ।
अनादिनित्यभूतये वराहशृंगधारिणे ॥३१
नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नमः ।
नमो महानगाय ते शिवाय शङ्कराय ते ॥३२
अथानुगृह्य शङ्करः प्रणामतत्परं नृपम् ।
स्वगाणपत्यमव्ययं स्वरूपतामयो ददौ ॥३३
सहोमया सपार्षदः सराजपुङ्गवो हरः ।
मुनीशसिद्धवन्दितः क्षणाददृश्यतामगात् ॥३४
काले महेशनिहते लोकनाथः पितामहः ।
अयाचत वरं रुद्रं सजीवोऽस्य भवित्विति ॥३५

राजा ने स्तवन करते हुए कहा—जगत् के हेतु—विश्व शम्भु हर—भव के लिये नमस्कार है । परम बुद्धिमान भगवान् शिव को सन्निधि मे नमस्कार है । अपवर्ग के प्रदान करने वाले प्रभु की सेवा मे मेरा प्रणाम समर्पित है ॥२९॥ महान् विभूति प्रभु के लिये वारम्वार मेरा नमस्कार है विभाग से ही न रूप वाले नरों के अधिप आप के लिये नमस्कार है ॥३०॥ हे गणों के स्वामिन् ! आप तो शरणागति मे

उपस्थित प्रपन्न भक्त के दु खो का नाश करने वाले हैं। आपकी सेवा मे नमस्कार है। *अनादि नित्य विभूति तथा वराह के शृङ्ग को धारण करने* वाले आपको मेरा प्रणाम है ॥३१॥ वृषध्वज को नमस्कार है तथा कपालो की माला वाले के लिये प्रणाम है। महान् जग के लिये प्रणाम है—शिव एव शङ्कर के लिये नमस्कार है ॥३२॥ इसके अनन्तर भगवान् शङ्कर ने प्रणाम करने मे तत्पर उस नृप के ऊपर परम अनुग्रह करके अपना गाणपत्य अव्यय स्वरूपता प्रदान की थी ॥३३॥ भगवती उमा के साथ—पार्षदो से युक्त वह राजाओ मे श्रेष्ठ और मुनीश तथा सिद्धो से वन्दित भगवान् हर क्षणमात्र मे ही अदृश्यता को प्राप्त हो गये थे ॥३४॥ महेश के द्वारा काल के निहत किये जाने पर लोको के नाथ पितामह ने भगवान् रुद्र देव से वरदान की याचना की थी कि यह सजीव हो जावे ॥३५॥

नाऽस्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज !।
कृतान्तस्यैव भविता तत्कार्ये विनियोजितः ॥३६

स देवदेववचनाद्देवदेवेश्वरोहरः ।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत् ॥३७

इत्येतत्परमं तीर्थं कालञ्जरमिति श्रुतम् ।
गत्वाभ्यर्च्य महादेवगाणपत्यं सविन्दति ॥३८

हे भगवन् वृषध्वज ! हे ईशान देव ! इसमे इस विचारे कृतान्त का लेश मात्र भी दोष नही है। इसको तो अपने उस कार्य मे आपने ही नियोजित किया था ॥३६॥ यह देवों के भी देव के वचन से देवो के भी देव भगवान् हर ने 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होवे—यह कह दिया था। विश्वात्मा वह भी फिर उसी प्रकार के हो गये थे ॥३७॥ यह परम-तीर्थ कालञ्जर है ऐसा श्रुत हुआ है। जो कोई वहाँ जाकर महादेव की अभ्यर्चना करता है वह गाणपत्य पद को प्राप्त किया करता है ॥३८॥

३७—महालयादितीर्थमाहात्म्यवर्णन

इदमन्यत्परं स्थानं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ।
महादेवस्य देवस्य महालय इति श्रुतम् ।।१
तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा ।
शिवातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निदर्शनम् ।।२
तत्र पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः ।
उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्पराः ।।३
स्नात्वा तत्र पदं शार्व्वं दृष्ट्वा भक्तिपुरःसरम् ।
नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ।।४
अन्यच्चदेवदेवस्यस्थानं शम्भोर्महात्मनः ।
केदारमितिविख्यातं सिद्धानामालयशुभम् ।।५
तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम् ।
पीत्वा चैवोदकं शुद्धं गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।६
श्राद्धदानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभतेफलम् ।
द्विजातिप्रवरैर्जुष्टं योगिभिर्जितमानसैः ।।७

महर्षि सूतजी ने कहा—यह एक अन्य गुह्य से भी अत्यधिक गुह्य परम महत् स्थान है। महादेव देव यह महालय है—ऐसा श्रुत होता है ।।१।। वहाँ पर देवों के भी आदि देव त्रिपुरारि रुद्र ने शिवा के तल में पदन्यस्त किया था जो नास्तिकों का निदर्शन है ।।२।। वहाँ पर पाशुपत लोग परम शान्त भस्म से उद्धूलित विग्रह वाले तथा वेदों के अध्ययन में तत्पर महादेव की उपासना किया करते हैं ।।३।। वहाँ पर स्नान करके भक्ति पूर्वक भगवान् शर्व के पद का दर्शन करके तथा शिर से प्रणाम करके रुद्र की समीपता को प्राप्त किया करता है ।।४।। एक और दूसरा स्थान है जो देवों के भी देव महात्मा शम्भु का है। इसका केदार यह शुभ नाम संसार में विख्यात है जो सिद्धों का शुभ आलय है ।।५।। वहाँ पर स्नान करके और वृषकेतन महादेव का अभ्यर्चन करके तथा परम शुद्ध जल का पान करके गाणपत्य पद को प्राप्त किया करता है ।।६।। श्राद्ध

तथा दान आदि करके अक्षय फल की प्राप्ति किया करता है। ऐसा फल वे ही लोग प्राप्त करते हैं जो जिन्होंने अपने मन को जीत लिया है और योगीजन है। यह तीर्थ द्विजातियों में परम श्रेष्ठों के द्वारा सेवित है ॥७॥

तीर्थं प्लक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम् ।
तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवासं विष्णुलोके महीयते ॥८
अन्यच्च मगधारण्यं सर्वलोकगतिप्रदम् ।
अक्षयं विन्दते स्वर्गं तत्र गत्वाद्विजोत्तमः ॥९
तीर्थं कनखलं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः ॥१०
तत्र गङ्गामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वितः ।
मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥११
महातीर्थमिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम् ।
तत्राऽभ्यर्च्य हृषीकेशं श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥१२
अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्नाश्रीपर्वतं शुभम् ।
अत्रप्राणान्परित्यज्य रुद्रस्यदयितो भवेत् ॥१३
तत्र सन्निहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः ।
स्नानपिण्डादिकं तत्र दत्तमक्षयमुत्तमम् ॥१४

एक प्लक्षावतरण नाम वाला तीर्थ है जो सभी प्रकार के विनाश करने वाला है। वहाँ पर भगवान् श्रीनिवास का अभ्यर्चन करके मनुष्य विष्णु लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥८॥ एक अन्य मगधारण्य नामक तीर्थ है जो सभी लोकों में गति प्रदान करने वाला है। वहाँ पर पहुँच कर द्विजोत्तम अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है ॥९॥ कनखल नाम का तीर्थ परम पुण्यमय है जो महान् पातकों का नाश करने वाला है जहाँ पर भगवान् रुद्र देव ने प्रजापति दक्ष के यज्ञ का नाश किया था ॥१०॥ वहाँ पर गङ्गा में उपस्पर्शन करके परम शुचि होकर भक्ति की भावना से समन्वित होकर तीर्थ का सेवन करे तो मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है और फिर ब्रह्मलोक में निवास किया करता है ॥११॥ एक

महातीर्थ—इस नाम से विख्यात है जो परम पुण्यमय है और भगवान् नारायण का अत्यन्त प्रिय है। वहाँ पर भगवान् हृषीकेश की अर्चना करके पूजन श्वेत द्वीप में चला जाया करता है ॥१२॥ एक दूसरा और तीर्थों में परम श्रेष्ठ तीर्थ है जो नाम से शुभ श्री पर्वत कहा जाता है। इस तीर्थ में मनुष्य अपने प्रिय प्राणों का परित्याग करके भगवान् रुद्र का परम प्रिय हो जाया करता है ॥१३॥ वहाँ पर सन्निहित रुद्र देव देवी के सहित ही महादेव विराजमान रहा करते हैं। इस तीर्थ में स्नान और पिण्ड आदि का कर्म तथा दिया हुआ धन स्त्री अक्षय एवं उत्तम हो जाता है ॥१४॥

गोदावरीनदीपुण्या सर्वपापप्रणाशिनी।
तत्रस्नात्वापितृन्देवास्तर्पयित्वायथाविधि ॥१५
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफलं लभेत्।
पवित्रसलिला पुण्याकावेरी विपुला नदी ॥१६
तस्यां स्नात्वोदककृत्वामुच्यते सर्वपातकैः।
त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोपोषितेनवा ॥१७
द्विजातीनां तु कथितं तीर्थानामिह सेवनम्।
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च संस्थितौ ॥१८
अलोलुपोब्रह्मचारीतीर्थानांफलमाप्नुयात्।
स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥१९
तत्रसन्निहितोनित्यंस्कन्दोऽमरनमस्कृतः।
स्नात्वाकुमारधारायांकृत्वादेवादितर्पणम् ॥२०
आराध्य षण्मुखं देवंस्कन्देनसह मोदते।
नदीत्रैलोक्यविख्याता ताम्रपर्णीतिनामतः ॥२१

गोदावरी परम पुण्यमयी नदी है जो सभी पापों के नाश करने वाली है। उस नदी में स्नान करके पितृगण और देवों का तर्पण यथाविधि करना चाहिए ॥१५॥ वह सर्व पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त किया करता है। कावेरी नदी बहुत बड़ी पुण्यमयी और पवित्र जल वाली है ॥१६॥ उसमें स्नान करके तथा

उदक दान करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है। तीन रात्रि उपवास करके अथवा एक रात्रि तक उपवास करके पापों से मुक्ति होती है ॥१७॥ द्विजातियों का यह कथन है कि यहाँ पर तीर्थों का सेवन करना चाहिए। जिसके मन और वाणी शुद्ध हों और हस्त तथा पाद जो संस्थित हों उसे तीर्थ सेवन अवश्य करना चाहिए ॥१८॥ जो मनुष्य लोलुप न हो और ब्रह्मचारी हो वही मनुष्य तीर्थों के शुभ फल किया करता है। स्वामि तीर्थ एक बहुत महान् तीर्थ है और तीनों लोकों में यह परम प्रसिद्ध है ॥१९॥ वहाँ पर भगवान् स्कन्द नित्य ही संस्थित रहा करते हैं जो देवगण के द्वारा नमस्कृत रहते हैं। कुमार धारा में स्नान करके पितृगण और देवों का तर्पण करना चाहिए ॥२०॥ फिर स्कन्द देव की आराधना करे तो इसका यह प्रभाव होता है कि वह पुरुष भगवान् स्कन्द के ही साथ मुदित होकर सुखोपभोग किया करता है। ताम्रपर्णी नदी जिसका नाम है वह त्रैलोक्य में विश्रुत नहीं है ॥२१॥

तत्रस्नात्वा पितृन्भक्त्यातर्पयित्वा यथाविधि।
पापकर्तृनपि पितृ स्तारयेन्नात्रसंशयः ॥२२
चन्द्रतीर्थमितिख्यात कावेर्याः प्रभवेऽक्षरम्।
तीर्थं तत्र भवेद्दत्तमृतानासद्गतिप्रदम् ॥२३
विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेव सदाशिवम्।
भक्तायेतेनपश्यन्ति यमस्त्रवदनद्विजा ॥२४
देविकाया वृषो नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वोदक कृत्वा योगसिद्धिञ्च विन्दति ॥२५
दशाश्वमेधिक तीर्थं सर्वपापविनाशकम्।
दशानामश्वमेधाना तत्राप्नोति फल नरः ॥२६
पुण्डरीक तथा तीर्थं ब्राह्मणैरुपशोभितम्।
तत्राभिगम्ययुक्तात्मापुण्डरीकफल लभेत् ॥२७
तार्थेष्य परम तीर्थं ब्रह्मतीर्थमितिस्मृतम्।
ब्रह्माणमर्चयित्वात्र ब्रह्मलोके महीयते ॥२८

उस ताम्रपर्णी में स्नान करके यथाविधि पितृगण का भक्तिभाव से तर्पण करे। वह पाप करने वाले भी पितृगण का भी उद्धार कर दिया करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥२२॥ चन्द्रतीर्थ—इस नाम से विख्यात है और यह कावेरी के प्रभव में प्रक्षय है। उस तीर्थ में दिया हुआ दान भी अक्षय होता है तथा मृत पुरुषों को सद्गति के प्रदान कराने वाला है ॥२३॥ विन्ध्य पाद में देवों के देव सदाशिव का जो दर्शन किया करते हैं। और जो शिव के भक्त होते हैं वे द्विज यमराज का मुख नहीं देखा करते हैं ॥२४॥ देविका में वृष नाम वाला एक तीर्थ है जो सिद्धों के द्वारा निषेवित है। वहाँ उस तीर्थ में स्नान और देव पितृ गण का तर्पण करके मनुष्य योग की सिद्धि को प्राप्त किया करता है ॥२५॥ दशाश्वमेधिक नाम वाला तीर्थ सभी पापों का विनाश करने वाला है। वहा पर उस तीर्थ का स्नानादि करके मनुष्य दश अश्वमेधों के करने का फल प्राप्त किया करता है ॥२६॥ एक पुण्डरीक नाम वाला तीर्थ है जो ब्राह्मणों के द्वारा उपशोभित है। वहाँ पर जाकर युक्त आत्मा वाला मनुष्य पुण्डरीक का फल प्राप्त किया करता है ॥२७॥ समस्त तीर्थों में परम शिरोमणि तीर्थ ब्रह्मतीर्थ नाम वाला तीर्थ है। यहाँ इस ब्रह्मतीर्थ में पितामह श्री ब्रह्माजी का अभ्यर्चन करके मानव अन्त में ब्रह्मलोक में ही जा करके प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२८॥

सरस्वत्या विनशनं प्लक्षप्रस्रवणं शुभम् ।
व्यासतीर्थमिति ख्यातं मैनाकश्च नगोत्तमः ॥२९
यमुनाप्रभवश्चैव सर्वपापविनाशनः ।
पितॄणा दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता ॥३०
तस्यां स्नात्वा दिवं याति मृतो जातिस्मरो भवेत् ।
कुवेरतुङ्गं पापघ्नं सिद्धचारणसेवितम् ॥३१
प्राणास्तत्र परित्यज्य कुवेरानुचरो भवेत् ।
उमातुङ्गमितिख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभा ॥३२
तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफलं लभेत् ।
भृगुतुङ्गे तपस्तप्तं श्राद्धदानं तथाकृतम् ॥३३

कुलान्युभयतः सप्त पुनातीति मतिर्मम ।
काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरितिश्रुतम् ॥३४

तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यं पापक्षयेच्छया ।
दशार्णायां तथा दानं श्राद्धं होमं तपो जपः ॥३५

सरस्वती का विनशन और शुभप्लक्ष प्रस्रवण तथा व्यास तीर्थ इस नाम से प्रसिद्ध है और मैनाक सब नामों में उत्तम है ॥२९॥ यमुना प्रभव तीर्थ सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है। पितृगण की पुत्री देवी गन्ध काली—इस नाम से प्रसिद्ध थी ॥३०॥ उसमें स्नान करके मनुष्य स्वर्ग में जाया करता है और मृत होकर जाति स्मर होता है। कुवेर तुङ्ग नाम वाला तीर्थ पापों का हनन करने वाला है तथा सिद्ध और चारणों के द्वारा सेवित है ॥३१॥ यहाँ पर प्राणों का परित्याग करके यह प्राणी फिर कुवेर के अनुचर होने का अधिकारी हो जाया करता है। एक उमा-तुङ्ग इस नाम से विख्यात तीर्थ है जहाँ पर रुद्र देव की प्रिया निवास किया करती है ॥३२॥ वहाँ उस तीर्थ में महादेवी श्री जगदम्बा का अभ्यर्चन करके एक सहस्र गौओं के दान करने से प्राप्त होने वाला प्राप्त हुआ करता है। भृगु तुङ्ग नामक तीर्थ में यदि तपश्चर्या की जावे और श्राद्ध तथा दान आदि सत्कर्मों का सम्पादन करे तो दोनों ओर के सात कुलों का उद्धार कर पवित्र कर दिया करता है—ऐसी मेरी मति है। एक महा मुनीन्द्र काश्यप का महान् तीर्थ है—जिसका शुभ नाम काल-सर्पि—ऐसा सुना गया है ॥३३-३४॥ उस तीर्थ में किये गये श्राद्ध—दान नित्य ही पापों के क्षय करने की इच्छा से होते हैं और निश्चय ही वहाँ पापों का नाश हो जाता है। दशार्ण नाम वाले तीर्थ में किये गये श्राद्ध-दान—होम—जप—तप सभी अक्षय हुआ करते हैं ॥३५॥

अक्षयञ्चाव्ययञ्चैव कृतं भवति सर्वदा ।
तीर्थं द्विजातिभिर्जुष्टं नाम्नावै कुरुजाङ्गलम् ॥३६

दत्त्वा तु दानं विधिवद्ब्रह्मलोके महीयते ।
वैतरण्यां महातीर्थे स्वर्णवेद्यां तथैव च ॥३७

धर्मपृष्ठे च शिरसि ब्रह्मणः परमे शुभे ।
भरतस्याश्रमे पुण्येपुण्येगृध्रवनेशुभे ॥३८
महाह्रदे च कौशिक्यां दत्त भवति चाक्षयम् ।
मुण्डपृष्ठे पदन्यस्तमहादेवेन धीमता ॥३९
हिताय सर्वभूताना नास्तिकाना निदर्शनम् ।
अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायणः ॥४०
पाप्मानमुत्सृजात्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः ।
नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥४१
उदीच्या ब्रह्मपृष्ठस्यब्रह्मर्षिगणसेवितम् ।
तत्रस्नात्वादिवयान्तिसशरीराद्विजातयः ॥४२

ऐसे महान् तीर्थ का यही एक अति प्रबल प्रभाव होता है इसमें किये गये श्राद्धादि सत्कर्म अक्षय और सवदा अव्यय होते हैं। एक द्विजातियो के द्वारा सेवन करने के योग्य या निषेवित कुरु जाङ्गल नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है। इसमें पहुँच कर दिया हुआ दान का महान् प्रभाव हुआ करता है। दान दाता जिसने विधिपूर्वक दान किया है अन्त में वह ब्रह्मलोक में पहुँच कर महिमान्वित हुआ करता है। एक वैतरणी महान् तीर्थ है तथा स्वर्ण वेदी नामक भी उसी भाँति विशाल तीर्थ है ॥३६-३७॥ ब्रह्माजी का परम शुभ धर्म पृष्ठ और धर्म शिर नाम वाले तीर्थ हैं। भरत का आश्रम में जो परम पुण्यमय तीर्थ है तथा पुण्यमय एवं और शुभ गृध्र वन नामक तीर्थ है ॥३८॥ महाह्रद और कौशिकी तीर्थ है—इसमें किया हुआ दान अक्षय हुआ करता है। मुण्ड पृष्ठ नामक तीर्थ में परम धीमान् देवेश्वर महादेव ने अपने पद का न्यास किया है ॥३९॥ यह चरण का न्यास समस्त प्राणियों के हित के सम्पादन के ही लिये किया गया है। यह तीर्थ नास्तिक जनों के लिये एक निदर्शन ही होता है। नास्तिक वे ही कहे जाते हैं जो ईश्वर की सत्ता और तीर्थों में किये गये सत्कर्मों को कुछ भी नहीं माना करते हैं। यहाँ पर बहुत थोड़े से समय में ही मनुष्य धर्म में परायण हो जाया करता है—यही तीर्थ का प्रबलतम प्रभाव है ॥४०॥ जिस प्रकार से कोई सर्प अपनी केञ्चुली का त्याग कर दिया करता है ठीक उसी भाँति

यहाँ पर अपने विहित पापो को भी शीघ्र उत्सृष्ट कर देना है। कनखनन्दा नाम वाला एक महान् तीर्थ है जो तीनो लोको मे प्रसिद्ध है ॥४१॥ उत्तर दिशा मे ब्रह्म पृष्ठ नामक तीर्थ है जिसका सेवन ब्रह्मर्षिगण किया करते हैं। इस तीर्थ का परम अद्भुत प्रभाव है कि इसमे जो भी द्विजाति गण स्नान कर लेते हैं वे इसी शरीर से दिव लोक मे चले जाया करते हैं अन्यथा सशरीर वहाँ गमन करना असम्भव होता है ॥४२॥

दत्त वापिसदाश्राद्धमक्षयसमुदाहृतम् ।
ऋर्णैस्त्रिभिर्नर स्नात्वामुच्यतेक्षीणकल्मष ॥४३
मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्द्धासन लभेत् ।
उत्तर मानस गत्वा सिद्धि प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥४४
तस्मान्निर्वर्तयेच्छ्राद्ध यथाशक्ति यथाबलम् ।
स कामान् लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च विन्दति ॥४५
पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातु विभूषित ।
योजनाना सहस्राणि साशीतिस्त्वायतो गिरिः ॥४६
सिद्धचारणसकीर्णो देवर्षिगणसेवित ।
तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्नानामनामत ॥४७
तत्र गत्वा द्विजो विद्वान्ब्रह्महत्या विमुञ्चति ।
श्राद्ध भवति चाक्षय तत्र दत्त महोदयम् ॥४८
तारयेच्च पितृन्सम्यग्दशपूर्वान्दशापरान् ।
सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गापुण्यासमन्ततः ॥४९

इस महान् पुण्यशाली तीर्थ म किया हुआ श्राद्ध सदा अक्षय बताया गया है। उस तीर्थ म स्नान करके परमावश्यक जो देव—पितृ और ऋषियो के ऋण होते हैं उनसे मुक्त हो जाया करता है और उसके सब कल्मष क्षीण हो जाया करते हैं ॥४३॥ मानस सरोवर भी एक ऐसा विशाल प्रभावशाली तीर्थ है कि इसमे स्नान करके मनुष्य इन्द्रदेव का आधा आसन ग्रहण कर लिया करता है। उत्तर मानस म तो पहुँच कर मानव परमोत्तम सिद्धि को प्राप्ति किया करता है ॥४४॥ इसीलिये जितनी

भी शक्ति और बल हो उसी के अनुसार श्राद्ध अवश्य ही निर्वपन करना चाहिए। ऐसा श्राद्ध करने वाला व्यक्ति दिव्य कामना को प्राप्त कर लिया करता है तथा मोक्ष के उपाय भी उसे ज्ञात हो जाया करते हैं ॥४५॥ एक हिमवान् नाम वाला परम विशाल पर्वत है जो अनेक प्रकार की महा मूल्यवान् धातुओं से विभूषित है। यह पर्वत राज सहस्रों ही योजना में फैला हुआ है और अस्सी योजन तो यह आयत वाला है ॥४६॥ यह पर्वत बड़े बड़े सिद्ध और चारणों से सङ्कीर्ण रहा करता है और देवर्षि गण भी इसका सेवन किया करते हैं। वहाँ पर एक अतीव रमणीय पुष्करिणी है जिसका नाम तो सुषुम्ना है ॥४७॥ वहाँ पर विद्वान् द्विज जाकर की हुई ब्रह्महत्या के पाप से भी छूट जाता है। वहाँ पर दिया हुआ श्राद्ध तो क्षय से रहित ही हो जाया करता है तथा महान् उदय वाला होता है ॥४८॥ वहाँ श्राद्ध का देने वाला पुरुष अपने दश पूर्व में होने वाले और दशवाह में होने पुरखाओं को तार दिया करता है। हिमवान् गिरि सर्वत्र महान् पुण्यशाली है और उसमें भागीरथी गङ्गा तो सभी ओर से पुण्यमयी है ॥४९॥

नद्य समुद्रगा पुण्या समुद्रश्चविशेषत ।
बदर्याश्रममासाद्य मुच्यतेसर्वकिल्बिषात् ॥५०

तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातन ।
अक्षय तत्रदानस्याच्छाद्धदानादिकञ्चयत् ॥५१

महादेवप्रिय तीर्थं पावन तद्विशेषतः ।
तारयेच पितृन्सर्वान्दत्वा श्राद्ध समाहित ॥५२

देवदारुवन पुण्य सिद्धगन्धर्वसेवितम् ।
महता देवदेवेन तत्र दत्तं महेश्वरम् ॥५३

मोहयित्वा मुनीन्सर्वान्सिमस्तैः सम्प्रपूजितः ।
प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान् ॥५४

इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा ।
मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ ॥५५

यन मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरायणाः ।
तेषा ददामि परम गाणपत्य हि शाश्वतम् ॥५६

समुद्र में गमन करने वाली जो भी नदियाँ हैं वे सभी परम पुण्यमयी हैं और समुद्र तो विशेष रूप पुण्यशाली है । बदरिकाश्रम एक अतीव महान् उत्तराखण्ड मे पुण्यमय धाम स्थल है जिसमें पहुँचकर तो मनुष्य सभी प्रकार के किल्विषो से छुटकारा पा जाता है ॥५०॥ उस बदरिकाश्रम धाम मे साक्षात् देव श्री नारायण जो सनातन हैं नर के साथ में विराजमान हैं । उस धाम म जो भी दान किया जाता है और श्राद्ध आदि किये जाते हैं वे सभी क्षय हीन और सार्वदिक हो जाया करते हैं ॥५१॥ महादेव प्रिय तीर्थ विशेष रूप से पावन है । वहाँ पर परम समाहित होकर यदि कोई श्राद्ध देता है तो वह अपने सभी पितृगणो का उद्धार कर दिया करता है ॥५२॥ एक देवदारु नाम वाला वहाँ पर वन है जिस सिद्ध और और गन्धर्वों के समुदाय रहा करते हैं वहाँ पर महान् देवो के भी देव ने महेश्वर दिया है ॥५३॥ समस्त महामुनीन्द्रो के द्वारा भली भाँति पूजन किये गये देव ने उन समस्त मुनिगणों को मोहित करके भगवान् परम प्रसन्न हुए थे तथा ईश ने उन भाव भावित मुनिगणा से कहा था ॥५४॥ भगवान् ने मुनियो से कहा था कि आप सब लोग इन परम श्रेष्ठ सुरम्य आश्रम म सवदा निवास करोगे । मेरी भावना से समायुक्त होकर ही आप लोग सिद्धि को प्राप्त करेंगे ॥५५॥ जहाँ पर धर्म मे परायण लोग जहाँ पर मेरा समर्चन किया करते हैं उनको मैं परम शाश्वत गाणपत्य पद प्रदान किया करता हूँ ॥५६॥

अत्र नित्य वसिष्यामि सह नारायणेन तु ।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म चाप्नुयात् ॥५७
संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगताजनाः ।
तेषाञ्च सर्वपापानिनाशयामिद्विजोत्तमाः ॥५८
श्राद्ध दान तपोहोम पिण्डनिर्वपण तथा ।
ध्यान जपश्चनियमःसर्वमत्राक्षय कृतम् ॥५९

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्यहि द्विजातिभि ।
देवदारुवन पुण्य महादेवनिषेवितम् ॥६०
यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तम ।
तत्र सन्निहितागङ्गा तीर्थान्यायतनानिच ॥६१

ईश ने कहा था कि यहाँ पर नित्य ही भगवान् नारायण के साथ निवास किया करता हूँ। जो मनुष्य यहाँ पर निवास करके यहीं पर अपने प्राणों का त्याग किया करते हैं वे फिर दूसरी बार इस ससार म जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं ॥५७॥ जो अन्य देशा म निवास करने वाले भी मनुष्य इस तीर्थ का सस्मरण किया करते हैं। हे द्विजोत्तमो ! उनके सहस्र पापों का मैं इतने ही से नाश कर दिया करता हूँ ॥५८॥ यहाँ पर किये हुए श्राद्ध—दान—तप—होम तथा पिण्डों का निर्वपन—ध्यान—जाप—नियम सभी कुछ अक्षय जाया करता है ॥५९॥ इसीलिये सब प्रकार के पूर्ण प्रयत्न से द्विजातियों को इस तीर्थ का दर्शन अवश्य ही करना चाहिए। यह देव दारु वन परम पुण्यमय है और महादेव के द्वारा निषेवित है ॥६०॥ जहाँ पर ईश्वर महादेव अथवा भगवान् पुरुषोत्तम विष्णु स्वय विराजमान हैं वहीं पर गङ्गा सन्निहित रहा करती हैं और तीर्थ सब तथा आयतन भी विद्यमान रहा करते हैं ॥६१॥

३८—दारुवनाख्यानवर्णन

कथ दारुवनम्प्राप्तो भगवान्गोवृषध्वज. ।
मोहयामास विप्रन्द्रान्सूत ! तद्वक्तुमर्हसि ॥१
पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते ।
सपुत्रदारतनयास्तपश्चेरु सहस्रश ॥२
प्रवृत्त विविधकर्म प्रकुर्व्वाणा यथाविधि ।
यजन्तिविविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षय ॥३
तेषा प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलभृत् ।
व्याख्यापयन्सदा दोष ययौदारुवनहर ॥४
कृत्वा विश्वगुरु विष्णु पार्श्वे देवोमहेश्वर ।
ययौ निवृत्तविज्ञानस्थापनार्थञ्चशङ्कर ॥५

आस्थाय विपुलन्वेंपजनंविशतिवत्सरम् ।
लीलालसो महाबाहुःपीनाङ्गश्चारुलोचनः ॥६
चामीकरवपुः श्रीमान्पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
मत्तमातङ्गगमनो दिग्वासा जगदीश्वरः ॥७

महर्षिगण ने कहा—उस दारु वन मे भगवान् गो वृषध्वज कैसे प्राप्त हुए थे ? हे सूतजी ! वहाँ पर उन्होंने विप्रेन्द्रो को मोहित किया था—इस कथा का आप हमारे समक्ष में वर्णन कीजिए । आप ही इसको बताने के योग्य हैं महामुनीन्द्र सूतजी ने कहा—पहिले प्राचीन समय मे देवों और सिद्धो के द्वारा निषेवित परम रम्य दारु वन मे सहस्रो विप्रेन्द्रो ने पुत्र दारा आदि के सहित वहाँ पर तपश्चर्या की थी ॥१-२॥ वहाँ पर अनेक प्रकार के सत्कर्म प्रवृत्त हो गये थे । सब महर्षिगण विधि पूर्वक उन कर्मों को कर रहे थे और अनेक यज्ञो के द्वारा यजन करते थे तथा तपस्या कर रहे थे ॥३॥ इसके अनन्तर भगवान् शूलभृत् कर्म करने मे प्रवृत्ति रखने वाले मन से युक्त उनको सदा दोष की व्याख्या करते हुए भगवान् हर दारु वन मे गये थे ॥४॥ महेश्वर देव भगवान् विष्णु को अपने पार्श्व मे करके जो कि विश्व के गुरु हैं शङ्कर निवृत्त हुए विज्ञान की स्थापना करने के लिये वहाँ दारु वन मे गये थे ॥५॥ बीस वर्ष पर्यन्त इन्होंने बहुत से जनो को आस्थित करके लीला से अलस हुए तथा इनको महान् बाहुऐं थी—पीन अङ्ग था और सुन्दर लोचन थे । सुवर्ण के समान इनका शरीर था और यह परम श्रीमान् पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख वाले थे । मस्त हाथी के तुल्य गमन करने वाले—दिगम्बर और समस्त जगत् के ईश्वर थे ॥६-७॥

जातरूपमयी मालांसर्वरत्नैरलकृताम् ।
दधानो भगवानीशः समागच्छतिसस्मितः ॥८
योऽनन्तः पुरुषो योनिर्लोकानामव्ययोहरिः ।
स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शोभनम् (शूलिनम्)॥९
सम्पूर्णचन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम् ।
शुचिस्मितं सुप्रसन्नरणन्नूपुरकद्वयम् ॥१०

एवं स भगवानीशो देवदारुवनं हरः ।
चचार हरिणा सार्द्धं मायया मोहयञ्जगत् ॥१२
दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम् ।
मायया मोहिता नार्यो देवदेवं समन्वयुः ॥१३
विस्रस्ताभरणाः सर्वास्त्यक्त्वा लज्जा पतिव्रताः ।
सहैव तेन कामार्त्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि ॥१४

सुवर्ण की निर्मित तथा सब प्रकार के रत्नों से समलङ्कृत माला को धारण करने वाले भगवान् ईश स्मित के सहित था गये थे ॥८॥ जो मल से रहित—लोकों के उद्भव करने वाले योनि-मव्यय पुरुष श्री हरि विष्णु थे उन्होंने स्त्री का वेष धारण करके बहुत ही शोभा पूर्वक उनके पीछे आगमन किया था ॥९॥ भगवान् ईश हर इस प्रकार से उस देवदारु वन में विचरण कर रहे थे। उनका मुख पूर्ण चन्द्र के समान उस समय में था—पीन (पुष्ट) और उन्नत पयोधर थे। उन मुख पर परम पवित्र मन्द मुस्कराहट थी और वे परम प्रसन्न थे। दोनों चरणों में दो नूपुर ध्वनि कर रहे थे ॥१०॥ सुन्दर पीला वस्त्र धारण किये हुए थे—दिव्य श्यामल वर्ण था और सुन्दर लोचन थे। उदार हंस के समान गमन था—विलास से युक्त और अत्यन्त मनोहर स्वरूप था। उनके साथ में हरि भी थे जो माया से सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर रहे थे ॥११-१२॥ वहाँ पर चरण करते हुए विश्व के ईश पिनाक धारी को वहाँ-वहाँ पर देखकर माया से मोहित नारियाँ देवों के देव पीछे अनुगमन करने लगी थीं। ॥१३॥ समस्त आभरणों को विस्रस्त कर देने वाली अर्थात् उतार कर डाल देने वाली सब पतिव्रता नारियाँ लज्जा को त्याग कर उन्हीं के साथ काम से अत्यन्त आर्त्त होकर विलासिनी भी विचरण कर रही थीं ॥१४॥

ऋषीणां पुत्रकायेस्युर्युवानोजितमानसाः ।
अन्वागमन्हृषीकेशं सर्वेकामप्रपीडिताः ॥१५

गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता नारीगणा नायकमेकमीशम् ।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्तमिष्ट तथालिङ्गितमाचरन्ति ॥१६
ते सन्निपत्य स्मितमाचरन्ति गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्रा ।
आलोक्यपद्मापतिमादिदेवशुभाग(भ्रूभग)मन्येविचरन्तितेन॥१
आस्यामयैकामपि वासुदेवो मायी मुरारिर्मनसि प्रविष्ट ।
करोतिभोगान्मनसिप्रवृत्ति मायामनुभूयन्त इतीव सम्यक् ॥१८
विभाति विश्वामरविश्वनाथ समाधवस्त्रीगणसंनिविष्ट ।
अशेषशक्त्या समय निविष्टो यथैकशक्त्या सह देवदेव ॥१९
करोति नित्य परम प्रधान तदा विरुद्ध पुनरेव भूय ।
ययौ समारुह्य हरि स्वाभाव तमीहश नाम तमादिदेवम् ॥२०
दृष्ट्वा नारीकुल रुद्र पुत्रानपि च केशवम् ।
मोहयन्त मुनिश्रेष्ठा कोप सन्दधिरे भृशम् ॥२१

ऋषियों के पुत्र जो जवान थे वे भी जित मानस थ न होते हुए सब काम से प्रकृष्ट रूप से पीडित होकर हृषीकेश के पीछे अनुगमन करने लग गये थे ॥१५॥ विलास से युक्त नारीगण एक ही नायक ईश के पीछे चली जा रही थी और गान तथा नृत्य कर रही थी । अत्यन्त ही सुन्दर अभीष्ट पत्नी के सहित स्थित ईश को देखकर वे नारियाँ उनके साथ काम पीडित होती हुई समालिङ्गन भी करती जा रही थी ॥१६॥ वे मुनीशो के पुत्र भी वहाँ पर सन्निपतित होकर गीतो का गायन करते थे और स्मित का समाचरण करते थे । परम शुभ अङ्ग वाले—आदि देव पद्मा के स्वामी को देख कर अन्य लोग उनके साथ भ्रूभङ्ग कर रहे थे । अर्थात् नेत्रो से सकेत एव कटाक्ष कर रहे थे ॥१७॥ इसके पश्चात् माया से युक्त वासुदेव मुरारि एक आशा के मन मे प्रविष्ट हो गये थे और भोगो को कर रहे थे । इसी भाँति भली भाँति मन मे प्रवृत्ति करके माया का अनुभव कर रहे ॥१८॥ विश्व के समस्त देवो के विश्वनाथ माधव के सहित स्त्रीगण से सन्निविष्ट वह, देवो के देव एक शक्ति के साथ के समान अशेष शक्ति से उस समय मे सन्निविष्ट हो गये थे ॥१९॥ उस समय मे पुन विरुद्ध होकर नित्य ही हरि परम प्रधान कर रहे थे । हरि उन आदि देव

के जोकि इस प्रकार के थे स्वभाव पर समारोहण करके चले गये थे ॥२०॥ उस समय में मुनि श्रेष्ठ गण इस प्रकार समाचरण करते हुए नारी कुल को—रुद्र का—अपने पुत्रों को तथा केशव को जो सब को मोहित कर रहे थे देखकर अत्यन्त ही कुपित हो गये थे ॥२१

अतीवपरुष वाक्य प्रोचुर्देवकपर्दिनम् ।
शेपुश्चविविधैर्वाक्यैर्मायायातस्यमोहिताः ॥२२
तपांसि तेषा सर्वेषाप्रत्याहृन्यन्तशङ्करे ।
यथादित्यप्रतीकाशेतारकानभसिस्थिताः ॥२३
त भर्त्स्य तापसा विप्रा समेत्य वृषभध्वजम् ।
को भवानिति देवेश पृच्छन्ति स्म विमोहिताः ॥२४
सोऽब्रवीद्भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागतः ।
इदानीं भार्यया देश भवद्भिरिह सुव्रताः ॥२५
तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुंगवाः ।
ऊचुर्गृहीत्वा वसन त्यक्त्वा भार्यां तपश्चर ॥२६
अथोवाच विहस्येशः पिनाकी नीललोहितः ।
सम्प्रेक्ष्य जगतां योनिं पार्श्वस्थञ्च जनार्दनम् ॥२७
कथं भवद्भिरुदित स्वभार्यापोषणोत्सुकैः ।
त्यक्तवा मम भार्येति धर्मज्ञैः शान्तमानसैः ॥२८

मुनिश्रेष्ठ उनकी माया से मोहित होते हुए देव कपर्दी भगवान् से बहुत ही अधिक कठोर वचन कहने लगे थे और अनेक प्रकार के वाक्यों के द्वारा शाप देने लगे थे ॥२२॥ उन सब के तप शङ्कर में ही विनष्ट हो गये थे जिस प्रकार से सूर्य देव के प्रतीकाश में आकाश में स्थित तारागण की दशा होती है वैसी दशा उन ऋषियों की भगवान् शङ्कर के समक्ष में उस समय हो गई थी। तापस विप्रों ने उनका भर्त्सन करके फिर वे वृषभध्वज के समीप में पहुँच गये थे। वहाँ पहुच कर उन्होंने देवेश्वर से यही प्रश्न किया था कि हमको आप यह बतलाइये कि आप कौन हैं। यह देवेश की माया का ही प्रभाव था और वे सब उनकी माया से मोहित हो गये थे ॥२३-२४॥ उन्होंने इस विप्रों के प्रश्न का यही उत्तर दिया था

कि हे सुव्रतो ! भवानीश ने कहा मैं तपश्चर्या करने के लिये यहाँ पर उपस्थित हुआ हूँ कि आप लोगों के साथ तप करूँ किन्तु इस समय मैं भार्या के आदेश में हूँ ॥२५॥ उनके इस वाक्य का श्रवण करके भृगु आदि मुनियों में श्रेष्ठ लोगों ने उनसे कहा या वचन ग्रहण करके भार्या का त्याग कर दो और तप करो ॥२६॥ इसके उपरान्त हँसते हँस कर कहा जो कि साक्षात् पिनाकधारी भगवान् नील लोहित थे। उन्होंने जगता के निर्माता पार्श्व में स्थित भगवान् जनार्दन की ओर देखकर ही ऐसा उत्तर दिया था ॥२७॥ आप ऐसा क्यों कहते हैं जबकि आप स्वयं ही अपनी-अपनी भार्याओं के पोषण अत्यन्त समुत्सुक हो रहे हैं ? आप तो धर्म के ज्ञाता हैं और परम शान्त मन वाले भी हैं आपको तो मुझ से ऐसा नहीं कहना चाहिए कि भार्या का त्याग कर दो ॥२८॥

व्यभिचाररता भार्या सन्त्याज्या पतिनेरिता ।
अस्माभिर्भक्ता सुभगा नेदृशास्त्यागमर्हति ॥२९
न कदाचिदिय विप्रामनसाप्यन्यमिच्छति ।
नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामिकदाचन ॥३०
दृष्ट्वा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभि पुरुषाधम ।
उक्तं ह्यसत्य भवता गम्यता क्षिप्रमेवहि ॥३१
एवमुक्ते महादेव सत्यमेव मयेरितम् ।
भवता प्रतिभा ह्येषा त्यक्त्वासौ विचचारह ॥३२
सोऽगच्छद्धरिणासार्द्धं मुनीन्द्रस्यमहात्मन. ।
वसिष्ठस्याश्रमपुण्यभिक्षार्थीपरमेश्वरः ॥३३
दृष्ट्वा समागत देव भिक्षमाणमरुन्धती ।
वसिष्ठस्य प्रियपत्न्याप्रत्युद्गम्यननामतम् ॥ ३४
प्रक्षाल्यपादौविमल दत्वाचासनमुत्तमम् ।
सम्प्रेक्ष्यशिथिल गात्रमभिघातहतद्विजै. ।
सन्धयामास भैषज्यैर्विषण्णवदना सती ॥३५

ऋषि मुनियों ने कहा--जो भार्या व्यभिचार में रत हो व पति के द्वारा भली-भाँति त्याग ही देनी चाहिए और हमारे द्वारा तो भक्ता और

शुभगा हूँ जो कि त्याग के योग्य नहीं हैं ॥२६॥ महादेवजी ने कहा—हे विप्रगण ! यह भी किसी समय में भी अन्य पुरुष को मन से भी नहीं चाहती है। इसलिये मैं भी इस भार्या को कभी नहीं छोड़ता हूँ ॥३०॥ ऋषियों ने कहा—हे पुरुषों में अधम ! यहाँ पर ही व्यभिचार करती हुई इसको हमने देखा है। आपने इस समय में जो भी कुछ कहा है यह बिल्कुल असत्य है। आप यहाँ से शीघ्र ही चले जाइये ॥३१॥ इस प्रकार से कहने पर महादेव जी ने कहा था कि मैंने तो बिल्कुल सत्य ही कहा है। यह आप लोगों की प्रतिभा ही है जो यह त्याग करके विचरण कर रही थी ॥३२॥ वह फिर हरि के साथ महान् आत्मा वाले महामुनीन्द्र वसिष्ठजी के परम पवित्र आश्रम में भिक्षा की इच्छा वाले होकर परमेश्वर चले गये थे ॥३३॥ वहाँ पर वसिष्ठ जी की पत्नी अरुन्धती ने आये हुए भिक्षमाण देव को देखा था और वह उनके सामने प्रत्युद्गमन करके पहुँची एवं उनको प्रणाम किया था ॥३४॥ उनके चरणों को धोकर फिर विमल तथा उत्तम आसन उनको दिया था। द्विजों के द्वारा अभिघातों से आहत एवं शिथिल उनका शरीर देखा था। इस तरह से देखकर अरुन्धती बहुत ही विषाद युक्त मुख वाली हो गई थी और सती उस देवी ने औषधों के द्वारा उनका उपचार किया था ॥३५॥

चकार महतीपूजाप्रार्थयामासभार्यया।
को भवान्कुतआयातः किमाचारो भवानिति।
उच्यतामाह भगवान्सिद्धानाम्प्रवरो ह्यहम् ॥३६
यदेतन्मण्डलं शुभ्रभादि ब्रह्ममयमदा।
एषदेवता महयरियामि सदैव तु ॥३७
इत्युक्त्वाप्रययौश्रीमाननुगृह्यपतिव्रताम्।
ताडयाञ्चक्रिरेदण्डैर्लोष्टिभिर्मुष्टिभिर्द्विजाः ॥३८
दृष्ट्वा चरन्त गिरिशं नग्नं विकृतिलक्षणम्।
प्रोचुरेतद्भवल्लिंगमुत्पाटय सुदुर्मते ! ॥३९
तानब्रवीन्महायोगीकरिष्यामीतिशंकरः।
युष्माकं मामकेलिंगेयदिद्वेषोऽभिजायते ॥४०

उक्त्वा तूत्पाटयामास भगवान्भगनेत्रहा ।
नापश्यस्तत्क्षणाच्चे शकेशव लिंगमेव च ॥४१
तदोत्पाता वभूवुर्हि लोकाना भयशंसिनः ।
न राजते सहस्रांशुश्चचाल पृथिवी पुन' ।
निष्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुक्षुभे च महोदधि ॥४२

फिर उस अरुन्धती देवी ने उनकी वहुत बडी पूजा की थी और उनसे प्रार्थना की थी कि भार्या के साथ आप कौन है ? कहाँ से आपने यहाँ पर पदार्पण किया है और आप का यह क्या आचार है ?—यह मुझे बतलाइये । इस पर भगवान् ने कहा था कि मैं सिद्धो मे प्रवर हूँ ॥३६॥ जो यह परम शुभ्र सदा ब्रह्ममय मण्डल भासित होता है । यह ही देवता है जिसको मैं सदा ही धारण किया करता हूँ ॥३७॥ इतना कहकर तथा श्रीमान् ने उस पतिव्रता पर पूर्ण अनुग्रह करके वहाँ से फिर वह चले गये थे । द्विजो ने लोष्ठ और मुष्टियों से तथा दण्डो से ताडना की थी ॥३८॥ इसी भाँति पूर्णतया नग्न और विकृत लक्षणो वाले भगवान् गिरिश को देखकर उन विप्रो ने उनसे कहा था—हे सुदुर्मत । आप अपने इस चिह्न को उत्पाटित कर दो ॥३६॥ महायोगी प्रभु शङ्कर ने उनसे कहा था—मै ऐसा कर दूँगा । आप लोगो को मेरे इस लिङ्ग मे यदि द्वेष होता है तो मैं ऐसा कर डालूँगा ॥४०॥ यह कहकर भग के नेत्रो का हनन करने वाले भगवान् ने उसे उत्पाटित कर दिया था । उसी क्षण उन्होने फिर उन ईश को—केशव को और उस लिङ्ग को नही देखा था ॥४१॥ उसी समय मे लोको को भय समुत्पन्न करने वाले अर्थात् भय की सूचना देने वाले उत्पात होने लग थे । सहस्रांशु भी शोभा नही दे रहा था तथा फिर पृथिवी भी हिलने लगी थी । समस्त ग्रह प्रभा से हीन होगये थे और समुद्र भी अत्यन्त क्षोभ से युक्त होगया था ॥४२॥

अपश्यच्चानुसूयात्रे स्वप्नं भार्यापतिव्रता ।
कथयामासविप्राणाभयादाकुलितेन्द्रिया ॥४३
तेजसा भासयन्कृत्स्नं नारायणसहायवान् ।
भिक्षमाण. शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति ॥४४

तस्या वचनमाकर्ण्य शंकमाना महर्षयः ।
सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माण विश्वसम्भवम् ॥४५
उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मवित्तमैः ।
चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिः सावित्र्यासहितंप्रभुम् ॥४६
आसानमासनेरम्येनानाश्चर्यसमन्विते ।
प्रभासहस्रकलिलेज्ञानैश्वर्य्यादिसयुते ॥४७
विभ्राजमानं वपुषा सस्मितं शुभ्रलोचनम् ।
चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमज परम् ॥४८
विलोक्य देववपुषं प्रसन्नवदनं शुचिम् ।
शिरोभिर्द्धरणी गत्वा तोषयामासुरीश्वरम् ॥४९

इधर अत्रि महा मुनि की भार्या अनुसूया ने जो कि परम पतिव्रता थी एक स्वप्न देखा था। उसने उस स्वप्न का सारा हाल भय से आकुलित इन्द्रियों वाली होकर विप्रों से कहा था ॥४३॥ तेज से समस्त विश्व को भासित करते हुए नारायण प्रभु की सहायता वाले भिक्षाटन करते हुए वह साक्षात् प्रभु शिव ही थे जो निश्चित रूप से हम लोगों के घरों में देखे गये थे ॥४४॥ उस अनुसूया देवी इस वचन का श्रवण करके सभी महर्षि गण परम शङ्का से युक्त मन वाले होते हुए महायोग विश्व सम्भव ब्रह्माजी के समीप पहुंचे थे ॥४५॥ वहाँ पर ब्रह्माजी निर्मल ब्रह्म के वेत्ता योगियों के द्वारा उपास्यमान थे तथा मूर्तिमान् चारों वेदों के द्वारा भी समुपासित हो रहे थे। ब्रह्माजी सावित्री देवी के साथ में विराजमान थे। तथा अनेक आश्चर्यों से समन्वित अति सुरम्य आसन पर विराजमान थे। सहस्रों प्रभा की धाराओं से कलिल एवं ज्ञान और आश्चर्य आदि से संयुत वह आसन था। अपने वपु से विभ्राजमान—स्मित से युक्त—शुभ्रलोचनों वाले—चार मुखों से युक्त—महान बाहुओं से संयुत—छन्दोमय परम अज थे। ऐसे देव वपु वाले—शुचि और प्रसन्न मुख से युक्त ब्रह्माजी का दर्शन करके उन समस्त विप्रगणों ने भूमि पर अपना सिर लगाकर ईश्वर को तुष्ट किया था ॥४६-४९॥

तान्प्रसन्नोमहादेवश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुख ।
व्याजहार मुनिश्रेष्ठा. किमागमनकारणम् ॥५०
ततस्य वृत्तमखिलब्रह्मण.परमात्मन ।
ज्ञापयाञ्चक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरसिचाञ्जलिम् ॥५१
कश्चिद्दारुवन पुण्य पुरुषोऽतीवशोभन ।
भार्य्ययाचारुसर्वाङ्गया प्रविष्टो नग्नएवाह ॥५२
मोहयामास वपुषा नारीणाकुलमीश्वरः ।
कन्यकानाप्रियोयस्तुदूषयामासपुत्रकान् ॥५३
अस्माभिर्विविधा शापा (वाता प्रदत्ता) प्रवृत्तास्ते पराहता ।
ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिगन्तु विनिपातितम् ॥५४
अन्तर्हितश्च भगवान्सभार्यो लिगमेव च ।
उत्पाताश्चाभवन् घोरा सर्वभूतभयकरा ॥५५
क एष पुरुषो देवः भीता स्म पुरुषोत्तम ।
भवन्तमेव शरण प्रपन्ना वयमच्युत ॥५६

उन पर परम प्रसन्न होकर चार मुखो वाले—चार मूर्ति से युक्त महादव ने कहा—हे श्रेष्ठ मुनि गणो ! यहाँ पर आप लोगो के आगमन करने का क्या कारण है—वह मुझे बतलाओ । उन परमात्मा ब्रह्मा का सम्पूर्ण वृत्त सभी ने मस्तक पर अपनी अञ्जलि करके ज्ञापित किया था ॥५० ५१॥ ऋषियो न कहा—हे भगवन् ! परम पुण्यमय दारुवन म कोई अत्यन्त शोभा से सुसम्पन्न पुरुप परम सुन्दर अङ्गो वाली भार्या के साथ नग्न स्वरूप वाला प्रविष्ट हुआ था ॥५२॥ उस ईश्वर ने अपने सुन्दर वपु के द्वारा वहाँ की समस्त नारियों के कुल को मोहित कर दिया था । वह कन्याओ का भी प्रिय होगया था और उसने पुत्रो को भी दूषित कर दिया था ॥५३॥ हम लोगो ने उनको अनेक प्रकार के शाप दिये थे । व पराहत होते हुए प्रवृत्त हुए थे । हम लोगो ने उनको ताडित भी किया था तथा उनका लिङ्ग विनिपातित कर दिया था ॥५४॥ वहाँ से वह भगवान् अपनी भार्या के सहित ही अन्तर्हित होगये थे और वह लिङ्ग भी अ तर्हित होगया था । इसके अनन्तर वहाँ पर परम घोर तथा समस्त

प्राणियों को भयकर अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे थे ॥५५॥ हे पुरुषोत्तम ! यह देव कौन थे ? हम सभी लोग अत्यन्त भीत होरहे है। हे अच्युत ! अब हम सभी आपकी ही शरणागति मे समुपस्थित हुए है। ॥५६॥

त्वहिवेत्सिजगत्यस्मिन्यत्किञ्चिदिह चेष्टितम् ।
अनुग्रहेण युक्तेन तदस्माननुपालय ॥५७
विज्ञापितोमुनिगणैर्विश्वात्माकमलोद्भवः ।
ध्यात्वादेवं त्रिशूलाङ्कं कृताञ्जलिरभाषत ॥५८
हा कष्टम्भवतामद्य जातं सर्वार्थनाशनम् ।
धिग्बलं धिकृतपश्चर्या मिथ्यैव भवतामिह ॥५९
सम्प्राप्य पुण्यसंस्कारान्निधीनापरमनिधिम् ।
उपेक्षितं वृथाचारैर्भवद्भिरिहनोहितैः ॥६०
काक्षन्तेयोगिनोनित्यंयतन्तोयतयोनिधिम् ।
यमेव तं समासाद्यहाभवद्भिरुपेक्षितम् ॥६१
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्यत्प्राप्तिर्वेदवादिनः ।
सहानिधि समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥६२
यमभ्यर्चयित्वासततं विश्वेशत्वमिदंमम ।
स देवोपेक्षितो दृष्ट्वा निधानम्भाग्यवर्जिताः ॥६३

आप तो इस जगत् मे जो भी कुछ चेष्टित होता है उन सभी को भली भाँति जानते ही हैं। अब आप हमारे ऊपर अतीव अनुग्रह से युक्त होकर हम सबका अनुपालन करिए ॥५७॥ वह विश्व की आत्मा कमल से समुत्पन्न प्रभु ब्रह्माजी इस प्रकार से उन मुनिगणों के द्वारा जब विज्ञापित किये गये थे तो उन्होंने त्रिशूल के चिह्न वाले प्रभु देव का ध्यान करके हाथ जोडकर के यह कहा था ॥५८॥ ब्रह्माजी ने कहा—हाय-हाय ! बड़े ही कष्ट की बात है। आज आप लोगों का सभी अर्थ का नाश होगया है। आप की इस तपश्चर्या को भी धिक्कार है धिक्कार है। यह तपस्या करना और सब आपका मिथ्या ही है। इसमें कोई भी सार वाली बात

नहीं है ॥५६॥ परमार्थिक पुण्यों के संस्कार से ही निधियों के भी परम निधि को आप लोगों ने प्राप्त करके भी वृथा आचार वाले तथा मोहित होकर आप लोगों ने उस महानिधि की उपेक्षा कर दी थी ॥६०॥ बड़े-बड़े यति लोग योगाभ्यास करने वाले नित्य ही अत्यन्त यत्न करते हुए भी जिनके प्राप्त करने के तथा दर्शन करने के लिए इच्छा किया करते हैं उन्हीं महाप्रभु को आप लोगों ने अनायास ही प्राप्त करके भी बड़े ही दुःख की बात है कि उनकी इस तरह उपेक्षा करदी थी ॥६१॥ वेदों का पाठ एवं अध्ययन करने वाले मनीषीगण जिनकी प्राप्ति के लिये विविध प्रकार के यज्ञों के द्वारा यजन किया करते हैं। ऐसी उस महान् निधि को अनायास ही अपने ही घरों तथा आश्रमों में प्राप्त करके आप लोगों ने उनकी उपेक्षा कर दी थी—हाय! यह बहुत ही दुःख की बात है ॥६२॥ जिन महाप्रभु का ही अभ्यर्चन करके मेरा यह विश्वसाम्य यह मुझे प्राप्त हुआ है। उसी देव की आप लोगों ने स्वयं दर्शन पाकर भी जो महानिधि स्वरूप है उपेक्षा करदी है। यह ज्ञात होता है कि आप सभी लोग बहुत ही भाग्य हीन अभागे हैं ॥६३॥

यस्मिन्समाहितं दिव्यमैश्वर्यं यत्तदव्ययम् ।
तमासाद्य निधिं ब्रह्म ह्य भवद्भिर्वृथाकृतम् ॥६४
एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
न तस्य परमं किञ्चित्पदं समभिगम्यते ॥६५
देवतानामृषीणां च पितृणाञ्चापिशाश्वतः ।
सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम् ॥६६
संहरत्येष भगवान्कालो भूत्वा महेश्वरः ।
एष चैव प्रजा सर्वा सृजत्येष स्वतेजसा ॥६७
एष चक्री चक्रवर्त्ती श्रीवत्सकृतलक्षणः ।
योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ एव च ।
द्वापरे भगवान्कालो धर्मकेतुः कलौ युगे (भव) ॥ ६८
रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम् ।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्वविष्णुरिति स्मृतिः ॥६९

मूर्त्तिरन्यास्मृताचास्य दिग्वासा च शिवा ध्रुवा।
यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम्।।७०

जिस महापुरुष में यह सम्पूर्ण विश्व एवं दिव्य ऐश्वर्य समाहित है और जो अव्यय स्वरूप वाला है, हा! हा! उस महानिधि को भी आप लोगों ने प्राप्त करके वृथा कृत कर दिया है—यह अत्यन्त ही कष्ट की बात है ।।६४।। यह देव महादेव महेश्वर ही समझना चाहिए। उनके परम पद को कोई भी नहीं पा सकता है ।।६५।। देवों का—ऋषियों का और पितृ-गणों का भी जो शाश्वत पद है एक सहस्र युग पर्यन्त प्रलय काल में समस्त देह धारियों को यह महेश्वर भगवान् काल स्वरूप होकर संहार कर दिया करते हैं और यह ही समस्त प्रजा को अपने तेज से सृजन किया करते हैं ।।६६-६७।। यह ही श्रीवत्स द्वारा कृत लक्षण चक्रधारी चक्रवर्ती हैं। कृतयुग में योगी देव और त्रेतायुग में यज्ञ ही यह हैं ।।६८।। द्वापर में भगवान काल तथा कलियुग में धर्म केतु हैं ।।६८।। भगवान् रुद्र की तीन मूर्त्तियाँ हैं जिनके द्वारा ही यह सम्पूर्ण विश्व विस्तृत हो रहा है। तम अग्नि है—रजोगुण ब्रह्मा हैं और सत्त्व गुण विष्णु हैं—ऐसा स्मृति का कथन है ।।६९।। अन्य भी एक मूर्त्ति इनकी दिगम्बर बतायी गयी है वह ध्रुव तथा शिव है। जहाँ पर योग से समन्वित वह ब्रह्म स्थित रहा करता है ।।७०।।

याचास्य पार्श्वगा भार्याभिवद्भिरभिभाषिता।
सहिनारायणोदेव. परमात्मासनातनः ।।७१
तस्मात्सर्वमिदं जातं तत्रैव च लयंव्रजेत्।
स एषमोचयेत्कृत्स्नं स एषच परागतिः ।।७२
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
एकश्रृंगो महानात्मानारायण इतिश्रुतिः ।।७३
रेतोऽस्यगर्भोभगवानापोमायातनुप्रभुः।
स्तूयतेविविधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ।।७४
संहृत्यसकलं विश्वं कल्पान्ते पुरुषोत्तमः।
शेते योगामृतं पीत्वा यत्र विष्णोः परम्पदम् ।।७५

न जायते न म्रियते वर्द्धते न च विश्वदृक् ।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता गीयते वैदिकैरजा ॥७६
ततो निशायां वृत्तायां सिसृक्षुरखिलञ्जगत् ।
अजनाभौनुतद्बीजक्षिपत्येषमहेश्वरः ॥७७

जो इनके पार्श्व में इनकी भार्या श्री आप लोगो के द्वारा अभिभाषित है। यह ही नारायण देव हैं जो परमात्मा और सनातन है ॥७१॥ इस लिये यह सब यहाँ पर ही समुत्पन्न हुआ है और यहीं पर लय को प्राप्त होगा। वही यह सबका माधन किया करता है और यह ही सब की परा-गति भी है ॥७२॥ यह भगवान् नारायण सहस्र शीर्षों वाले हैं ऐसे पुरुष हैं। इनके एक सहस्र नेत्र हैं तथा एक सहस्र पाद भी है। यह एक ही शृंग वाले महान् आत्मा हैं—ऐसा श्रुति कहती है ॥७३॥ इनका रेत (वीर्य) गर्भ तथा भगवान् है जिनका माया तनु है और प्रभु हैं। यह अनेक प्रकार के मन्त्रों के द्वारा स्तूयमान होते हैं जिनका स्तवन मोक्ष की आकाङ्क्षा रखने वाले ब्राह्मण लोग ही किया करते हैं ॥७४॥ कल्प के अन्त में इस समस्त विश्व का संहार करके भगवान् पुरुषोत्तम योगामृत का पान करके शयन किया करते है जहाँ पर कि भगवान् विष्णु का परम पद है ॥७५॥ यह सम्पूर्ण विश्व का द्रष्टा है और न तो यह कभी जन्म लिया करते हैं—न इनकी कभी भी मृत्यु ही होती है और न वर्द्धित होते हैं। यह मूल प्रकृति मायी आया करती है तथा वैदिक लोगो के द्वारा इनको अज कहा जाता है। इसके पश्चात् जब निशा काल इनका समाप्त हो जाता है और जिस समय में इस सम्पूर्ण जगत् के सृजन करने की इच्छा वाले यह होते हैं तो यही भगवान् महेश्वर उस अज की नाभि में बीज को प्रक्षिप्त कर दिया करते हैं ॥७६-७७॥

तं मां वित्त महात्मानं ब्रह्माणंविश्वतोमुखम् ।
महान्तं पुरुषं विश्वमपांगर्भमनुत्तमम् ॥७८
न तं जानीत जनकं मोहितास्तस्य मायया ।
देवदेवं महादेवं भूतानामीश्वरं हरम् ॥७९-

एष देवो महादेवो ह्यनादिर्भगवान्हरः ।
विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च ॥८०
न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माद्विद्यते परम् ।
स वेदान्प्रददौ पूर्वं योगमायातनुर्मम ॥८१
स मायी मायया सर्वं करोति विकरोति च ।
तमेवमुक्तयेज्ञात्वा व्रजध्वंशरणंशिवम् ।।८२
इतीरिता भगवतामरीचिप्रमुखाविभुम् ।
प्रणम्य देवं ब्रह्माणंपृच्छन्तिस्मसमाहिताः ॥८३

उसको आप लोग मुझ को ही समझिये जो ब्रह्म और मैं विश्वतोमुख हूँ । महान्—पुरुष—विश्व—अपागर्भ और उत्तम हूँ ॥७८॥ उसकी माया से मोहित हुए उसको जनक नहीं जानते हैं वह देवों के देव—भूतों के ईश्वर हर महादेव हैं ॥७९॥ यही देव महादेव अनादि भगवान् हर हैं। यह विष्णु के साथ संयुक्त होकर रचना किया करते हैं और उसे विकृत भी कर दिया करते हैं ॥८०॥ उनका कुछ भी कार्य नहीं है और उनसे पर भी कोई नहीं है। योग माया के वपु वाले उन्होंने पूर्व में मुझ को वेदों को दिया था ॥८१॥ वह बहुत हो अद्भुत माया से समन्वित हैं। अपनी माया के द्वारा ही वह सभी कुछ बनाता—बिगाड़ता है। उनको हो मुक्ति प्राप्त करने के लिये जान कर अर्थात् उनके गुण स्वरूप पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके उन्हीं शिव की शरणागति में जाना चाहिए ॥८२॥ इस प्रकार से वह भगवान् के द्वारा कहे गये मरीचि प्रमुख ऋषिगण विभु देव ब्रह्मा को प्रणाम करके परम समाहित होते हुए उन से पूछने लगे थे ॥८३॥

३९—देवदारुवनप्रवेशवर्णन

कथं पश्येम तं देवं पुनरेवपिनाकिनम् ।
ब्रूहि विश्वामरेशान त्राता त्वं शरणैषिणाम् ॥१
यद्दृष्टं भवता तस्य लिङ्गं भुवि निपातितम् ।
तल्लिङ्गानुकृतीशस्य कृत्वा लिङ्गमनुत्तमम् ॥२

पूजयध्वं सपत्नीका सादरं पुत्रसंयुताः ।
वैदिकैरेव नियमैर्विविधैर्ब्रह्मचारिणः ॥३
संस्थाप्यशाङ्करैर्मन्त्रैर्ऋग्यजुः सामसम्भवैः ।
तपः परममास्थाय गृहन्त शतरुद्रियम् ॥४
समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः बन्धुभिः ।
सर्वे प्राञ्जलयोभूत्वा शूलपाणिंप्रपद्यथ ॥५
ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः ।
यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति ॥६
ततः प्रणम्य वरदं ब्रह्माणममितौजसम् ।
जग्मुः संहृष्टमनसो देवदारुवनं पुनः ॥७

मुनिगण ने कहा—हे विश्व के प्रभुओं के देव ! आप तो दारुणामनि में आने की इच्छा रखने वालों के भाप करने वाले हैं। अब कृपा कर हम लोगों को यह बतलाइये उन पिनाक के धारण करने वाले देव को पुनः हम लोग कैसे देखें उनके दर्शन का अब क्या साधन हो सकता है ॥१॥ ब्रह्माजी ने कहा—आप लोगों ने जो निपातित भूमि में उनके लिङ्ग को देखा है उसी लिङ्ग के अनुकरण वाला एक उत्तम लिङ्ग की रचना कराइए ॥२॥ फिर आप सभी लोग अपनी पत्नियों का साथ में लेकर तथा पुत्रों से भी समन्वित होकर आदर के साथ वैदिक विविध नियमों के द्वारा ब्रह्मचारी रहकर अभ्यर्चन करे ॥३॥ ऋग्वेद—यजुर्वेद और साम वेद के शङ्कर मन्त्रों से संस्थापन करके परेश्रुष्ट तप में समास्थित होवें और गृह के भीतर शतरुद्रिय करें। पुत्रों के सहित तथा समस्त बन्धु वर्ग के साथ परम समाहित होकर पूजा करिये। सभी लोग प्राञ्जलि हो जावें और शूलपाणि प्रभु की शरण में प्रपन्न हो जाइये ॥४-५॥ इसके पश्चात् ही आप लोग अकृतात्माओं के द्वारा बहुत ही दुर्दर्श देवेश्वर का दर्शन प्राप्त करेंगे। जिन प्रभु का दर्शन करके सम्पूर्ण अज्ञान और अधर्म का विनाश हो जाया करता है ॥६॥ इसके अनन्तर वरदान के प्रदान करने वाले अपरिमित ओज वाले ब्रह्मा को वे सब लोग प्रणाम करके पुनः दारुवन को बहुत ही प्रसन्न मन वाले होते हुए चले गये थे ॥७॥

आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणाकथितं यथा ।
अजानन्त.पर भावं वीतरागाविमत्सरा: ॥८
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानांगुहासु च ।
नदीनाञ्च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषुच ॥९
शैवालभोजना केचित्केचिदन्तर्जलेशयाः ।
केचिदभ्रावकाशास्तु पादाङ्गुष्ठे ह्यधिष्ठिता: ॥१०
दन्तोऽलूखलिनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथापरे ।
शाकपर्णाशना केचित्सम्प्रक्षाला मरीचिपा: ॥११
वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथापरे ।
काल नयन्ति तपसा पूजयन्तोमहेश्वरम् ॥१२
ततस्तेषा प्रसादार्थं प्रपन्नार्त्तिहरो हर. ।
चकार भगवान्बुद्धि बोधयन्वृषभध्वजः ॥१३
देवः कृतयुगे ह्यस्मिञ्छृङ्गे हिमवतः शुभे ।
देवदारुवनम्प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वर ॥१४

उन सभी ऋषियों ने फिर जिस प्रकार से ब्रह्माजी ने बतलाया था उसी विधि विधान से आराधना करना आरम्भ कर दिया था । यद्यपि ये सब उस परम भाव को नहीं जानते थे किन्तु सभी वीतराग और मात्सर्य का त्याग करके समाराधन करने लगे थे ॥८॥ विचित्र प्रकार के स्थण्डिलों में और पर्वतों की गुहाओं में तथा नदियों के परम एकान्त स्थानों में और शुभ पुलिनों में समवस्थित होकर आराधना कर रहे थे ।९। कुछ लोग तो केवल सैंवाल ही का अशन किया करते थे कुछ जन के अन्दर स्थित होकर आराधना करने वाले थे । कुछ अभ्रावकाश वाले थे तो कतिपय लोग पैर के अँगूठे के बल पर ही अधिष्ठित होकर करने वाले थे ॥१०॥ कुछ उनमें दन्तों के ही उलूखल वाले थे और दूसरे पाषाण कुट्ट थे । कतिपय लोग केवल शाक तथा पत्रों का ही अशन करने वाले थे कुछ सम्प्रक्षाल मरीचि पान करने वाले थे ॥११॥ वे सभी वृक्षों के मूल में निकेत बना कर रहा करते थे तथा कुछ दूसरे ऐसे थे जो शिलाओं की शय्या पर शयन किया करते थे । इसी प्रकार से काल का यापन करते

हुए तपश्चर्या के द्वारा भगवान् महेश्वर का यूजन कर रहे थे ॥१२॥ इसके उपरान्त प्रपन्नों की आर्ति का हरण करने वाले भगवान् हर ने उन सबके ऊपर प्रसाद करने के लिये वृषभध्वज ने बोधित होते हुए ऐसी मति की थी ॥१३॥ हिमवान् गिरिराज के शुभ इस शृङ्ग पर कृतयुग में देवेश्वर परमेश्वर ने प्रसन्न होते हुए देव दारुवन में प्राप्ति की थी ॥१४॥

भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः ।
उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः ॥१५
क्वचिच्च हसतेरौद्र क्वचिद्गायतिविस्मितः ।
क्वचिन्नृत्यतिशृङ्गारीक्वचिद्रौतिमुहुर्मुहुः ॥१६
आश्रमे ह्यटते भिक्षुर्याचते च पुनः पुनः ।
मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद्वनमागतः ॥१७
कृत्वा गिरिसुता गौरी पार्श्वेदेव पिनाकधृक् ।
साचपूर्ववद्देवेशी देवदारुवनङ्गता ॥१८
दृष्ट्वा समागत देव देव्या सह कपर्दिनम् ।
प्रणेमु शिरसा भूमौतोषयामासुरीश्वरम् ॥१९
वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैःमहेश्वरं शुभैः ।
अथर्वशिरसाचान्ये रुद्राद्यैरर्चयन्भवम् ॥२०
नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः ।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे ॥२१

जिस समय में यह प्रभु उस देव दारुवन में पदार्पण कर रहे थे इनका सम्पूर्ण अङ्ग भस्म से पाण्डुर वर्ण वाला था—नग्न स्वरूप था और अतीव विकृत लक्षणों से युक्त थे। यह उल्मूक से व्यग्र हाथों वाले थे और इनके लोचन रक्त एवं पिङ्गल वर्ण वाले हो रहे थे ॥१५॥ कभी-कभी तो यह हंसते थे—कभी परम विस्मित होकर रौद्र गायन किया करते थे। किसी समय में शृङ्गारी प्रभु नृत्य करने लगते थे और कभी-कभी बारम्बार रुदन करने लगते थे ॥१६॥ इसी भांति-विधि से महेश्वर भिक्षु के स्वरूप में पुनः पुनः आश्रम में अटन करते थे और याचना किया करते थे। इस

रीति से अपने रूप को माया से बनाकर वह देवेश्वर उस वन में समागत हुए थे ।।१७।। पिनाक धारी देव ने गिरि की सुता गौरी को अपने पार्श्व में कर रक्खा था । वह देवेशी भी पहिली ही भाँति उस देव दारुवन में प्राप्त हुई थी ।।१८।। इस रीति से समागत देवी के साथ कपर्द्दी देव का दर्शन करके सबने भूमि में शिर का स्पर्श कराकर प्रणाम किया था तथा ईश्वर का स्तवन भी किया था ।।१९।। अनेक प्रकार के वैदिक मन्त्रों से–स्तोत्रों से तथा माहेश्वर परम शुभ मन्त्रों से उनकी स्तुति की थी । अन्य लोग अथर्ववेद के शिर से तथा रुद्रादि के द्वारा भगवान् भव का अर्चन करते थे ।।२०।। स्तवन का प्रकार यही था—देवों के भी अधिदेव महादेव आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित है । त्र्यम्बक तथा त्रिशूल वरधारी आपके लिये नमस्कार है ।।२१।।

नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने ।
सर्वप्रणतदेवाय स्वयमप्रणतात्मने ।।२२
अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च ।
नमोऽस्तु नृत्यलीलाय नमो भैरवरूपिणे ।।२३
नरनारीशरीराय योगिनां गुरुवे नमः ।
नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च ।।२४
विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे ।
नमस्ते लेलिहानाय श्रीकण्ठाय च ते नमः ।।२५
अघोरघोररूपाय वामदेवाय वै नमः ।
नमः कनकमालाय देव्या प्रियकराय च ।।२६
गङ्गासलिलधाराय शम्भवे परमेष्ठिने ।
नमो योगाधिपतये भूताधिपतये नमः ।।२७
प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्माङ्गधारिणे ।
नमस्ते हव्यवाहाय दंष्ट्रिणे हव्यरेतसे ।।२८

दिशाओं के ही वसन धारण करने वाले अर्थात् नग्न स्वरूपी–विकृत और पिनाक नामक धनुष को धारण करने वाले आपको प्रणाम है। सभी देवगण जिनके समक्ष में प्रणत हैं और स्वयं अप्रणत आत्मा

वाले प्रभु के लिये प्रणाम है ॥२२॥ अन्त यमक भी अन्त कर देने वाले तथा सभी का सहार कर देने वाले आपको नमस्कार है। नृत्य की लीला करने वाले प्रभु की सेवा मे नमस्कार है तथा भैरव रूप वाले को हमारा प्रणाम है ॥२३॥ नर और नारी दोनो के अर्द्ध नारीश्वर स्वरूप वाले तथा योगियो के परम गुरुदेव के लिये प्रणाम है। परम दान्त—अत्यन्त ही दान्त और सर्वोत्कृष्ट तापस हर के लिये नमस्कार है ॥२४॥ विभीषण तथा चर्म का वसन धारण करने वाले रुद्र के लिये नमस्कार है। लेलिहान को प्रणाम है। श्री कण्ठ आपकी सेवा मे प्रणाम अर्पित है ॥२५॥ अघोर घोर रूप वाले वामदेव प्रभु को नमस्कार है। कनक की माला वाले और देवी के प्रिय का समाचरण करने वाले प्रभु को नमस्कार है ॥२६॥ गङ्गा के सलिल को धारण करने वाले—शम्भु—परमेष्ठी—योग के अधिपति तथा भूतो के अधिपति प्रभु के लिये नमस्कार है ॥ २७ ॥ प्राण स्वरूप आपके लिये नमस्कार है। अपने सम्पूर्ण अङ्गो पर भस्म धारण करने वाले आपको नमस्कार है। हव्यवाह—दष्ट्री और हव्यरेता आपकी सेवा मे प्रणाम अर्पित है ॥२८॥

ब्रह्मणश्च शिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे।
आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैवच ॥२९
विश्वेश्वर! महादेव! योऽसि सोऽसि नमोऽस्तुते।
नम प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसम्पदाम् ॥३०
कपालपाणये तुभ्य नमोजुष्टतमाय ते।
नम. कनकपिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः ॥३१
नमो वह्न्यर्कलिंगाय ज्ञानलिंगाय ते नम.।
नमो भुजङ्गहाराय कर्णिकारप्रियाय च।
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः ॥३२
महादेव! महादेव! देवदेव! त्रिलोचन!।
क्षम्यता यत्कृत मोहात्त्वमेव शरण हि नः ॥३३
चरितानि विचित्राणि गुह्यानिगहनानि च।
ब्रह्मादीनाञ्च सर्वेषा दुर्विज्ञेयोहिशङ्करः ॥३४

अज्ञानाद्यदि वाज्ञात्किञ्चिद्यत्कुरुते नरः ।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया ॥३५

ब्रह्मा के शिर का हरण करने वाले काल रूपी आपको हमारा प्रणाम है। हम लोग आपकी प्रगति का ज्ञान नहीं रखते हैं और आपकी गति को भी हम नहीं जानते है ॥२६॥ हे विश्वेश्वर ! हे महादेव ! आप जो भी कोई स्वरूप वाले हों सो होवें हमारा आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित है। प्रमथों के नाथ तथा शुभ सम्पदाओं के दाता प्रभु आपकी सेवा में हमारा प्रणाम है ॥३०॥ हाथ में कपाल रखने वाले आप को नमस्कार है और जुष्टतम अर्थात् परमोत्कृष्ट सेवित आपको हमारा नमस्कार है। कनक के समान पिङ्गल वर्ण वाले और वारिलिङ्ग आपकी सेवा में हमारा प्रणाम है ॥३१॥ वह्नि और सूर्य के लिङ्ग वाले तथा ज्ञान के चिह्न वाले आपको नमस्कार है। भुजङ्गों का हार धारण करने वाले और कर्णिकार को प्रिय मानने वाले आपकी सेवा में हमारा प्रणाम अर्पित है ॥३२॥ किरीट धारी और कुण्डलों के पहिनने वाले तथा काल के भी काल आपके लिये हम सबका प्रणाम समर्पित है। हे देव ! हे महादेव ! हे देवों के भी देव ! हे त्रिलोचन ! हम लोगों ने मोह के वशीभूत होकर जो कुछ भी आपका अपराध किया था और अपमान कर चुके थे उसे अब आप कृपा करके क्षमा कर दीजिए। हमारे आप ही शरण अर्थात् त्राता हैं। ॥३३॥ हे भगवन् ! आपके चरित्र तो परम अद्भुत हैं—अत्यन्त गुह्य (गोपनीय) है और अतीव गहन है। हम लोग तो विचारे वस्तु ही क्या हैं आप तो भगवान् शङ्कर ऐसे है जो ब्रह्मा से आदि लेकर बड़े-बड़े सबके ही दुर्विज्ञेय हैं ॥३४॥ यदि अज्ञान से अथवा ज्ञान से जो कुछ भी मनुष्य किया करता है वह सब कुछ भगवान् ही अपनी योग माया के द्वारा किया करते हैं मनुष्य की तो कुछ भी शक्ति नहीं है ॥३५॥

एवं स्तुत्वा महादेवं प्रविष्टैरन्तरात्मभिः ।
ऊचुःप्रणम्यगिरिशपश्यामस्त्वांयथापुरा ॥३६
तेषां संस्तवमाकर्ण्य सोमः सोमविभूषणः ।
स्वयमेव परंरूपं दर्शयामास शङ्करः ॥३७

तं ते दृष्ट्वाथगिरिशंदेव्यासहपिनाकिनम् ।
यथापूर्वंस्थिता विप्राःप्रणेमुर्हृष्टमानसाः ॥३८
ततस्तेमुनयः सर्वे संस्तूय च महेश्वरम् ।
भृग्वङ्गिरा वसिष्ठस्तुविश्वामित्रस्तथैव च ॥३९
गौतमोऽत्रिः सुकेशश्चपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ।
मरीचिःकश्यपश्चापिसम्वर्त्तकमहातपाः ।
प्रणम्य देवदेवेशमिदं वचनमब्रुवन् ॥४०
कथं त्वा देवदेवेश ! कर्मयोगेनवा प्रभो ।
ज्ञानेन वाथ योगेन पूजयामः सदैव हि ॥४१
केन वा देवमार्गेण सम्पूज्योभगवानिह ।
किं तत्सेव्यमसेव्य वा सर्वमेतद्ब्रवीहिनः ॥४२

इस प्रकार से प्रविष्ट अन्तरात्माओं के द्वारा महादेव की स्तुति करके उन्होंने भगवान् गिरिश को प्रणाम किया था और कहा था—हम सब आपको पहिले की भाँति ही देख रहे हैं ॥३६॥ उन सबके इस प्रकार संस्तव का समादर्शन करके सोम के विभूषण वाले सोम शङ्कर प्रभु ने स्वयमेव ही अपना पर स्वरूप उनको दिखला दिया था ॥३७॥ उन सबने देवी के साथ पिनाकधारी गिरिश का दर्शन प्राप्त करके जिस प्रकार से पहिले स्थित थे विप्रों ने परम प्रसन्न मन वाले होकर पुनः उनको प्रणाम किया था ॥३८॥ इसके अनन्तर उन समस्त मुनियों ने महेश्वर की भली भाँति स्तुति की थी। फिर भृगु—अङ्गिरा—वसिष्ठ—विश्वामित्र—गौतम—अत्रि—सुकेश—पुलस्त्य—पुलह—क्रतु—मरीचि—कश्यप और महातपस्वी सम्वर्त्तक इन सबने प्रणाम करके देवदेवेश से यह वचन कहा था ॥३९-४०॥ हे प्रभो ! हे देवदेवेश ! हम सब कर्म योग से अथवा ज्ञान से या योग से सदैव ही कैसे आपकी पूजा किया करें ॥४१॥ इस लोक में आप किस देव मार्ग से सम्पूज्य होते हैं। आपका क्या तो सेवन करने योग्य है और क्या नहीं सेवन के योग्य है—यह सभी कुछ हमको कृपा करके आप बतलाइये ॥४२॥

एतद्वः सम्प्रवक्ष्यामि गूढं गहनमुत्तमम् ।
ब्रह्मणा कथितम्पूर्व महादेवेन महर्षयः ॥४३
साङ्ख्ययोगाद् द्विधा ज्ञेयं पुरुषाणां हि साधनम् ।
योगेन सहितं साङ्ख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम् ॥४४
न केवलं हि योगेन दृश्यते पुरुषः परः ।
ज्ञानन्तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम् ॥४५
भवन्त-केवलं योगं समाश्रित्यविमुक्तये ।
विहाय साङ्ख्यं विमलमकुर्वतपरिश्रमम् ॥४६
एतस्मात्कारणाद्विप्रा नृणां केवलकर्मणाम् ।
आगतोऽहमिमं देशं ज्ञापयन्मोहसम्भवम् ॥४७
तस्माद्भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम् ।
ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं दृश्यमेव च ॥४८
एकः सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रकः ।
आनन्दो निर्मलो नित्य एतद्वै साङ्ख्यदर्शनम् ॥४९

देवों के देव ने कहा—यह सब में परम गूढ गहन तथा उत्तम विषय आपको बतलाऊंगा । हे महर्षिगणो ! पहिले ब्रह्माजी ने महादेव के विषय में कहा था ॥४३॥ साख्य और योग से पुरुषों का साधन दो प्रकार का हो गया है । ऐसा ही जानना चाहिए । योग के साथ जो साङ्ख्य योग के सहित ही पुरुषों को विमुक्ति का प्रदान करने वाला ऐसा है ॥४४॥ केवल योग से पर पुरुष के दर्शन नहीं हुआ करते हैं । ज्ञान तो केवल अपवर्ग के फल का ही प्रदान करने वाला है ॥४५॥ आप सभी लोग तो केवल योग का ही समाश्रय लेकर विमुक्ति की प्राप्ति करना चाहते हैं । आप लोग साख्य का परित्याग करके विमल परिश्रम किया है । हे विप्र-गण ! इसी कारण से केवल कर्म सेवी नरों के ज्ञान के लिये ही मेरा यहाँ आगमन है ॥४६॥ मैं इस देश में मोह के हो जाने वाले को जताने के लिये ही आया हूँ ॥४७॥ इसलिये आप लोगों के द्वारा किया विमल ज्ञान कैवल्य का ही साधन है वह भी प्रयत्न पूर्वक जानना चाहिए और श्रवण भी करना चाहिए तथा देखना भी चाहिए ॥४८॥ यह आत्मा एक ही है

जो सवत्र ही गमन करने वाला है और केवल चिन्मात्र ही होता है। यह आनन्द स्वरूप है—निमल है—नित्य है—यही साख्य दर्शन होता है ॥४६॥

एतदेव पर ज्ञानमय मोक्षोऽनुगीयते।
एतत्कैवल्यममल ब्रह्मभावश्च वर्णित ॥५०
आश्रित्य चैतत्परम तन्निष्ठास्तत्परायणा ।
पश्यन्ति मा महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम् ॥५१
एतत्तत्परम ज्ञान केवल सन्निरञ्जनम्।
अह हि वेद्यो भगवान्मम मूर्तिरिय शिवा ॥५२
बहूनिसाधनानीह सिद्धये कथितानि तु।
तेषामभ्यधिक ज्ञान मामक द्विजपुङ्गवा ॥५३
ज्ञानयोगरता शान्तामामेवशरणङ्गता ।
ये हि मा भस्मनि रता ध्यायन्ति सततहृदि ॥५४
मद्भक्तितत्परा नित्ययतय क्षीणकल्मषा ।
नाशयाम्यचिरात्तेषा घोर ससाराह्वरम् ॥५५
निर्म्मित हि मया पूर्व व्रत पाशुपत शुभम्।
गुह्याद्गुह्यतम सूक्ष्म वेदसार विमुक्तये ॥५६

यही पर ज्ञान है। इसके अनन्तर अब मोक्ष के विषय म अनुगान किया जाता है। यह अमल कैवल्य है और ब्रह्मभाव तो वर्णित कर दिया गया है ॥५०॥ इसका ही परम समाश्रय ग्रहण करके उसम ही निष्ठा रखने वाले तथा उसी म तत्पर रहने वाल महान् आत्मा वाले यति लोग विश्वरूप ईश्वर मुझ को देखा करते हैं अर्थात् मेरा दर्शन प्राप्त करते है ॥५१॥ यह परम उसका ज्ञान केवल सन्निरञ्जन है। मैं ही भगवान् जानने के योग्य हू और मेरी मूर्ति यही शिवा है ॥५२॥ यहाँ पर सिद्धि की प्राप्ति के लिये बहुत से साधन कहे गये हैं। हे द्विज श्रेष्ठो! उन समस्त साधनो म मुझ से सम्बन्ध रखने वाला अर्थात् मेरा जो ज्ञान होता है वही सब से अधिक महत्त्व पूर्ण होता है ॥५३॥ जो पुरुष ज्ञान—योग मे रत—शान्त स्वभाव वाले होते हैं वे मेरी ही शरण म गत हुआ करते

हैं। जो मुझ को ही भस्म मे रति रखने वाले होते हैं वे निरन्तर अपने हृदय मे मेरा ध्यान किया करते है ॥५४॥ मेरी भक्ति में तत्पर यति लोग नित्य ही क्षीण कल्मष वाले होकर स्थित हो जाते हैं। मैं उनके परम घोर ससार के गह्वर को बहुत ही शीघ्र अर्थात् तुरन्त ही नष्ट कर दिया करता हूँ ॥५५॥ मैंने सबसे पूर्व पाशुपत शुभ व्रत का निर्माण किया था जो कि गोपनीय से भी गोपनीय तम है तथा परम सूक्ष्म और वेदो का सार स्वरूप है जो विमुक्ति के लिये होता है अर्थात् पाशुपत से विमुक्ति हो जाया करती है ॥५६॥

प्रशान्तः सयतमना भस्मोद्धूलितविग्रह ।
ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रतं पाशुपतञ्चरेत् ॥५७
यद्वाकौपीनवसन.स्यादेकवसनोमुनि. ।
वेदाभ्यासरतो विद्वान्ध्यायेत्पशुपतिशिवम् ॥५८
एषपाशुपतोयोगःसेवनीयोमुमुक्षुभिः ।
तस्मिन्स्थितंस्तुपठितनिष्कामैरितिहिश्रुतम् ॥५९
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
वहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागता ॥६०
अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु ।
वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु ॥६१
वाम पाशुपत सोम लाकुरञ्चैव भैरवम् ।
असेव्यमेतत्कथित वेदबाह्य तथेतरम् ॥६२
वेदमूर्त्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभिः ।
ज्ञायते मत्स्वरूपन्तु मुक्त्वा वेद सनातनम् ॥६३

पाशुपत व्रत को करने के लिये सब से प्रथम तो मानव को परम प्रशान्त होना चाहिए तथा सयत मन वाला होकर भस्म से उद्धूलित शरीर वाला—ब्रह्मचर्य व्रत मे रत रहने वाला एव नग्न होकर इस पाशुपत व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥५७॥ अथवा पूर्ण नग्न न रहे तो केवल एक ही कौपीन का वस्त्र रखने वाला होकर रहे। ऐसा एक ही

वस्त्र धारण करने वाला मुनि वेदों के अभ्यास में रति रखने वाला होकर विद्वान् पुरुष को पशुपति भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिए ॥५८॥ जो मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाले हों ऐसे मुमुक्षुओं को यही पाशुपत योग सेवन करना चाहिए। उसमें स्थित तथा कामना से रहितों के द्वारा ही पाठ करना चाहिए यही श्रुत है ॥५९॥ राग और क्रोध का त्याग कर देने वाले—मुझ में ही पूर्णतया गतात—मेरा ही उपाश्रय ग्रहण करने वाले लोग इस योग के द्वारा पवित्र हो गये थे और मेरे ही भाव को प्राप्त हो गये थे ॥६०॥ अन्य जो बहुत से शास्त्र हैं वे सब इस लोक में मोहने वाले ही होते हैं जो वेदों के वाद के विरुद्ध हैं वे भी मेरे ही कथित हैं ॥६१॥ वाम—पाशुपत—सोम—लकुट—भैरव—ये सब असेव्य हैं ऐसा कहा गया है तथा जो इतर भी वेदों के बाहिर होने वाले हैं—वे सब सेवन करने के योग्य नहीं हैं ॥६२॥ हे विप्रगण ! मैं ही वेद मूर्ति हूँ—यह अन्य शास्त्रों के अर्थ को जानने वालों के द्वारा नहीं जाना जाता है वे लोग तो मेरे सनातन देव स्वरूप को छोड़ ही दिया करते हैं अर्थात् उनको मेरा सनातन स्वरूप के ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता ही नहीं होती है ॥६३॥

स्थापयध्वमिदं मार्गं पूजयध्वं महेश्वरम् ।
ततोऽचिरादैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति न संशयः ॥६४
मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः ॥
ध्यानमात्रे हि सान्निध्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः ॥६५
इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।
तेऽपि दारुवने स्थित्वा ह्यर्चयन्ति स्म शङ्करम् ॥६६
ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः ।
समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥६७
विचक्रिरे बहून्वादान्स्वात्मज्ञानसमाश्रयान् ।
किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि ॥६८
कोऽपिस्यात्सर्वभावानाहेतुरीश्वरएवच ।

इत्येवमन्यमानानाध्यानमार्गावलम्बिनाम् ।
आविरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा ॥६९
कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता ।
स्वभाभिर्निर्मलाभि सा पूरयन्ती नभस्तलम् ॥७०

अतएव इसी भाव की स्थापना करो और महेश्वर प्रभु का पूजन करो। इसका प्रभाव यह होगा कि फिर शीघ्र ही परम श्रेष्ठ ज्ञान समुत्पन्न हो जायगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६४॥ हे श्रेष्ठतमो! आप लोगों में मेरी विपुल भक्ति होवे। हे मुनि श्रेष्ठो! ध्यानमात्र से ही मैं अपना सान्निध्य दूँगा। इतना मात्र कह कर भगवान् सोम वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये थे। और फिर वे सब मुनीन्द्र गण भी उस दारुवन में समवस्थित होकर भगवान् शङ्कर की समर्चना किया करते थे ॥६५-६६॥ ब्रह्मचर्य व्रत में निरत होकर परम शान्त भावना से समन्वित और ज्ञान में परायण रहने वाले ब्रह्मवादी वे समस्त महान् आत्मा वाले मुनिगण एकत्रित होकर अपनी आत्मा के ज्ञान के समाश्रय वाले बहुत से वादों को किया करते थे कि इस जगत् का मूल क्या है और हम लोगों की आत्मा का क्या स्वरूप है ॥६७-६८॥ इन समस्त प्रकार के भावों का वाद स्वामी ईश्वर अवश्य ही होना चाहिए इसी प्रकार से मानने वाले तथा ध्यान मार्ग का अवलम्बन करने वालों के समक्ष में इसके उपरान्त ही गिरिवर की आत्मजा महादेवी वहाँ पर ही आविर्भूत हो गई थी। इन देवी का स्वरूप करोड़ों सूर्यों के सदृश था और यह ज्वालाओं की माला से समावृत थी तथा अपनी निर्मल आभाओं से पूर्ण नभस्तल को पूरित कर रही थी ॥६९-७०॥

तामन्वपश्यद्गिरिराजमेयाज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम् ।
प्रणेमुरेतामखिलेशपत्नीं जानन्ति चैतत्परमस्य बीजम् ॥७१
अस्माकमेषा परमस्य पत्नी गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना ।
पश्यन्त्ययात्मानमिदञ्च कृत्स्नं तस्यामथैते मुनयः प्रहृष्टाः ॥७२
निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या तदन्तरे देवमशेषहेतुम् ।
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥७३

आलोक्य देवीमथ देवमीश प्रणेमुरानन्दमवापुरग्र्यम् ।
ज्ञानं तदीश भगवत्प्रसादादाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु ॥७४
इयं या सा जगतो योनिरेका सर्वात्मिका सर्वनियामिका च ।
माहेश्वरी शक्तिरनादिसिद्धा व्योमाभिधाना दिवि राजतीव ॥७५
अस्यां महान्परमेष्ठी परस्तान्महेश्वरः शिव एकः स रुद्रः ।
चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं मायामथारुह्य च देवदेवः ॥७६
एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च ।
स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति ॥७७

उस अमेय घोर महती ज्वालाओं के अन्दर सन्निविष्ट गिरिजा को उन सब मुनियों ने देखा था और फिर उन अखिलेश्वर प्रभु की पत्नी को सबने प्रणाम किया था क्योंकि इसको परम का बीज जानते थे ॥७१॥ यह हमारी परम की पत्नी—गति तथा गगन के अभिधान वाली आत्मा है। ये सब मुनिगण परम प्रहृष्ट होते हुए उसमें इस सम्पूर्ण को तथा आत्मा को देखते थे ॥७२॥ उस परमेश की पत्नी ने उन सब को देखा था और उसी बीच में इन सब ने अभेद के हेतु—कवि—दैवित—वृहद्—पुराण पुरुष रुद्र देव शम्भु को देख लिया था ॥७३॥ इसके उपरान्त उन्होंने देवी और ईश देव को देख कर इनको प्रणाम किया था और बहुत ही उत्तम आनन्द को प्राप्त किया था। भगवान् की कृपा से (प्रसाद से) उनको ईश सम्बन्धी ज्ञान का प्राविर्भाव हो गया था जो कि जन्म के विनाश का हेतु होता है ॥७४॥ यह जो देवी है वह सम्पूर्ण जगत् की योनि अर्थात् उद्भव का स्थान है—यह एक ही है तथा सब की आत्मा और सब की नियामिका है। यही माहेश्वरी साक्षात् शक्ति है। यह अनादि सिद्ध—व्योम के अभिधान वाली दिव लोक में मानो विराजमान होकर शोभित हो रही है ॥७५॥ इसमें महान् परमेष्ठी—महेश्वर—परात्—शिव—एक वह रुद्र हैं। वह देवों के देव ने माया में समारोहण करके इस परशक्ति निष्ठ विश्व की रचना की थी ॥७६॥ वह एक ही देव समस्त प्राणियों में गूढ़ रहा करते हैं—यह माया वाले हैं—रुद्र—कला से युक्त और निष्कल हैं वह ही देवी के भी स्वरूप में भी हैं उनसे

विभिन्न नहीं हैं—यह ही जान कर प्रभुत्व को प्राप्त हुआ करते हैं ॥७७॥

अन्तर्हितोऽभूद्भगवान्महेशो देव्या तयासह देवाधिदेव ।
आराधयन्ति स्म तमादिदेव वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम् ॥७८
एतद्वः कथितं सर्वं देवदेवस्य चेष्टितम् ।
देवदारुवने पूर्वं पुराणेयन्मया श्रुतम् ॥७९
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं मुच्यते सर्वपातकैः ।
श्रावयेद्वा द्विजाञ्छान्तान्स याति परमा गतिम् ॥८०

वह देवों के अधिदेव भगवान् महेश उस देवी के साथ ही अन्तर्हित हो गये थे। फिर वनवासी गण आदि देव उनकी ही समाराधना करने लगे थे ॥७८॥ यह हमने भगवान् देवों के देव का सम्पूर्ण चेष्टित आप लोगों को बतला दिया है जो पहिले देव दारुवन में हुआ था और जो मैंने पुराण में श्रवण किया था ॥७९॥ जो कोई भी मनुष्य इस दारुवन में किये गये रुद्र देव के चरित्र को पढ़ता है या नित्य ही श्रवण किया करता है वह मानव सभी प्रकार के पातकों से छुटकारा पा जाया करता है। अथवा जो कोई परम शान्त द्विजों को श्रवण कराता है वह परम गति को प्राप्त हुआ करता है ॥८०॥

४०—मार्कण्डेययुधिष्ठिरसम्वादमेंनर्मदामाहात्म्यवर्णन

एषा पुण्यतमा देवी देवगन्धर्वसेविता ।
नर्मदालोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी ॥१
तस्याः शृणुध्वमहात्म्यमार्कण्डेयेन भाषितम् ।
युधिष्ठिरायतुशुभं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२
श्रुतास्ते विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादान्महामुने !।
माहात्म्यञ्च प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च ॥३
नर्म्मदासर्वतीर्थानामुख्याहिभवतेरिता ।
तस्यास्त्विदानीमाहात्म्यवक्तुमर्हसिसत्तम ॥४

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता ।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५
नर्मदायास्तुमाहात्म्य पुराणे यन्मयाश्रुतम् ।
इदानींतत्प्रवक्ष्यामिश्रृणुध्वंकमना शुभम् ॥६
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—यह परम पुण्य शालिनी देवी है जो देवो और गन्धर्वों के द्वारा सेवित है। यह समस्त लोकों में प्रति विख्यात और सब तीर्थों मे अत्युत्तम नर्मदा नदी है ॥१॥ अब आप लोग सब उसी नर्मदा का माहात्म्य सुनो जिसको कि महामुनीन्द्र मार्कण्डेयजी ने कहा था और इसको राजा युधिष्ठिर को सुनाया था। यह नर्मदा का माहात्म्य परम शुभ तथा समस्त पापो को विनाश करने वाला है ॥२॥ राजा युधिष्ठर ने कहा—हे महामुने! आपके प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के धर्मों का श्रवण किया है और प्रयाग राज का माहात्म्य भी श्रवण किया था तथा नाना तीर्थों के विषय मे भी सुन लिया था ॥३॥ आपने यह कहा था कि नर्मदा नदी समस्त तीर्थों मे प्रमुख एवं शिरोमणि तीर्थ है। हे श्रेष्ठतम! अब इस समय मे आप उस नर्मदा का माहात्म्य वर्णन करने के योग्य होते है अर्थात् उसका वर्णन कीजिए ॥४॥ महर्षिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी ने कहा—यह नर्मदा नदी सभी सरिताओ मे परम श्रेष्ठ है और रुद्र के देह से ही यह विनिःसृत हुई है। यह समस्त प्राणियो को चाहे वे स्थावर हो या चर हो तार दिया करती है ॥५॥ पुराण मे मैंने जो नर्मदा का माहात्म्य सुना है उसी का इस समय म मैं बतलाऊँगा। इस शुभ माहात्म्य को एक निष्ठ चित्त वाले होकर तुम श्रवण करो ॥६॥ कनखल मे गङ्गा भागीरथी परम पुण्यमयी है और कुरुक्षेत्र मे सरस्वती परम पुण्यशीला है। ग्राम मे अथवा अरण्य मे सर्वत्र ही नर्मदा पुण्यमयी होती है ॥७॥

त्रिभिः सारस्वतंतोयं सप्ताहाद्यामुनं जलम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयदर्शनादेव नार्मदम् ॥८

कलिंगदेशपश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके ।
पुण्या त्रिषु त्रिलोकेषु रमणीया मनोरमा ॥९
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तपस्तप्त्वातु राजेन्द्र सिद्धि तु परमागताः ॥१०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेका कुलाना तारयेच्छतम् ॥११
योजनाना शत साग्र श्रूयते सरिदुत्तमा ।
विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता ॥१२
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोटयस्तथैव च ।
पर्वतस्य समन्तात्त तिष्ठन्त्यमरकण्टके ॥१३
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
सर्व्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्व्वभूतहिते रतः ॥१४
एवशुद्धसमाचारोयस्तु प्राणान्परित्यजेत् ।
तस्यपुण्यफल राजञ्छृणुष्वावहितोऽनघ ॥१५

सरस्वती नदी का जल तीन दिन तक सेवन करने तथा स्नानोप-स्पर्शनादि के द्वारा पवित्र किया करता है । सात दिन तक सेवन से यमुना का जल पवित्र करता है । गङ्गा भागीरथी का जल सेवन करते ही तुरन्त पवित्र करता है और नर्मदा के जल के दर्शन मात्र से शुद्धि होजाया करती है ॥८॥ कलिंग देश के पश्चार्द्ध में अमर कण्टक पर्वत में तीनों लोकों में पुण्यमयी—रमणीय और मनोरमा है ॥९॥ देव—असुर—गन्धर्वों के सहित ऋषि वृन्द तथा तापस लोग हे राजेन्द्र ! तपश्चर्या करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥१०॥ हे राजन् ! नियमों में स्थित इन्द्रियों को जीत कर अपने वश में रखने वाला मनुष्य उसमें वहाँ पर स्नान करके और एक रात्रि उपवास करके सौ कुलों को तार दिया करता है ॥११॥ यह उत्तम सरिता ऐसी है जिसका साग्र सौ योजन सुना जाया करता है । हे राजेन्द्र ! विस्तार से तो यह दो योजन आयत है ॥१२॥ उस अमर कण्टक पर्वत में साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ पर्वत के चारों ओर स्थित रहा करते हैं ॥१३॥ ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण परिपालन करने वाला जो

शुचि होकर रहता है वह और जो क्रोध को जीत लेने वाला है तथा समस्त इन्द्रियों को नियमित रखने वाला—सर्व प्रकार की हिंसा से अलग रहने वाला एवं सब ही प्राणियों की भलाई में रति रखने वाला पुरुष इस में निवास करे ॥१४॥ इस प्रकार से परम शुद्ध समाचरण शील पुरुष जो कोई वहाँ तीर्थ में अपने प्राणों से परित्याग कर देता है तो हे राजन्! उसको जो पुण्य का फल होता है हे अनघ! उसे परम सावधान होकर श्रवण करो ॥१५॥

शतवर्षसहस्राणिस्वर्गे मोदतिपाण्डव !।
अप्सरोगणसंकीर्णोदिव्यस्त्रीपरिवारितः ॥१६
दिव्यागन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः।
क्रीडतेदिव्यलोके तुविबुधैः सहमोदते ॥१७
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टोराजाभवतिधार्मिकः।
गृहंतु लभतेऽसौवैनानारत्नसमन्वितम् ॥१८
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितम्।
आलेख्यवाहनैः शुभ्रैर्दासीशतसमन्वितम् ॥१९
राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं तत्र भोगसमन्वितः ॥२०
अग्निप्रवेशेऽथ जले वाप्यनशने कृते।
अनिवर्त्तिकागतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ॥२१

हे पाण्डव! ऐसा शुद्धाचरण वाला पुरुष जो इस परम पुण्यमय तीर्थ में प्राणत्याग करता है वह सौ सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है। वहाँ स्वर्ग में उसे अप्सराओं तथा दिव्य स्त्रियों के द्वारा वह सकीर्ण और परिवारित रहा करता है ॥१६॥ उसका शरीर दिव्य गन्धों से अनुलिप्त और परम दिव्य पुष्पों से उप शोभित रहता है। दिव्य लोक में देव गणों से क्रीड़ा किया करता है और परम सुख को प्राप्त करता है ॥१७॥ फिर स्वर्गीय सुख के उपभोग की अवधि पूर्ण होती है तो वहाँ से परिभ्रष्ट होकर संसार में परम धार्मिक राजा होकर जन्मग्रहण करता है। यहाँ पर भी उसको ऐसा ही अत्युत्तम गृह मिलता है जो अनेक

प्रकार के रत्नों से समन्वित होता है ॥१८॥ सामारिक घर भी मणिमय दिव्य स्तम्भों से युक्त और हीरा एवं वैदूर्य मणियों से विभूषित ही प्राप्त होता है जिसमें अश्व आलेखा वाहन होते हैं तथा सैकड़ों दासियाँ रहा करती हैं जो परिचर्या किया करती हैं ॥१९॥ यहाँ पर वह राजराजेश्वर श्री से सुसम्पन्न—समस्त स्त्री जन का वल्लभ होकर सभी लोगों से सवृत रहकर साठ सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है ॥२०॥ अग्नि प्रवेश में जल में अथवा अनशन करने पर अम्बर में पवन की भाँति ही उसकी अनिवर्तिका गति हुआ करती है ॥२१॥

पश्चिमे पर्वततटे सर्वपापविनाशनः ।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२२
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा ।
दशवर्षसहस्राणि तर्पिताः स्युर्न संशय ॥२३
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्यामहानदी ।
सरसार्जुनसञ्छन्नानातिदूरे व्यवस्थिता ॥२४
सा तु पुण्यामहाभागात्रिषुलोकेषुविश्रुता ।
तत्रकोटिशतं साग्रं तीर्थानान्तुयुधिष्ठिर ॥२५
तस्मिंस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।
नर्मदातोयसस्पृष्टास्ते यान्ति परमागतिम् ॥२६
द्वितीयातुमहाभागाविशल्यकरणीशुभा ।
तत्रतीर्थेनर स्नात्वाविशल्योभवतिक्षणात् ॥२७
कपिला च विशल्या च श्रूयेते सरिदुत्तमे ।
ईश्वरेण पुराप्रोक्ते लोकानांहितकाम्यया ॥२८

उसी पर्वत के पश्चिम तट पर सभी पापों का विनाश करने वाला एक जलेश्वर नाम वाला ह्रद है जो तीनों लोकों में बहुत ही अधिक प्रसिद्धि प्राप्त किया हुआ है ॥२२॥ वहाँ उस ह्रद पर पिंडों का प्रदान करने से तथा सन्ध्योपासना आदि कर्म करने से पितृगण दश सहस्र वर्ष तक तृप्त रहा करते हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥२३॥ उस परम पुण्यमयी नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर एक कपिला नाम धारिणी महा

नदी है जो सरल अर्जुन वृक्षों से सच्छन्न है और निकट ही में व्यवस्थित रहती है ॥२४॥ वह नदी भी अतीव पुण्यमयी तथा महान् भाग वाली है और तीनों लोकों मे इसका नाम भी विश्रुत है। हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर साग्र सौ करोड़ तीर्थ है ॥२५॥ उस तीर्थ में जो वृक्ष भी समय की समाप्ति होजाने पर गिर जाया करते है और नर्मदा नदी के जल से उनका सस्पर्श प्राप्त होजाता है तो उन स्थावर वृक्षों की भी परम सुन्दर गति हो जाया करती है ॥२६॥ दूसरी भी एक वहीं पर महाभागा एवं परम शुभ नदी है जिसका नाम विशल्या करणी है। उस तीर्थ मे मनुष्य स्नान करके उसी क्षण मे विगत शल्य वाला होजाया करता है ॥२७॥ वहाँ पर कपिला और विशल्या ये दोनो प्रत्युत्तम नदियाँ सुनी जानी हैं ईश्वर के द्वारा प्राचीन समय मे पहिले ही इनकी रचना लोगों के हित की कामना से कर दी गयी थी और बतला दिया था ॥२८॥

अनाशकन्तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके स गच्छति ॥२९
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ।
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते ॥३०
सरस्वत्याञ्च गंगायां नर्मदायां युधिष्ठिर ।
समं स्नानञ्च दानञ्च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ॥३१
परित्यजति यः प्राणान्पर्वतेऽमरकण्टके ।
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ॥३२
नर्मदाया जलं पुण्यं फेनोर्मिसफलीकृतम् ।
पवित्रं शिरसा धृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३३
नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ।
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥३४
जालेश्वरं तीर्थं वरं सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र गत्वा नियमवान्सर्वकामाल्लभेन्नरः ॥३५

हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई अनाशक कर्म किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर विशुद्ध आत्मा हो जाता है

और फिर वह रुद्र लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२६॥ हे राजन् ! वहाँ पर मनुष्य स्नान करके अश्वमेध यज्ञ करने के फल को प्राप्त किया करता है । जो उत्तर कूल पर निवास किया करते हैं उनको इस का यही फल मिलता है कि वे रुद्र लोक मे जाकर फिर निवास प्राप्त किया करते हैं ॥३०॥ हे युधिष्ठिर ! सरस्वती मे—भागीरथी गङ्गा मे और नर्मदा में किया हुआ स्नान तथा दान समान ही होता है । भगवान् शङ्कर ने मुझसे ऐसा ही कहा था ॥३१॥ जो पुरुष अमर कटक पर्वत मे निवास करके वही पर अपने प्राणो का उत्सर्ग किया करता है वह साढ़ सौ करोड वर्ष तक रुद्र लोक मे महिमान्वित होकर रहा करती है ॥३२॥ नर्मदा मे जल परम पुण्यमय है जो फेनो और ऊर्मियो (तरगो) से सफलीकृत होता है । यह जल परम पवित्र है । इसको शिर से धारण करके मनुष्य सभी तरह के पापो से प्रमुक्त होजाया करता है ॥३३॥ नर्मदा नदी सब प्रकार से पुण्यमयी थी और ब्रह्महत्या कर देने वाली थी । वहाँ पर एक अहोरात्र पर्यन्त उपवास करते हुए निवास करते हुए निवास करने पर मनुष्य ब्रह्म-हत्या के महान् पातक से छुटकारा पा जाया करता है तथा परम विशुद्ध होजाता है ॥३४॥ जालेश्वर एक तीर्थों मे परम श्रेष्ठ तीर्थ है जो सभी पापो का विनाश कर देने वाला है । उस तीर्थ मे पहुच कर जो पुरुष नियमो से युक्त होकर निवास किया करता है वह मनुष्य अपने सभी अभीष्ट कामनाओ की सफलता प्राप्त करने का लाभ लेता है ॥३५॥

चन्द्रसूर्योपरागे च गत्वा ह्यमरकण्टकम् ।
अश्वमेधाद्दशगुण पुण्यमाप्नोति मानवः ॥३६
एष पुण्यो गिरिवरो देवगन्धर्वसेवितः ।
नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः ॥३७
तत्र सन्निहितो राजन्देव्या सहमहेश्वरः ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथाचेन्द्रो विद्या धरगणैःसह ॥३८
प्रदक्षिणन्तुयःकुर्यात्पर्वतेऽमरकण्टके ।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्यफलम्प्राप्नोति मानवः ॥३९

कावेरी नाम विख्यातानदी कल्मषनाशिनी ।
तत्रस्नात्वामहादेवमर्चयेद्वृषभध्वजम् ।
सगमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते ॥४०

चन्द्र या सूर्य के ग्रहण को वेला उपस्थित होने पर जो कोई उस समय मे अमर कंटक पर्वत पर गमन किया करता है वह मानव अश्वमेध यज्ञ का जो पुण्य फल होता है उससे भी दश गुना पुण्य फल प्राप्त किया करता है ॥३६॥ यह परम पुण्यमय गिरिश्रेष्ठ है जो देव और गन्धर्व गणों के द्वारा सेवित होता है अर्थात् जिसमे देवता लोग गन्धर्वों के सहित निवास किया करते हैं। इस पर्वत का सौन्दर्य भी परम अद्भुत है। यहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष और लताऐं हैं जिनसे यह सकीर्ण रहता है और विविध भाँति के एक से एक सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पों से भी यह उप शोभित रहता है ॥३७॥ हे राजन्! वहाँ पर अपनी प्रिय पत्नी देवी पार्वती को साथ मे लेकर भगवान् महेश्वर सन्निहित रहा करते हैं। ये ही नहो अपितु वहाँ पर ब्रह्मा—विष्णु और रुद्र देव भी विद्याधरों के गणों के साथ ही निवास किया करते है। सभी देवगणों को निवास प्रिय लगता है ॥३८॥ उस अमर कटक पर्वत मे जो कोई उसकी प्रदक्षिणा किया करता है वह मानव पौंडरिक यज्ञ करने का पुण्य फल प्राप्त किया करता है ॥३९॥ वहाँ पर एक कावेरी नाम वाली परम प्रसिद्ध नदी है जो मनुष्यों के समस्त कल्मषों का नाश करने वाली है वहाँ उस कावेरी नदी में स्नान करके वृषभ ध्वज महादेव का अभ्यर्चन करना चाहिए। नर्मदा नदी के सगम मे जो स्नान किया करता है वह रुद्र लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥४०॥

४१—नर्मदामाहात्म्यवर्णन मे नानातीर्थमाहात्म्यवर्णन

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी ।
मुनिभिः कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुना ॥१
मुनिभिःसस्तुताह्येषानर्मदाप्रवरानदी ।
रुद्रगात्राद्विनिष्क्रान्तालोकानाहितकाम्यया ॥२

सर्वपापहरानित्यंसर्वदेवनमस्कृता ।
संस्तुतादेवगन्धर्वरप्सरोभिस्तथैव च ॥३
उत्तरे चैव कूले च तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुते ।
नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्य सर्वपापहरंशुभम् ॥४
तत्र स्नात्वा नरो राजन्देवतै. सह मोदते ।
ततो गच्छेन राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् ॥५
तत्रस्नात्वा नरोराजन्गोसहस्रफलंलभेत् ।
ततोऽङ्गारकेश्वरगच्छेन्नियतोनियताशनः ॥६
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! केदार नाम पुण्यदम् ॥७

महर्षि मार्कण्डेय जी ने कहा—यह नर्मदा नदी सभी सरिताओं मे श्रेष्ठ है और सभी पापो के विनाश करने वाली है। पहिले समय मे मुनियो के कहने पर ईश्वर स्वयम्भू ने ही इसे प्रकट किया था ॥१॥ मुनियो के द्वारा संस्तवन की गयी यह परमश्रेष्ठ नर्मदा नदी समस्त लोकों के हित के सम्पादन की कामना से भगवान् रुद्र के अंग से ही यह निकली थी ॥२॥ यह सभी पापो के नित्य ही हरण करने वाली है तथा समस्त देवो के द्वारा वन्द्यमाना है। सभी ओर से देवो तथा गन्धर्वों के द्वारा एवं अप्सरागणों के द्वारा संस्तुत हो रही थी ॥३॥ इस नर्मदा नदी के उत्तर दिशा की ओर वाले तट पर जो तीर्थ त्रैलोक्य मे विश्रुत है एक भद्रेश्वर नाम वाला परम पुण्यमय तीर्थ है जो सभी तरह के पापो का हरण करने वाला तथा परम शुभ है ॥४॥ हे राजन् ! उस भद्रेश्वर तीर्थ मे मनुष्य स्नान करके देवगणो के साथ मोद प्राप्त किया करता है। हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त फिर अतीव उत्तम विमलेश्वर नाम वाले तीर्थ मे जाना चाहिए। इस तीर्थ के स्नान का भी महान् फल होता है। हे राजन् ! एक सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य फल प्राप्त किया करता है। इसके पश्चात् फिर एक अन्य तीर्थ अंगारकेश्वर नाम वाला है उस मे परम नियत और नियत अशन वाला होकर ही गमन करना चाहिए ॥५-७॥

इस तीर्थ मे स्नान करने से समस्त पापो से विशुद्ध आत्मा वाला होकर अन्त मे रुद्र लोक मे जाकर प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है इसके पश्चात् हे राजेन्द्र ! केदार नामक पुण्य प्रदान करने वाले तीर्थ मे जाना चाहिए ॥७॥

तत्र स्नात्वोदकं पीत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
निष्फलेश ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ॥८
तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! वाणतीर्थमनुत्तमम् ॥९
तत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् ।
ततः पुष्करिणी गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥१०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्सिंहासनपतिर्भवेत् ।
शक्रतीर्थं ततो गच्छेत्कूलेचैवतुदक्षिणे ॥११
स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्रशूलभेदइतिश्रुतिः ॥१२
तत्रस्नात्वाचपीत्वाचगोसहस्रफलंलभेत् ।
उपोष्यरजनीमेकास्नानंकृत्वायथाविधि ॥१३
आराधयेन्महायोगं देवदेवं नरोऽमलः ।
गोसहस्रफलम्प्राप्य विष्णुलोकंसगच्छति ॥१४

इस केदार नाम वाले महान् तीर्थ मे स्नान करके और जलपान करके मनुष्य अपने सभी मनोरथों की सफलता प्राप्त कर लिया करता है। इसके उपरान्त दूसरे निष्कलेश नामक तीर्थ मे गमन करे। यह भी तीर्थ सब पापो के क्षय कर देने वाला है ॥८॥ वहाँ पर अवगाहन करके हे महाराज ! मनुष्य रुद्र लोक मे पहुँच कर महिमा सम्पन्न हुआ करता है। हे राजेन्द्र ! इस तीर्थ के पश्चात् परम उत्तम वाण तीर्थ मे गमन करना चाहिए। इस तीर्थ मे निवास करते हुए अपने प्राणो का परित्याग करके मनुष्य रुद्र लोक की प्राप्ति करने का लाभ पाया करता है। इसके अनन्तर पुष्करिणी नाम वाले तीर्थ मे गमन करना चाहिए और वहाँ पर स्नान करने का समाचरण करे ॥९-१०॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके हे

राजन् ! मनुष्य सिंहासन का स्वामी बन जाया करता है। इसके उपरान्त दक्षिण कूल में ही शुक्र तीर्थ नामक स्थल पर गमन करना चाहिए ॥११॥ वहाँ पर केवल स्नान मात्र के करने ही से मनुष्य हे राजन् ! इन्द्र के आधे आसन का स्वामी बन जाया करता है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! शूल भेद जिसका नाम श्रुति कहती है वहाँ पर गमन करना चाहिए। इस तीर्थ में अवगाहन करके तथा इसका जलपान करके एक सहस्र गौओं के दान का पुण्य फल प्राप्त होता है। वहाँ पर उपवास करके एक रात्रि निवास करे तथा विधि के अनुरूप स्नान चाहिए ॥१२-१३॥ अमल मनुष्य का देवों के देव महायोग की आराधना करनी चाहिए। वह आराधना करने वाला पुरुष एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त करके अन्त में विष्णु लोक में गमन किया करता है ॥१४॥

ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोकेमहीयते ॥१५
नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ॥१६
यत्रतप्ततप पूर्वंनारदेन सुर्षिणा ।
प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः ॥१७
ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम् ।
यत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते ॥१८
ऋणतीर्थं ततोगच्छेदृणान्मुच्येन्नरो ध्रुवम् ।
वटेश्वरं ततोगच्छेत्पर्याप्तं जन्मनः फलम् ॥१९
भीमेश्वरं ततोगच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥२०
ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् ।
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात् ॥२१

इसके उपरान्त ऋषि तीर्थ में गमन करे जो मनुष्यों के समस्त पापों के हरण करने वाला तीर्थ है। उस तीर्थ में केवल स्नान मात्र से ही मनुष्य शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥१५॥ वहाँ पर ही नारद का एक

परम शोभा सम्पन्न तीर्थ है। उसमें भी केवल स्नान मात्र से ही एक सहस्र गो दानों का फल पाता है ॥१६॥ जिस तीर्थ में पहिले देवर्षि नारद जी ने तपश्चर्या की थी परम प्रसन्न होकर देवों के देव महेश्वर प्रभु ने उनको योग प्रदान किया था ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी के द्वारा निर्मित जो लिंग है वह ब्रह्मेश्वर है—ऐसा श्रुत है जहाँ पर स्नान करके नर हे राजन्! ब्रह्म लोक में निवास करने का महत्त्व प्राप्त किया करता है ॥१८॥ इसके उपरान्त ऋण तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ उस तीर्थ के सेवन करने से मनुष्य निश्चय ही ऋण से मुक्ति पा जाया करता है। इसके अनन्तर वटेश्वर तीर्थ में जावे जहाँ जाने से जन्म ग्रहण करने का मनुष्य पर्याप्त फल प्राप्त कर लिया करता है ॥१९॥ फिर भी परमेश्वर नामक तीर्थ में जाना चाहिए जो समस्त व्याधियों का विनाश कर देने वाला है। इसमें मनुष्य पहुँच कर केवल स्नान भर ही कर लेवे समस्त प्रकार के दुःखों से छुटकारा पा जाता है ॥२०॥ हे राजेन्द्र! इसके पीछे अत्युत्तम तीर्थ पिंगलेश्वर जाना चाहिए। वहाँ पर पहुँच कर एक अहोरात्र तक उपवास करके तीन रात्रि के पुण्य-फल को प्राप्त किया करता है ॥२१॥

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र! कपिला यः प्रयच्छति।
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥२२
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते।
यस्तु प्राणपरित्याग कुर्यात्तत्र नराधिप! ॥२३
अक्षयं मोदते काल यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
नर्मदातटमाश्रित्य ये च तिष्ठन्ति मानवाः ॥२४
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।
ततो दीप्तेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम् ॥२५
निवर्त्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी।
हुङ्कारिता तु व्यासेन नत्क्षणेनततोगता ॥२६
प्रदक्षिण तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे युधिष्ठिर!।
प्रीतस्तत्र भवेद्व्यासो वाञ्छितं लभते फलम् ॥२७

ततो गच्छेत राजेन्द्रइक्षुनद्यास्तुसंगमम् ।
त्रैलोक्यविश्रुतं पुण्य तत्रसन्निहितःशिवः ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गणपत्यमवाप्नुयात् ।
स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥२८

हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ मे जो कोई एक कपिला गौ का दान दिया करता है इसका पुण्य-फल ऐसा होता है कि जितने भी रोम उस गौ के हुते हैं उतनी ही उसके कुल की प्रसूतियाँ उतने ही सहस्र वर्षों तक रुद्र-लोक मे प्रतिष्ठित रहा करती हैं। हे नराधिप ! जो कोई भी वहाँ पर अपने प्राण त्याग करता है अर्थात् जिसकी मृत्यु वहाँ पर होती है वह अक्षय काल तक मोद प्राप्त करता है अर्थात् जिस वक्त तक चन्द्र और सूर्य लोक मे विद्यमान रहा करते हैं उतने समय तक आनन्दानुभव किया करता है। जो मनुष्य नर्मदा के तट का समाश्रय ग्रहण करके वहाँ पर निवास किया करते हैं वे मृत हो जाने पर एक परम सन्त एवं सुकृती पुरुषों की भाँति ही स्वग मे जाया करते हैं। इसके पश्चात् दीप्तेश्वर व्यास तीर्थ तपोवन को चले जाना चाहिए ॥२२-२५॥ प्राचीन काल म वहाँ पर यह महा नदी व्यासजी से भयभीत होकर निवर्त्तित हो गई थी। व्यास देव ने जब हुङ्कारित किया था तो फिर उसी स्थल मे वहाँ से गयी थी ॥२६॥ हे युधिष्ठिर ! उस तीर्थ मे जो कोई पुरुष प्रदक्षिणा करता है तो वहाँ पर उस मानव पर भी व्यास देव परम प्रसन्न हो जाया करते हैं और वह मनुष्य अपना वाञ्छित फल प्राप्त किया करता है ॥२७॥ हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त वहाँ से इक्षु नदी के सङ्गम पर जाना चाहिए। यह सङ्गम का स्थल तीनों लोकों मे विश्रुत है और परम पुण्यमय है। वहाँ पर भगवान् शिव स्वयं सन्निहित रहा करते हैं। उस तीर्थ मे स्नान करके मनुष्य हे राजन् ! गाणपत्य पद की प्राप्ति किया करता है। इसके अनन्तर स्कन्द तीर्थ मे जाना चाहिए जो सब तरह के महान् से भी महान् पातकों का नाश कर देने वाला होता है ॥२८॥

आजन्मनः कृतम्पापस्नातस्तत्र व्यपोहति ।
तत्रदेवाः सगन्धर्वा भर्गात्मजमनुत्तमम् ॥२९

उपासते महात्मानं स्कन्दं शक्तिधरम्प्रभुम् ।
ततोगच्छेदाङ्गिरसं स्नानतत्रसमाचरेत् ।।३०
गोसहस्रफलम्प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति ।
अङ्गिरा यत्र देवेश ब्रह्मपुत्रो वृषध्वजम् ।।३१
तपसाऽऽराध्य विश्वेश लब्धवान्योगमुत्तमम् ।।३२
कुशतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ।।३३
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत अश्वमेधफलं लभेत् ।
कोटितीर्थं ततोगच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ।।३४
आजन्मनः कृतम्पापं स्नानस्तत्र व्यपोहति ।
चन्द्रभागा ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।।३५

जन्म से लेकर किया हुआ पाप इस तीर्थ में मानव विनष्ट कर दिया करता है जबकि वह यहाँ आकर स्नान कर लेता है। वहाँ पर गन्धर्वों के सहित देवगण परमोत्तम भर्गात्मज महात्मा स्कन्द शक्तिधर प्रभु की उपासना किया करते हैं। इसके उपरान्त वहाँ से ही आंगिरस नामक तीर्थ में जाना उचित है और वहाँ पहुँच कर भी स्नान का समाचरण करना चाहिए ।।२९-३०।। वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य एक सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य-फल जो होता है उसे प्राप्त करके वह सीधा रुद्र लोक को चला जाया करता है। जहाँ पर ब्रह्माजी के पुत्र अंगिरा ने देवेश्वर वृषध्वज की तपस्या के द्वारा आराधना करके उत्तम प्रकार के योग प्राप्त करने का लाभ लिया था ।।३१-३२।। इसके पश्चात् तीर्थार्थी पुरुष को कुश तीर्थ में चले जाना चाहिए जो सब पापों का विनाश कर देने वाला है ।।३३।। वहाँ पर स्नान करे तो अश्वमेध यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। फिर वहीं से कोटितीर्थ को चले जाना चाहिए। यह तीर्थ भी सभी पापों के नाश कर देने में परम प्रसिद्ध है ।।३४।। जन्म से आरम्भ करके जीवन भर में जितने भी बड़े से बड़े पाप किये गये हों उन सभी पातकों का व्यपोहन इस तीर्थ में स्नान कर लेने से ही हो जाया करता है। इसके अनन्तर चन्द्रभागा नामक तीर्थ पर पहुँच

जाना चाहिए और वहाँ गमन करके उस तीर्थ मे स्नान का समाचरण करे ॥३५॥

स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ।
नर्मदादक्षिणे कूले सगमेश्वरमुत्तमम् ॥३६
तत्रस्नात्वा नरो राजन्सर्वयज्ञफलंलभेत् ।
नर्म्मदायोत्तरेकूले तीर्थं परमशोभनम् ॥३७
आदित्यायतनं रम्यमीश्वरेणतुभावितम् ।
तत्रस्नात्वा तु राजेन्द्रदत्त्वादानतु शक्तितः ॥३८
तस्य तीर्थप्रभावेण लभतेचाक्षयफलम् ।
दरिद्रा व्याधितायेतु येतु दुष्कृतकर्मिणः ॥३९
मुच्यतेसर्वपापेभ्य.सूर्यलोकप्रयान्तिच ।
मातृतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्रसमाचरेत् ॥४०
स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।
तत. पश्चिमतो गच्छन्मरुतालयमुत्तमम् ॥४१
तत्रस्नात्वातु राजेन्द्रशुचिर्भूत्वासमाहितः ।
काञ्चनञ्चयतेदद्याद्यथाविभवविस्तरम् ॥४२

इस उपर्युक्त तीर्थ के स्नान करने का बहुत बडा प्रभाव है कि केवल इस मे अवगाहन करने मात्र से ही मानव सोमलोक मे जाकर प्रतिष्ठित होजाया करता है। नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर परम उत्तम सङ्गमेश्वर नाम वाला महान् तीर्थ स्थित है ॥३६॥ हे राजन्! उस तीर्थ मे स्नान करके मनुष्य सम्पूर्ण प्रकार के होने वाले यज्ञो का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है। वहीं पर नर्मदा महा नदी के उत्तर दिशा की ओर वाले तट पर एक अत्यन्त शोभन तीर्थ स्थित है ॥३७॥ इस पवित्र तीर्थ का शुभ नाम आदित्यायतन है जिस को साक्षात् ईश्वर ने ही भावित किया है। वहाँ पर उस तीर्थ मे स्नान करके हे राजेन्द्र! और अपनी शक्ति से दान देकर उस महान् तीर्थ के प्रभाव से अक्षय फल प्राप्त किया करता है। जो भी कोई दीन-दरिद्र हैं तथा व्याधियों से प्रपीड़ित हैं और दुष्कृत कर्मों के करने वाले हैं वे सभी समस्त पापों से

मुक्त होजाया करते हैं और अन्त में सूर्य लोक मे गमन करते हैं। इस तीर्थ का सेवन करने के पश्चात् मातृ तीर्थ को गमन करना उचित है और वहाँ पहुंच कर स्नान करना चाहिए। इस महान् तीर्थ मे स्नान भर कर लेने ही से मनुष्य स्वर्ग लोक पाने का अधिकारी बन जाया करता है। इससे पश्चिम की ओर महालय अत्युत्तम तीर्थ मे गमन करना चाहिए ॥३८-४१॥ हे राजेन्द्र! उसमे स्नान करके परम शुचिता सम्पन्न एवं समाहित होकर अपने वैभव के विस्तार के अनुसार यति को सुवर्ण का दान करना चाहिए ॥४२॥

पुष्पकेणविमानेनवायुलोकं स गच्छति ।
ततो गच्छेनराजेन्द्र! अहल्यातीर्थमुत्तमम् ।
स्नानमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमुत्तमम् (मक्षयम्) ॥४३
चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी ।
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्या यस्तुपूजयेत् ॥४४
यत्र तत्र समुत्पन्नो नरोऽत्यर्थप्रियोभवेत् ।
स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः ॥४५
सरिद्वरा समासाद्यतीर्थं शक्रस्यविश्रुतम् ।
स्नातमात्रोनरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ॥४६
सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४७
सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत् ।
त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम् ॥४८
यस्तु चान्द्रायणंकुर्यात्तत्रतीर्थेसमाहितः ।
सर्वपापविशुद्धात्मासोमलोकंसगच्छति ॥४९

इस स्नान और वहाँ पर किये गये सुवर्णदान का यह फल होता है कि वह मनुष्य पुष्पक विमान के द्वारा वायुलोक का गमन किया करता है। हे राजेन्द्र! अतीव उत्तम अहल्या तीर्थ पर गमन करना चाहिए। इस तीर्थ मे केवल स्नान भर ही कर लेने से मनुष्य अप्सराओं के साथ मे उत्तम कालपर्यन्त आनन्द मनाया करता है ॥४३॥ चैत्र मास के

सम्प्राप्त होजाने पर शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी के दिन में जो कि कामदेव का दिन होता है। उस दिन में जो भी कोई महल्या का अभ्यर्चन किया करता है वह मनुष्य जहाँ-तहाँ कहीं पर भी समुत्पन्न क्यों न हुआ हो किन्तु इस तीर्थ के महान् प्रभाव से अत्यन्त ही प्रिय होजाया करता है। यह श्री से सम्पन्न दूसरे कामदेव के ही तुल्य स्त्रियों का वल्लभ होजाया करता है। इस श्रेष्ठतम सरित का समासादन कर जोकि इन्द्रदेव का एक विशुद्ध तीर्थ है। वहाँ पर केवल स्नान भर कर लेने से एक सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। इसके उपरान्त सोम तीर्थ पर गमन करे और वहाँ पर स्नान करने का समाचरण करना चाहिए। वहाँ पर भी केवल स्नान करने ही से मनुष्य सब पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ।।४४-४७।। हे राजेन्द्र ! सोम ग्रह में तो यह पापों के क्षय करने वाला होता है। हे राजन् ! त्रिलोकी में परम प्रसिद्ध यह सोम तीर्थ महान् फल वाला होता है ।।४८।। जो कोई भी पुरुष उस तीर्थ में समाहित होकर चान्द्रायण महाव्रत किया करता है वह समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर सीधा सोम लोक को चला जाया करता है ।।४६।।

अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्सोमतीर्थे नराधिप !।
जले चानशनञ्चापिनासौमर्त्योहिजायते ।।५०
स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नानमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ।।५१
ततो गच्छेत राजेन्द्र! विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ।
योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम् ।।५२
असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः ।
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुश्रीकोभवेदिह ।।५३
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्या व्यपोहति ।
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् ।।५४
कामतीर्थमितिख्यातं यत्र कामोऽर्च्चयद्धरिम् ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः ।।५५

कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थ मनुत्तमम् ॥५६

हे नराधिप ! इस सोम तीर्थ में जो कोई अग्नि में प्रवेश करता है अथवा अनशन करता है ऐसा मनुष्य फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ।५०। इसके अनन्तर फिर स्तम्भ तीर्थ में गमन करे और वहाँ स्नान भर करे । वहाँ स्नान मात्र कर लेने ही से मनुष्य सोम लोक में महत्व पूर्ण पद की प्राप्ति किया करता है ॥५१॥ हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् अत्युत्तम विष्णु तीर्थ में गमन करे । वह भगवान् विष्णु का जो उत्तम स्थान है उसका नाम योधनीपुर–इस नाम से समाख्यात है ॥५२॥ वहाँ पर करोड़ों असुरों ने वासुदेव के साथ युद्ध किया था । वहीं पर यह तीर्थ समुत्पन्न होगया था । यहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य विष्णु के समान श्री वाला होजाया करता है । एक अहोरात्र के उपवास से मनुष्य ब्रह्महत्या का व्यपोहन (निवारण) कर दिया करता है । नर्मदा के दक्षिण कूल में एक परम शोभा वाला तीर्थ है, इस तीर्थ का नाम कहागया है जहाँ पर कामदेव ने स्वयं ही भगवान् श्रीहरि का अभ्यर्चन किया था । उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करे और उपवास करने में परारहे ॥५३ ५४॥ वह पुरुष कुसुमायुध के स्वरूप वाला होकर रुद्र लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । हे राजेन्द्र ! फिर तीर्थाटन करने वाले पुरुष को सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मतीर्थ में गमन करना चाहिए ॥५६॥

उमाहकमिति ख्यातं तत्र सन्तर्पयेत्पितृन् ।
पौर्णमास्याममावास्या श्राद्धं कुर्यायथाविधि ॥५७
गजरूपाशिलातत्रतोयमध्येव्यवस्थिता ।
तस्मिंस्तुदापयेत्पिण्डान्वैशाखेतुसमाहितः ॥५८
स्नात्वासमाहितमनादम्भमात्सर्यवर्जिता ।
तृप्यन्तिपितरस्तस्यतावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥५९
विश्वेश्वरततोगच्छेत्स्नानं तत्रसमाचरेत् ।
स्नातमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत् ॥६०

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! लिंगो यत्र जनार्दनः ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या विष्णुलोकेमहीयते ।।६१
यत्र नारायणोदेवो मुनीना भावितात्मनाम् ।
स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्ग तत्परमम्पदम् ।।६२
अकोल्लन्तु ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ।
स्नानंदानञ्चतत्रैवब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ।।६३

यह तीर्थ उमाहक—इस नाम से विख्यात है । वहाँ पर गमन करके पहुचने वाले तीर्थार्थी पुरुष को अपने पितृगण का तर्पण करना चाहिए । पूर्णमासी तिथि मे या अमावस्या तिथि मे इसी तीर्थ में विधि—विधान पूर्वक पितृगण का श्राद्ध भी करना चाहिए ।।५७।। वहाँ पर जल के मध्य मे एक गज के स्वरूप वाली शिला व्यवस्थित है । उसी शिला पर वैशाख मास मे परम समाहित होकर पिण्डो का निर्वपन कराना चाहिए ।।५८।। इस प्रकार से वहाँ पर श्राद्ध मे पिंडो का प्रदान स्नान करके अत्यन्त सावधानी के साथ दम्भ और मात्सर्य से रहित होकर करना चाहिए । इस विधि से श्राद्ध करने वाले के पितृगण परम सन्तृप्त होजाया करते हैं और तबतक तृप्त रहते हैं जब तक यह मेदिनी स्थिर रहा करती है ।।५९।। इसके उपरान्त विश्वेश्वर नामक तीर्थ मे गमन करे और वहाँ पर भी स्नान करना चाहिए । इस तीर्थ मे केवल स्नान मात्र कर लेने ही से मनुष्य को ऐसा परम पुण्य के फल का लाभ होता है कि वह गणपत्य पद की प्राप्ति कर लिया करता है ।।६०।। हे राजेन्द्र ! इस तीर्थ के उपसेवन करने के पश्चात् मनुष्य को वहाँ पर जाना चाहिए जहाँ पर जनार्दन लिङ्ग है । वहाँ उस तीर्थ मे भक्ति भाव से स्नान न करके मनुष्य विष्णु लोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ।।६१।। यह वह स्थल है जहाँ पर साक्षात् नारायण देव ने भावित आत्मा वाले मुनि गण को अपनी आत्मा का दर्शन कराया था वही लिङ्ग उनका परम पद है ।।६२।। इसके पश्चात् अङ्कोल तीर्थ पर जाना चाहिए जो समस्त पापो के विनाश करने वाला तीर्थ है । वहीं पर स्नान—दान और ब्राह्मणो का भोजन कराना चाहिए ।।६३।।

पिण्डप्रदानञ्च कृत प्रेत्यानन्तफलप्रदम् ।
त्रियम्बकेन नीयेन यश्चरुं श्रपयेद्द्विजः ॥६४
अङ्कुल्लमूलेदद्यात्पिण्डाश्चैवयथाविधि ।
तारिता पितरस्तेनतृप्यन्त्याचन्द्रतारकम् ॥६५
ततो गच्छेतराजेन्द्रतापसेश्वरमुत्तमम् ।
तत्रस्नात्वा तु राजेन्द्रप्राप्नुयात्तपसःफलम् ॥६६
शुक्लतीर्थं ततोगच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ।
नास्ति तेनसमतीर्थं नर्मदायायुधिष्ठिर ॥६७
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य स्नानाद्दानात्तपोजपात् ।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थं महत्फलम् ॥६८
योजनतत्स्मृतं क्षेत्रं देवगन्धर्वसेवितम् ।
शुक्लतीर्थमितिख्यातं सर्वपापविनाशनम् ॥६९
पादपाग्रेण दृष्टेनब्रह्महत्या व्यपोहति ।
देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शङ्करः ॥७०

जो पिंड का प्रदान किया जाता है वह मरने के पश्चात् अनन्त फल का प्रदान करने वाला होता है। जो द्विज त्रियम्बक जल से चरु का श्रपण किया करता है ॥६४॥ अकुल के मूल में पिंडो को यथाविधि देना चाहिए। जा पुरुष इस रीति से यहाँ पर पिंडो का निर्वपन करता है उसने अपने पितरों को तार दिया है। इससे पितृगण जब तक चन्द्र और तारे आकाश में स्थित रहा करते हैं तब तक तृप्त रहा करते हैं ॥६५॥ हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् परमोत्तम तापसेश्वर नामक तीर्थ में गमन करना चाहिए उस में स्नान करके हे राजेन्द्र! तपस्या के फल की प्राप्ति किया करता है ॥६६॥ इसके अनन्तर शुक्ल तीर्थ में गमन करे जो तीर्थ सभी पापों के विनाशक है। हे युधिष्ठिर! नर्मदा में उसके समान अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है ॥६७॥ इस तीर्थ के दर्शन से स्पर्श करने से—स्नान से—दान से—तपस्या से—जप से—होम से—उपवास से महान पुन्य फल हुआ करता है ॥६८॥ देवों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित एक

योजन पर्यन्त इस तीर्थ का क्षेत्र कहा गया है। इसका नाम शुक्ल तीर्थ है कहा गया है और यह सभी प्रकार के पापों का विनाश करने वाला है ॥६६॥ पादप के अग्रभाग के देखने से ब्रह्महत्या का व्यपोहन होता है। वहाँ पर देवी जगदम्बा के साथ सदा भगवान् शंकर स्थित रहा करते हैं ॥७०॥

कृष्णपक्षेचतुर्दश्यांवैशाखेमासिसुव्रत ।
लोकात्स्वकाद्विनिष्क्रम्यतत्रसन्निहितोहर: ॥७१
देवदानवगन्धर्वा सिद्धविद्याधरास्तथा ।
गणाश्चाप्सरसोनागास्तत्रतिष्ठन्तिपुङ्गवाः ॥७२
रञ्जितं हि यथावस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा ।
आजन्मजनितं पापं शुक्लतीर्थं व्यपोहति ॥७३
स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्तु दृश्यते ।
शुक्लतीर्थात्परं तीर्थंनभविष्यतिपावनम् ॥७४
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वापापानिमानव ।
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थेव्यपोहति ॥७५
कार्त्तिकस्यतु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम् ॥७६
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदीश्वरालयात् ।
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानैन वा पुनः॥७७॥

हे सुव्रत ! वैशाख मास में कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि में भगवान् हर अपने लोक से निकल कर वहीं पर ही सन्निहित होगये थे ॥७१॥ देव—दानव—गन्धर्व—सिद्ध—विद्याधर—गण—अप्सराऐं—नाग और श्रेष्ठ पुरुष वहीं पर समवस्थित रहा करते थे ॥७२॥ जिस प्रकार से रंगा हुआ वस्त्र जल से शुक्ल होजाया करता है। जन्म से आरम्भ करके ही समुत्पन्न हुआ पाप जो होता है वह शुक्ल तीर्थ में व्यपोहित होजाया करता है ॥७३॥ वहीं पर किया हुआ स्नान—दान—तप—श्राद्ध यह सभी वहीं पर अनन्त दिखलाई देता है। शुक्ल तीर्थ से परोत्तम तीर्थ दूसरा पावन नहीं होगा ॥७४॥ पहिली अवस्था में मानव पाप कर्मों को

करके एक अहोरात्र तक उपवास करके शुक्र तीर्थ में व्यपोहन होता है ॥७५॥ कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि के दिन उपवास करके परमेश्वर प्रभु को घृत से स्नान करना चाहिए ॥७६॥ तप—ब्रह्मचर्य-यज्ञ और दानों के द्वारा भी ऐसी उत्तम गति नहीं होती है जो इस तीर्थ में होजाती है। इस तीर्थ का सेवी इक्कीस कुलों से युक्त ईश्वर के आलय से च्युत नहीं हुआ करता है ॥७७॥

न तागतिमवाप्नोतिशुक्लतीर्थेतुया लभेद् ।
शुक्लतीर्थमहातीर्थ मृषिसिद्धनिषेवितम् ॥७८
तत्रस्नात्वानरोराजन्पुनर्जन्मनविन्दति ।
अयने वा चतुर्दश्यासङ्क्रान्तौविषुवेतथा ॥७९
स्नात्वा तु सोपवास नन्विजितात्मा समाहितः ।
दान दद्याद्यथाशक्ति प्रीयेतां हरिशङ्करौ ॥८०
एकतीर्थ प्रभावेण सर्व भवति चाक्षयम् ।
अनाथं दुर्गत विप्रं नाथवन्तमथापि वा ॥८१
उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु ।
यावत्तद्रोमसख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥८२
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र यमतीर्थमनुत्तमम् ॥८३
कृष्णपक्षे चतुर्दश्या माघमासे युधिष्ठिर ॥
स्नान कृत्वा नक्तभोजी न पश्येद्योनिसङ्कटम् ॥८४

उस प्रकार की उत्तम गति जो शुक्ल तीर्थ म जाने से हुआ करती है अन्य किसी भी साधना से नहो हो सकती है। यह शुक्ल तीर्थ एक परम महान् तीर्थ है और ऋषि तथा सिद्धो के द्वारा निषेवित है ॥७८॥ हे राजन्! उस तीर्थ मे स्नान करके मनुष्य फिर दूसरा जन्म कभी भी ग्रहण नही किया करता है। अयन मे—चतुर्दशी मे—सङ्क्रान्ति मे—विषुव मे स्नान करके उपवास करता हुआ—विजितात्मा एव समाहित मनुष्य दान देता है तो उस पर हरि और भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो

जाते हैं ॥७९-८०॥ एक ही इस तीर्थ का ऐसा प्रभाव है जिससे सभी अक्षय हो जाता है। किसी अनाथ—दुर्गति वाले विप्र को अथवा किसी नाथ वाले को भी जो कोई इस तीर्थ में उद्वाहित कर देता है उसके होने वाले पुण्य-फल का श्रवण करो। जितने भी रोमों की संख्या होती है उतने ही सहस्र वर्ष पर्यन्त उसकी प्रसूति के कुलों में हुए पुरुष रुद्र लोक में प्रतिष्ठित हुआ करते हैं। हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर अतीव उत्तम यम तीर्थ में गमन करना चाहिए। कृष्ण पक्ष में हे युधिष्ठिर ! माघ मास में चतुर्दशी तिथि के दिनमें इस तीर्थ में स्नान करके रात्रि को भोजन करे अर्थात् पूरे दिन उपवास करे तो वह मनुष्य फिर योनि से समुत्पन्न होने का संकट कभी नहीं देखा करता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म ही नहीं होता है ॥८१-८४॥

तततो गच्छेत राजेन्द्र! एरण्डीतीर्थमुत्तमम्।
सङ्गमे तु नरः स्नात्वा उपवासपरायणः ॥८५
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिताः।
एरण्डीसङ्गमेस्नात्वाभक्तिभावात्तुरञ्जितः ॥८६
मृत्तिकांशिरसिस्थाप्यअवगाह्य चतज्जलम्।
नर्मदोदकसंमिश्रंमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥८७
ततो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थं कल्लोलकेश्वरम्।
गङ्गाऽवतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः ॥८८
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्वा चैव यथाविधि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥८९
नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्तत्र स्नानंसमाचरेत्।
प्रीयते तत्र नन्दीशः सोमलोकेमहीयते ॥९०
ततो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थं त्वनरकं शुभम्।
तत्र स्नात्वानरोराजन्नरकं नैव पश्यति ॥९१

इस तीर्थ के पश्चात् हे राजेन्द्र ! उत्तम एरण्डी तीर्थ में जावे। वहाँ पर उपवास परायण होकर सङ्गम में मनुष्य अवगाहन करे और केवल एक ही ब्राह्मण को भोजन करावे तो उस एक का ही एक करोड़ विप्रों

के भोजन कराने के तुल्य पुण्य-फल हुआ करता है। एरण्डी के सङ्गम मे स्नान करके भक्तिभाव से रञ्जित होकर रहे। उस तीर्थ की मृत्तिका को शिर मे रखकर नर्मदा महानदी के जल से संमिश्रित उसके जल में अवगाहन करने वाला पुरुष समस्त किल्विषो से मुक्त हो जाया करता है ।।८५-८७।। हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त कल्लोलकेश्वर तीर्थ मे गमन करे। वहाँ पर पुण्य दिन मे गङ्गा का अवतरण हुआ करता है—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ।।८८।। वहाँ पर स्नान करके तथा वहाँ के जल का पान करके और यथाविधि दान देकर मनुष्य समस्त पापों से विनिर्मुक्त हो जाया करता है और विशुद्ध होकर फिर ब्रह्मलोक मे प्रतिष्ठित हो जाता है यह इस तीर्थ का प्रभाव है ।।८९।। इसके पश्चात् नन्दि तीर्थ में गमन करे और वहाँ पर स्नान करने से नन्दीश प्रभु परम प्रसन्न होते हैं और उनकी कृपा से वह मनुष्य सोम लोक मे प्रतिष्ठित हो जाया करता है ।।९०।। हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर अनरक नामक परम शुभ तीर्थ मे जाना चाहिए। उस तीर्थ मे स्नान करके मनुष्य फिर नरक को कभी भी नहीं देखा करता है ।।९१।।

तस्मिस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत् ।
रूपवाञ्जायते लोके धनभोगसमन्वितः ।।९२

ततोगच्छेतराजेन्द्रकपिलातीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलंलभेद् ।।९३

ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्तेचतुर्दश्या विशेषतः ।
तत्रोपोष्य नरोभक्त्यादद्या दीपघृतेनतु ।।९४

घृतेन स्नापयेद्रुद्रं ततो वै श्रीफलं लभेत् ।
घण्टाभरणसयुक्ता कपिला वै प्रदापयेत् ।।९५

सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः ।
शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत्क्रीडते सदा ।।९६

अंगारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः ।
स्नापयित्वा शिवं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम् ।।९७

सर्वदेवसमायुक्तो विमाने सर्वकामिके ।
गत्वा शक्रस्य भवनं शक्रेण सह मोदते ॥९८

हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ मे अपनी अस्थियो का निक्षेप करे तो वह मनुष्य रूप सम्पन्न होकर सधुत्पन्न हुआ करता है तथा धन के भोग के समन्वित होता है ॥९२॥ इसके उपरान्त हे राजेन्द्र ! उत्तम कपिला तीर्थ मे गमन करे। हे राजन् ! वहाँ पर मनुष्य अवगाहन करके एक सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ॥९३॥ ज्येष्ठ मास के सम्प्राप्त होने पर विशेष रूप से चतुर्दशी तिथि के दिन मे वहाँ पर उपवास करके भक्ति की भावना से घृत के द्वारा दीपक का दान करे। फिर घृत से ही भगवान् रुद्रदेव का स्नपन करावे इसके पश्चात् श्रीफल का लाभ करे। घण्टाभरण से समन्वित कपिला गौ का दान करावे ॥९४-९५॥ समस्त आभरणो से संयुक्त होकर सभी देवगण के द्वारा वन्द्यमान होता हुआ वह मनुष्य भगवान् शिव के तुल्य बल वाला होकर सदा शिव की ही भाँति क्रीडा किया करता है ॥९६॥ मङ्गल वार दिन के प्राप्त होने पर विशेष रूप से चतुर्थी तिथि मे शिव का स्नपन कराकर ब्राह्मणो को भोजन देना चाहिए। ॥९७॥ समस्त देवगणो से समायुक्त होकर सर्व कामिक अर्थात् सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले विमान मे स्थित होकर इन्द्रदेव के भवन को चला जाया करता है और वहाँ पर शक्रदेव के साथ ही आनन्द का उपभोग करता है ॥९८॥

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टोधृतिमान्भोगवान्भवेत् ।
अंगारकनवम्यातु अमावास्यानथैवच ॥९९
स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! गणेश्वरमनुत्तमम् ॥१००
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोकेमहीयते ॥१०१
पितृणा तर्पणं कृत्वा मुच्यतेसऋणत्रयात् ।
गगेश्वरसमीपे तु गगावदनमुत्तमम् ॥१०२

अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः ।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥१०३
तस्य वै पश्चिमे भागे समीपेनातिदूरतः ।
दशाश्वमेधिकं तीर्थं त्रिषु लोकेषुविश्रुतम् ॥१०४
उपोष्य रजनीमेकां मासिभाद्रपदे शुभे ।
अमावस्या हर स्नाप्यपूजयेद्गोवृषध्वजम् ॥१०५
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ।
गत्वा रुद्रपुर रम्यं रुद्रेण सह मोदते ॥१०६
सर्वत्र सर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् ।
पितृणा तर्पण कृत्वा चाश्वमेधफलंलभेत् ॥१०७

जब स्वर्गीय सुख के उपभोग की नियत अवधि समाप्त हो जाती है तो वह स्वर्ग से परिभ्रष्ट होकर ससार में जन्म ग्रहण किया करता है और यहाँ पर द्युतिमान् तथा भोगवान् होता है । भौमवार से युक्त नवमी तिथि मे तथा अमावस्या मे वहाँ पर देवेश्वर का यत्न पूर्वक स्नपन करावे तो इसका यह प्रभाव होता है कि वह रूपवान् एव सुभग हुआ करता है । हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त सर्वोत्तम तीर्थ गणेश्वर नामक को गमन करना चाहिए ॥९९-१००॥ श्रावण मास के सम्प्राप्त होने पर कृष्ण पक्ष मे चतुर्दशी तिथि के दिन मे केवल स्नान मात्र कर लेने वाला मनुष्य रुद्र-लोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥१०१॥ वहाँ इस तीर्थ मे पितृगणों का तर्पण करके मनुष्य तीनो प्रकार के ऋणो से छुटकारा पा जाया करता है । गणेश्वर के समीप मे ही गङ्गा के ही समान एक परमुत्तम तीर्थ है । ॥१०२॥ कामना से रहित होकर अथवा कामनाओ से सयुत होकर यदि मानव वहाँ पर अवगाहन करता है तो जन्म ग्रहण करने के समय से ही जितने भी पाप किये गये है उन सब पापो से मनुष्य मुक्ति पा जाया करता है—इसमे लेशमात्र भी सशय नही है ॥१०३॥ उस तीर्थ के पश्चिम दिशा के भाग मे अत्यन्त दूर न होकर समीप मे ही दशाश्वमेधिक नाम वाला तीर्थ है जो तीनो लोको मे परम प्रसिद्ध है ॥१०४॥ एक रात्रि तक शुभ भाद्र पद मास मे उपवास करके अमावस्या तिथि मे भगवान् हर का

स्नपन कराकर गोवृषध्वज का पूजन करना चाहिए ॥१०५॥ इसका यह पुण्य-फल होता है कि वह सुवर्ण से निर्मित किङ्किणीयों के जालों की मालाओं से शोभा सम्पन्न विमान में समवस्थित होकर रुद्रपुर में गमन किया करता है जो कि परम रम्य है। वहाँ पर वह फिर भगवान् रुद्रदेव के साथ निवास करता हुआ आनन्दोपभोग किया करता है ॥१०६॥ सर्वत्र अर्थात् सभी तीर्थों में सभी दिनों में स्नान करना चाहिए। इसका यह पुण्य-फल होता है कि वह मनुष्य वहाँ पर पितृगणों का तर्पण करके अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है ॥१०७॥

४२—नर्मदा तथा अन्यान्यतीर्थमाहात्म्य वर्णन

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! भृगुतीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र देवो भृगु पूर्वं रुद्रमाराधयत्पुरा ॥१
दर्शनात्तस्य देवस्य सद्य पापात्प्रमुच्यते ।
एतत्क्षेत्र सुविपुलसर्वपापप्रणाशनम् ॥२
तत्रस्नात्वादिवयान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवा ।
उपानहौतथायुग्य देयमन्नञ्चकाञ्चनम् ॥३
भोजनञ्च यथाशक्ति तस्याप्यक्षयमुच्यते ।
क्षरन्ति सर्वद नानि यज्ञदान तप क्रिया ॥४
अक्षय्य तत्तपस्तप्त भृगुतीर्थ युधिष्ठिर ।
तस्यैव तपसोग्रेण रुद्रेण त्रिपुरारिणा ॥५
सान्निध्य तत्र कथितं भृगुतीर्थ युधिष्ठिर ।
ततो गच्छेत राजेन्द्रगौतमश्वरमुत्तमम् ॥६
यत्राराध्यत्रिशूलाङ्क गौतम सिद्धिमाप्तवान् ।
तत्र स्नात्वानरो राजन्नुपवासपरायण ॥७

श्री महामहर्षि मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त सर्वोत्तम भृगुतीर्थ को गमन करे। उस तीर्थ में प्राचीन समय में महामुनीन्द्र भृगु ने भगवान् रुद्रदेव का समाराधन किया था ॥१॥ वहाँ पर उन

देवेश्वर के दर्शन मात्र से ही तुरन्त ही मानव सब पापों से मुक्त होकर विशुद्धात्मा हो जाया करता है। यह तीर्थ का क्षेत्र बहुत ही विपुल है तथा समस्त प्रकार के महान् पातकों का भी विनाश कर देने वाला है ॥ ॥ उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य सीधे ही स्वर्ग लोक में चले जाया करते हैं। जो मनुष्य उस तीर्थ में प्राणों का परित्याग करके मृत हो जाते हैं वे तो फिर इस संसार में दूसरा जन्म ही ग्रहण नहीं किया करते हैं। यहाँ पर उपानहों का जोड़ा—अन्न और सुवर्ण का दान करना चाहिए ।।३।। अपनी शक्ति के अनुसार विप्रों को भोजन भी करावे तो पुण्य फल अक्षय होता है—ऐसा कहा जाता है। सभी प्रकार के दान जैसे यज्ञ दान और तप की क्रिया आदि क्षरित हो जाया करते हैं ।।४।। हे युधिष्ठिर। इस भृगु तीर्थ में जो भी तपश्चर्या की जाती है उसका कभी भी क्षरण नहीं होता है और वह सर्वदा अक्षय ही होती है। उसके ही अति उग्र तप से भगवान् त्रिपुरारि रुद्रदेव ने हे युधिष्ठिर! भृगु तीर्थ में अपना सान्निध्य बतलाया है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र! सर्वोत्तम गौतमेश्वर तीर्थ में गमन करे ।।५ ६।। जहाँ पर गौतम ऋषि ने भगवान् त्रिशूलाङ्क की समाराधना कर सिद्धि की प्राप्ति की थी। हे राजन्! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य को उपवास करने में तत्पर होना चाहिए ।।७।।

काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते।
वृषोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाश्वतं परमाप्नुयात् ।।८
न जानन्तिनरा मूढाविष्णोर्मायाविमोहिताः।
धौतपापततो गच्छेद्धौतपापनुपेणतु ।।९
नर्मदायां स्थित राजन्सर्वपातकनाशनम्।
तत्रतीर्थेनरास्नात्वा ब्रह्महत्याविमुञ्चति ।।१०
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र! प्राणत्याग करोति यः।
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्चहरतुल्यवलोभवेत् ।।११
वसेत्कल्पायुत साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः।
कालेनमहता जातः पृथिव्यामेकराड्भवेत् ।।१२

ततो गच्छेत राजेन्द्र! हस्ततीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोकेमहीयते ॥१३
ततो गच्छेत राजेन्द्रयत्रसिद्धोजनार्द्दनः ।
वराहतीर्थं माख्यात विष्णुलोकगतिप्रदम् ॥१४

इस महान् तीर्थ के सेवन करने का ऐसा पुण्य फल होता है कि मनुष्य सुवर्ण निर्मित विमान के द्वारा गमन करके ब्रह्मलोक में महिमान्वित होकर स्थित रहा करता है। इसके पश्चात् वृषोत्सर्ग नामक तीर्थ में गमन करे जिसका फल यह होता है कि वह मानव शाश्वत पद की प्राप्ति किया करता है ॥८॥ जो मनुष्य महा मूढ होते हैं वे भगवान् विष्णु की माया से विमोहित होने हुए इस तीर्थ का महत्त्व नहीं जाना करते हैं। इसके उपरान्त धौत पाप नाम वाले तीर्थ में गमन करे जिसमें भगवान् वृष ने धौत किया था ॥९॥ नर्मदा में स्थित हे राजन्! तीर्थ सब पापों का विनाश करने वाला है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके ब्रह्महत्या के पाप का भी विमोचन कर दिया करता है ॥१०॥ हे राजेन्द्र! उस तीर्थ में जो भी कोई मनुष्य अपने प्राणों का त्याग किया करता है वह चार भुजाओं वाला तथा तीन नेत्रों वाला होकर भगवान् हर के ही बल वाला हो जाया करता है ॥११॥ साग्र दश सहस्र कल्प पर्यन्त वह शिव के तुल्य पराक्रम वाला होकर निवास किया करता है। महान् काल से समुत्पन्न हुआ वह पृथिवी पर एक ही राजा होता है ॥१२॥ हे राजेन्द्र! इसके उपरान्त मनुष्य को जिससे उत्तम अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है ऐसे सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हस्त तीर्थ नाम वाले में जाना चाहिए। वहाँ पर हे राजन्! मनुष्य स्नान करके ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥१३॥ इसके पश्चात् हे राजेन्द्र! जहाँ पर सिद्ध जनार्दन हैं वहाँ गमन करना चाहिए। इसका नाम वाराह तीर्थ है जो विष्णु लोक में गति प्रदान करने वाला है ॥१४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम् ।
पौर्णमास्यां विशेषेणस्नानंतत्र समाचरेत्। ।१५

स्नातमात्रो नरस्तत्रपृथिव्यामेकराट्भवेत् ।
देवतीर्थं ततोगच्छेत्सर्वतीर्थनमस्कृतम् ॥१६
तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र! दैवतै.सह मोदते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र! शङ्खितीर्थमनुत्तमम् ॥१७
यत्तत्र दीयतेदान सर्वं कोटिगुण भवेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थं पैतामहं शुभम् ॥१८
यत्तत्रदीयतेश्राद्धसर्वंतस्याक्षय भवेत् ।
सावित्रीतीर्थं मासाद्यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥१९
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकेमहीयते ।
मनोहर तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ॥२०
तत्र स्नात्वा नरोराजन्रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्रकन्यातीर्थमनुत्तमम् ॥२१

हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर सर्वोत्तम चन्द्र तीर्थ मे जाना चाहिए । विशेष करके पूर्णमासी तिथि मे वहाँ पर स्नान का समाचरण करना चाहिए । ॥१५॥ वहाँ पर स्नान मात्र करने वाला ही इतना विशेष पुण्य भागी हो जाता है कि वह मनुष्य पृथ्वी पर एक छत्र राज्य का स्वामी बन जाया करता है। इसके उपरान्त देवतीर्थ मे गमन करना चाहिए जो सभी तीर्थों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्द्यमान है ॥१६॥ हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ मे अवगाहन करके मनुष्य देवगणो के साथ मोद का लाभ उठाया करता है। हे राजेन्द्र ! इस तीर्थ के सेवन के बाद मे परमश्रेष्ठ शङ्खि तीर्थ मे गमन करे ॥१७॥ इस तीर्थ मे जो कुछ भी दान दिया जाता है करोड गुना हो जाया करता है। इसके उपरान्त हे राजेन्द्र ! पैतामह नामक परम शुभ तीर्थ मे गमन करे ॥१८॥ जहाँ पर जो भी कोई श्राद्ध दिया जाता है उसका वह सब अक्षय हो जाया करता है। सावित्री नाम वाले तीर्थ मे पहुँच कर जो पुरुष अपने प्राणो का परित्याग किया करता है ॥१९॥ वह मनुष्य अपने सभी पापो विधूनन करके अन्त समय मे ब्रह्मलोक के निवास को प्राप्त कर वहाँ पर ही प्रतिष्ठा का लाभ लेता है। वहाँ पर ही एक परम शोभा से सुसम्पन्न मनोहर तीर्थ है ॥२०॥ हे राजन् ! उस तीर्थ मे

स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक मे महिमान्वित पद पर समासीन हुआ करता है । इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम कन्या तीर्थ नाम वाले तीर्थ मे गमन करना चाहिए ॥२१॥

स्नात्वा तत्र नरो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
शुक्लपक्षेतृतीयायास्नानमात्रं समाचरेत् ॥२२
स्नातमात्रोनरस्तत्रपृथिव्यामेकराड्भवेत् ।
सर्गविन्दु ततोगच्छेत्तीर्थ देवनमस्कृतम् ॥२३
तत्र स्नात्वानरोराजन्दुर्गति वैन पश्यति ।
अप्सरेशततोगच्छेत्स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥२४
क्रीडते नाकलोकस्थोह्यप्सरोभि स मोदते ।
ततोगच्छेतराजेन्द्रभारभूतिमनुत्तमम् ॥२५
उपोषितो यजेतेशरुद्रलोके महीयते ।
अस्मिस्तीर्थे मृतोराजन्गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥२६
कार्तिके मासि देवेशमर्चयेत्पार्वतीपतिम् ।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिण. ॥२७
वृषभं यः प्रयच्छेतत्र कुन्देन्दुसप्रभम् ।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोक सगच्छति ॥२८

हे राजन् ! इस कन्या तीर्थ मे मनुष्य अवगाहन करके समस्त पापो से प्रमुक्त होजाया करता है । यहाँ पर माघ के शुक्ल पक्ष मे तृतीया तिथि मे केवल स्नान करे ।२२। इसमे सिर्फ स्नान कर ही कर लेने वाला मनुष्य इस भूमि पर एक छत्रधारी सम्राट हुआ करता है—इतना अधिक यहाँ के केवल स्नान करने का महान् पुण्य—फल हुआ करता है । इसके पश्चात सर्ग विन्दु नामक तीर्थ मे गमन करना चाहिए । जिस तीर्थ को सभी देवगण नमस्कार किया करते हैं ॥२३॥ हे राजन् उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य कभी भी अपनी दुर्गति नही देखा करता है अर्थात् उसकी दुर्गति तो कभी हो ही नही सकती है । इसके बाद मे अप्सरेश नाम वाले तीर्थ मे चले जाना चाहिए और वहाँपर स्नान करे ॥२४॥ इस तीर्थ म स्नान करने वाला मनुष्य स्वर्ग लोक के समवास्थित होकर

अप्सराओं के साथ आनन्द का उपभोग करते हुए क्रीडा किया करता है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! सारस्वति नामक उत्तमोत्तम तीर्थ मे चलाजावे ॥२५॥ वहाँ पर उपवास करके ईश का यजन करे तो मनुष्य इन्द्र लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है। हे राजन ! यदि कोई वहाँ पर निवास करके मृत होजाता है तो उसे गाणपत्य पद की प्राप्ति हुआ करती है। ॥२६॥ कार्तिक मासमे पार्वती के स्वामी देवेश का अभ्यर्चन करना चाहिए। इस अर्चनका जो पुण्य फल होता है वह अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से भी दशगुना हुआ करता है—ऐसाही मनीषीगण कहा करते हैं ॥२७॥ वहाँ पर यदि कोई कुन्दकुसुम तथा इन्द्र के समान प्रभावाले एक दम शुभ्र वर्ण के वृषभ का दान करता है तो वह वृष युक्त दान के द्वारा इन्द्र लोक मे ही गमन किया करता है ॥२८॥

एतत्तीर्थं समासाद्ययस्तुप्राणान् परित्यजेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकसगच्छति ॥२९
जलप्रवेशं य. कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ।
हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं सगच्छति ॥३०
एरण्डया नर्मदायास्तुसङ्गमलोकविश्रुतम् ।
तच्च तीर्थं महापुण्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥३१
उपवासकृतो भूत्वा नित्य व्रतपरायणः ।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्रमुच्यतेब्रह्महत्यया ॥३२
ततो गच्छेत राजेन्द्र !नर्मदोदधिसगमम् ।
जमदग्निमिति ख्यात सिद्धो यत्र जनार्दनः ॥३३
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नर्मदोदधिसगमे ।
त्रिगुणञ्चाश्वमेधस्य फलम्प्राप्नोति मानवः ॥३४
ततो गच्छेत राजेन्द्र पिगलेश्वमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोकेमहीयते ॥३५

इस तीर्थ को सौभाग्य से प्राप्त करके कहीं ऐसा अवसर आजावे कि वहीं पर कोई अपने प्राणों का परित्याग करे तो वह सभी प्रकार के छोटे—बड़े पापों से विमुक्त होकर सीधा रुद्र लोक मे ही गमन किया

करता है ॥२६॥ हे नराधिप ! यदि कोई उस तीर्थ में जल प्रवेश करे तो वह हंसो से समन्वित विमान के द्वारा सीधा स्वर्ग लोक को चला जाया करता है ॥३०॥ एरण्डी और महानदी नर्मदा इन दोनों नदियों का सङ्गम लोक में परम प्रसिद्ध है और वह तीर्थ महान पुण्यमय है एवं सभी पापों के विनाश करने वाला है ॥३१॥ उपवास करने वाला और नित्य ही व्रतो में तत्पर रहने वाला मनुष्य वहाँ पर स्नान करके ब्रह्म हत्या जैसे महान पाप से भी विमुक्त हो जाया करता है ॥३२॥ इसके पश्चात हे राजेन्द्र ! तीर्थाटन करने वाले मनुष्य को नर्मदा और उदधि के सङ्गम पर गमन अवश्य ही करना चाहिए। इस तीर्थ का शुभ नाम जमदग्नि प्रसिद्ध है जहाँ पर सिद्ध जनार्दन हैं ॥३३॥ हे राजन् ! वहाँ पर नर्मदोदधि सगम में मनुष्य अवगाहन कर के अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से तिगुना पुण्य प्राप्त किया करता है ॥३४॥ इस सगम के सेवन के उपरान्त हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम पिङ्गलेश्वर नामक तीर्थ में गमन करना चाहिए। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में महिमान्वित पद पर समासीन हुआ करता है ॥३५॥

तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत विमलेश्वरम् ।
सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम् ॥३६

ततो गच्छेत राजेन्द्र अलितीर्थं मनुत्तमम् ।
उपोष्य रजनीमेकां नियतोनियताशन ॥३७

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यतेब्रह्महत्यया ।
एतानि तव सङ्क्षेपात्प्राधान्यात्कथितानि च ॥३८

न शक्या विस्तराद्वक्तं सख्या तीर्थेषु पाण्डव !।
एषा पविता विपुला नदी त्रैलोक्यविश्रुता ॥३९

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा ।
मनसा सस्मरेद्यस्तुनर्मदा वै युधिष्ठिर! ॥४०

चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र सशयः ।
अश्रद्दधाना. पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः ॥४१

पतन्ति न^के घोर इत्याह परमेश्वरः ।
नर्मदा सेवते नित्य स्वय देवो महेश्वरः ।
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ।।४२

वहाँ पर जो कोई भी पुरुष भगवान विमलेश्वर का दर्शन किया करता है वह अपने पिछले सात जन्मों में किए हुए भी समस्त पापों का विनाश कर के परम विशुद्धात्मा होकर सीधा शिवालय मे ही प्राप्त हो जाता है ।।३६।। हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर फिर तीर्थ से भी मनुष्य को उत्तम मतितीर्थ को गमन करना चाहिए । वहाँ पर एक रात्रि तक उपवास करके नियत होकर तथा नियत अशन वाला रहे ।।३७।। इस तीर्थ का माहात्म्य ही ऐसा है कि इसके प्रभाव से मनुष्य ब्रह्महत्या के महापातक से भी मुक्त हो जाया करता है इतने तीर्थों का हाल मैंने तुमको परम संक्षेप से ही सुना दिया है जोकि परम प्रधान तीर्थ थे उन्हीं का नाम कहा गया है ।।३८।। हे पाण्डव ! वहाँ पर तो इतने अधिक तीर्थ हैं कि उन्हें सबको कहना तथा प्रधान तीर्थ या भी विस्तार के सहित वर्णन करना अशक्य है । यह महानदी नर्मदा विपुला है तथा तीनों लोकों में भी परम प्रसिद्ध है ।।३९।। यह नर्मदानदी सभी नदियों में परम श्रेष्ठ नदी है और भगवान महादेव की तो यह परम प्रिया नदी है । हे युधिष्ठिर ! यदि कोई मन से भी इस नर्मदा का स्मरण करलेता है तो वह साग्रशत चान्द्रायण महा व्रतो का पुण्य-फल प्राप्त करलिया करता है इसमें लेशमात्र भी संशय करने का अवसर ही नहीं होता है । जो पुरुष श्रद्धा नहीं करने वाले हैं तथा घोर नास्तिकता का समाश्रय किये हुए है वे सभी लोग परम घोर नरक मे ही पतित हुआ करते है—ऐसा स्वय हो भगवान् परमेश्वर ने कहा है । नर्मदा महापुण्यमयी नदी को तो स्वय ही देव महेश्वर नित्य ही सेवन किया करते है । इससे यह नर्मदा नदी परपुण्यमय नदी ही समझनी चाहिए जो कि ब्रह्म हत्या के महापाप का भी विनाश कर देने वाली है ।।४०-४२।।

४३—जप्येश्वरमाहात्म्यवर्णन

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिषमुत्तमम् ।
महादेवप्रियतरं महापातकनाशनम् ॥१
महादेवदिदृक्षूणामृषीणां परमेष्ठिना ।
ब्रह्मणा निर्मितस्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः ॥२
मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा ।
भृगवोऽङ्गिरसः पूर्वं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥३
समेत्य सर्ववरदं चतुर्मूर्त्तिं चतुर्मुखम् ।
पृच्छन्ति प्रणिपत्यैनं विश्वकर्माणमव्ययम् ॥४
भगवन्देवमीशानं तमेवैकं कपर्दिनम् ।
केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देव! नमस्तव ॥५
सत्रं सहस्रमासध्वं वाङ्मनोदोषवर्जिता ।
देशञ्चव प्रवक्ष्यामि यस्मिन्देशे चरिष्यथ ॥६
मुक्त्वा मनोमयं चक्रं सस्पृष्ट्वा तनुवाच ह ।
क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत मा चिरम् ॥७

महामहर्षि सूतदेवजी ने कहा—यह अत्युत्तम नैमिष तीर्थ तीनों लोकों मे विख्यात है और यह श्री महादेव जी परम प्यारा तीर्थ है तथा महान् से भी महान् पातकों का विनाश करने वाला है ॥१॥ हे द्विजोत्तमो! श्री महादेवजी के दर्शन करने की इच्छा वाले ऋषियों का पितामह परमेष्ठी ब्रह्माजी ने तपश्चर्या का तप न करने के लिये ही इस स्थान का निर्माण किया था ॥२॥ प्राचीन समय मे छै कुलों मे समुत्पन्न ऋषियों ने जिनमे मरीच—अत्रय—वसिष्ठ—क्रतु—भृगु—अङ्गिरस थे कमल से समुद्भूत ब्रह्माजी से सब ने एकत्रित होकर चार मूर्त्तियों वाले—चार मुखो से युक्त—सभी प्रकार के वरदान देने वाले ब्रह्माजी को प्रणिपात करके पूछा था जो कि इस विश्व की रचना करने वाले विश्वकर्मा तथा अव्यय स्वरूप थे ॥३-४॥ षट्कुलीय ऋषियों ने कहा—हे देव! हे भगवन्! उन ईशान एक देव भगवान् कपर्द्दी का दर्शन किस उपाय से

हम लोग कर सकते हैं वही उपाय हमको इस समय मे आप बतला दीजिएगा। हमारे ऊपर आपका बडा ही अनुग्रह होगा। हम सब आपको नमस्कार करते हैं ॥५॥ ब्रह्माजी ने कहा था—वाणी और मन के दोषो से रहित होकर एक सहस्र सत्र करो। यह जिस देश या स्थल मे आप लोगो को इसका समाचरण करना चाहिए वह स्थान एव देश हम आपको बतला देंगे ॥६॥ यह कथन करने के पश्चात् उन्होने मनोमय चक्र का सस्पर्श करके इसको मोचन किया था और उन समस्त ऋषियो से कहा था कि मैंने इस चक्र को प्रक्षिप्त कर दिया है अब आप सब लोग इसी चक्र के पीछे पीछे अनुगमन करो और इसम विलम्ब मत करो ॥७॥

यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशस्तपस॰ शुभ॰।
ततो मुमोच तच्चक्र तेचतत्समनुव्रजन् ॥८
तस्य वै व्रजत क्षिप्र यत्रनेमिरशीर्यत।
नैमिष तत स्मृतनाम्नापुण्य सर्वत्रपूजितम् ॥९
सिद्धचारणसम्पूर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम्।
स्थान भगवन॰ शम्भोरेतन्नैमिषमुत्तमम् ॥१०
अत्र देवा॰ सगन्धर्वा सयक्षोरगराक्षसाः।
तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरेप्रवरान्वरान् ॥११
इम देश समाश्रित्य षट्कुलीया समाहिताः।
सत्रेणाऽऽराध्य देवेश दृष्टवन्तो महेश्वरम् ॥१२
अत्रदान तपस्तप्त श्राद्धयागादिकञ्च यत्।
एकैक नाशयेत्पाप सप्तजन्मकृत तथा ॥१३
अत्र पूर्व स भगवानृषीणासत्रमासताम्।
स वै प्रोवाचब्रह्माण्डपुराण ब्रह्मभावितम् ॥१४

जिस स्थल या देश मे इस चक्र की नेमि शीर्यमाण हो जावे वही देश आप लोगो की तपश्चर्या करने के लिय परम शुभ है। इतना कथन करके ब्रह्माजी ने वह मनोमय चक्र छोड दिया था और उन समस्त ऋषि-वृन्दो ने उस चक्र का अनुव्रजन किया था ॥८॥ उस चक्र को गमन करते हुए शीघ्र ही इसकी नेमि जिस जगह पर शीर्ण हो गई थी उसी स्थल

का नाम नैमिष कहा गया है यह परम पुण्यमय स्थान है जोकि सर्वत्र ही पूजित है। यह स्थल सिद्ध और चारणों से परिपूर्ण है तथा यक्ष और गन्धर्वों के द्वारा भी सेवित है। भगवान् शम्भु का यह स्थान नैमिष उत्तम है ॥९-१०॥ यहाँ पर ही पहिले परम प्राचीन काल में गन्धर्वों—यक्षों—उरगों और राक्षसों के सहित देव गणों ने तपस्या का तपन करके परम प्रवर वरदान प्राप्त किये थे ॥११॥ इसी देश का समाश्रय ग्रहण करके छै कुलों में समुत्पन्न षट् कुलीय ऋषियों ने परम समाहित होकर सत्र के द्वारा भली-भाँति आराधना करके देवेश्वर महेश का दर्शन प्राप्त किया था ॥१२॥ यह एक ऐसा ही अतीव पुण्यमय परम पवित्र स्थल है जहाँ पर किया हुआ तप—दान—श्राद्ध और याग आदि सभी सत्कर्म एक-एक ही सात पुराने जन्मों में किये हुए पाप का भी विनाश कर दिया करता है ॥१३॥ यहाँ पर पहिले उन्हीं भगवान् ने ऋषियों का सत्र कराया था और उन्होंने ही ब्रह्म की भावना से भावित ब्रह्माण्ड पुराण का कथन भी किया था ॥१४॥

अत्र देवो महादेवो रुद्राण्या किल विश्वदृक् ।
रमतेऽद्यापि भगवान्प्रमथैः परिवारितः ॥१५
अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः ।
ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते ॥१६
अन्यच्च तीर्थप्रवरं जाप्येश्वरमितिश्रुतम् ।
जजाप रुद्रमनिशं यत्र नन्दी महागणः ॥१७
प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सह पिनाकधृक् ।
ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव च ॥१८
अभूदृषिः स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित् ।
आराधयन्महादेवं प्रसादार्थं वृषध्वजम् ॥१९
तस्यवर्षसहस्रान्तेतप्यमानस्य विश्वधृक् ।
शर्वः सोमार्धभृद्वृतो वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥२०
सवव्रे वरमीशानं वरेण्यं गिरिजापतिम् ।
अयोनिजं मृत्युहीनं याचे पुत्रं त्वया समम् ॥२१

यहाँ नन्दन क्षेत्र में देवेश्वर महादेव भगवती रुद्राणी के साथ विश्व के स्रष्टा प्रभु भगवान् आज भी प्रमथगणों से परिवारित होते हुए रमण किया करते हैं ॥१५॥ यहाँ पर द्विजातिगण नियम पूर्वक निवास करके अन्त में यहाँ पर अपने प्राणों का परित्याग किया करते हैं और फिर वे सीधे ही ब्रह्मलोक को गमन किया करते हैं यहाँ पर पहुँच कर प्राणी फिर दुबारा जन्म ही ग्रहण नहीं किया करता है ॥१६॥ यहाँ पर एक दूसरा भी परम श्रेष्ठ तीर्थ है जिसका नाम जाप्येश्वर सुना गया है। यह वह स्थल है जहाँ पर भगवान् महादेव के महान् गण नन्दी ने निरन्तर स्थित रहकर रुद्रदेव का जाप किया था ॥१७॥ इस जाप के करने पर पिनाकधारी प्रभु महादेव अपनी प्रिया देवी के साथ ही उस नन्दी पर परम प्रसन्न हुए थे और उसको अपनी ही समानता प्राप्त करने का तथा मृत्यु से रहित होने का सर्वश्रेष्ठ वरदान प्रदान किया था ॥१८॥ वह परम धर्मात्मा एवं धर्म के तत्त्व का श्रेष्ठ ज्ञाता शिलाद नाम वाला ऋषि हुआ था जिसने वृषभध्वज प्रभु महादेव के प्रसाद प्राप्त करने के लिए ही उनकी समाराधना की थी ॥१९॥ उसको तपश्चर्या करते हुए जब एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये थे तब इसके अन्त में भगवान् विश्वेश्वर ने सोम गणों से समावृत होकर देव देव ने प्रसन्न होकर उससे यह कहा था कि मैं वरदान देने वाला हूँ ॥२०॥ जब प्रसन्न होकर वरदान का प्रदान करने के लिए प्रभु प्रस्तुत हो गए थे तो उसने उन वरेण्य—गिरिजा के पति ईशान देव से यही एक वरदान माँगा था कि मैं आपसे यही वर प्राप्त करने की भावना करता हूँ कि मुझे ऐसा ही एक पुत्र प्राप्त होवे जो योनि से समुत्पन्न न हो तथा मृत्यु से रहित हो और आपके ही समान हो ॥२१॥

> तथास्त्वित्याह भगवान्देव्या सह महेश्वरः ।
> पश्यतस्तस्य विप्रर्षेरन्तर्दधान गोहरः ॥२२
> ततो युयोज तां भूमिं शिलादो धर्मवित्तमः ।
> चकर्ष लाङ्गलेनार्वीं भित्त्वादृश्यत शोभनः ॥२३

संवर्त्तकोऽनलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निव ।
रूपलावण्यसम्पन्नस्तेजसा भासयन्दिशः ॥२४
कुमारतुल्योऽप्रतिमोमेघगम्भीरया गिरा ।
शिलाद तात तातेतिप्राह नन्दी पुनःपुनः ॥२५
तं दृष्ट्वा नन्दनं जातं शिलादः परिषस्वजे ।
मुनीनां दर्शयामास तत्राश्रमनिवासिनाम् ॥२६
जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तस्य चकार ह ।
उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् स्वयम् ॥२७
अधीतवेदो भगवान्नन्दी मतिमनुत्तमाम् ।
चक्रे महेश्वरं दृष्ट्वा जेष्ये मृत्युमिव प्रभुम् ॥२८

इस याचित वरदान का श्रवण कर जगदम्बा भगवती के सहित भगवान् महेश्वर ने 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होवेगा यह अपने मुख से कह दिया था और फिर उस विप्रर्षि के देखते-देखते ही वहीं पर भगवान् अन्तर्धान को प्राप्त हो गये थ ॥२२॥ इसके अनन्तर धर्म के तत्व के महान् ज्ञाता शिलाद ने उसी भूमि की योजना बनाई थी और हल के द्वारा उस भूमि का कर्षण किया था। उस भूमि का भेदन करके परम शोभा से सुसम्पन्न सवर्त्तक—अग्नि के तुल्य महान् तेजस्वी हँसते हुए एक कुमार को देखा था जो रूप लावण्य से सम्पन्न था और अपने अनुपम महान् तेज के द्वारा समस्त दिशाओं को भासित कर रहा था ॥२३-२४॥ कुमार के तुल्य अप्रतिम उस बालक ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से शिलाद को उस नन्दी ने बारम्बार हे तात ! हे तात ! यह कह कर पुकारा था ॥२५॥ शिलाद ने भी उस समुद्भूत नन्दन को देखकर बड़ी ही प्रीति के साथ उसको उठाकर उसका परिष्वजन किया था। फिर उस शिलाद ने उस कुमार को ले जाकर उस आश्रम में निवास करने वाले समस्त मुनियों को भी उसे दिखलाया था ॥२६॥ इसके अनन्तर उस कुमार की जात कर्म आदि सभी शास्त्रोक्त संस्कार वाली सत्क्रियाएं सम्पन्न की थीं। शास्त्र की पद्धति के अनुसार उस बालक का उपनयन संस्कार कराकर स्वयं ही उसको वेदों का अध्यापन भी किया था ॥२७॥

यहाँ नैमिष क्षेत्र मे देवेश्वर महादेव भगवती रुद्राणी के साथ विश्व के द्रष्टा प्रभु भगवान् आज भी प्रमथ गणो से परिवारित होते हुए रमण किया करते हैं ॥१५॥ यहाँ पर द्विजातिगण नियम पूर्वक निवास करके अन्त मे यहो पर अपने प्राणों का परित्याग किया करते हैं और फिर वे सीधे ही ब्रह्मलोक को गमन किया करते हैं जहाँ पर पहुच कर प्राणी फिर दुबारा जन्म ही ग्रहण नही किया करता है ॥१६॥ यहाँ पर एक दूसरा भी परम श्रेष्ठ तीर्थ है जिसका नाम जाप्येश्वर सुना गया है। *यह वह स्थल है जहाँ पर भगवान् महादेव के महान् गण नन्दी ने निरन्तर* स्थित रहकर रुद्रदेव का जाप किया था ॥१७॥ इस जाप के करने पर पिनाकधारी प्रभु महादेव अपनी प्रिया देवी के साथ ही उस नन्दी पर परम प्रसन्न हुए थे और उसको अपनी ही समानता प्राप्त करने का तथा मृत्यु से रहित होने का सर्वश्रेष्ठ वरदान प्रदान किया था ॥१८॥ वह परम धर्मात्मा एवं धर्म के तत्त्व का श्रेष्ठ ज्ञाता शिलाद नाम वाला ऋषि *हुआ था जिसने वृषभध्वज प्रभु महादेव के प्रसाद प्राप्त करने के लिये ही* उनकी समाराधना की थी ॥१९॥ उसको तपश्चर्या करते हुए जब एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये थे तब इसके अन्त मे भगवान् विश्वदृक् ने सोम गणो से समावृत होकर शर्व देव ने प्रसन्न होकर उससे यह कहा था कि मैं वरदान देने वाला हूँ ॥२०॥ जब प्रसन्न होकर वरदान का प्रदान करने के लिये प्रभु प्रस्तुत हो गये थे तो उसने उन वरेण्य—गिरिजा के पति ईशान देव से यही एक वरदान माँगा था कि मैं आपसे यही वर प्राप्त करने की याचना करता हूँ कि मुझे ऐसा हो एक पुत्र प्राप्त होवे जो योनि से समुत्पन्न न हो तथा मृत्यु से रहित हो और आपके ही समान हो ॥२१॥

तथास्त्वित्याह भगवान्देव्या सहमहेश्वर ।
पश्यतस्तस्यविप्रर्षेरन्तर्दधानि गतोहरः ॥२२
ततो युयोज तां भूमिंशिलादोधर्मवित्तमः ।
चक्षलाङ्गलेनोर्वी भित्वादृश्यतशोभनः ॥२३

संवर्त्तकोऽनलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निव ।
रूपलावण्यसम्पन्नस्तेजसा भासयन्दिशः ॥२४
कुमारतुल्योऽप्रतिमोमेघगम्भीरया गिरा ।
शिलाद तात तातेतिप्राह नन्दी पुनःपुनः ॥२५
तं दृष्ट्वा नन्दनं जातं शिलादः परिषस्वजे ।
मुनीना दर्शयामास तनाश्रमनिवासिनाम् ॥२६
जातकर्म्मादिकाः सर्वा क्रियास्तस्य चकार ह ।
उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् स्वयम् ॥२७
अधीतवेदो भगवान्नन्दी मतिमनुत्तमाम् ।
चक्रे महेश्वर दृष्ट्वा जेष्ये मृत्युमिव प्रभुम ॥२८

इस याचित वरदान का श्रवण कर जगदम्बा भगवती के सहित भगवान् महेश्वर ने 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होवेगा यह अपने मुख से कह दिया था और फिर उस विप्रर्षि के देखते-देखते ही वहीं पर भगवान् अन्तर्धान को प्राप्त हो गये थे ॥२२॥ इसके अनन्तर धर्म के तत्त्व के महान् ज्ञाता शिलाद ने उसी भूमि की योजना बनाई थी और हल के द्वारा उस भूमि का कर्षण किया था। उस भूमि का भेदन करके परम शोभा से सुसम्पन्न संवर्त्तक—अग्नि के तुल्य महान् तेजस्वी हँसते हुए एक कुमार को देखा था जो रूप लावण्य से सम्पन्न था और अपने अनुपम महान् तेज के द्वारा समस्त दिशाओं को भासित कर रहा था ॥२३-२४॥ कुमार के तुल्य अप्रतिम उस बालक ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से शिलाद को उस नन्दी ने बारम्बार हे तात ! हे तात ! यह कह कर पुकारा था ॥२५॥ शिलाद ने भी उस समुद्‌भूत नन्दन को देखकर बड़ी ही प्रीति के साथ उसको उठाकर उसका परिष्वजन किया था। फिर उस शिलाद ने उस कुमार को ले जाकर उस आश्रम मे निवास करने वाले समस्त मुनियों को भी उसे दिखलाया था ॥२६॥ इसके अनन्तर उस कुमार की जात कर्म आदि सभी शास्त्रोक्त संस्कार वाली सत्क्रियाएं सम्पन्न की थी। शास्त्र की पद्धति के अनुसार उस बालक का उपनयन संस्कार कराकर स्वयं ही उसको वेदों का अध्यापन भी किया था ॥२७॥

जब भगवान् नन्दी ने समस्त वेद—वेदाङ्गों का पूर्णतया अध्याय समाप्त कर लिया था उसने बहुत ही उत्तम प्रकार की अपनी मति स्थिर की थी कि मैं भगवान् महेश्वर का दर्शन प्राप्त करके मृत्यु की भाँति प्रभु के ऊपर विजय प्राप्त करूँगा ॥२८॥

स गत्वा सागरं पुण्यमेकाग्र- श्रद्धयान्वितः ।
जजाप रुद्रमनिशं महेशासक्तमानसः ॥२९
तस्य कोटयाञ्च पूर्णाया शङ्करोभक्तवत्सलः ।
आगतः सर्वगणो वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥३०
स वव्रे पुनरेवेश जपेय कोटिमीश्वरम् ।
भवदाह महादेव देहीति परमेश्वरम् ॥३१
एवमस्त्विति सम्प्रोच्य देवोऽप्यन्तरधीयत ।
जजाप कोटिं भगवान् भूयस्तद्गतमानसः ॥३२
द्वितीयायाञ्चकोटयावैपूर्णायाञ्चवृषध्वज- ।
आगत्यवरदोऽस्मीतिप्राहभूतगणैर्वृतः ॥३३
तृतीयाञ्जप्तुमिच्छामि कोटिं भूयोऽपि शंकर ।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देव्या चान्तरधीयत ॥३४
कोटित्रयेऽथसम्पूर्णे देवः प्रीतमानाभृशम् ।
आगत्यवरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः ॥३५

वह फिर एक परम पुण्यमय सागर पर जाकर एकाग्र मन वाला होकर श्रद्धा से समन्वित बन कर महेश में ही अपने मन को पूर्ण रूप से समासक्त करते हुए निरन्तर रुद्र का ही जाप करने लगा था ॥२९॥ जब उस मन्त्र के जाप की संख्या एक करोड पूर्ण होगई थी तब भक्तों पर प्यार एवं अनुकम्पा करने वाले भगवान् शङ्कर समस्त अपने गणों के सहित वहाँ पर समागत हुए थे और आकर उससे कहा था कि मैं वरदान देने के लिये समुत्सुक हूँ ॥३०॥ उसने पुनः ईश्वर से यही कहा था कि मैं इसी मन्त्र का दुबारा एक करोड़ जाप करूँगा। उसने परमेश्वर महादेव से यही कहा था कि भवदाह दीजिए ॥३१॥ "एवमस्तु"—अर्थात्

ऐसा ही होवे—यह कह कर देव भी अन्तर्हित होगये थे। तद्गत मानस होकर देवेश्वर में मन को समासक्त करके पुन भगवान् उसने एक करोड जाप किया था ॥३२॥ जब दूसरा करोड मन्त्र का जाप पूर्ण होगया तो वृषध्वज भगवान् भूत गणों से परिवृत होकर वहाँ समागत हुए थे और उन्होंने कहा था—कि मैं वरदान प्रदान करने वाला उपस्थित होगया हूँ। तात्पर्य यही था कि मुझसे अब तुम चाहे जो वरदान माँगलो ॥३३॥ उसने उसके उत्तर में यही अभ्यर्चना की थी कि हे शङ्कर ! मैं तो फिर भी तीसरा करोड और जाप करना चाहता हूं। देवी के सहित त्रिपुरात्मा प्रभु ने कहा "तथास्तु"—अर्थात् ऐसा ही होवे और यह कहकर वह अन्तर्हित होगये थे ॥३४॥ जिस समय ये तीनों करोड मन्त्र का जाप समाप्त होगया था तब देवेश्वर अत्यन्त प्रीतियुक्त मन वाले होगये थे और फिर वहाँ पर समायात होकर भूतगणों से परिवृत शिव ने कहा था कि मैं वरदान देने वाला हूं, याचना करलो ॥३५॥

जपेय कोटिमन्या वै भूयोऽपि तवतेजसा।
इत्युक्ते भगवानाह न जप्तव्य त्वयापुन ॥३६
अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वे गत सदा।
महागणपतिर्देव्या पुत्रो भवमहेश्वर ॥३७
योगेश्वरो महायोगी गणानामीश्वरेश्वर ।
सर्वलोकाधिप श्रीमान् सर्वज्ञमयोहित ॥३८
ज्ञान तन्मामक दिव्य हस्तामलकसञ्ज्ञितम् ।
आभूतसम्प्लवस्थायी ततो यास्यसि तत्पदम् ॥३९
एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहूय शङ्कर ।
अभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत् ॥४०
उद्वाहयामास च त स्वयमेव पिनाकधृक् ।
मरुताञ्च शुभा कन्या स्वयमेति च विश्रुताम् ॥४१
एतज्जप्येश्वर स्थान देवदेवस्य शूलिनः।
यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते ॥४२

उसने कहा था कि मैं अभी एक करोड और जाप करूँगा और आपके तेज से फिर भी समायुक्त होना चाहता हूँ। इस प्रकार से कहने पर भगवान् ने उससे कहा—अब आपको पुन जाप नही करना चाहिए ॥३६॥ जरा से रहित होकर अमर बन कर सदा मेरे पार्श्व मे ही गत हो जाओ। महेश्वर देवी का पुत्र महा गणपति हो जाओ ॥३७॥ योग का ईश्वर—महान् योगी—गणो के ईश्वर के भी ईश्वर—सर्व लोको के अधिप—समस्त यज्ञो से परिपूर्ण-हितकारी तथा श्रीमान् होजाओ ॥३८॥ तन्नामक दिव्य ज्ञान हस्तामलक सजित होगा। जब तक समस्त भूतो का प्लव (प्रलय) होगा तब तक स्थायी रहकर फिर उसी पद पर प्राप्त हो जायगा ॥३९॥ इतना कहकर महादेव शङ्कर ने अपने गणो को बुला कर समुचित अभिषेक के द्वारा नन्दीश्वर का योजित किया था ॥४०॥ पिनाकधारी ने स्वयमेव उसका उद्वाहित किया था और मरुतो की परम शुभा कन्या थी जिसके साथ विवाह किया गया था और स्वय विष्णुता को प्राप्त होजाता है ॥४१॥ यही देवो के भी देव भगवान् शूली का जप्येश्वर स्थान पर जो भी मनुष्य मृत होजाता है वह फिर सीधा ही रुद्र लोक म गमन करके वहीं पर प्रतिष्ठित होजाता है ॥४२॥

४४—विविधतीर्थमाहात्म्यवर्णन

अन्यच्च तीर्थप्रवर जप्येश्वरसमीपत.।
नाम्ना पञ्चनद पुण्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥१
त्रिरात्रमुषितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते ॥२
अन्यच्च तीर्थप्रवर शक्रस्यामिततेजस।
महाभैरवमित्युक्त महापातकनाशनम् ॥३
तीर्थानाञ्च परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी।
सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेवगिरीन्द्रजा ॥४
तीर्थं पञ्चतपो नाम शम्भोरमिततेजस।
यत्र देवाधिदेवेन शक्रार्थं पूजितो भव ॥५

पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्दसुखप्रदम् ।
मृतस्तत्राथ नियमाद्ब्रह्मलोके महीयते ॥६
कायावरोहणं नाम महादेवालयशुभम् ।
यत्र माहेश्वराधर्म्मामुनिभिः सम्प्रवर्तिताः ॥७

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा था—इस जप्येश्वर के समीप में ही एक अन्य भी परम श्रेष्ठ तीर्थ है इस का नाम पञ्जनद है और यह पुण्य मय है तथा समस्त पापों का विनाश करने वाला है ॥१॥ तीन रात्रि तक उपवास करके वहाँ पर महेश्वर भगवान् का अभ्यर्चन करना चाहिए। वह फिर सभी पापों से विशुद्ध होकर रुद्र लोक में महिमान्वित पद पर प्रतिष्ठित होजाता है ॥२॥ एक अपरिमित तेज वाले इन्द्रदेव का और परम प्रवर तीर्थ है जो महाभैरव इस नाम से कहा गया है तथा महान से भी महान पातकों का विनाश करने वाला है ॥३॥ सभी तीर्थों में परम श्रेष्ठ तीर्थ जो सत्युत्तम वितस्ता नाम वाली नदी है। यह सरिता समस्त प्रकार के पापों का हरण करने वाली—परम पुण्यमयी और स्वयं ही गिरीन्द्र से जन्म ग्रहण करने वाली है ॥४॥ एक अमित तेज से सम्पन्न भगवान् शम्भु का पञ्चतप नामक तीर्थ है जहाँ पर देवों के अधिदेव ने इन्द्र देव के हित का सम्पादन करने के लिये भगवान् भव का अभ्यर्चन किया था ॥५॥ इस तीर्थ में किया हुआ पिण्डदान आदि करने के उपरान्त परम सुख प्रदान करने वाला होता है। उस तीर्थ में ही निवास करके मृत्यु को प्राप्त होजाने वाला पुरुष तो यदि नियम पूर्वक रहा हो तो ब्रह्मलोक में महत्व पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥६॥ वहां पर कायावरोहण नाम वाला परम शुभ महा देवालय है जहाँ पर मुनिगण ने माहेश्वर धर्मों का सम्प्रवर्त्तन किया था ॥७॥

श्राद्धं दानं तपो होम उपवासस्तथाक्षयः ।
परित्यजति यः प्राणान्रुद्रलोकं स गच्छति ॥८
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र गत्वा त्यजेत्प्राणाँल्लोकान्प्राप्नोति शाश्वतान ॥९

जामदग्न्यस्य चशुभ रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
तत्रस्नात्वा तीर्थवरेगोसहस्रफल लभेत् ॥१०
महाकालमितिख्यातं तीर्थं लोकेषु विश्रुतम् ।
गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥११
गुह्याद्गुह्यतमतीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम् ।
तत्र सन्निहित श्रीमात् भगवान्नकुलीश्वरः ॥१२
हिमवच्छिखरेरम्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने ।
देव्या सहमहादेवोनित्यशिष्यैश्च सम्भृत ॥१३

इस पुण्यमय महातीर्थ मे सम्पादित दान श्राद्ध—तप—होम तथा उपवास सभी सत्कर्म अक्षय हो जाया करता है। यहाँ पर जो भी कोई निवास करके अपने प्राणो का परित्याग किया करता है वह शीघ्र ही रुद्र लोक मे गमन किया करता है ॥८॥ एक और भी श्रेष्ठतम तीर्थ है जिसको सर्वोत्तम कहा जाता है और उसका नाम कन्या तीर्थ है। उस तीर्थ मे जाकर यदि अपने प्राणो का परित्याग करता है तो उसका फल यह होता कि वह परम शाश्वत लोको की प्राप्ति का लाभ लिया करता है ॥९॥ अक्लिष्ट कर्म वाले जमदग्नि महर्षि के पुत्र राम का अर्थात् परशुराम का एक शुभ तीर्थ है जिसमे अवगाहन करके एक सहस्र गौओ के दान करने का पुण्य—फल प्राप्त हुआ करता है। यह सब मे श्रेष्ठ तीर्थ है ॥१०॥ एक महाकाल नाम वाला समस्त लोको म परम प्रसिद्ध तीर्थ है। इस तीर्थ मे गमन करके निवास करता हुआ अपने प्राणो का वहीं पर त्याग करने वाला मनुष्य गाणपत्य पद को प्राप्त किया करता है ॥११॥ एक परम गुप्त से भी अत्यधिक गोपनीय सर्वोत्तम नकुलीश्वर नाम से संयुत श्रेष्ठ तीर्थ है। उस तीर्थ मे श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वर स्वयं सन्निहित रहा करते हैं ॥१२॥ हिमालय गिरिवर के परम सुरम्य शिखर पर अति शोभा से सुसम्पन्न गङ्गाद्वार मे नित्य ही अपने सभी शिष्यो से सम्भृत महादेव जगज्जननी देवी के साथ निवास किया करते है ॥१३॥

तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृषध्वजम् ।
सर्वपापैर्विशुद्ध्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात् ॥१४
अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम् ।
भीमेश्वरमितिख्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम् ॥१५
तथान्यच्चण्डवेगायाः सम्भेदः पापनाशनः ।
तत्रस्नात्वाचपीत्वाचमुच्यतेब्रह्महत्यया ॥१६
सर्वेषामपिचतेषांतीर्थानांपरमापुरी ।
नाम्नावाराणसीदिव्याकोटिकोटचयुताधिका ॥१७
तस्याःपुरस्तान्माहात्म्यंभाषितंवोमयात्विह ।
नान्यत्रलभतेमुक्तियोगेनाप्येकजन्मना ॥१८
एतेप्राधान्यतःप्रोक्ता देशाःपापहरा नृणाम् ।
गत्वा सङ्क्षालयेत्पापं जन्मान्तरशतैरपि ॥१९
यः स्वधर्मान् परित्यज्यतीर्थसेवां करोति हि ।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च ॥२०

वहाँ पर स्नान करके वृषभध्वज महादेव का अभ्यर्चन करने से मनुष्य सभी पापों से विशुद्ध हो जाया करता है। यदि वहीं पर मृत होजावे तो उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया करता है ॥१४॥ एक और भी देवों के देव का परम पुण्यतम एवं अतीव शुभ स्थान है जिसका शुभ नाम भीमेश्वर प्रसिद्ध है। वहाँ पर मनुष्य पहुँच कर पातकों का त्याग कर विशुद्धात्मा हो जाया करता है ॥१५॥ इसके अतिरिक्त एक अन्य भी तीर्थ है जो चण्डवेगा का सम्भेद है और यह भी पापों का नाश करने वाला है। उस तीर्थ में स्नान करके तथा उसके जल का पान करके मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप से भी मुक्ति पाजाया करता है ॥१६॥ ये सभी तीर्थ परम श्रेष्ठ हैं—इसमें कोई भी संशय नहीं है किन्तु इन सभी तीर्थों में परम श्रेष्ठ एक पुरी है जिसका नाम वाराणसी है और यह अति दिव्य है तथा करोड़ों से भी करोड़ दश सहस्र से भी अधिक यह पुरी है ॥१७॥ उस पुरी का माहात्म्य तो पहिले ही हमने आप लोगों को बतला दिया है। अन्य स्थलों तथा परम शुभ तीर्थों में एक ही जन्म में योग के द्वारा

भी मुक्ति का लाभ मनुष्य नही किया करता है।।१८।। ये सब प्रधानतया देश मनुष्यो के पापो के हरण करने वाले ही बताये गय हैं। इनमे गमन करके मनुष्य अन्य सौ जन्मों के भी पापों का प्रक्षालन किया करता है और विशुद्धि प्राप्त कर लिया करता है।।१६।। जो कोई अपने धर्मों का परित्याग करके केवल तीर्थ की सेवा मे रत रहा करता है इस लोक और परलोक मे तीर्थ कभी भी फल नही दिया करता है।।२०।।

प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथायायावरोगृही।
प्रकुर्यात्तीर्थसंसेवांयश्चान्यस्तादृशोजनः।।२१
साहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि यत्नतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात्।।२२
ऋणानित्रीण्यपाकुर्यात्कुर्वन्वातीर्थसेवनम्।
विधायवृत्तिपुत्राणाभार्यांतेषुविधायच।।२३
प्रायश्चित्तप्रसङ्गेनतीर्थमाहात्म्यमीरितम्।
य पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते।।२४

प्रायश्चित्त करने वाला—विधुर—यायावर तथा गृहस्थ को तीर्थ की भली भाँति सेवा करनी चाहिए तथा जो कोई अन्य भी उसी प्रकार का मनुष्य हो वह तीर्थ सेवन करे।।२१।। सहाग्नि अथवा सपत्नीक को यत्न पूर्वक तीर्थों म गमन करना चाहिए। वहाँ पर वह सभी प्रकार के पापो से निर्मुक्त होकर यथोक्त गति को प्राप्त किया करता है।।२२।। मनुष्य का परम कर्तव्य है कि तीर्थों का सेवन करके अपने ऊपर पड़े हुए प्रमुख तीनो ऋणो को दूर करे। अपने पुत्रो की जीवन निर्वाह की वृत्ति का भली भाँति विधान करके उन्ही पुत्रों के ऊपर ही अपनी भार्या के पोषण भार को छोडकर तीर्थों का संसेवन करना चाहिए।।२३।। प्रायश्चित्तो के ही प्रसङ्ग से यहाँ पर तीर्थों का माहात्म्य वर्णित कर दिया गया है। इस तीर्थों के माहात्म्य का भी जो कोई पाठ करता है या श्रवण किया करता है वह सभी प्रकार के पापो से विमुक्त हो जाया करता है।।२४।।

४५—चतुर्विधप्रलयवर्णन

एतदाकर्ण्यविज्ञान नारायणमुखेरितम् ।
कूर्मरूपधरदेवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम् ॥१
कथितोभवताधर्मोमोक्षज्ञानंसविस्तरम् ।
लोकानांसर्गविस्तारोवंशोमन्वन्तराणिच ॥२
इदानींदेवदेवेश! प्रलयं वक्तुमर्हसि ।
भुताना भूतभव्येश! यथा पूर्वं त्वयोदितम् ॥३
श्रुत्वातेषां तदावाक्यंभगवान् कूर्मरूपधृक् ।

... ... ।

चतुर्द्धाऽयं पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसञ्चरः ॥५
योऽयसदृश्यतेनित्यलोकेभूतक्षयस्त्विह ।
नित्य.सङ्कीर्त्यतेनाम्नामुनिभिप्रतिसञ्चर॰ ॥६
ब्राह्मनैमित्तिको नाम कल्पान्ते यो भविष्यति ।
त्रैलोक्यस्यास्य कथितः प्रतिसर्गो मनीषिभि ॥७

श्री सूतजी ने कहा—भगवान् श्रीनारायण के मुखारविन्द से वर्णित इस विज्ञान का श्रवण करके मुनिगण ने कूर्मरूप के धारण करने वाले देव प्रभु से पूछा था ॥१॥ मुनियों ने कहा था—हे भगवन् ! आपने परम कृपा करके विस्तार के सहित मोक्ष प्राप्त करने का ज्ञान—धर्म—लोकों के सर्ग का विस्तार—वंश और मन्वन्तर इन सबका वर्णन कर दिया है। इस समय मे तो हे देवों के भी देवेश्वर ! आप प्रलय काल के विषय मे बताने के योग्य होते हैं। हे भूत और भव्य के ईश ! समस्त भूतों का लय कैसे होता है यही बतलाइये। जैसा कि आपने पहिले ही कहा था ॥२-३॥ श्री सूतजी ने कहा—भगवान् कूर्म के स्वरूप को धारण करने वाले प्रभु ने उस समय मे उन मुनियों के वचन का श्रवण कर उन महायोगी भगवान् ने भूतों का प्रतिसञ्चर का वर्णन करना आरम्भ कर दिया था ॥४॥ भगवान् कूर्म देव ने कहा—भूतों का प्रतिसञ्चर (प्रलय)

इस पुराण मे नित्य—नैमित्तिक—प्राकृत और आत्यन्तिक यह चार प्रकार का ही कहा जाता है ॥५॥ जो यह यहाँ परलोक मे नित्य ही भूतो का क्षय होता हुआ दिखलाई दिया करता है यही मुनियो के द्वारा नाम से प्रतिसञ्चर नित्य ही कहा जाया करता है क्यो यह नित्य ही बटा होता ही रहा करता है ॥६॥ ब्रह्मा ही जिसका निमित्त होता है ऐसा जो कल्प के अन्त मे प्रतिसञ्चर हुआ करता है उसको मनीषियो ने इस त्रैलोक्य का प्रतिसग कहा है ॥७॥

महदाद्यविशेषान्त यदासयाति सक्षयम् ।
प्राकृत प्रतिसर्गोऽयप्रोच्यतेकालचिन्तकैः ॥८
ज्ञानादात्यन्तिक प्रोक्तो योगिन. परमात्मनि ।
प्रलय प्रतिसर्गोऽय कालचिन्तापरैर्द्विजै. ॥९
आत्यन्तिकस्तुकथित प्रलयोज्ञानसाधनः ।
नैमित्तिकमिदानीव कथयिष्येसमासत ॥१०
चतुर्युगसहस्रान्तेसम्प्राप्तेप्रतिसञ्चरे ।
स्वात्मसस्था.प्रजा कर्तुम्प्रतिपेदेप्रजापतिः ॥११
ततोऽभवत्त्वनावृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी ।
भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयङ्करी ॥१२
ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीपते ! ।
तानि चाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥१३
सप्तरश्मिरथो भूत्वासमुत्तिष्ठन्दिवाकर ।
असह्यरश्मिर्भवतिपिबन्नम्भोगभस्तिभिः ॥१४

जो विद्वान् इस काल के विषय मे भली भाँति चिन्तन किया करते है उन्होंने कहा है कि जो महत्तत्व से आदि का आरम्भ करके विशेष के अन्त पर्यन्त सभी सक्षय को प्राप्त हो जाया करते है इस प्रतिसर्ग को प्राकृत इस नाम से उनके द्वारा बतलाया गया है ॥८॥ इस काल के ही चिन्तन करने मे परायण रहने वाले द्विजगणो के द्वारा यह प्रतिसर्ग आत्यन्तिक .

प्रलय के नाम कहा गया है जो योगीजन परमात्मा में ज्ञान से किया करते हैं ।।६।। आत्यन्तिक जो प्रलय होता है वह ज्ञान के साधन वाला कहा गया है । अब हम इस समय में अति संक्षेप से आप लोगों को नैमित्तिक प्रलय के विषय में वर्णन करेंगे ।।१०।। सतयुग—त्रेता—द्वापर और कलियुग इस चतुर्युग की एक सहस्र संख्या जिस समय में पूरी हो जाती है उसके अन्त में इस प्रतिसञ्चर के सम्प्राप्त होने पर प्रजापति इस सम्पूर्ण प्रजा को अपनी ही आत्मा में संस्थित करने के लिये प्रतिपन्न हुआ करते हैं ।।११।। इस प्रलय के होने के आरम्भ में एक सौ वर्ष तक निरन्तर ही रहने वाली लोक में अनावृष्टि (वर्षा का एकदम अभाव) ही हुआ करती है । यह समस्त प्राणियों के क्षय करने वाली और सभी भूतों के संक्षय करने वाली होती है जल के बिल्कुल अभाव में प्राणी पिपासा व बुभुक्षा से मरण को प्राप्त होते हैं ।।१२।। हे पृथिवीपते ! इसके उपरान्त जो सत्त्व अत्यल्प सार वाले होते हैं वे सबसे आगे प्रलीन हुआ करते हैं और भूमिसात् हो जाया करते हैं ।।१३।। फिर सूर्यदेव सप्तरश्मि वाले होकर समुदित हुआ करते हैं । इनकी ये तीव्रतम किरणें असह्य हो जाया करती हैं और इन तीखी किरणों से ही वह लोक में रहे जल को पान सा कर लिया करता है ।।१४।।

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे ।
तेनाऽऽहारेण ता दीप्त्वा सप्तसूर्या भवन्त्युत ।।१५

ततस्तेरश्मयः सप्त शोषयित्वा चतुर्दिशम् ।
चतुर्लोकमिमंसर्वंदहन्ति शिखिनोयथा ।।१६

व्याप्नुवन्तश्च ते दीप्ता ऊर्द्ध्वञ्चाधः स्वरश्मिभिः ।
दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रदीपिताः ।।१७

ते सूर्यावारिणादीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः ।
खं समावृत्यतिष्ठन्तिप्रदहन्तो वसुन्धराम् ।।१८

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा ।
साद्रिनद्यर्णवद्वीपा निःस्नेहा समप्रपद्यते ।।१९

दीप्ताभिः सन्तताभिश्च रश्मिभिर्वै समन्ततः ।
अधश्चोर्ध्वश्च सर्वाभिस्तिर्यक् चैव समावृतम् ॥२०
सूर्याग्निनाप्रमृष्टाना ससृष्टाना परस्परम् ।
एकत्वमुपयातानामेकज्वाल भवत्युत ॥२१

उस सूर्य्य की जो कि सात रश्मियों से सुसम्पन्न अपना स्वरूप उस प्रलय काल में धारण किया करता है व सात रश्मियाँ इस महार्णव के जल का पान किया करती हैं। उस आहार से वे अत्यन्त ही दीप्त हो जाया करती हैं और वे सात सूर्य ही हो जाते हैं ॥१५॥ इसके अनन्तर वे सात रश्मियाँ (किरणें) चारो दिशाओं में जल का शोषण करके इस सब चतुर्लोक को अग्नि के ही समान दाह से युक्त कर दिया करती हैं ॥१६॥ ऊपर और नीचे वे अत्यन्त दीप्त होकर व्यापक होती हुई स्थित हो जाया करती हैं। उन अपनी रश्मियों से युगान्ताग्नि से प्रदीपित सात भास्कर ही दीप्यमान होकर दिखलायी दिया करते हैं ॥१७॥ जल से अत्यन्त ही दीप्त बहुत-सी सहस्रों संख्या वाली वे रश्मियाँ समावृत होकर इस वसुन्धरा का प्रदग्ध करती हुई स्थित रहा करती हैं ॥१८॥ इसके उपरान्त उन सूर्यदेव की प्रखर तम किरणों के प्रताप से यह सम्पूर्ण वसुन्धरा दह्यमान हो जाया करती है। पर्वत—नदी—सागर और द्वीप सभी स्नेह से शून्य अर्थात् जल के अभाव में एकदम शुष्क हो जाया करते हैं ॥१९॥ अग्नि के समान अत्यन्त दीप्त और निरन्तर सात चारो ओर उन रश्मियों से नीचे और ऊपर तथा तिरछी ओर सब ओर होकर सब समावृत हो गया था ॥२०॥ सूर्य की अग्नि से प्रमृष्ट तथा परस्पर में संसृष्ट होकर एकत्व भाव को प्राप्त होने वाले सबकी एक ही ज्वाला हो गई थी ॥२१॥

सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली ।
चतुर्लोकमिमंसर्वनिर्दहत्याशुतेजसा ॥२२
ततःप्रलीनेसर्वास्मिञ्जङ्गमे स्थावरे तथा ।
निर्वृक्षानिस्तृणाभूमिःकूमपृष्ठा प्रकाशते ॥२३

अम्बरीषमिवाभाति सर्वमापूरितं जगत् ।
सर्वमेवतदर्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते पुनः ॥२४
पाताले यानि सत्त्वानिमहोदधिगतानिच ।
ततस्तानिप्रलीयन्तेभूमित्वमुपयान्तिच ॥२५
द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधीन् ।
तान् सर्वान् भस्मसाच्चक्रे सप्तात्मा पावकः प्रभुः ॥२६
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च आपःशुष्काश्च सर्वशः ।
पिबन्नपः समृद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥२७
ततः संवर्तकः शैलानतिक्रम्यमहास्तथा ।
लोकान्दहतिदीप्तात्मामारुतेयोविजृम्भितः ॥२८

इस सम्पूर्ण लोक का प्रणाश करने वाला वह अग्नि मण्डली होकर चारों लोकों में बहुत ही शीघ्र तेज से निर्दग्ध कर दिया करता है ॥२२॥ इसके अनन्तर यहाँ पर जङ्गम और स्थावर सभी प्रकार की सृष्टि के प्रलीन हो जाने पर अर्थात् प्रखर तम किरणों के तेज से भस्मसात होने पर यह भूमि उस समय में बिना वृक्षों वाली तृणों से रहित कूर्म के पृष्ठ की ही भाँति प्रकाशित हो रही थी ॥२३॥ यह सम्पूर्ण आपूरित जगत् अम्बरीष की भाँति ही शोभित हो रहा था। सूर्य की अर्चियों से सभी परिपूर्ण होकर एकदम जाज्वल्यमान हो गया था ॥२४॥ जो जीव पाताल में थे तथा जो जीव थे महासागर में भी जो जीव गत हो गये थे या वहाँ पर रहते थे वे सभी प्रलीन हो गये थे और भूमि में ही सब मिल गये थे इन सात रश्मियों के द्वारा सात स्वरूपों वाले प्रभु पावक ने सब द्वीपों को—समस्त पर्वतों को—सम्पूर्ण वर्षों को और महोदधियों को इन सभी को भस्म के समान जला कर बना दिया था ॥२५-२६॥ सभी समुद्रों से और समस्त नदियों से सभी ओर से जल तो एकदम शुष्क हो गया था। मानों वह अग्नि उस सम्पूर्ण जल को पीकर ही अत्यन्त समृद्ध हो गया था और जलता हुआ पृथिवी में ही समाश्रित हो गया था ॥२७॥ इसके अनन्तर उस महान् संवर्तक समस्त शैलों का अतिक्रमण करके वह विजृम्भित

मास्तेय प्रत्यन्त दीप्त ग्रात्मा वाला होकर लोकों का दाह कर देता है ॥२८॥

स दग्ध्वा पृथिवी देवो रसातलमशोभयत् ।
अधस्तात्पृथिवी दग्ध्वा दिवमूद्ध्वं दहिष्यति ॥२९
योजनाना शतानीहसहस्राण्ययुतानिच ।
उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्यवह्ने सवर्त्तकेस्यतु ॥३०
गन्धर्वांश्च पिशाचाश्च सयक्षोरगराक्षसान् ।
तदा दहत्यसौदीप्त कालरुद्रप्रणोदित ॥३१
भूर्लोकञ्च भुवर्लोकं महर्ल्लोक तथैव च ।
दहेदशेषकालाग्निः काआविष्टतनु. स्वयम् ॥३२
व्याप्तेष्वेतेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्ध्वमथाग्निना ।
तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्न जगदिद शनैः ॥३३
अतो गूढमिद सर्वं तदेवैकम्प्रकाशते ।
ततो गजकुलाकारास्तांडद्भिः समलङ्कृता' ॥३४
उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोरा सवर्त्तका घनाः ।
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभ ।॥३५

वह देव इस प्रकार से पृथिवी को दग्ध करके रसातल मे जाकर उसे शोभित करने लगे थे । नीचे के भाग मे भी पृथ्वी को दग्ध करके ऊर्ध्व मार्ग मे दिवलोक को दग्ध कर रहे थे ॥२९॥ उस सवर्त्तक ग्रग्नि की ज्वालाऐ ऐसा महान् भीषण रूप धारण करके स्थित हो रहा था कि उन ज्वालाग्रो का विस्तार दश हजार सो सहस्र योजन पर्यन्त था और इतनो ऊँचाई तक वे ज्वालाऐ ऊपर की ग्रोर बडी भीषणता से उठ रही थी ॥३०॥ काल रुद्र से प्रणोदित होकर यह अत्यन्त प्रदीप्त अग्नि उस समय मे गन्धर्वो को—पिशाचो को—यक्षो को—उरगो को और राक्षसो को सभी का दाह कर रहा था ॥३१॥ वह काल से समाविष्ट ग्रवाला वह कालाग्नि स्वय भूर्लोक—भुवर्लोक सब को दग्ध कर रहा था ॥३२॥ इस कालाग्नि के द्वारा तिरछा ग्रोर ऊपर इन समस्त लोको व्याप्त हो जाने पर वह तेज पूर्ण रूप से धीरे-धीरे इस सम्पूर्ण जगत् मे समनुप्राप्त

हो गया था ॥३३॥ इसीलिये यह सब उस समय में गूढ होता हुआ एक ही प्रकाशित हो रहा था। इसके अनन्तर जबकि उस कालाग्नि ने समस्त लोकों को जला कर अङ्गार के समान बना दिया था फिर हाथियों के समूह के समान आकार वाले परम विशाल एवं घने तथा विद्युत् से समलङ्कृत होकर मेघ आये थे ॥३४॥ उस समय में अत्यन्त घोर एवं महान् भीषण कराल सम्वर्त्तक घन आकाश में उठ आये थे। इनमें से कुछ तो नील कमलों की आभा के सदृश आभा वाले थे और कतिपय मेघ कुमुद के तुल्य थे ॥३५॥

धूम्रवर्णास्तथा केचित्केचित्केचित्पीताः पयोधराः ।
केचिद्रासभवर्णास्तु लाक्षारसनिभाः परे ॥३६
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा ।
मनःशिलाभाश्च परे कपोतसदृशाः परे ॥३७
इन्द्रगोपनिभाःकेचिद्धरितालनिभास्तथा ।
इन्द्रचापनिभाःकेचिदुत्तिष्ठन्तिघनादिव ॥३८
केचित्पर्वतसङ्काशाः केचिद्गजकुलोपमाः ।
कूटाङ्गारनिभाश्चान्ये केचिन्मीनकुलोद्वहाः ॥३९
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः ।
तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभस्तलम् ॥४०
ततस्ते जलदाघोरा राविणो भास्करात्मजाः ।
सप्तधा सवृतात्मानं तमग्नि शमयन्त्युत (शमयेरुत) ॥४१
ततस्ते जलदा वर्षमुञ्चन्तीह महौघवत् ।
सुघोरमशिवं वर्षं नाशयन्ति च पावकम् ॥४२
अतिवृद्धस्तदात्यर्थमम्भसा पूर्य्यते जगत् ।
अद्भिस्तेऽम्भोऽभिभूतत्वात्तदग्निः प्रविशत्यपः ॥४३

ये प्रलय काल के मेघ विभिन्न वर्णों वाले थे। कुछ का वर्ण धूम्र के समान था और कतिपय मेघ पीत वर्ण के थे। कुछ का वर्ण गधे के सदृश था और कुछ लाक्षा रस के तुल्य वर्ण वाले थे ॥३६॥ कुछ शङ्ख और कुन्द के पुष्प के समान श्वेत वर्ण वाले थे तथा जाति—अञ्जन

क तुल्य कृष्ण वर्ण वाले थे। कुछ मेंने पिल के समान वर्ण वाले थे और दूसरे कपोत क सदृश रग वाले थे ॥३७॥ इन्द्र (गोप वीर बहूटी) के समान वर्ण वाले थ तथा कुछ हरि ताल के सदृश पीत वर्ण के थे। कतिपय मेघ इन्द्र धनुष क समान वर्णों वाल थे कुछ घन दिवि लोक में उत्थित होरहे थे ॥३८॥ कुछ मेघ पर्वत सदृश विशाल थे और कुछ गजो के समुदाय के तुल्य थ। कतिपय कूटागार के समान थे और अन्य कुछ मीन कुल के उद्वहन करने वाले थ ॥३६॥ इस प्रकार से बहुत से स्वरूप वाले—घोर रूप रेखा से सयुत तथा घोर ध्वनि के निनाद करने वाले थे। उस समय मे सब जलधरो ने नभस्तल को पूरित कर दिया था ॥४०॥ इसके पश्चात् घोर—ध्वनि करने वाले—भास्करात्मज वे जलद थे। सात प्रकार से सवृत आत्मा वाले उस अग्नि को इन मेघो ने शमित कर दिया था ॥४१॥ इसके अनन्तर मेघ महान् ओघ के समान वर्षा का त्याग कर रहे थे। वह वृष्टि सुघोर अशिव—उस पावक का नाश कर रही थी ॥४२॥ अति वृद्धि को प्राप्त उसने उस समय मे अत्यर्थ जल के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को पूरित कर दिया था। वर्षा के जल से जलाभिभूत होकर वह अग्नि जल मे प्रवेश करने लगा था ॥४३॥

नष्टे चाग्नौ वर्षशतै पयोदा क्षयसम्भवा.।
प्लावयन्तो जगत्सर्वं महाजलपरिस्रवै ॥४४
धाराभि पूरयन्तीद नाद्यमाना स्वयम्भुवा।
अत्यन्तसलिलौघास्तुवेलाइवमहोदधे ॥४५
साद्रिद्वीपा तन पृथ्वीजलै सञ्छाद्यतेशनै.।
आदित्यरश्मिभि पीतजलमभ्रपुनिष्ठति ॥४६
पुन पततितद्भूमौपूर्यन्तेतनचार्णवा ।
तत समुद्रा स्वावेलामतिक्रान्तास्तुकृत्स्नश.॥४७
पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जति।
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजगम ॥४८
योगनिद्रासमास्थाय शेते देवः प्रजापतिः।
चतुर्युगसहस्रान्त कल्पमाहुर्मनीषिण ॥४९

लगभग एक सौ वर्ष तक वर्षा के होते रहने से वह अग्नि नष्ट होजाने पर क्षय से सम्भूत मेघों ने महान जल के परिस्रवों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् का प्लावन करने वाले हो रहे थे ॥४४॥ स्वयम्भू प्रभु के द्वारा प्रेरित हुए मेघ धाराओं के द्वारा इस जगत् को पूरित कर रहे थे। वे अत्यन्त जल के ओघ वाले मेघ समुद्र की वेला की भाँति ही थे ॥४५॥ अद्रि (पर्वत) द्वीपों के सहित सम्पूर्ण पृथ्वी फिर धीरे सञ्छादित हो गई थी। सूर्य्य की रश्मियों के द्वारा पीया हुआ सम्पूर्ण जल मेघों में ही स्थित होगया था ॥४६॥ फिर वह जल मेघों से भूमि पर पतित होता है और उससे फिर सागर परिपूर्ण हो जाया करते हैं। इस के अनन्तर समुद्र अपनी वेला का अतिक्रमण करने वाले पूर्णतया हो जाया करते हैं ॥४७॥ पर्वत विलीन हो जाते हैं और यह पृथ्वी जल में निमग्न हो जाती है। उस समय में संसार में परम घोर एक सागर हो—सागर होता है और स्थावर तथा जङ्गम सम्पूर्ण सृष्टि का नाश हो जाया करता है ॥४८॥ जब ऐसी दशा हो जाती है तो उस काल में प्रजापति देव योग निद्रा में समास्थित होकर शयन किया करते हैं। मनीषीगण एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी का जब अन्त होता है तो उसे एक कल्प कहा करते हैं ॥४९॥

वाराहो वर्त्तते कल्पो यस्य विस्तर ईरितः।
असख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ॥५०

कथिता हि पुराणेषु मुनिभि. कालचिन्तकै.।
सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यमधिक हरे ॥५१

तामसेषु हरस्योक्त राजसेषुप्रजापतेः।
योय प्रवर्त्तते कल्पो वाराह. सात्त्विकोमतः ॥५२

अन्ये च सात्त्विकाः कल्पा मम तेषु परिग्रहः।
ध्यान तपस्तथा ज्ञान लब्ध्वा ते योगिनः परम् ॥५३

आराध्य तञ्च गिरिश यान्ति तत्परमम्पदम्।
सोऽह तत्त्व समास्थाय मायी मायामया (यी) स्वयम् ॥५४

एकार्णवे जगत्यस्मिन्योगनिद्रां व्रजामि तु ।
मां पश्यन्तिमहात्मानः सुप्तकालेमहर्षयः ॥५५
जनलोके वर्त्तमानास्तापसायोगचक्षुषा ।
अहं पुराणः पुरुषो भूर्भुवः प्रभवो विभुः ॥५६
सहस्रचरणः श्रीमान् सहस्राक्षः सहस्रपात ।
मन्त्रोऽहं ब्राह्मणा गावः कुशाश्च समिधो ह्यहम् ॥५७

यह वाराह कल्प है जिसका यह विस्तार कहा गया है । इस तरह से कल्प भी एक दो नहीं हैं प्रत्युत इनकी कोई संख्या ही नहीं कही जा सकती है ये असख्यात है जो ब्रह्मा—विष्णु और शिव स्वरूप हैं ॥५०॥ जो इस काल के चिन्तन करने वाले मुनिगण हैं उन्होंने पुराणों से इनका कथन किया है । जो कल्प सात्विक हैं उनमें ही भगवान हरि का अत्यधिक माहात्म्य कहा गया है ॥५१॥ जो कल्प तामस हैं अर्थात् तमो गुण की प्रधानता जिनके हुआ करती है उनमें हर का माहात्म्य वर्णित है तथा राजस कल्पों में प्रजापति का माहात्म्य कहा गया है । जो यह कल्प इस समय में प्रवृत्त हो रहा है वह वाराह कल्प है और यह सात्विक कल्प है ॥५२॥ अब जो सात्विक कल्प हैं उनमें मेरा परिग्रह होता है । वे योगी लोग परम ध्यान—तप और ज्ञान का लाभ करके और गिरिश प्रभु की समाराधना करके उसी परम पद की प्राप्ति किया करते हैं । वहाँ मैं तत्त्व मायामयी माया से मेरे समास्थित होकर स्वयं मायी बन जाता हूँ ॥५३-५४॥ उस एकार्णव जगत् में अर्थात् ऐसे संसार में जिसमें केवल एक समुद्र ही है मैं योग निद्रा में प्राप्त होता हूँ । उस समय में मुझको सुप्त काल में महान् आत्मा वाले महर्षि गण ही देखा करते हैं ॥५५॥ जन लोक में वर्तमान रहने वाले तापस जन योग की चक्षु के ही द्वारा मेरा दर्शन किया करते हैं । मैं परम पुराण पुरुष हूँ और भूर्भुव प्रभवविभु हूँ ॥५६॥ सहस्र चरणों वाला—सहस्र नयनों से समन्वित तथा सहस्र पादों से संयुत श्रीमान् मैं ही मन्त्र हूँ । ब्राह्मण—गौ—कुश और समिधा मैं ही हूँ ॥५७॥

प्रोक्षणीयं स्रवश्चैवसोमोव्रतमथास्म्यहम् ।
संवर्त्तकोमहानात्मा पवित्रं परमयश. ॥५८
मेधाप्यहं प्रभुर्गोप्तागोपतिर्ब्राह्मणोमुखम् ।
अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतांवर: ॥५९
हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्त्ति सनातन ।
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्बीजमथामृतम् ॥६०
माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यो न विद्यते ।
आदित्यवर्णा भुवनस्य गोप्ता नारायण पुरुषो योगमूर्त्ति ।
त पश्यन्ते यतयोयोगनिष्ठा ज्ञात्वात्मानममतत्व व्रजन्ति ॥६१

मैं ही स्वयं प्रोक्षणीय तथा सोमव्रत हूं। सम्वर्तक महान् आत्मा—पवित्र परम यश भी मैं हूं ॥५८॥ मैं ही मेधा—प्रभु—गोप्ता—गोपति—ब्राह्मण मुख—अनन्त—तारक—योगी—गति वालो मे श्रेष्ठ भी मैं ही हूं ॥५६॥ हंस—प्राण—कपिल—विश्वमूर्ति—सनातन—क्षेत्रज्ञ—प्रकृति—काल—जगत् का बीज और अमृत मैं ही हूं ॥६०॥ माता—पिता—महादेव मुझसे अन्य दूसरा कोई भी नहीं है। अर्थात् सभी कुछ मैं ही हूं। आदित्य के समान परम तेजस्वी वर्ण वाला—भुवन का गोप्ता अर्थात् रक्षा करने वाला—नारायण—पुरुष—योग मूर्ति मैं हूं। योग मे पूर्ण निष्ठा रखने वाले यति लोग ही उस मेरा दर्शन किया करते हैं तथा आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके मेरे वास्तविक तत्व को प्राप्त किया करते हैं ॥६१॥

४६—प्रतिसर्गवर्णन

अत पर प्रवक्ष्यामि प्रतिसर्गमनुत्तमम् ।
प्राकृत तत्समासेन शृणुध्व गदतो मम ॥१
गते परार्द्धद्वितये कालेलोकप्रकालन. ।
कालाग्निर्भस्मसात्कर्त्तुं चरतेचाखिलजगत् ॥२
स्वात्मन्यात्मानमावेश्य भूत्वादेवो महेश्वरः ।
दहेदशेष ब्रह्माण्ड सदेवासुरमानुषम् ॥३

तमाविश्य महादेवो भगवान्नीललोहित ।
करोति लोकसंहार भीषण रूपमाश्रित. ॥४

प्रविश्य मण्डलसौरकृत्वाऽसौ बहुधापुन ।
निर्दहत्यखिल लोक सप्तमप्तिस्वरूप धृक ॥५

स दग्ध्वा सकल विश्वमस्त्र ब्रह्मशिरोमहत् ।
देवताना शरीरेषुक्षिपत्यखिलदाहकम् ॥६

दग्धेष्वशेषदेवेषुदेवीगिरिवरात्मजा ।
एषा साक्षिणीशम्भास्तिष्ठतेवैदिकीश्रुति ॥७

भगवान् कूर्म ने कहा—इसके आगे मैं अब सर्वोत्तम प्रति सर्ग का वर्णन करूंगा। कथन करने वाले मुझ से प्राकृत उसका श्रवण सक्षेप से आप लोग करिए ॥१॥ द्वितीय परार्द्ध के गत हो जाने पर उस काल मे लोक का प्रकालन कालाग्नि सम्पूर्ण जगत् को भस्मसात् करने के लिये धारण किया करता है ॥२॥ अपनी आत्मा मे आत्मा को आविष्ट करके महेश्वर देव होकर देव-असुर मानवो के सहित इस समस्त ब्रह्माण्ड का दाह किया करते हैं ॥३॥ भगवान् नील लोहित महादेव उसमे आविष्ट होकर महान् भीषण रूप का समाश्रय लेने वाले लोक का सहार किया करते हैं ॥४॥ सौर मण्डल मे प्रवेश करके यह पुन बहुत प्रकार का होकर सप्त सप्ति के स्वरूप को धारण करने वाले यह पूर्ण लोक को निर्दग्ध कर दिया करते है ॥५॥ वह इस सकल विश्व को दग्ध करके महान् ब्रह्मशिर अस्त्र को जो अखिल का दाह करने वाला है देवताओं के शरीरो मे क्षिप्त कर दिया करते है ॥६॥ समस्त देवो के दग्ध हो जाने पर गिरिवर की पुत्री देवी जो यह भगवान् शम्भु की साक्षिणी है वहाँ पर स्थित रहा करती है—यह वैदिकी श्रुति है ॥७॥

शिर कपालैर्देवाना कृतस्रग्वरभूषण ।
आदित्यचन्द्रादिगणै पूरयन्व्योममण्डलम् ॥८
सहस्रनयनो देव सहस्राक्ष इतीश्वर ।
सहस्रहस्तचरण सहस्रार्चिर्महाभुजः ॥९

दंष्ट्राकरालवदनः प्रदीप्तानललोचनः ।
त्रिशूलकृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थितः ॥१०

पीत्वा तत्परमानन्द प्रभूतममृतं स्वयम् ।
करोति ताण्डवं देवीमालोक्यपरमेश्वर. ॥११

पीत्वा नृत्यामृतदेवीभर्तुः परममङ्गलम् ।
योगमास्थाय देवस्यदेहमायातिशूलिनः ॥१२

स भुक्त्वा ताण्डवरसं स्वेच्छयैव पिनाकधृक् ।
ज्योति स्वभावं भगवान्दग्ध्वा ब्रह्माण्डलम् ॥१३

संस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मा विष्णु. पिनाकधृक् ।
गुणैरशेषैं पृथिवी विलय याति वारिषु ॥१४

देवों के शिरों के कपालों के द्वारा माला और भूषण की रचना करने वाले आदित्य और चन्द्र आदि गणों के द्वारा व्योम मण्डल को पूरित करने वाले हैं ॥८॥ सहस्र नयनों वाले देव और सहस्राक्ष इस नाम वाले ईश्वर—सहस्र हाथों तथा चरणों वाले—सहस्र अर्चियों वाले—महान् भुजाओं से सम्पन्न हैं ॥६॥ दंष्ट्रा से कराल मुख वाले—प्रदीप्त अग्नि के तुल्य लोचनों वाले—त्रिशूलधारी तथा व्याघ्र चर्म को वस्त्र के स्थान पर धारण करने वाले प्रभु ईश्वरीय योगमें समास्थित हो जाते हैं ॥१०॥ उस परम आनन्द स्वरूपी प्रभूत अमृत का स्वयं ही पान करके परमेश्वर देवी को देखकर ताण्डव नृत्य किया करते हैं ॥११॥ उधर देवी अपने स्वामी का परम मङ्गल स्वरूप नृत्यामृत का पान करके देह माया त्रिशूली देव के योग में समास्थित हो गई थी। पिनाकधारी वह ताण्डव नृत्य के रस का उपभोग करके अपनी ही इच्छा से भगवान् ने ज्योति के स्वभाव वाले ब्रह्माण्ड को दग्ध कर दिया था ॥१२-१३॥ ब्रह्मा-विष्णु और पिनाकधृक्-इन देवों के संस्थित रहने पर यह पृथिवी सम्पूर्ण गुणों से युक्त जल में विलय को प्राप्त हो जाती है ॥१४॥

स वारितत्त्वं सगुणं ग्रसते हव्यवाहन. ।
तेज. स्वगुणसंयुक्तं वायौ संयाति सङ्क्षयम् ॥१५

आकाशे सगुणोवायु प्रलयंयातिविश्वभृत् ।
भूतादौ चतथाकाशेलीयतेगुणसयुत. ।।१६
इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे यान्ति सक्षयम् ।
वैकारिको देवगणै प्रलय याति सत्तमा. ।।१७
त्रिविधोऽयमहकारोमहति प्रलयेव्रजेत् ।
महान्तमेभिः सहितब्रह्माणममितौजसम् ।।१८
अव्यक्तञ्जगतो योनि सहरेदेकमव्ययम् ।
एव सहृत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वर· ।।१९
वियोजयति चान्योऽन्यम्प्रधान पुरुषम्परम् ।
प्रधानपु सोरजयोरेष सहार ईरित ।।२०
महेश्वरेच्छाजनितो न स्वय विद्यते लयः ।
गुणसाम्य तदव्यक्त प्रकृति परिगीयते ।।२१

हव्य वाहन (अग्नि) गुणो के सहित जल के तत्त्व का ग्राम कर जाया करता है और अपने गुणो से सयुक्त वह तेज तत्त्व भी वायु मे सक्षय को प्राप्त हो जाया करता है ।।१५।। विश्व का भरण करने वाला वायु अपने गुणो से समन्वित हो आकाश म प्रलय को प्राप्त हो ज ता है । तथा भूतादि आकाश मे गुणो से सयुत लीन हो जाया करता है ।।१६।। समस्त इन्द्रियाँ तैजस तत्त्व म सक्षय को प्राप्त हो जाया करती है । हे सत्तमो ! वैकारिक देवगणो के साथ प्रलय को प्राप्त हो जाता है ।।१७।। यह तीन प्रकार का अहङ्कार महत्त्व मे प्रलीन होता है । इन सबके सहित मह न् अमित ओज वाले अव्यय ब्रह्मा को जगत् का योनि अ यक्त एक ही सहार किया करता है । इस प्रकार से महेश्वर प्रभु भूतो को और तत्त्वो को सहृत किया करते हैं ।।१८-१९।। प्रधान और परम पुरुष को परस्पर म वियोजित कर देता है । प्रधान और पुरुष का यह अजय महार कहा गया है ।।२०।। महेश्वर की इच्छा से जनित लय स्वय नही है । गुणो की समता वाला वही अव्यक्त प्रकृति—इस नाम स परिगीत होता है ।।२१।।

प्रधान जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम् ।
कूटस्थश्चिन्मयो ह्यात्मा केवल पञ्चविंशक ।।२२

गीयते मुनिभिः साक्षी महानेषपितामह ।
एवं संहारशक्तिश्च शक्तिर्माहेश्वरी ध्रुवा ॥२३
प्रधानाद्य विशेषान्त देहेरुद्र इतिश्रुति. ।
योगिनामथ सर्वेषा ज्ञानविन्यस्तचेतसाम् ॥२४
आत्यन्तिकञ्चैव लय विदधातीह शंकर ।
इत्येष भगवान्रुद्र संहार कुरुते वशी ॥२५
स्वापिका मोहिनी शक्तिर्नारायण इति श्रुतिः ।
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगत्सदसदात्मकम् ॥२६
सृजेदशेष प्रकृतेस्तन्मयः पञ्चविंशकः ।
दुर्वलाः सर्वगा. शान्ता स्वात्मन्येव व्यवस्थिता ।
शक्तयो ब्रह्मविष्ण्वीशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥२७
सर्वेश्वराः सर्ववन्द्या.शाश्वतानन्तभोगिनः ।
एकमेवाक्षरं तत्त्व पुम्प्रधानेश्वरात्मकम् । २८

प्रधान ही इस जगत् की योनि अर्थात् उद्भव स्थल है । यह माया तत्त्व है और चेतना से शून्य ही होता है । आत्मा कूटस्थ और चिन्मय अर्थात् ज्ञान से परिपूर्ण होता है । इस तरह केवल पच्चीस तत्त्वों वाला है ॥२२॥ मुनियों के द्वारा महान् यह पितामह साक्षी गाया जाता है । इसी प्रकार से संहार शक्ति और माहेश्वरी ध्रुवा शक्ति है ॥२३॥ प्रधान से आदि लेकर अर्थात् आरम्भ करके विशेष के अन्त पर्यन्त देह में रुद्र है—ऐसा श्रुति का कथन है । ज्ञान में विन्यस्त चित्त वाले सभी योगियों का आत्यन्तिक लय भगवान् शङ्कर ही किया करते हैं । इस प्रकार से यह भगवान् रुद्रदेव वशी संहार किया करते हैं ॥२४-२५॥ स्वपन कराने वाली मोहिनी शक्ति ही नारायण प्रभु हैं—यह श्रुति का कथन है । सत् और असत् के स्वरूप वाला यह जगत् ही भगवान् हिरण्यगर्भ हैं ॥२६॥ तन्मय पञ्चविंशक अर्थात् पच्चीस तत्त्वों का समुदाय ही प्रकृति के इस सम्पूर्ण विश्व का सृजन किया करता है । सर्वत्र गमन शील—दुर्बल और शान्त अपनी आत्मा में वे सब व्यवस्थित रहा करते हैं । ब्रह्मा-विष्णु और ईश ये शक्तियाँ भुक्ति और मुक्ति इन दोनों के फलों को प्रदान करने

वाली हैं ॥२७॥ सबके ईश्वर—सब बन्धों वाले—शाश्वत और अनन्त भोगी ये शक्तियाँ हैं और केवल एक ही तत्व पुमान् और प्रधान ईश्वरात्मक अक्षर है ॥२८॥

अन्याश्च शक्तयो दिव्यास्तत्र सन्ति सहस्रशः ।
इत्येते विविधैर्यज्ञै. शक्त्यादित्यादयोऽमराः ।
एकैकस्या. सहस्राणि देहाना वै शतानि च ॥२९
कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणा ।
ता शक्ति स्वयमास्थाय स्वय देवो महेश्वर. ॥३०
करोति विविधान्देहान्दृश्यते चैव लीलया ।
इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदवादिभः ॥३१
सर्वकामप्रदो रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुति. ।
सर्वासामेव शक्तीना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३२
प्राधान्येनस्मृता देवा शक्तय परमात्मन. ।
आभ्य परस्ताद्भगवान् परमात्मासनातनः ॥३३
गीयते सर्वमायात्माशूलपाणिर्महेश्वरः ।
एकमेवे वदन्त्यग्नि नारायणमथापरे ॥३४
इन्द्रमेके परे प्राण ब्रह्माणमपरे जगु ।
ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणा सर्वेदेवास्तथर्षय ॥३५

और अन्य दिव्य शक्तियाँ वहाँ पर सहस्रों की संख्या में विद्यमान हैं। ये सब शक्ति–आदित्य और अमर विविध भाँति के यज्ञों के द्वारा हा है। इनमें एक एक के देहों की संख्या सैकड़ों तथा सहस्रों हो हैं ॥२९॥ इस तरह से ये सब कही जाती हैं किन्तु माहात्म्य से एक ही निर्गुणा शक्ति है। उसी एक शक्ति में स्वयं देव महेश्वर समास्थित होते हैं ॥३०॥ वह देव फिर अनेक प्रकार के देहों की रचना किया करते हैं जो कि लीला के द्वारा दिखलाई दिया करते हैं। वेदों के वादी ब्राह्मणों के द्वारा वह समस्त यज्ञों में यजन किये जाया करते हैं ॥३१॥ रुद्र देव समस्त कामनाओं को पूर्ण कर प्रदान कर देने वाले है—यह एक वैदिकी श्रुति का

कथन है। इन सम्पूर्ण शक्तियों में ही ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर ये ही शक्तियाँ हैं ॥३२॥ ये ही शक्तियाँ प्रधान रूप से कही गयी हैं जो कि देव स्वरूप वाली शक्तियाँ होती हैं। इन सब उपर्युक्त शक्तियों से भी पर भगवान् सनातन प्रभु परमात्मा हैं ॥३३॥ वही सर्व मायात्मा—शूल-पाणि महेश्वर—इस नाम से परिगीत किये जाते हैं। इस प्रकार से एक लोग तो इन्हीं को अग्नि कहा करते हैं और अन्य दूसरे नारायण नाम से पुकारा करते हैं ॥३४॥ कतिपय मनीषी इन्द्र तथा कुछ प्राण और अन्य लोग ब्रह्मा कहते हैं। ब्रह्मा-विष्णु—अग्नि—वरुण आदि समस्त देवगण तथा सब ऋषि वृन्द ये सब विभिन्न स्वरूप जो दिखाई दिया करते हैं वस्तुतः ये सभी एक ही शक्ति के स्वरूप हुआ करते हैं ॥३५॥

एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्त्तिता ।
यं यं भेदं समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम् ॥३६
तत्तद्रूपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः ।
तस्मादेकतरं भेदं समाश्रित्यापि शाश्वतम् ॥३७
आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम् ।
किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातनम् ॥३८
आराधयेद् गिरिशं सगुणं वाथ निर्गुणम् ।
मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः ॥३९
आरुरुक्षुस्तु सगुणं पूजयेत्परमेश्वरम् ।
पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम् ॥४०
पद्मासनस्थं रुक्माभं चिन्तयेद्वैदिकीश्रुतिः ।
एष योगः समुद्दिष्टः सबीजो मुनिपुङ्गवाः ॥४१

ये सभी स्वरूप एक ही रुद्र देव के विविध भेद कहे जाया करते हैं अर्थात् रुद्र ही विभिन्न रूपों में रहते हैं। जिस-जिस भेद का समाश्रय ग्रहण करके परमेश्वर का यजन किया करते हैं उसी उसी रूप में समा-स्थित होकर प्रभु शिव फल को प्रदान किया करते हैं। इसलिये कोई से भी भगवान् शिव के एक भेद का जो कि परम शाश्वत है समाश्रय ग्रहण करके महादेव का समाराधन करने वाला पुरुष उनके ही परम पद को

प्राप्ति किया करता है। किन्तु सर्वशक्तिमय देव महादेव सनातन प्रभु का यहाँ आराधन करो। वह गिरिश प्रभु चाहे सगुण रूप से समुपासित किये जावें या निर्गुण स्वरूप में उनकी उपासना की जावे। ये दोनों ही देवोपासना के मार्ग हैं और दोनों ही से भली-भाँति उपासना करने से फल मिलता है। किन्तु मैंने आप लोगों का पहिले ही निर्गुण योग बतला दिया है ॥३६-३६॥ जो सगुण प्रभु की पूजा करने की इच्छा रख कर ही मनुष्य पद पर समारूढ़ होना चाहता है उसे परमेश्वर का अभ्यचन इसी रूप में करना चाहिए। प्रभु पिनाक धनुष के धारी हैं—तीन नेत्रों युक्त हैं—मस्तक पर जट जूट रक्खे हुए हैं और व्याघ्र चर्म को वस्त्र के स्थान पर धारण करने वाले हैं। सुवर्ण के तुल्य आभा से सम्पन्न हैं और तरुण सूर्य के समान उनका परम श्रेष्ठी स्वरूप है। इस प्रकार से सगुण स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए—यह वैदिकी श्रुति का वचन है। हे मुनिवरो ! हमने यह योग बीज के सहित ही समुद्दिष्ट कर दिया है ॥४०-४१॥

अनाप्यशक्तोऽथ हृदविश्व ब्रह्माणमर्चयेत्।
अथ चदनमर्थ स्यात्तनापि मुनिपुङ्गवा ॥४२
ततो वाय्वग्निशक्रादीन् पूजयेद्भक्तिसंयुतः।
तस्मा सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ॥४३
आराधयेद्विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम्।
भक्तियोगसमायुक्त स्वध (क) र्मनिरत शुचि ॥४४
तादृश रूपमास्थाय आमाद्याहरन्तिक शिवम्।
एष योग समुद्दिष्ट सबीजोऽत्यन्तभावन ॥४५
यथाविधि प्रकुर्वाण प्राप्नुयादैश्वरम्पदम्।
द्वे चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह ॥४६
अथापि कथितो योगो निर्बीजश्चसबीजक।
ज्ञानं तदुक्त निर्बीजपूर्णं हि भवतामया ॥४७
विष्णु रुद्र विरञ्चि (ञ्च) ञ्च सबीजे साधयेद् बुध.।
अथ वाय्वादिकान्देवान्तत्परो नियतात्मवान् ॥४८

पूजयेत्पुरुषं विष्णुं चतुर्मूर्त्तिधरं हरिम् ।
अनादिनिधनं देवं वासुदेव सनातनम् ॥४९

नारायणं जगद्योनिमाकाशं परमम्पदम् ।
तल्लिङ्गधारी नियत तद्भक्तस्तदुपाश्रयः ॥५०

इस रीति से भी उपासना करने मे यदि असमर्थता हो तो हर विश्व ब्रह्मा का यर्चन करे । हे मुनि पुङ्गव गण ! यदि इसमें भी यशक्यता हो तो फिर भक्ति से समन्वित होकर अग्नि-इन्द्र आदि का पूजनोपासन करना चाहिए । इसलिये तात्त्विक बात तो यह है कि सभी देवो के पूजन करने का परित्याग करके जो कि ब्रह्मा आदि प्रमुख देव हैं केवल आदि-मध्य और अन्त मे स्थित भगवान् विरूपाक्ष का ही समाराधन करे । तथा स्वधर्म में निरत और परम शुचि होकर भक्ति योग मे समायुक्त होकर ही आराधना करनी चाहिए ॥४२-४४॥ उसी प्रकार के स्वरूप मे समास्थित होकर आत्यन्तिक शिव को प्राप्त करके ही करे । यह अत्यन्त भावना वाला सबीज योग समुद्दिष्ट करा दिया गया है ॥४५॥ इस योग को पूर्ण विधि के साथ करने वाला मनुष्य ईश्वरीय पद की प्राप्ति किया करता है । अन्य दो शुद्ध भावनाएं आप लोगों को बतला दी गयी हैं ॥४६॥ फिर भी निर्बीज और सबीज योग कहा दिया गया है । मैंने पहिले आप लोगो के समक्ष में कहा था वह निर्बीज ज्ञान है । विष्णु-रुद्र और विरञ्चि का गुरु पुरुष को सबीज ही साधन करना चाहिए । इसके अनन्तर वायु आदि देवो का नियत आत्मा वाला तत्परायण होकर ही यापन करे ॥४७-४८॥ चार मूर्ति धारी हरि विष्णु पुरुष का पूजन करें जो देव अनादि निधन—सनातन वासुदेव हैं तथा नारायण-जगद्योनि—आकाश और परमपद है । उसी के लिङ्गों को धारण करने वाला-नियत और उसका ही उपाश्रय वाला होकर करे ऐसा ही कहा गया है ॥४९-५०॥

एष एव विनिर्बीजे भावने चान्तिमे मतः ।
इत्येतत्कथितं ज्ञानं भावनासंश्रयम्परम् ॥५१

इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथितं यन्मयापुरा।
अव्यक्तात्मकमेवेदं चेतनाचेतन जगत् ॥५२
तदीश्वर पर ब्रह्म तस्माद् ब्रह्ममयं जगत्।
ऐतावदुक्त्वा भगवान्विराम जनार्द्दनम्।
तुष्टुवुर्मुनयो विष्णुंशु (श) क्रेण सह माधवम् ॥५३
नमस्ते कूर्म्मरूपाय विष्णवे परमात्मने।
नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नमः ॥५४
नमोनमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः।
माधवायच ते नित्य नमो यज्ञेश्वरायच ॥५५
सहस्रशिरसे तुभ्यं ेक्षपत्राक्षाय ते नमः।
नम. सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥५६

यही विधि अन्तिम ब्राह्म भावन मे मानी गयी है। यह भावना का सश्रय करने वाला परम ज्ञान वर्णित कर दिया गया है ॥५१॥ मैंने पहिले इन्द्रद्युम्न मुनि को यही ज्ञान कहा था। यह अव्यक्तात्मक ही होता है यह जगत् चेतनाचेतन है। वह ईश्वर परब्रह्म है इसीलिये यह सम्पूर्ण जगत् ही ब्रह्ममय है। श्री सूतजी ने कहा—इतना भर कहकर भगवान् विरत हो गये थे। फिर मुनिगण इन्द्र के साथ माधव प्रभु विष्णु का स्तवन करने लगे थे ॥५२-५३॥ मुनिगण ने कहा—परमात्मा विष्णु कूर्म रूप वाले के लिये नमस्कार है। नारायण–विश्वरूप—वासुदेव आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥५४॥ श्रीकृष्ण आपकी सेवा मे बारम्बार नमस्कार है। गोविन्द के लिये प्रणाम समर्पित है। माधव आपके लिये तथा यज्ञेश्वर के लिये नित्य ही हमारा नमस्कार समर्पित है ॥५५॥ सहस्र शिर वाले और सहस्र नेत्रो वाले आपको नमस्कार है। सहस्र हाथों वाले तथा सहस्र चरणो से युक्त आपकी सेवा में हमारा नमस्कार अर्पित है ॥५६॥

ॐ नमो ज्ञानरूपाय विष्णवे परमात्मने।
आनन्दाय नमस्तुभ्यमायातीताय ते नमः ॥५७

नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तुते ।
पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे ॥५८
नम साङ्ख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तुते ।
धर्मध्या(न) ऽभिगम्यायनिष्कलायनमोऽस्तुते(नमोनम) ॥५९
नमस्ते योगतत्त्वाय महायोगेश्वराय च ।
परावराणा प्रभवे वेदवेद्यायते नमः ॥६०
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे ।
नमो नमो नमस्तुभ्य मायिने वेधसे नम ॥६१
नमोऽस्तुते वराहाय नारसिंहाय ते नमः ।
वामनाय नमस्तुभ्य हृषीकेशाय ते नमः ।६२
स्वर्गापवर्गदानाय नमोऽप्रतिहतात्मने ।
नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने ॥६३

आ ज्ञान रूप आपको तथा परमात्मा विष्णु एव माया से अतीत और प्रानन्द स्वरूप आपकी सेवा मे प्रणाम अर्पित किया जाता है ॥५७॥ परम गूढ शरीर वाले निर्गुण आपकी सेवा मे हमारा प्रणाम है । पुराण पुरुष और सत्तामात्र स्वरूप वाले आपको नमस्कार है ॥५८॥ साङ्ख्य—योग और केवल आप के लिये नमस्कार है । धर्म ध्यान से अभिगमन करने के योग्य निष्कल आपके लिये हमारा नमस्कार अर्पित है ॥५९॥ योग तत्व स्वरूप महायोगेश्वर—परावर के प्रभव तथा वेदो के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करने के योग्य आपके लिये प्रणाम है ॥६०॥ बुद्ध के लिये नमस्कार है—शुद्ध तथा युक्त और हेतु के लिये बारम्बार नमस्कार अर्पित है । मायी और वेधा आपके लिये नमस्कार है ॥६१॥ वराह आपकी सेवा मे तथा नारसिंह आपको नमस्कार है । वामन स्वरूप धारी आपकी सेवा मे प्रणाम है और हृषीकेश प्रभु के लिये नमस्कार है ॥६२॥ स्वर्ग, अपवर्ग (मोक्ष) दोनो के दान करने वाले की सेवा म प्रणाम है । अप्रतिहत आत्मा वाले के लिये नमस्कार है । योग के द्वारा जानने के योग्य—योगी और योग के देने वाले के लिये नमस्कार है ॥६३॥

देवानां पतये तुभ्यं देवार्त्तिशमनायते ।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वसंसारनाशनम् ॥६४
अस्माभिर्विदितं ज्ञानं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
श्रुताश्च विविधा धर्म्मावंशा मन्वन्तराणि च ॥६५
सर्गश्चप्रतिसर्गश्चब्रह्माण्डस्यास्यविस्तरः ।
त्वंहिसर्वजगत्साक्षीविश्वोनारायणः परः ॥६६
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मा त्वामेव शरणं गताः ।
एतद्वः कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम् ॥६७
कौर्म्मंपुराणमखिलंयज्जगादगदाधरः ।
अस्मिन्पुराणेलक्ष्म्यास्तुसम्भवं कथितं पुरा ॥६८
मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजितः ।
प्रजापतीनां सर्गास्तु वर्णधर्माश्चवृत्तयः ॥६९

देवों के स्वामी तथा देवताओं की आर्ति (पीडा) के शमन करने वाले आपकी सेवा में हमारा प्रणाम समर्पित है। हे भगवन्! आपके ही प्रसाद से इस संसार के भय का विनाश हुआ करता है ॥६४॥ हम लोगों ने ज्ञान को प्राप्त कर लिया है जिस ज्ञान का लाभ करके प्राणी अमृतत्व का उपभोग किया करता है। हमने आपकी अनुकम्पा से विविध धर्मों का श्रवण किया है तथा अनेक वंश और मन्वन्तरों का भी श्रवण कर चुके हैं ॥६५॥ सर्ग तथा प्रतिसर्ग और इस ब्रह्माण्ड का विस्तार भी हमने भली-भाँति सुन लिया है। आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के साक्षी—विश्व रूप और परात्पर साक्षात् नारायण हैं ॥६६॥ आप अनन्त आत्मा है और आप हम सब का त्राण करने के योग्य है। हम सब लोग आपकी ही शरणागति में प्राप्त हो गये हैं। श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! हमने आप सबके समक्ष में यह वर्णित कर दिया है जो भोग और मोक्ष के प्रदान करने वाला है ॥६७॥ यह सम्पूर्ण कूर्म पुराण भगवान् गदाधर ने ही कहा था। इस पुराण में पहिले लक्ष्मी देवी की उत्पत्ति बतलाई गई है ॥६८॥ इसको भगवान् वासुदेव ने भूतों के मोह के लिये ही योजित किया है। प्रजापतियों के सर्ग, वर्णधर्म और वृत्तियाँ भी वर्णित की है ॥६९॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम् ।
पितामहस्यविष्णोश्चमहेशस्यचधीमतः ॥७०
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च विशेषश्चोपवर्णितः ।
भक्तानालक्षणम्प्रोक्तं समाचारश्चभोजनम् ॥७१
वर्णाश्रमाणाकथितं यथावदिह लक्षणम् ।
आदिसर्गस्ततः पश्चादण्डावरणसप्तकम् ॥७२
हिरण्यगर्भः सर्गश्चकीर्तितोमुनिपुङ्गवाः ।
कालसङ्ख्याप्रकथनमाहात्म्यञ्चेश्वरस्यच ॥७३
ब्रह्मणः शयनञ्चाप्सु नामनिर्वचन तथा ।
वराहवपुषो भूयो भूमेरुद्धरणम्पुनः ॥७४
मुख्यादिसर्गकथन मुनिसर्गस्तथापरः ।
व्याख्यातो रुद्रसर्गश्च ऋषिसर्गश्च तापसः ॥७५
धर्मस्य च प्रजासर्गस्तामसात्पूर्वमेव तु ।
ब्रह्मविष्णोर्विवादः स्यादन्तर्देहप्रवेशनम् ॥७६
पद्मोद्भवत्वं देवस्य मोहस्तस्यच धीमत ।
दर्शनञ्चमहेशस्यमाहात्म्यविष्णुनेरितम् ॥७७

धर्म-अर्थ—काम और मोक्ष—इनका ठीक-ठीक शुभ लक्षण वर्णन किया है। पितामह—विष्णु और श्रीमान् महेश का एकत्व तथा पृथक्त्व (इन सबका एक ही स्वरूप होना एवं भिन्न २ रूपों का धारण करना) विशेष रूप से उपवर्णित हुआ है। इसमें भक्तों का लक्षण सुन्दर आचार और भोजन वर्णों तथा आश्रमों का यथावत् जैसा ही लक्षण होता है इसमें वर्णन किया गया है। पहिले आदि सर्ग का वर्णन और फिर अण्डावरण सप्तक का—हिरण्य गर्भ और सर्ग इन सबका कीर्तन किया गया है। हे मुनि पुङ्गव वृन्द ! काल की सङ्ख्या का प्रकथन और ईश्वर का माहात्म्य—ब्रह्मा का जल में शयन तथा नाम-निर्वचन—फिर वराह के प्रकार तथा भूमि का उद्धार वर्णित किया गया है ॥७०-७४॥ मुख्यादि सर्ग का कथन तथा दूसरा मुनि सर्ग—रुद्र सर्ग और ऋषि सर्ग की व्याख्या की गई है। तापस सर्ग और धर्म का सर्ग तथा तामस से

पूर्व प्रश सर्ग ब्रह्मा और विष्णु का विवाद तथा अन्तर्देह में प्रवेश-देव का पद्म से उद्भव होना और श्रीमान् उसका मोह हो जाना महेश का दर्शन और माहात्म्य विष्णु भगवान् के द्वारा ही कहा गया है ।।७५ ७७।।

दिव्यदृष्टिप्रदानञ्च ब्रह्मणः परमेष्ठिन ।
सस्तवो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।।७८
प्रसादो गिरिशस्याथ वरदान तथैव च ।
सम्वादे विष्णुनामार्द्धं शङ्करस्य महात्मनः ।।७९
वरदान तथा पूर्वमन्तर्द्धान पिनाकिन ।
वधश्च कथितो विप्रा मधुकैटभयो. पुरा ।।८०
अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात् ।
एकीभावश्च देवेन ब्रह्मणाकथितःपुरा ।।८१
विमोहो ब्रह्मणश्चाथ सज्ञानात्तु हरेस्तत ।
तपश्चरणमाख्यात देवदेवस्य धीमतः ।।८२
प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात्कथितस्ततः ।
रुद्राणा कथिता सृष्टिर्ब्रह्मण. प्रतिषेधनम् ।।८३
भूतिश्च देवदेवस्य वरदानोपदेशकौ ।
अन्तर्द्धानञ्च देवस्य तपश्चर्याण्डजस्य च ।।८

परमेष्ठी ब्रह्माजी को दिव्य दृष्टि का प्रदान तथा परमेष्ठी ब्रह्माजी के द्वारा देवों के भी देव का सस्तवन। भगवान् गिरीश का प्रसाद तथा वरदान देना—महात्मा शकर का विष्णु भगवान् के साथ सम्वाद मे वरदान देना तथा पहिले ही पिनाकधारी का अन्तर्हित हो जाना। हे विप्रगण ! पहिले मधु और कैटभ दोनो का वध वर्णित किया गया है। क्षीरसायी भगवान् नारायण की नाभि से समुत्पन्न कमल से देवेश्वर ब्रह्मा का अवतार तथा देवेश्वर ब्रह्माजी के द्वारा पहिले एकीभाव भी बतला दिया गया है। ब्रह्माजी को व्यामोह का होना और फिर हरि के सज्ञान से तपश्चर्या करने का देवों के भी देव श्रीमान् का वर्णन किया गया है। ।।७८-८२।। इसके उपरान्त ललाट से महेश के प्रादुर्भाव का वर्णन किया

गया है। रुद्रों की सृष्टि का कथन हुआ है तथा प्रजाओं के प्रतिवेशन का भी वर्णन है ॥८३॥ देवदेवकी भूति—वरदान और उपदेश—देव का अन्तर्धान तथा अण्डज की तपश्चर्या का भी दर्शन इसमें किया गया है ॥८४॥

दर्शनं देवदेवस्य नरनारी शरीरता।
देव्या विभागकथनं देवदेवात्पिनाकिनः ॥८५
देव्याश्च पश्चात्कथितं दक्षपुत्रीत्वमेव च।
हिमवद्दुहितृत्वञ्चदेव्या माथात्म्यमेवच ॥८६
दर्शनं दिव्यरूपस्य विश्वरूपाक्षदर्शनम्।
नाम्ना सहस्रं कथितं पितान्हिमवतास्त्वयम् ॥८७
उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च।
भृग्वादीना प्रजासर्गो राज्ञां वंशस्य विस्तरः ॥८८
प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्द्दनम्।
दधीचस्य च यज्ञस्य विवादः कथितस्तदा ॥८९
ततश्च शापः कथितो मुनीनां मुनिपुङ्गवाः।
रुद्रागतिः प्रसादश्च अन्तर्द्धानं पिनाकिनः ॥९०

देवों के भी देव का दर्शन होना तथा उनके शरीर में नर और नारी दोनों की स्वरूपता तथा देवों के देव पिनाकी प्रभु से देवों के विभाग का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् देवी का प्रजापति दक्ष की पुत्री होकर जन्म लेना और फिर देवी का हिमवान् की दुहिता होना तथा याथात्म्य का कथन इसमें भली भाँति हुआ है ॥८५-८६॥ दिव्य स्वरूप का दर्शन—विश्व रूपाक्ष का दर्शन और पिता हिमवान् के द्वारा स्वयं सहस्र नामों का कथन वर्णित है। महादेवी का उपदेश तथा वरदान—भृगु आदि का प्रजासर्ग—राजाओं के वंश का विस्तार—दक्ष का प्राचेतसत्व होना और दक्ष के यज्ञ का विध्वंस—उसी समय के दधीच और यज्ञ का विवाद भी कहा गया है। हे मुनि पुङ्गवो! इस के अनन्तर मुनियों के शाप का कथन हुआ है। रुद्रागति, उनका प्रसाद और पिनाकधारी का अन्तर्धान होने का वर्णन किया गया है ॥८७-९०॥

पितामहोपदेश स्यात्कीर्त्यतेवै रणाय तु ।
दक्षस्यचप्रजासग: कश्यपस्यमहात्मन. ॥९१
हिरण्यकशिपोर्नाशोहिरण्याक्षवधस्तथा ।
ततश्चशाप कथितो देवदारु वनौकसाम् ॥९२
निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम् ।
प्रह्लादनिग्रहश्चाथ बले सयमनन्तथ ॥९३
बाणस्य निग्रश्चाथ प्रसादस्तस्य शूलिन. ।
ऋषीणा वशविस्तारो राज्ञा वशा' प्रकीर्तिताः ॥९४
वसुदेवात्ततो विष्णोरुत्पत्तिः स्वेच्छया हरेः ।
दर्शनञ्चोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव च ॥९५
वरलाभो महादेव दृष्ट्वासाम्बत्रिलोचनम् ।
कैलासगमनञ्चाथनिवासस्तस्यशार्गिण. ॥९६
ततश्च कथ्यतेभीतिर्द्वारवत्यानिवासिनाम् ।
रक्षण गरुडेनाथ जित्वाशत्रून्महाबलान् ॥९७
नारदागमनञ्चैव यात्राचैव गरुत्मत ।
ततश्च कृष्णागमन मुनीनामाश्रमस्ततः ॥९८

पितामह का उपदेश और रण के लिए कीर्तन किया जाता है—दक्ष का प्रजासर्ग तथा महात्मा कश्यप को प्रजा का सर्ग—हिरण्यकशिपु का विनाश तथा हिरण्याक्ष का वध—इसके उपरान्त देवदारु वन में निवास करने वालो का शाप कथित किया गया है ॥९१ ९२॥ अन्धक दैत्य का निग्रह—शूली प्रभु का प्रसाद—ऋषियो के वश का विस्तार तथा राजाओ के वशो का प्रकीर्त्तन किया गया है इसके उपरान्त वसुदेव से हरिविष्णु भगवान् की स्वेच्छा से समुत्पत्ति—उपमन्यु को दर्शन तथा तपश्चरण—महादेव साम्ब त्रिलोचन का दर्शन करके वर का लाभ—कैलास म गमन और इसके उपरान्त वहाँ पर उन शार्गी प्रभु का निवास—इसके अनन्तर द्वारकापुरी के निवास करने वालो की भीति का कथन किया गया है । फिर महान् बलशाली शत्रुओ के ऊपर विजय पाकर गरुड के द्वारा रक्षा का करना—देवर्षि नारदजी का आगमन और गरुत्मान्

की यात्रा—इसके उपरान्त कृष्णागमन और मुनियों के आश्रमों का वर्णन इसमें किया गया है ॥९१-९८॥

नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चनं तथा ।
मार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम् ॥९९
लिङ्गार्च्चननिमित्तञ्च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः ।
याथात्म्यकथनञ्चाथ लिङ्गाद्धं भीतिरेव च ॥१००
ब्रह्मविष्णोस्तथा मध्ये कीर्तिता मुनिपुङ्गवाः ।
मोहस्तयोर्वै कथितो गमनञ्चोर्द्ध्वतो ह्यधः ॥१०१
संस्तवोदेवदेवस्यप्रसादःपरमेष्ठिनः ।

॥१०२

कृष्णस्य गमने बुद्धिर्ऋषीणमार्गास्तथा ॥१०३
अनुशासनञ्च कृष्णेन वरदानं महात्मनः ।
गमनञ्चैव कृष्णस्य पार्थस्याप्यथ दर्शनम् ॥१०४
कृष्णद्वैपायनस्योक्तं युगधर्मा सनातनाः ।
अनुग्रहोऽथपार्थस्य वाराणस्यागतिस्ततः ॥१०५

भगवान् वासुदेव का नैत्यिक कर्म तथा शिव लिङ्ग का अभ्यर्चन और इसके अनन्तर मार्कंडेय मुनि के द्वारा किये गये प्रश्न का कथन है। ९९॥ लिङ्गार्चन का निमित्त—सालिङ्गी के लिङ्ग का भी यथात्म्य कथन और लिंग से भीति का होना वर्णित किया गया है ॥१००॥ हे मुनि पुङ्गव वृन्द! मध्य में ब्रह्मा और विष्णु की भीति वर्णित की गई है। उन दोनों के मोह का वर्णन किया गया है। ऊपर और नीचे की ओर गमन करने का वर्णन किया गया है ॥१०१॥ देवों के देव की स्तुति—परमेष्ठी का प्रसाद—लिङ्ग का अन्तर्धान और इसके पश्चात् साम्ब प्रभु की समुत्पत्ति का वर्णन इसमें किया गया है ॥१०२॥ हे उत्तम द्विज गण! इसके उपरान्त अनिरुद्ध की उत्पत्ति का कीर्तन किया गया है। फिर भगवान् श्रीकृष्ण को गमन करने में बुद्धि का होना तथा ऋषि गणों का वहाँ पर आगमन का होना वर्णित किया है ॥१०३॥ श्रीकृष्ण के द्वारा

मनुशासन—महात्मा का वरदान और श्री कृष्ण का गमन एवं पार्थ अर्जुन का दर्शन इस मे बताया गया है ॥१०४॥ इसके पश्चात् इसमे श्रीकृष्ण द्वैपायन मुनि का कथन तथा सनातन युगो के धर्मों का वर्णन और पार्थ के ऊपर अनुग्रह और वाराणसी पुरी मे गति का होना बतलाया गया है ॥१०५॥

पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ।
वाराणस्याश्च माहात्म्य तीर्थानाञ्चैव वर्णनम् ॥१०६
व्यासस्य तीर्थयात्रा च देव्याश्चैवाथ दर्शनम् ।
उद्वासनञ्च कथित वरदान तथैव च ॥१०७
प्रयागस्यचमाहात्म्य क्षेत्राणामथकीर्त्तनम् ।
फलञ्चविपुलविप्रामार्कण्डेयस्यनिर्गमः ॥१०८
भुवनानास्वरूपञ्चज्योतिषाञ्चनिवेशनम् ।
कीर्त्तितश्चापिवर्षाणा नदीनाञ्चैवनिर्णयः ॥१०९
पर्वतानाञ्चकथनस्थानानिच दिवौकसाम् ।
द्वीपानाप्रविभागश्चश्वेतद्वीपोपवर्णनम् ॥११०
शयन केशवस्याथ माहात्म्यञ्चमहात्मनः ।
मन्वन्तराणाकथनविष्णोर्माहात्म्यमेवच ॥१११
वेदशाखाप्रणयन व्यासाना कथन ततः ।
अवेदस्य च वेदस्य कथित मुनिपुङ्गवाः ॥११२

फिर इस पुराण मे अत्यन्त अद्भुत कर्मों वाले पराशर मुनि के पुत्र महर्षि व्यास के द्वारा वाराणसी पुरी का माहात्म्य और अन्य तीर्थों का वर्णन किया गया है ॥१०६॥ महर्षि व्यासजी की तीर्थ यात्रा और देवी का दर्शन तथा उद्वासन और वरदान का वर्णन हुआ है ॥१०७॥ फिर प्रयाग राज तीर्थ का माहात्म्य और अन्य क्षेत्रो का कीर्तन किया गया है एव विपुल फल बताया गया है। हे विप्रो ! इसके अनन्तर मार्कण्डेय मुनि का निर्गम कीर्त्तित किया गया है ॥१०८॥ भुवनो का वर्णन और उनका स्वरूप का कथन तथा ज्योतिषो अर्थात् तारादि का निवेशन—वर्षों का

कथन और बहुत-सी नदियों का निर्णय कहा गया है ॥१०६॥ इसके उपरान्त इसमें पर्वतों का कथन और देव गणों के स्थानों का वर्णन—द्वीपों का विभाग और श्वेत द्वीप का उप वर्णन किया गया है ॥११०॥ भगवान् केशव का शयन करना तथा महान् आत्मा वाले का माहात्म्य वर्णन—मन्वन्तरों का कथन तथा भगवान् विष्णु का माहात्म्य का वर्णन किया गया है ॥१११॥ वेदों की शाखाओं का प्रणयन करना—हे मुनिश्रेष्ठो ! व्यास देव का कथन तथा प्रवद और वेद का कथन बताया गया है ॥११२॥

योगेश्वराणाञ्च कथा शिष्याणाञ्चाथ कीर्त्तनम् ।
गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्त्तिता ॥११३
वर्णाश्रमाणामाचारा प्रायश्चित्तविधिस्ततः ।
कपालित्वञ्च रुद्रस्य भिक्षाचरणमेव च ॥११४
पतिव्रतानामाख्यान तीर्थानाञ्च विनिर्णयः ।
तथा मङ्कणकस्याथ निग्रहः कीर्तितो द्विजाः ॥११५
वधश्च कथितो विप्राः कालस्य च समागमः ।
देवदारुवने शम्भोः प्रवेशो माधवस्य च ॥११६
दर्शन षट्कुलीयानां देवदेवस्य धीमतः ।
वरदानञ्च देवस्य नन्दने तु प्रकीर्तितम् ॥११७
नैमित्तिकश्च कथितः प्रतिसर्गस्ततः परम् ।
प्राकृत. प्रलयश्चोर्द्ध्वं सबीजो योग एव च ॥११८
एव ज्ञात्वा पुराणस्य सङ्क्षेप कीर्त्तयेत्तु यः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥११९

इसके उपरान्त योगेश्वरों की कथा का वर्णन और शिष्यों का कीर्त्तन किया गया है । विविध भाँति के ईश्वर के गुह्यों का कीर्त्तन इसमें किया है ॥११३॥ वर्णों तथा आश्रमों के आचारों का वर्णन और इनके पीछे प्रायश्चित्त के करने की विधि का वर्णन है । भगवान् रुद्र देव का कपाली होना और उनका भिक्षाचरण करना—पतिव्रताओं का आख्यान—तीर्थों का विशेष निर्णय और इस पुराण में हे द्विजगण ! मङ्कण का निग्रह

बतलाया गया है ॥११४-११५॥ हे विप्रगण ! काल का अत्यन्त संक्षेप से वध वर्णित हुआ है तथा देवदारु वन में भगवान् शम्भु और माधव के प्रवेश का वर्णन है ॥११६॥ षट् कुलीय ऋषियों का दर्शन तथा धीमान् देवदेव का वरदान और देव का नन्दन में प्रकीर्तन किया गया है ॥११७॥ इसके अनन्तर नैमित्तिक प्रतिसर्ग—प्राकृत प्रलय और ऊर्ध्व सबीज योग कहा गया है ॥११८॥ इस प्रकार से इस महापुराण में जो कुछ भी वर्णन हुआ है उसका संक्षेप बता दिया गया है। इस संक्षिप्त वर्णन का जो कोई नित्य ही कीर्तन किया करता है वह सब पापों से छूटकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥११९॥

एवमुक्त्वा श्रियं देवीमादाय पुरुषोत्तमः।
सन्त्यज्य कूर्मसंस्थानं प्रजगाम हरस्तदा ॥१२०
देवाश्चसर्वेमुनयः स्वानिस्थानानिभेजिरे।
प्रणम्यपुरुषंविष्णुं गृहीत्वा ह्यमृतंद्विजाः ॥१२१
एतत्पुराणं सकलं भाषितंकूर्मरूपिणा।
साक्षाद्देवाधिदेवेनविष्णुना विश्वयानिना। १२२
यः पठेत्सततं विप्रा नियमेन समाहित।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते।।१२३
लिखित्वा चैव यो दद्याद्वैशाखे कार्तिकेऽपि वा।
विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत ॥१२४
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः।
भुक्त्वा तु विपुलान्मर्त्यो भोगान्दिव्यान् सुशोभनान् ॥१२५
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो विप्राणां जायते कुले।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्म विद्यामवाप्नुयात् ॥१२६

इस प्रकार से कह कर पुरुषोत्तम श्री देवी को लेकर और कूर्म संस्थान का त्याग करके वहाँ से चले गये। उसी समय में भगवान् हर—देवगण और मुनिवृन्द भी अपने अपने स्थानों को चले गये थे। हे द्विज-गण ! सब ने अमृत का ग्रहण किया था और परमपुरुष विष्णु को प्रणाम किया था ॥१२०-१२१॥ इस तरह से यह सम्पूर्ण पुराण साक्षात् देवों

के अधिदेव-विश्वयोनि-कूर्म स्वरूप धारी भगवान् विष्णु ने ही भाषित किया है ॥१२२॥ जो इस पुराण का नियम पूर्वक संक्षेप में भी निरन्तर पाठ किया करता है वह मानव सभी पातकों से विमुक्त होकर ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है ॥१२३॥ इस अपने हाथ से लेख बद्ध करके वैशाख में तथा कार्तिक मास में किसी वेदों के ज्ञाता विप्र को दान करता है उसके पुण्य—फल को समझ लो ॥१२४॥ वह दान दाता पुरुष सर्व प्रथम तो समस्त पापों से विमुक्त होता है। फिर सब ऐश्वर्यों से समन्वित हो जाया करता है और वह मानव बहुत से भोगों के सुख का उपभोग करता है जो कि परम दिव्य और अतीव शोभन भोग हुआ करते हैं ॥१२५॥ इसके पश्चात् स्वर्ग का सुख भोग करके उसकी अवधि समाप्त होने पर वहाँ से परिभ्रष्ट भी होकर संसार में विप्र के कुल में जन्म ग्रहण किया करता है फिर पहिले जीवन के सुदृढ़ संस्कारों के माहात्म्य के बने रहने के कारण यहाँ पर भी वह ब्रह्म विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लिया करता है ॥१२६॥

पठित्वाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
योऽर्थं विचारयेत्सम्यक्प्राप्नोतिपरमम्पदम् ॥१२७
अध्येतव्यमिदं पुण्यं विप्रैः पर्वणिपर्वणि ।
श्रोतव्यञ्च द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम् ॥१२८
एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानिकृत्स्नशः ।
एकत्र परमं वेदमेतदेवातिरिच्यते ॥१२९
इदं पुराणं मुक्त्वैकं नान्यत्साधनकम्परम् ।
यथावदत्र भगवान्देवो नारायणो हरिः ॥१३०
कीर्त्यतेहियथा विष्णुर्नतथान्येषुसुव्रताः ।
ब्राह्मीपौराणिकीचेयसंहितापापनाशनी ॥१३१
अत्र तत्परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः ।
तीर्थानां परमं तीर्थं तपसाञ्च परन्तप ॥१३२
ज्ञानानां परमं ज्ञानं व्रतानां परमं व्रतम् ।
नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य च सन्निधौ ॥१३३

इस कूर्म्म पुराण की एक भी अध्याय के पाठ करने की इतनी बडी महिमा है कि वह सभी पापो से प्रमुक्त हो जाता है। जो केवल पाठ मात्र ही न करके इसके अर्थ का भी भली भाँति विचार किया करता है वह फिर परम पद की प्राप्ति किया करता है ।।१२७।। विप्रो के द्वारा पर्व—पर्व पर इस परम पुण्य मय पुराण का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिए । हे द्विज श्रेष्ठो ! इसका स्रवण भी करना ही चाहिए जिससे महापातको का नाश होता है ।।१२८।। एक तरफ तो पूर्ण रूप से समस्त पुराण इतिहास के सहित हो और एक तरफ परम वेद हो तो यह पुराणो का पलडा ही अधिक होगा ।।१२९।। इस पुराण को छोड कर अन्य कोई भी परमोत्तम साधन नही है क्यो कि इसमे भगवान् देव हरि नारायण यथावत् रीति से जिस प्रकार से कीर्तित किये गये हैं हे मुनिगो ! इस भाँति भगवान् विष्णु का कीर्तन अन्य किसी मे भी नही किया गया है । यह ब्राह्मी और गायित्री संहिता है जो सभी पापो का नाश करने वाली है ।।१३० १३१।। इस पुराण मे उस परम ब्रह्म का यथार्थ रूप से कीर्तन किया गया है । तीर्थो मे परम तीर्थ और तपो मे परम तप-ज्ञानो मे परम ज्ञान तथा व्रतो मे परम व्रत यही है कि भगवान् के इस पुराण का कभी भी किसी वृषल की सन्निधि मे अध्ययन नही करना चाहिए ।।१३२-१३३।।

योऽधीते चैव मोहात्मा स याति नरकान् बहून् ।
श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्रावणीयद्विजातिभिः ।।१३४
यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम् ।
मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः ।।१३५
श्रोतव्यञ्चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृंहणम् ।
ज्ञात्वा यथावद्विप्रेन्द्रान् श्रावयेद्भक्तिसंयुतान् ।।१३६
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।
योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा ।।१३७
सम्प्रेत्यगत्वानिरयान्शुनायोनिंव्रजत्यधः ।
नमस्कृत्यहरिविष्णु जगद्योनिंसनातनम् ।।१३८

अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा ।
इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ॥१३९
पाराशर्यस्य विप्रर्षेर्व्यासस्य च महात्मनः ।
श्रुत्वा नारायणाद्देवान्नारदो भगवानपि ॥१४०

जो कोई मोहवश इसका अध्ययन करता है वह बहुत से नरकों में जाया करता है। द्विजातियों के द्वारा इस का श्रवण श्राद्ध तथा किसी दैविक कार्य में कराना चाहिए ॥१३४॥ किसी भी यज्ञ के अन्त में यह विशेष रूप से समस्त दोषों का विशोधन करने वाला होता है। जो मुमुक्षु गण हैं उनको तो इस शास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिए। ॥१३५॥ यह वेदों के ही अर्थ का परिवृंहण है अर्थात् उन्हीं को परिवर्द्धित करने वाला है अतएव इसका श्रवण अवश्य ही करना चाहिए और मनन भी करे। पहिले स्वयं इसका यथावत् ज्ञान प्राप्त करके ही फिर अन्य भक्तिभाव से समन्वित विप्रों को इसका श्रवण कराना चाहिए ॥१३६॥ इस तरह से श्रवण कराने वाला विप्र सब पापों से विमुक्त होकर ब्रह्म सायुज्य की प्राप्ति किया करता है। जो कोई श्रद्धा से हीन पुरुष को तथा अधार्मिक पुरुष को इसका ज्ञान देता है वह देने वाला पुरुष मर कर नरकों में जाता है और फिर कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है। इसका जब भी अध्ययन करे तब प्रथम जगत् की योनि-हरि विष्णु सनातन प्रभु को नमस्कार करना चाहिए ॥१३७-१३८॥ फिर भगवान् श्री कृष्ण द्वैपायन को भी प्रणिपात करे और इसके उपरान्त इसका अध्ययन आरम्भ करे। यही देवों के देव अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु की आज्ञा है ॥१३९॥ इस संहिता को पराशर मुनि के पुत्र महात्मा विप्रर्षि श्री व्यास ने नारदजी से श्रवण किया था और नारद जी ने देवाधिदेव नारायण से श्रवण किया था ॥१४०॥

गौतमाय ददौपूर्वं तस्माच्चैव पराशरः ।
पराशरोऽपिभगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः ॥१४१
मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते ॥१४२

सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् ।
सनकाद्भगवान् साक्षाद्देवलो योगवित्तमः ॥१४३
अवाप्तवान्पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम् ।
सनत्कुमाराद्भगवान्मुनिः सत्यवतीसुतः ॥१४४
एतत्पुराणपरमव्यासः सर्वार्थसञ्चयम् ।
तस्माद्व्यासादहं श्रुत्वा भवतापापनाशनम् ॥१४५
ऊचिवान्वै भवद्भिश्च दातव्य धार्मिके जने ।
तस्मै व्यासाय मुनये सर्वज्ञाय महर्षये ॥४६
पाराशर्याय शान्ताय नमोनारायणात्मने ।
तस्मात्सञ्जायते कृत्स्नं यत्रचैवप्रलीयते ।
नमस्तस्मै सु (प) रेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे ॥१४७

महा मुनि ने सर्व प्रथम इनको गौतम के लिये दिया था और उससे फिर पराशर ने प्राप्त किया था। फिर पराशर भगवान् ने गंगा के द्वार पर जो मुनीश्वर थे उन मुनीश्वरों को इसका श्रवण कराया था जो कि धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों के प्रदान करने वाला है। इससे भी पूर्व ब्रह्माजी ने परम श्रीमान् सनक से इसको कहा था ।१४१-१४२। साक्षात् देवल ने जो योग के वेताओं मे परम श्रेष्ठ थे सनकसे इसका ज्ञान प्राप्त किया था। यह सनत्कुमार को भी प्रदान किया गया था जो कि समस्त पापों का विनाशक है ॥१४३॥ पञ्चशिख ने देवल से प्राप्त किया था। सनत्कुमार से सत्यवती के पुत्र मुनि ने प्राप्त किया था सभी अर्थों के सञ्चय वाला यह परम महा पुराण है जिसको व्यासजी ने प्राप्त किया था। उन्हीं व्यासजी से इसका मैंने श्रवण किया है जो आपके पापों का नाश करने वाला है। मैंने आपको सुना दिया है और अब आप को भी किसी धार्मिक जन को ही इसका श्रवण करना चाहिए। उन सर्वज्ञ—महर्षि मुनि पराशर के पुत्र परम शान्त नारायण स्वरूप भगवान् व्यास देव के लिये सादर नमस्कार है क्यों कि उन्हीं से सब का उद्भव होता है और उन्हीं मे सब प्रलीन होजाया करते हैं, उन सुरेश कूर्म स्वरूप धारी विष्णु के लिये सादर प्रणाम है ॥१४४-१४७॥

'कूर्म पुराण' में अध्यात्म दर्शन

अध्यात्म भारतीय-धर्म का सार है। यों संसार में जीवन निर्वाह के अनेक मार्ग हैं। हमारे और अन्य देशों के प्रसिद्ध मनीषियों ने अपनी सूझ और देश काल के अनुसार 'भौतिक वाद' 'उपयोगिता वाद' 'सुख वाद' 'विवेक वाद' आदि अनेक सिद्धान्त मानव-जीवन को सार्थक और सुखी बनाने की दृष्टि से प्रचलित किये हैं। वर्तमान समय में भूमण्डल के अधिकांश प्रदेशों में उन्हीं का प्रचार है और वर्तमान युग के 'शिक्षित' कहे जाने वाले व्यक्ति उन्हीं का पक्ष समर्थन भी करते हैं। उनके ख्याल से पुराने जमाने के विद्वान जिन्होंने किसी न किसी रूप में सबसे अधिक जोर 'धर्म' पर दिया, भ्रान्त अथवा काल्पनिक भावनाओं से प्रेरित थे। पर आज संसार भर में मची हुई अभूतपूर्व हल-चल और तरह-तरह की विकट समस्याओं को देख कर हमको इन तथाकथित 'ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाताओं' की बुद्धिमत्ता पर सन्देह होने लगता है। यद्यपि भारत की अध्यात्म वादी संस्कृति भी नाना प्रभाव से बहुत विकृत हो गई है, फिर भी भारत की सामूहिक जन-आत्मा का झुकाव अब भी 'धर्म' और 'अध्यात्म' की तरफ है और इस कारण यहाँ हमको सर्वनाश की वह विभीषिका नहीं दिखाई पड़ रही है जो पश्चिमीय देशों के सिर पर नंगी तलवार की तरह लटकती दिखाई दे रही है। इसका वास्तविक रहस्य स्वामी विवेकानन्द ने निम्न शब्दों में प्रकट किया था—

"यदि पश्चिमी देशों के लोगों के सामने कोई योजना रखी जाती है, तो उनका पहला प्रश्न यह होता है—'क्या इससे मेरी आय में वृद्धि होगी?' पर जब ऐसा ही अवसर भारतीय के सामने आता है तो वह पूछता है 'क्या इससे मुझे मोक्ष—पुण्य की प्राप्ति हो सकती ?'

इसका यह तात्पर्य नहीं कि भारतीय-धर्म के अनुयायी सदा से केवल

भजन—ध्यान, त्याग–तपस्या मे ही लगे रहते हैं और सासारिक उद्देश्यो के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। इसके विपरीत यहाँ के सभी शास्त्रकारो ने जन साधारण को धर्म-अर्थ काम-मोक्ष की सिद्धि के लिए उद्योग करने का उपदेश दिया है। उसकी महत्ता इसी मे है कि वे धर्म को अर्थ और काम के ऊपर स्थान देते हैं। इसके विपरीत पश्चिमी देशो के उपदेशको ने सर्वोपरि स्थान अर्थ और काम को दे रखा है, उनके पीछे अगर 'धर्म' भी किसी रूप मे आ जाय तो कोई हर्ज नही। यही कारण है कि संसार की सम्पदा के स्वामी बन जाने पर भी उनको तृष्णा शान्त नही होती। उनमे से प्रत्येक दुनियाँ का एक मात्र अधिपति बनने का स्वप्न देखता रहता है और उसका परिणाम यह है कि सर्वसाधन सम्पन्न होने पर भी आज उनको सोने की लका की तरह अपने भस्म हो जाने का भय सामने दिखाई पड रहा है।

यही कारण है कि वर्तमान समय मे भारतीय अध्यात्म, जो कुछ काल पहले विदेशी सस्कृति के आक्रमणो से बहुत निस्तेज हो चुका था, फिर चमकने-दमकने लगा है। अध्ययन और मनन करने वाले प्राचीन धार्मिक साहित्य मे से आत्म ज्ञान को प्रदीप्त करने वाली उत्तम कृतियो को ढूढकर नये रूप मे निकाल रहे है और उनका प्रचार पूर्वापेक्षा अधिक हो रहा है। यद्यपि पुराणो का मुख्य विषय सृष्टि, प्रलय, मन्वन्तर, युग, राजवशो का इतिहास आदि है, पर उनमे स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक चर्चा भी की गई है। बहुत से पुराणो म 'भगवद्गीता' के ढग पर कोई गीता ही सम्मिलित करदी गई है।

'महाभारत' मे ही 'भगवत् गीता' के अतिरिक्त 'कपिल, गीता' 'वशिष्ठ गीता' 'पराशर गीता' 'मकि गीता' 'पिंगल गीता' 'शाक गीता' 'बोध्य गीता' 'विचर पुगीता' 'हारति गीता' 'वृत्र गीता' 'हस गीता' आदि अनेक गीताऐं हैं। 'भागवत' मे भी एक हस 'गीता' है और दूसरी भिक्षु गीता है। 'अवधूत गीता' 'अष्टावक्र गीता' 'शिव गीता' तथा 'गणेश गीता' भी काफी बडी हैं। 'स्कन्द पुराण' मे 'ब्रह्मगीता' और 'सूत गीता' सम्मिलित हैं। 'यम गीता' तीन पुराणो मे पाई जाती है—'विष्णु

पुराण', 'अग्नि पुराण' और 'नृसिंह पुराण' में। एक 'रामगीता' भी है जो 'अध्यात्म रामायण' के उत्तरकाण्ड में है। 'देवी भागवत' में एक 'देवी गीता' पाई जाती है।

इन सब पुराणों की तरह 'कूर्म पुराण' में भी (१) 'ईश्वर गीता' और (२) व्यास गीता पाई जाती है। 'व्यास गीता' में विशेष रूप से कर्मकाण्ड, चारों आश्रमों के धर्म, श्राद्ध विधि, प्रायश्चित्त विधान आदि धार्मिक नियम उपनियम हैं। 'ईश्वर गीता' का मुख्य विषय अध्यात्म है। ईश्वर का स्वरूप क्या है, जीव की विशेषतायें क्या हैं, दोनों में क्या सम्बन्ध है? जीव किस उपाय से इस संसार सागर से पार हो सकता है? इसके लिए 'शिव योग' का साधन किस प्रकार करना आवश्यक है? इन सब बातों का विवेचन इसमें अध्यात्म शास्त्र तथा शैव सिद्धान्त के अनुसार किया है। जैसा लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीता रहस्य' में लिखा है "इन सब गीताओं की रचना तथा विषय विवेचन को देखने से यही मालूम होता है कि ये सब ग्रन्थ, 'भगवद्‌गीता' के जगत प्रसिद्ध होने के बाद ही बनाए गए हैं। इन गीताओं के सम्बन्ध में यह कहने से भी कोई हानि नहीं कि वे इसीलिए रची गई हैं कि किसी विशिष्ट पंथ या विशिष्ट पुराण में 'भगवद्‌गीता' के समान एक आध गीता के रहे बिना उस पंथ या पुराण की पूर्णता नहीं हो सकती थी। इनमें से कई गीताओं में तो 'भगवद्‌गीता' के अनेक श्लोक ज्यों के त्यों नकल कर लिए गए हैं। जिन श्लोकों को कुछ शब्द 'भगवद्‌गीता' के लेकर और कुछ अपने मिलाकर बनाया गया है, उनकी संख्या तो बहुत अधिक है।

आत्मा का स्वरूप—

जिस प्रकार 'भगवद्‌गीता' में अध्यात्म शास्त्र का विवेचन श्रीकृष्ण ने स्वयं को सर्व शक्तिमान और सर्वव्यापी ईश्वर मानते हुए किया है, उसी प्रकार 'ईश्वर गीता' के कथन करने वाले साक्षात् भगवान महेश्वर माने गये हैं, जो बदरिकाश्रम में समस्त मुनि ऋषियों की प्रार्थना करने पर आत्मोपदेश करने के लिए प्रकट हुए थे। उन्होंने मुनियों के सम्मुख

आत्मा का जो स्वरूप प्रकट किया वह अध्यात्म शास्त्र की दृष्टि से बहुत बोधगम्य और स्पष्ट है। उन्होंने समझाया कि आत्मा भौतिक पदार्थों से सर्वथा अलग है। संसार के अधिकांश व्यक्ति जिस प्रकार शरीर और आत्मा को एक समझ कर व्यवहार करते रहते हैं वह गलत है और उसी के कारण जीवात्मा का पतन होता है। आत्मा का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है—

आत्मायं केवल. स्वच्छ शुद्ध. सूक्ष्मः सनातनः।
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः॥
न चाप्ययं संसरति न संसारमयः प्रभु।
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नमः॥
न प्राणो न मानोऽव्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च।
न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्ता न वागपि।
न पाणि पादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः।
न च कर्ता नभोक्तावान च प्रकृतिपूरुषौ॥
न माया नैवच प्राणा न चैव परमार्थतः।
यथा प्रकाश तमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते॥

अर्थात्—'यह आत्मा सब से अलग और निराला ही है। यह स्वच्छ, शुद्ध, सूक्ष्म और सनातन है। यह सबके अन्तर मे है और केवल ज्ञान स्वरूप तथा तम से परे है। वह कभी चलायमान नहीं होता और न कभी संसार रूप बनता है। वह भूमि, जल, अग्नि, वायु आदि स्थूल पंच तत्वों से सर्वथा पृथक है। इसी प्रकार इन पंच भूतों के जो गुण हैं, जैसे रूप, रस, गन्ध, शब्द आदि उनसे भी वह भिन्न है। वह हमारे शरीर से भी सर्वथा पृथक है, उसे न हाथ पैर कह सकते है और न गुदा, उपस्थ आदि। वह न कर्ता है और न भोक्ता, वह न प्रकृति है और न पुरुष है। वह न माया है और न प्राण है। जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार कभी एक नहीं हो सकते उसी तरह परमात्मा और जगत को भी एक किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता।"

वास्तव मे आत्मा का यह परिचय बहुत बोधगम्य और स्पष्ट है।

क्योंकि परमात्म तत्त्व हमारे जाने हुए महत्त्व स्थूल पदार्थों से सर्वथा भिन्न है। इसीलिए महात्मा ऋषि-मुनियों ने भी 'नेति-नेति' कहकर उसका वर्णन किया है। अर्थात् वह ऐसा विषय है जिसका वर्णन शब्दों द्वारा पूर्णतः नहीं किया जा सकता 'भगवद् गीता' में इस आत्म स्वरूप का तात्विक वर्णन दो चार श्लोकों में ही कर दिया गया है—

> वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
> नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
> न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
> अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
> नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
> अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम विकार्योऽयमुच्यते ।

गीताकार कहते हैं कि यह आत्मा तो अविनाशी, नित्य, अजन्मा, अव्यय है। इसको न किसी शास्त्र से काटा जा सकता है, न आग में जलाया जा सकता है, न जल से इसको भिगोया जा सकता है और न वायु के द्वारा इसे सुखाया जा सकता है। इस प्रकार यह सर्वथा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। यह निःसन्देह नित्य सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता, इसको विचार में भी नहीं लाया जा सकता और इसमें कभी किसी प्रकार का विकार भी नहीं हो सकता।'

यद्यपि ईश्वरगीता और 'भगवत गीता' की वर्णन शैली पृथक है, भाषा में भी काफी अन्तर है, पर आशय दोनों का एक ही है। दोनों ने ही आत्मा को शरीर से सर्वथा पृथक, भिन्न और अद्वितीय विषय माना है। इसी तथ्य को 'अवधूत गीता' में विभिन्न दृष्टिकोण से कहा गया है—

> वेदान्त सार सर्वस्वं ज्ञान-विज्ञान मेव च ।
> अहमात्मानिराकारः सर्व व्यापी स्वभावतः ॥
> यो वै सर्वात्मको देवो निष्फलो गगनोपमः ।
> स्वभाव निर्मल शुद्ध. स एवाहं न संशयः ॥

अहमेवाव्ययोऽनन्त शुद्ध विज्ञान विगृहः ।
सुख दु ख न जानामि कथ कस्यापिवर्ततते ॥
आत्मान सतत विद्धि सर्वत्रैक निरन्तरम् ।
अह ध्याता पर ध्येयमखण्ड खण्ड्यते कथम् ॥
न जातो न मतोऽसित्त्व न ते देह कदाचन ।
सर्वं ब्रह्मेति विख्यात ब्रवीति बहुधा श्रुति ॥

अर्थात् "समस्त वेदान्त शास्त्र का सार यही है और यही समस्त ज्ञान-विज्ञान का तत्व है कि मैं सर्व व्यापी और निराकार आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नही हूँ । जो 'देव' सब की आत्मा है, कला रहित है, आकाश के समान आकार रहित है, स्वभाव से ही निर्मल और शुद्ध है, वही निश्चय रूप से मैं भी हू । मैं ही अविनाशी और अनन्त, शुद्ध ज्ञान रूप हूँ । ऐसी दशा मे सुख और दु ख का तो मेरे लिये कोई प्रश्न ही नही उठता । आत्मा सब जगह है और इसका कभी नाश नही होता । इस लिये इसको 'ध्याता' और 'ध्येय' दो रूपो मे वर्णन करना एक अखण्डनीय तत्त्व को खडिन के समान अज्ञान मूलक है । यह न जन्म लेता है, न मरता है और न किसी प्रकार देह रूप कहा जा सकता है यह सब कुछ ब्रह्म ही है, यही मत श्रुति (वेद) मे अनेक प्रकार से प्रकट किया गया है ।"

'भागवत महा पुराण' के ग्यारहवे स्कन्ध के अन्तर्गतवर्णन की गई 'हस गीता' म भी आत्मा का स्वरूप सबसे पृथक और अव्यक्त कहा गया है—

मनसा वचसा दृष्टया गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥
गुणोष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसिचप्रजा. ।
जीवस्य देह उभय गुणाश्चेतो मदात्मन ॥
जाग्रत् स्वप्नः सुपुप्त च गुणतो बुद्धि वृत्तय ।
तासा विलक्षणो जीवः साक्षि त्वेन विनिश्चित ॥

यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ।
मयि तुर्ये स्थितो जह्यात् त्यागस्तद् गुणचेतसाम् ॥
असत्त्वादात्मनोऽन्येषा भावाना तत्कृता भिदा ।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्न दृशो यथा ॥

सनकादि ऋषियो के द्वारा आत्म स्वरूप की जिज्ञासा करने पर हंस रूप धारी भगवान् ने कहा—मन से, वाणी से, दृष्टि से तथा अन्य इन्द्रियो से भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ । आप अच्छी तरह इस तत्त्व को समझ लें कि जगत मे मेरे (परमात्म तत्त्व) के सिवाय कही और कुछ नही है । जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—जिन तीन अवस्थाओ का अनुभव मनुष्य सदैव किया करता है, वे सब बुद्धि की वृत्तियाँ हैं, सच्चिदानन्द आत्मा के साथ उनका कोई सम्बन्ध नही । जीव तो उनमे सर्वथा भिन्न और उनका साक्षी-मात्र है । बुद्धि वृत्तियो द्वारा होने वाला यह बन्धन ही आत्मा में त्रिगुणमयी अनुभूति उत्पन्न करता है । इस लिये साधक को उचित है कि वह तीनों अवस्थाओं को त्याग कर केवल तुरीय मे स्थित होने की चेष्टा न करे । इससे विषय और चित्त का अन्त हो जायगा । वास्तव मे आत्मा के अतिरिक्त देह तथा अन्य जितने भी सासारिक पदार्थ दिखाई पडते हैं उनका कुछ भी अस्तित्त्व नहीं है । इस लिये उनके कारण होने वाले समस्त कर्म और सासारिक व्यवहार उसी प्रकार मिथ्या है, जैसे स्वप्न मे दिखाई देने वाले सब पदार्थ ।"

परब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप का परिचय—

परमात्मा के अज्ञेय और अचिन्तनीय होने पर भी विद्वानो ने तरह-तरह के वर्णन द्वारा उसका कुछ आभास देने का प्रयत्न किया है । इस विषय में सब से अधिक गम्भीर और महत्त्वपूर्ण वर्णन उपनिषदो का माना जाता है । 'ईश्वर गीता' में भी इसी मार्ग का अनुसरण करके कहा गया है—

एको देवः
तमेवैकं

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्द ब्रह्मणो विद्वान्विभेतिनकुतश्चन ॥
न तत्र सूर्य. प्रतिभातीह चन्द्रो नक्षत्राणा गणो नीत विद्युत्।
तद्भासितह्यखिलम्भातिविश्व्यमतोवभागममलतद्विभाति ॥
न भूमिरापो न मनो न वह्निः प्राणोऽनिलो गगननोतबुद्धि।
न चेतनोऽन्यत्परमाकाश मध्ये विभातिदेव.शिवएवकेवलः ॥
वेदाहमेतं पुरुषमहान्तमादित्यवर्णं पुरुष पुरस्तात्।
तं विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ॥

अर्थात्—वह एक ही परमात्मा सब भूतो (पदार्थों और प्राणियो) मे व्याप्त है, वह सर्व व्यापी और सब का आत्मा है। उसको केवल धीर (सच्चे साधक) ही जानने मे समर्थ हो सकते है, अन्य कोई नही। जिस परमात्म तत्त्व का वर्णन करन मे वाणी असमर्थ हो जाती है और जहाँ मन की भी पहुच नही हो सकती, वही वास्तव मे आनन्द का धाश्रम स्थल है। उसको प्राप्त करके विद्वान् पुरुष अभय हो जाता है। वहाँ पर न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, तथा नक्षत्र दिखाई पडते हैं, न न बिजली चमकती है। इसके विपरीत यह सकल विश्व उसी की आभा (दीप्ति) से भासित होता है। उसका प्रकाश सबसे अद्वितीय और अमल है। भूमि, जल, मन, अग्नि, प्राण, अनिल, गगन, बुद्धि, चेतना शक्ति आदि मे से कोई वहाँ नही पहुँच पाता, एक मात्र परमात्मा (शिव) ही वहाँ विभासित होता है। मैं ही वेद हूँ, महान् पुरुष हूँ, सूर्य के समान वर्ण वाला पुरुष हूं। मुझे जान कर ज्ञानीजन ब्रह्म की स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं।"

यह वर्णन पूर्णतः उपनिषदो के अनुकूल है और सम्भवतः उन्ही से प्रेरणा लेकर लिखा गया है। ये सभी श्लोक 'श्वेत श्वतरोपनिषद' मे भी दिये गये हैं, केवल कुछ ही शब्दो का अन्तर है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च ॥

न तत्र सूर्योभातिनचन्द्रतारकनेमाविद्युतोभान्तिकुतोऽयमग्नि।
तमेव भान्तमनुभान्ति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदविभाति ॥
वेदाहमेतं पुरुषंमहान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्येतऽयनाम ॥

'एक ही परमेश्वर सब जीवो में स्थित तथा सर्व व्यापी है। वही सब भूतों के अन्तर मे निवास करने वाला ब्रह्म है। वह सब के कर्मों का नियामक, सब प्राणियो का आश्रय,उत सब का साक्षी, चेतन स्वरूप, पवित्र एवं निर्गुण है। वह ऐसा तत्त्व है कि वहाँ सूर्य, चन्द्रमा, तारागण और विद्युत किसी का प्रकाश नही पहुँच सकता, फिर अग्नि के प्रकाश को तो बात ही क्या है। इसके बजाय सूर्य आदि और समस्त लोक उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। उस अविद्या से परे, सूर्य के समान तेजस्वी, महान् पुरुष को मैं जानता हूँ। जो उसे जान लेता है वह मृत्यु से पार हो जाता है। उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग भव-बन्धन से मुक्त होने का नही है।"

पाशुपत योग—

'ईश्वर गीता' में परमात्मा की प्राप्ति, का सर्व प्रधान साधन 'पाशुपत योग' बतलाया गया है। उसमे कहा है कि इस योग की अग्नि पाप के बड़े समूह को अविलम्ब जला कर भस्म कर देती है। तब निर्वाण की प्राप्ति कराने वाला श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न होता है। इस योग को दो प्रकार का वर्णन किया गया है, पहला 'अभाव योग' और दूसरा 'महायोग'। जिसमें परमात्मा के शून्य और निराभास रूप का ध्यान करके आत्मा का दर्शन और परमात्मा के साथ उसका एकीभाव अनुभव किया जाता है, वह अभाव योग या ब्रह्म योग है। इसकी तुलना अन्य आचार्यों द्वारा कथित 'ज्ञान योग' से की जा सकती है। दूसरा 'महायोग' है जो 'राज योग' के समकक्ष माना जा सकता है। यही तथ्य 'ईश्वर गीता' के निम्न वर्णन से प्रकट होता है—

प्राण ।यामस्तथा ध्यान प्रत्याहारोऽथ धारणा ॥
समाधिश्च मुनि श्रेष्ठा यमश्च नियमासने ॥
अहिंसासत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहो ।
यमा सक्षेपत प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम् ॥
तप स्वध्याय सन्तोषो शौचमीश्वर पूजनम् ।
समासान्नियमा प्रोक्ता योग सिद्धिप्रदायिन ॥
आसन स्वस्तिक बद्ध्वा पद्ममर्द्धमथापिवा ।
नासिकाग्रे समादृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षण. ।।
कृत्वाथ निर्भयः शान्तम्त्यक्त्वा मायामय जगत् ।
स्वात्मन्यवस्थितन्देव चिन्तयेत् परमेश्वरम् ॥
ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूप महेश्वरम् ।
विशोध्य सर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुन ॥
चिन्तयेत् स्वात्मनीशान पर ज्योति स्वरूपिणम् ।
एष पाशुपतो योग पशुपाश विमुक्तये ॥

"यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि —ये योग के आठ अग है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इनको पाँच यम कहा गया है, जिनसे मनुष्य का चित्त शुद्ध होता है । तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच, ईश्वर प्रणिधान—इनको पाँच नियम बतलाया गया है, जिनके द्वारा योग मे सिद्धि प्राप्त होनी सभव होती है । साधन प्रारभ करते समय स्वस्तिक अथवा ऊर्द्ध पद्मासन पर बैठ कर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को जमाये और नेत्रो को आधे मुंदे रखे । तब इस मायामय जगत का विचार त्याग कर निर्भय और शान्त मन से अपनी आत्मा मे उपस्थित परमेश्वर का ध्यान करे । इस प्रकार शरीर और मन को पूर्ण शुद्ध करके अथवा प्रणवोपासना द्वारा अन्तरात्मा को परमपद मे स्थित करके अपनी आत्मा मे तन्मय होकर अविनाशी, एकरूप ईशान देव का चिन्तन करना चाहिए । यही पाशुपत योग है जिससे पशु (जीवात्मा) के पाश (कर्म-बन्धन) कट कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है ।"

यह 'पशुपत-योग' ही शैव-मार्ग का सबसे बड़ा साधन है और सभी शैव-पुराणों में इसका विस्तार पूर्वक और विवेचना युक्त वर्णन किया गया है। 'पशु' 'पशुपति' तथा 'पाश' इन तीनों का जो रहस्य 'शिवपुराण' की 'वायु संहिता' में प्रकट किया गया है उसमें कहा है—

"ब्रह्मा से लेकर स्थावर (जड़ पदार्थों) तक की संज्ञा 'पशु' ही है। ये कर्म रूपी पाशों से बँध कर सुख-दुःख भोगते हैं, इसीलिये 'पशु' कहे गये हैं। एक अनन्त रमणीय गुणों का आश्रय जगदीश्वर ही पशु-पाश का विमोचन करने वाला है। उसके बिना यह सृष्टि कैसे हो सकती है, क्योंकि 'पशु' और 'पाश' दोनों तो ज्ञान रहित हैं। यह जगत कर्म सापेक्ष है, यह कर्त्ता के बिना नहीं चल सकता। इसलिये कार्य का कर्तव्य ईश्वर में है, उसे पशु, पाश (जीव और कर्म) में नहीं माना जा सकता। ईश्वर की प्रेरणा से जीव में भी कर्तापन प्रतीत होता है, परन्तु वह यथार्थ नहीं होता। जैसे अन्धा स्वयं नहीं चल सकता दूसरे के सहारे चलता है, वैसे ही जीव का कर्तृत्व समझो—

पशोरपि च कर्तृत्वं परयुर्न प्रेरण पूर्वकम्।
अयथाकरण ज्ञानमधस्य गमनं यथा॥

पशु, पाश और पति का जो तत्वयुक्त अन्तर है उसे जानकर ब्रह्मज्ञानी पुरुष जीवन मुक्त होता है। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक—इन तीनों को जानने के उपरान्त और किसी को जानने की आवश्यकता नहीं रहती। जैसे तिलों में तेल, दही में घी, स्रोत में जल, अरणि (काष्ठ) में अग्नि का अस्तित्व है, वैसे ही हमारी आत्मा में परमात्मा भी समाया हुआ है। यह तथ्य सत्य को धारण करने और तप द्वारा विदित हो सकता है। वह रुद्र ही एक मात्र माया से परे है, दूसरा कोई नहीं। वही इस समस्त विश्व को रचना, रक्षा और संहार करने वाले हैं—

एक एव सदा रुद्रो न द्वितीयोस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्वं भुवनं गोप्ता ते संवुकोचयः॥

"यह सब जगत उस रुद्र के हाथ, पैर नेत्र और मुख है। वह एक ही देवता स्वर्ग और पृथ्वी का उत्पन्न करने वाला है, सब देवताओं को वही

उत्पन्न करता है तथा पालन भी करता है जो प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न करता है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान है, वही अविनाशी महेश्वर सब जीवों के हृदयाकाश में स्थित है"—

अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः।
गुहायां निहितश्चापि जंतोरस्य महेश्वरः॥

यह उपनिषद्-वाक्य, जो परमेश्वर की सत्ता का स्वरूप वर्णन करने के लिये धार्मिक साहित्य में सर्वत्र प्रयोग में लाया गया है, 'शिव-पुराण' में भी एक दो शब्द बदल कर उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार अन्य पचीसों उपनिषदों के श्लोक इस अध्याय में पाये जाते हैं। इसका आशय यही है कि वैदिक अध्यात्मवाद की जो व्याख्या उपनिषदों में की गई है, वही आगे चल कर शिव, विष्णु, राम, कृष्ण आदि के भक्तिमार्गी उपासकों ने भी अपनाई है। केवल बीच-बीच में उसमें अपने साम्प्रदायिक देव का नाम सम्मिलित कर दिया है। इससे भारतीय अध्यात्मवाद की एकता पर जो प्रकाश पड़ता है वह कम महत्वपूर्ण नहीं है।

"शिवपुराण" के वचनानुसार जब श्री कृष्ण जामवन्ती के पुत्र होने के लिये तपस्या के निमित्त कैलाश पर गये थे तो उन्होंने महर्षि उपमन्यु से शिव-तत्त्व पूछा था। उपमन्यु ने शिव के आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा—"यह चराचर जगत उन्हीं देवदेव शिव का विग्रह है। पर 'पाश' में बँधेहुये जीव उन्हें नहीं जानते। हे कृष्ण! उन एक का ही अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है। अपर ब्रह्मस्वरूप ही पर ब्रह्म है, उसी को महादेव, अनादि निधन कहते हैं। जो अपर ब्रह्म भूतेन्द्रिय अन्तःकरण में प्रधान है वही चिदात्मक परब्रह्म कहा जाता है। यही वृहत और और वृंहण होने के कारण 'परम' कहा जाता है। ये दोनों ही ब्रह्म के स्वरूप हैं, कोई इनको विद्या और अविद्या रूप ईश्वर भी कहते हैं। विद्या चेतना और अविद्या अचेतना है। विश्व-गुरु का यह विद्या-अविद्यात्मक रूप है। यह समस्त संसार उसी के वश में है और निश्चय ही यह सभी शिव का रूप है—

रूपमेव न सन्देहो विश्वं तस्य वशे यतः ।
भ्रांतिविद्या परा चेति शार्वं रूप परं विदुः ॥

"किसी अर्थ को यथार्थ न समझने को ही भ्रांति कहते हैं, और अर्थाकार संवित्ति को विद्या कहा गया है। तत्वपद विकल्प रहित है तथा उससे विपरीत तत्व को ज्ञानियों ने असत् कहा है। यह सत्-असत् वाला विश्व उस परमेष्ठी का देह है और सत्-असत् का पति होने से शिव को 'सत् असत् पति' अथवा 'क्षर-अक्षरात्मक' कहते हैं। पर वास्तव में वह क्षर-अक्षर दोनों से परे हैं। सभी प्राणी क्षर (नाशवान है) और कूटस्थ (जीवात्मा) को अक्षर (अविनाशी) कहा गया है। यह दोनों ही उस परमात्मा के अधीन हैं। उससे परे शान्त शिव को क्षराक्षर से पृथक कहा गया है। कोई शिव को परम नारायण कहते हैं, तथा समष्टि को अव्यक्त और व्यष्टि को व्यक्त बताते हैं। ईश्वरेच्छा से यह दोनों रूप उसी के है, उनका अन्य कोई कारण न होने से शिव ही परम कारण हैं—

ते रूपे परमेशस्य तदिच्छायाः प्रवर्तनात् ।
तयो कारणभावेन शिव परम कारणम् ॥

आगे चलकर पुराणकार ने सांख्य सिद्धान्त को भी शैव सिद्धान्त के साथ समन्वित किया है। वह कहता है—

"विश्व का कारण जानने वालों ने समष्टि-व्यष्टि को कारण कहा है। कोई ईश्वर को जाति और व्यक्ति स्वरूपी बतलाते हैं। पिण्डों में पाई जाने वाली स्थिति को जाति कहा है, और व्यक्ति आवृत्ति रूप से सभी पिण्डों में स्थित है। क्योंकि यह जाति और व्यक्ति शिव की आज्ञा के वश में हैं, इसी से उनको जाति और व्यक्ति के स्वरूप वाला कहा है। प्रधान और पुरुष 'व्यक्त' हैं और शिव 'कालात्मा' है। प्रधान प्रकृति है और पुरुष चेतन है। तेईस तत्वों का नाम व्यक्त बताया है। इस प्रपंच का कारण काल को ही बताया गया है। यही प्रवर्तन और निवर्तन करता है तथा यही आविर्भाव तथा तिरोभाव का एक कारण है। इससे

प्रधान और पुरुष काल स्वरूपात्मक हैं, उनका कारण तथा अधिपति एक शिव ही है।''

अन्त में महर्षि उपमन्यु ने शिव को सर्वोपरि और सर्वात्मक बताते हुए कहा—"कोई शिव को हिरण्यगर्भात्मा, कोई अन्तर्यामी और विश्वात्मा बतलाते हैं। कोई तुरीय और कोई सौम्य कहते हैं। किसी ने उसे माता, मान, मेय और मति कहा है। कोई कर्ता-क्रिया, कारण और कोई जागृत-स्वप्न सुषुप्ति वाला कहते है। किसी ने तुरीय, किसी ने तुर्यातीत कहा है, कोई निर्गुण तथा कोई सगुण कहते हैं। कोई ससारी कोई असंसारी, कोई स्वतन्त्र कोई अस्वतन्त्र कहते हैं। किसी ने घोर और किसी ने सौम्य कहा है तथा किसी ने रागी और किसी ने विरागी बताया है। कोई क्रिया रूप और कोई निष्क्रिय, कोई इन्द्रिय युक्त और कोई इन्द्रिय रहित कहते हैं। किसी ने उन्हें दृश्य कहा है और किसी ने अदृश्य, कोई वाच्य और कोई अवाच्य, कोई शब्दात्मक और कोई शब्दों से परे बताते हैं। किसी ने चिन्तनीय और किसी ने अचिन्त्य, किसी ने ज्ञान रूप और किसी ने विज्ञान रूप, कोई ज्ञेय और कोई अज्ञेय, कोई एक और कोई अनेक कहते हैं।

इस प्रकार उस परमेष्ठी की अनेक प्रकार से कल्पना की गई है और अनेक प्रकार के मतों के कारण मुनिजन भी उनका यथार्थ निर्णय करने मे असमर्थ हैं। परन्तु जो सर्व भाव से उन परमेश्वर शिव की शरण को प्राप्त हो चुके हैं, वे बिना किसी यत्न के ही उन परम कारण को जान लेते हैं। जब तक यह 'पशु' रूपी प्राणी ससार को वश में रखने वाले उन पुराण पुरुष परमेश्वर को नहीं जान लेता तब तक 'पाश' मे बँधा हुआ पहिये की नेमि के समान घूमता रहता है। जब वह विश्वकर्त्ता, हिरण्य गर्भ, ईश्वर के ब्रह्म रूप के दर्शन पा जाता है तब पुण्य-पाप से दूर होकर शिव में तादात्म्य हो जाता है।

यावत् पशुर्नैव पश्यत्यनीशं कवि पुराण भुवनस्येशितारम्।
तावद् दु खे वर्तते बद्धपाशः ससारेऽस्मिन् चक्रनेमिक्रमेण ॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्म वर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परम मुपैति साम्यम् ॥

पाशुपति योग की महिमा—

'वायु-पुराण' में भी 'पाशुपति योग' का वर्णन विस्तार से किया गया है और उसी को भव-सागर से पार होने का सर्वोत्तम मार्ग बतलाया है। पर उसकी वर्णन शैली सामान्य जनता के अधिक भावानुकूल है। उसमें तत्वज्ञान के साथ ही अष्ट सिद्धियाँ, पाप पुण्य के फल, गर्भ में जीव की अवस्था, नरकों के कष्ट आदि का वर्णन भी पर्याप्त पाया जाता है—

तत्राष्टगुणमैश्वर्यं योगिना समुदाहृतम् ।
तत्सर्वं क्रमयोगेन उच्यमानं निबोधत ॥
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च ।
प्रकाम्यञ्चैव सर्वत्र ईशित्वञ्चैव सर्वतः ॥
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता ।
तच्चापि विविध ज्ञेयमैश्वर्यं सर्वकामिकम् ॥

"योगियों का जो आठ गुण (सिद्धियों) वाला ऐश्वर्य कहा गया है उसको क्रम से कहा जाता है। अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और काम वसायित्व। ये योग-ऐश्वर्य विविध प्रकार के होते हैं।"

यद्यपि ये सब अष्ट ऐश्वर्य मनुष्य को सामान्य देवताओं की अपेक्षा भी ऊँचे दर्जे में पहुँचा सकते हैं, पर मोक्षाभिलाषियों द्वारा इनको त्याज्य ही बतलाया गया है। अधिकांश साधक इनको पाकर योग के मूल उद्देश्य आत्मा के उद्धार को भूल जाते हैं और प्रायः निर्वाण-मार्ग से हटकर पुनः संसार की ओर लौट आते हैं। इसलिए 'वायु पुराणकार' ने सिद्धियों का वर्णन करके भी भगवद्गीता के 'आत्मयोग' और निष्काम कर्म को ही सर्वश्रेष्ठ और कल्याणकारी बताया है—

न जायते न म्रियते भिद्यते न च छिद्यते ।
न दह्यते न मुह्यते ह्रीयते न च लिप्यते ॥

न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन् ।
क्रियते चैव सर्वेन तथा विक्रियते न च ।।
अगन्धरस रूपस्तु स्पर्शशब्द विवर्जितः ।
अवर्णो ह्यवरश्चैव तथा वर्णस्य कर्हिचित् ।।
भुङ्क्तेऽथ विषयांश्चैव विषयैर्न युज्यते ।
ज्ञात्वा तु परमं सूक्ष्म सूक्ष्मत्वाच्चापवर्गकः ।।
गुणान्तुरन्तु ऐश्वर्यं सर्वतः सूक्ष्म उच्यते ।
ऐश्वर्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम् ।
अपवर्गम् ततो गच्छेत् सुसूक्ष्म परमं पदम् ।।

"यह आत्मा ही ऐसा तत्व है जो न कभी जन्म लेता है, न कभी मरता है, न काटा जा सकता है, न छेदा जा सकता है, न जलाया जा सकता है। यह कभी मोह को प्राप्त नहीं होता, स्वार्थी नहीं बनता, लिप्त नहीं होता। यह न कभी क्षीण होता है, न नष्ट होता है और न दुखी होता है। यह क्रियाशील रहने पर भी कभी विकारग्रस्त नहीं होता। यह पञ्च भूतों के गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द पाँचों गुणों से पृथक है, इसका कोई रंग भी नहीं है। यह सबसे भिन्न प्रकार का ही एक तत्व है। यह विषयों का भोग करता है पर उनमें आसक्त नहीं होता। ऐसा होने पर यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। यह योगैश्वर्य का दूसरा रूप है जो ऋद्धि-सिद्धियों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और महान है। यह ऐसा ऐश्वर्य है जो कभी नष्ट नहीं होता और अन्त में परम पद को प्राप्त करा देता है।"

पुराणकार का आशय यही है कि जो लोग किसी प्रकार की कामना रखकर चमत्कारी शक्तियाँ प्राप्त करने के उद्देश्य से योग-साधन करते हैं, वे चाहे देवताओं के समान सामर्थ्यवान बन जाँय, पर उनकी सफलता स्थायी नहीं हो सकती। इस प्रकार का साधक शीघ्र या देर में फिर जहाँ का तहाँ पहुँच जाता है—

न चैवमागतो ज्ञानात् रागात् कर्म समाचरेत् ।
राजसं तामसं वापि भुक्त्वा तत्रैव युज्यते ।।

तथा सुकृत कर्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते ।
तस्मात् स्थानात् पुनभ्रष्टो मानुष्यमनुपद्यते ॥
तस्माद् ब्रह्म पर सूक्ष्म ब्रह्म शाश्वतमुच्यते ।
ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परमं सुखम् ॥
परिश्रमस्तु यज्ञानां महतार्थेन वर्तते ।
भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षं परं सुखम् ॥

"जब इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होजाय तो जान कर या अनजान में अथवा मोहवश विपरीत आचरण न करे । क्योंकि जो पुण्य कर्म राजस या तामस भाव से किये जाते हैं उनका परिणाम अस्थायी ही होता है । वैसा पुण्य करने वाला कुछ समय तक स्वर्गफल भोग कर पुन मनुष्य योनि को ही प्राप्त होजाता है । इसलिये परम सूक्ष्म शाश्वत ब्रह्म की आराधना करना ही स्थायी परम सुख का कारण होता है । यज्ञादि कर्म काण्ड में तो अत्यन्त परिश्रम तथा धन व्यय करना पड़ता है और फिर भी उनके कर्ता जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं । इस लिये मनुष्य को परम सुख रूप मोक्ष के लिये ही प्रयत्न शील रहना चाहिये ।" यह मोक्ष-मार्ग कौनसा है इसका वर्णन करते हुये कहते हैं—

"जो ब्रह्म-यज्ञ परायण होकर ध्यान में संलग्न होते हैं उनका नाश सौ मन्वन्तरों में भी नहीं होता । जो प्रभु विश्वरूप हैं, जिनके पैर, मस्तक, ग्रीवा सभी विश्वमय हैं, जिनकी गन्ध, माला, वस्त्र भी विश्व रूपी है, उन प्रभु का दर्शन इस योग साधन द्वारा ही हो सकता है । इन्द्रियों से रहित, महान आत्मा वाले, परम ज्ञान वाले, वरेण्य, कवि, पुराण पुरुष, अनुशासन कर्ता, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान इस प्रभु का दर्शन इन चर्म चक्षुओं से हो सकना सम्भव नहीं, उसके लिये योग—दृष्टि ही प्राप्त करनी होती है । वे प्रभु बिना लिङ्ग (चिह्न) वाले, हिरण्यमय, सगुण और निर्गुण, चेतन, नित्य, सर्वव्यापी है । उन प्रबल प्रकाश रूप प्रभु को शुद्धि-बुद्धि वाले पुरुष ही देखने में समर्थ हो सकते हैं । वे भगवान हाथ, पैर, उदर, पार्श्व, जिह्वा और इन्द्रियों से परे केवल दीप्तिमान हैं । वे बिना आँखों के देखते और बिना कानों के ही सुनते है । जो योगी उस

सनातन और समस्त भूतों के स्वामी को देख लेते हैं, वे कभी मोह को प्राप्त नहीं होते।"

अध्यात्म का स्रोत उपनिषद्

इस प्रकार पुराणों में तथा पृथक लिखे गये, 'गीता' ग्रन्थों में आत्मा-परमात्मा, जीव, कर्म, विद्या-अविद्या का जो वर्णन किया गया है, वह मुख्यतः उपनिषदों में पाया जाता है। उनमें भी दस—ग्यारह उपनिषद् मुख्य माने गये हैं। उन सब का सार 'भगवद् गीता' में प्रकट किया गया है। 'भगवत् गीता' की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उसने उपनिषदों में सिद्धान्त रूप से वर्णित अध्यात्म ज्ञान को निष्काम कर्म का स्वरूप दिया और उसका विभिन्न स्तर के मनुष्यों की दृष्टि से ऐसा क्रम पूर्वक वर्णन किया कि ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों मार्गों पर चलने वाले उससे लाभ उठा सकते हैं। ऊपर 'कूर्म पुराण' 'शिव पुराण' तथा 'वायु पुराण' के आधार पर अध्यात्म का जितना वर्णन किया गया है, वह सब 'भगवद् गीता' के क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ योग' वाले प्रकरण के कुछ ही श्लोकों में बहुत बोध गम्य रूप से प्रकट कर दिया गया है—

इदं शरीर कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्तितं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥
महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्त मेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पच चेन्द्रिय गोचराः॥
इच्छा द्वे'प' सुख दुःख सघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्र समासेन सविकार मुदाहृतम्॥
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥
इन्द्रियार्थे'पु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्॥

अर्थात् यह मनुष्य का शरीर ही 'क्षेत्र' कहा जाता है और जो इसे जानता है वही 'क्षेत्रज्ञ' है। इसको इस प्रकार समझना चाहिये कि पाँच

महाभूत (आकाश वायु, अग्नि जल और पृथ्वी) अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति, दस इन्द्रियाँ और पाँच इन्द्रियों के विषय—तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, पिण्ड, प्राण और धृति—यह सब क्षेत्र ही माना गया है। इनके अतिरिक्त श्रेष्ठता का अभिमान न रखना दम्भाचरण से बच कर रहना, प्राणी मात्र को किसी प्रकार न सताना और क्षमा भाव, मन तथा वाणी की सरलता, श्रद्धा—भक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहर तथा भीतर की शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता, मन और इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह। तथा इस लोक तथा पर लोक के भोगों के प्रति पूर्ण अनासक्ति अहंकार का अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि दुःख दोषों पर निरन्तर विचार करके इनकी वास्तविकता को हृदयंगम करते रहना चाहिए। यही ज्ञान की सब बातें हैं और इसके विपरीत अज्ञान समझना चाहिये।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादि मत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥

'यह परमात्मा ही जानने योग्य है, क्योंकि उसको जानकर ही मनुष्य 'अमृत' (मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। वही सब से परे 'अनादि' ब्रह्म है। उसे न 'सत्' कहा जा सकता है और न 'असत्' ही। उसके सब ओर हाथ पैर हैं, सब ओर आँखें, सिर और मुँह हैं, सब ओर कान हैं। वही इस जगत् में सर्वत्र व्याप्त है। उसमें सब इन्द्रियों का आभास

होना है पर उसके कोई भी इन्द्रिय नहीं है। वह सब से असक्त रह कर भी सब का पालन करता है, और निर्गुण होने पर भी गुणों का उपभोग करता है। वह सब भूतों (प्राणियों) के भीतर और बाहर भी है, वह अचर है और चर भी है, सूक्ष्म होने से वह अविज्ञेय (न जाना जा सकने वाला) है, और दूर होकर भी समीप है। वह वास्तव 'अखण्ड' है पर सब प्राणियों में व्याप्त होने से खण्डित—सा लगता है। सब का उत्पन्न करने वाला पालन करने वाला तथा ग्रसने (संहार) करने वाला भी वही है।"

इस प्रकार 'गीताकार ने अच्छी तरह समझा कर बता दिया है कि इस जगत में जो कुछ है वह सब परम ब्रह्म ही है। ईश्वर के रूप में नित्य' और 'सत्' है और इस पंच भूतात्मक जगत के रूप में वह 'अनित्य' और असत्' है। जो कोई तत्त्व को अच्छी तरह समझ लेता है उसको फिर संसार की माया भ्रमित नहीं कर सकती। और यह माया ही मनुष्यों का इस संसार—चक्र में फँसा कर सुख-दुःख का अनुभव कराती रहती है। इस प्रकार एक ही तत्त्व के 'सत्' और 'असत्' होने का ज्ञान प्राप्त कर सकना और फिर उस पर आचरण करना अवश्य ही कठिन है। इसी के लिये योग, वेदान्त, सांख्य आदि विविध महान् शास्त्रों की रचना की गई है। उनके अध्ययन और अभ्यास से मनुष्य संसार के वास्तविक रूप को जान कर इसके बन्धन से छुटकारा पा सकता है। यदि इनको समझने की सामर्थ्य न हो तो 'गीता' के कथनानुसार व दूसरे ज्ञानी जनों से उपदेश ग्रहण करके और उनके आदेशानुसार परमात्मा की भक्ति और उपासना का साधन करके भी संसार-सागर से पार हो सकते हैं। उनको अपने हृदय में यही निश्चय कर लेना चाहिये कि यह जो कुछ है वह सब परमात्मा का किया है और यदि हम उस पर अन्तःकरण से विश्वास रखेंगे तो हमारा कल्याण ही होगा। यही अध्यात्म ज्ञान 'कूर्म पुराण' में भी समझाया गया है।